आधुनिक भारतीय इतिहास

एक प्रगत अध्ययन

भाग–1
(1707–1813)

जी० एस० छाबड़ा

अनुवादक
एस० डी० द्विवेदी

स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्राइवेट लि०
नई दिल्ली-110016 बंगलोर-560009 जलंधर-144003

वितरक
स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्राइवेट लि०, एल 10, ग्रीन पार्क एक्सटेन्शन
नई दिल्ली-110016
695, मॉडल टाऊन, जलन्धर-144003,
24, रेस कोर्स रोड माधव नगर, बंगलोर-560001

आधुनिक भारतीय इतिहास—एक प्रगत अध्ययन

एस० के० घई, मैनेजिंग डाइरेक्टर, स्टर्लिंग पब्लिशर्ज प्राइवेट लि०,
एल-10 ग्रीन पार्क एक्सटेन्शन नई दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित एवं
संजय प्रिंटर्स, मान सरोवर पार्क, शाहदरा दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित

द्वितीय संस्करण की भूमिका

मैं प्रकाशक को इस पुस्तक के द्वितीय संस्करण के सम्यक संपादन तथा और अधिक सुधार के लिये धन्यवाद देता हूं। विषय वस्तु को भी पूर्णरूपेण पुनः दुहराया गया है और इसे घटना और विस्तार दोनों में और विश्वस्त बनाया गया है।

जी० एस० छाबड़ा

प्रथम संस्करण की भूमिका

पुस्तक का यह भाग भारत में मुगलों के पतन के वर्षों के अध्ययन से प्रारम्भ होता है जिसमें यह विवेचन किया गया है कि किस तरह अन्य शक्तियो में मराठे मुगल खंडहर पर उभरे जिनमे पतन के बीज पहले से ही मौजूद थे। इसमे अंग्रेजो की शक्ति के स्थायी विकास का चित्रण भी है जिन्होंने अपने अन्य युरोपीय विरोधियो को नतमस्तक कर दिया। भारत मे इनके दूरदर्शी नेताओं ने एक के बाद दूसरी भारतीय शक्ति को चालाकी से लेकर अपने को महान शक्ति बना दिया। पर इनकी इस शक्ति की भूख मिटाने मे इगलैंड के अनेक अग्रेजों के मूर्खतापूर्ण हस्तक्षेप ने उस समय कठिनाई पैदा कर दी जब उन्होंने अज्ञात नैराश्य में वेलजली को वापस बुला लिया। भारत भूमि पर खेले गये इन शक्तियों के उत्थान और पतन के नाटक में एक विचारणीय बात जिससे अपने को बचाया नही जा सकता, वह यह है कि क्षेत्र विस्तार तथा अनावश्यक शक्ति ग्रहण के विरुद्ध नियमों के बनने के बावजूद ऐसा लगता है कि कोई गुप्त शक्ति थी चाहे उसे हम भाग्य कह लें या कोई आध्यात्मिक विधान जिसने ब्रिटिशों को प्रायः बिना लड़े ही विजय प्रदान कर दी। इस पुस्तक के अध्ययन की अधिक आवश्यकता है, व्याख्या की कम, क्योंकि इसकी सूचना का आधार सभी उपलब्ध आधारभूत एवं सहायक प्रकाशित सामग्री है जो इस विषय के प्रगत छात्रो की आवश्यकता की पूर्ति करता है। यहां-वहां व्याख्या भी दी गई है और यह चेष्टा भी की गई है कि नये विचार रखकर और योग्य लोगों के मस्तिष्क की कल्पना से लाभ उठाया जाय जिससे इतिहास की अधिक सेवा हो सके।

जी० एस० छाबड़ा

विषय-सूची

1
मुगलों की अवनति

औरगजेब के चार लड़के थे। पर एक ऐसा संदेहशील व्यक्ति होने के कारण, जिसने सिंहासन प्राप्ति के लिए अपने पिता तक को कैद कर लिया था, वह किसी पर विश्वास न करता था। उसके पुत्रों मे सच या काल्पनिक मतभेद का इशारा भी उसे खरगोश की तरह चौंका देता था और वह उन्हें ऐसे अभूतपूर्व दड देता था कि लोग सम्राट के पुत्रो को दया का पात्र मानने लगते थे। सबसे बड़ा शाहजादा मुहम्मद सुल्तान पिता के भ्रांतिपूर्ण स्वभाव का शिकार होकर ही औरगजेब के गद्दी-प्राप्ति के 20 वर्ष पूर्व ही जेल में डाला जाकर बर्बाद हो चुका था। उसका दूसरा लड़का मुअज्जम तुच्छ आधारों पर सात वर्ष की लबी अवधि की सजा पा चुका था। तीसरा लड़का आजमशाह प्राय: कटुता से डाट-फटकार पाता और सम्राट के निकट न आ पा रहा था। चौथा लड़का अकबर राजपूतो से समझौते के फलस्वरूप पिता के क्रोध से बचने के लिए देश छोडने को बाध्य हुआ था और फारस में शरणागत होकर 1706 में मृत्यु को प्राप्त हुआ था। इसी के एक वर्ष बाद सम्राट औरंगजेब को भी भाग्य ने उस साम्राज्य से मुक्त कर दिया जिसे वह किसी भी नैतिकता या धर्म से मूल्यवान मानता था। सबसे छोटे लड़के कामबख्श को भी दो वर्ष के एकान्तवास की सजा भोगनी पडी थी और इस तरह वह भी अपने उन भाइयों की श्रेणी मे आ गया था जिनमें से कोई भी एक प्रशासन के विश्वास व गुण का विकास नहीं कर पाये। इस तरह 1707 में औरगजेब के देहावसान के समय मुगल शक्ति की मुखाकृति पर अध:पतन की रेखायें खिच गई थी।

औरंगजेब के उत्तराधिकारी

बहादुरशाह (1707-1712)

औरंगजेब ने मृत्यु के समय एक वसीयत छोडी थी जिसके द्वारा पूर्ण साम्राज्य का विभाजन उसके जीवित पुत्रो के बीच होना था। पर उनका कोई भी पुत्र अपनी शक्ति का ह्रास बर्दाश्त करने को तैयार नहीं था। फलस्वरूप एक उत्तराधिकार के युद्ध में मुअज्जम ने अपने प्रमुख विरोधी भाई आजमशाह को जाजउ मे पराजित करके मार डाला और 63 वर्ष की आयु मे बहादुर शाह के नाम मे सिंहासनासीन हुआ। बाद मे कामबख्श भी युद्ध के मैदान में बुरी तरह से घायल हो गया। नये सम्राट ने अब अपने समर्थकों को प्रसन्न करना प्रारंभ किया। उसने

आलस्य और आनंद के जीवन के घेरे में अपने को फेंक दिया। जिसके फलस्वरूप उसे 'शाहे-बेखबर' कहा जाने लगा जिसका अर्थ था एक ऐसा सम्राट, जिसे अपने इर्दगिर्द क्या हो रहा है, इसका पता न हो।

बहादुरशाह शिया मतावलम्बी था। इसी के फलस्वरूप दरबार मे दो दल हो गये। एक ईरानी दल जिसमें असद खां और उसका लड़का जुल्फिकार खा जैसे शिया मतावलबी सामंत थे तथा दूसरा तूरानी दल जिसमे चिन किल्च खां और गाजिउद्दीन फीरोज जग जैसे शक्तिशाली सुन्नी मतावलम्बी सामंत थे। इससे देश मे राजनैतिक झगड़े खड़े हो गए और मुगल सम्राट का पतन अवश्यम्भावी हो गया।

बहादुरशाह अपने पिता औरंगजेब की भाति कट्टर मुसलमान नहीं था। उसने अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता की नीति अपनाई पर अब तक बड़ी देर हो चुकी थी। एक ओर जहां इस नीति ने औरंगजेब के नीति-समर्थको को उससे दूर कर दिया, वही इस नीति ने उन्हे उतना सतुष्ट नही किया जिनके लिए वह अपनाई गई थी। ऐसा इसलिए हुआ क्योकि राजपूत, मराठा, जाट, सिख तथा अन्य लोग पूर्ववर्ती निष्ठुर बादशाहों के कटु जुये के नीचे दबे रह चुके थे। इस तरह मात्र जाति परिवर्तन उन्हे सतोष नही दे सकता था क्योंकि वे तो अब मुगल-शक्ति को ही नष्ट करने पर आमादा थे और स्वतन्त्रता प्राप्ति के इच्छुक थे। इस तरह विघटन-कारी शक्तियों को शक्ति, धोखे या फुसलाहट द्वारा अपने नियत्रण मे करने का नये सम्राट का यह नया प्रयास बेकार था। राजपूतों पर नियंत्रण नही हो सका था। शाहू की अध्यक्षता में मराठे विजय व विस्तार की नीति अपनाते हुए दिल्ली तक पहुचने की स्थिति में थे। बदा बहादुर के नेतृत्व में पजाब मे सिख गुरु गोविन्दसिंह और उनके परिवार के लोगों द्वारा भोगे गए कष्ट का बदला लेने के लिए उतावले थे।

देश का एक के बाद दूसरा भाग मुगलो के नियन्त्रण से निकलता जा रहा था। दूसरी ओर बहादुरशाह अपनी फिजूलखर्ची और अपने सहयोगियो के प्रति तुष्टी-करण की नीति अपनाकर असहायता और बर्बादी की ओर बढ़ रहा था। सम्राट के सामत भी इस स्थिति का पूर्ण लाभ उठाने के प्रयास में थे। इन्ही परिस्थितियों मे ही 1712 मे बहादुरशाह की मृत्यु हो गई। उसके लडको में उत्तराधिकार का संघर्ष हुआ और जहादारशाह काफी खून-खराबी के बाद दिल्ली के सिंहासन पर आ बैठा।

सैय्यद बंधु

जहांदार शाह (1712-1713)

हमने पीछे बहादुरशाह के समय में मुगल दरबार में ईरानी व तूरानी दो दलो या गुटो के विकास की व्याख्या की है। इन दोनों दलों मे अरब, रूमी, हब्शी,

अफगान और अन्य विदेशी तत्त्व सम्मिलित थे जिनकी सहायता से औरंगजेब जैसे शासकों ने भारत के हिन्दू और मुस्लिम राज्यों पर विजय प्राप्त की। मुगल दरबार के सभी महत्त्वपूर्ण सामत, जैसे चिन किल्च खा, निजामुलमुल्क और आसफजाह दो दलों में किसी न किसी के सदस्य थे, जबकि भारत में उत्पन्न *मुसलमान तथा यहां के हिन्दू नीचे स्थानों पर नियुक्त थे।*

इस कालावधि की एक विशेष बात एक 'हिन्दुस्तानी दल' का विकास भी था जिसमे भारत में उत्पन्न मुसलमान, अन्य धर्मों को छोड़ इस्लाम धर्म स्वीकार करने वाले मुसलमान तथा उन विदेशी मुसलमानो की सतानें, जो भारत में दो-तीन पीढ़ी पूर्व आकर बस गई थी, आती थी। ये मुसलमान शिया थे और इन्हें जाटों, राजपूतों और अन्य शक्तिशाली राजाओ का समर्थन सुन्नी मुगलों के विरुद्ध प्राप्त था। इस 'हिन्दुस्तानी दल' का नेतृत्व सैय्यद भाइयों ने ग्रहण किया।

दोनो सैय्यद भाई अपने वश का उद्गम साहसिक सैय्यद अब्दुल फराह् से मानते थे। वह मेसोपोटोनिया के वासित स्थान से आकर पजाब मे पटियाला में बहुत पहले बस गया था। केन्द्रीय राजनीति में जिस समय के आसपास इनकी महत्ता बढ गई उस समय बड़ा भाई अब्दुल्ला खा इलाहाबाद का सहायक सूबेदार था जबकि उसका छोटा भाई हुसैन खां बिहार मे उसी तरह के एक पद का अधिकारी था।

इन दोनो भाइयों ने जाजउ के युद्ध मे बहादुरशाह को महत्त्वपूर्ण सहायता करके यह महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया था। बहादुरशाह के उत्तराधिकारी जहांदार शाह ने उन्हें सरक्षत्व देने से इनकार कर उनकी शत्रुता मोल ले ली। बहादुरशाह के जहांदारशाह के अतिरिक्त तीन और लड़के थे जो उत्तराधिकारी हुए। वे थे—आजमुश्शान, रफीउश्शान, और जहानशाह। ये सभी जहांदारशाह के शक्ति प्राप्त करने से पूर्व ही पराजित होकर मार डाले गए। पर जहांदारशाह ने प्रशासकीय बुद्धि के अभाव में शक्ति प्राप्त करते ही अपनी सारी शक्ति को अपने समर्थकों के हाथों में सौप दिया और स्वय मौज उड़ाने वालों के संगत मे पड़कर सुरा व सुंदरी के वश में हो गया। एक ऐसी ही नारी, लाल कुवर नामक नर्तकी ने अपने आकर्षण से उसे बेहोश बना दिया। लाल कुवर के सम्बन्धी बड़े पदो पर आसीन करा दिए गए जिससे अन्य लोगों मे ईर्ष्या का उदय हुआ और दिल्ली का मुगल दरबार षड्यन्त्र का अड्डा हो गया। उसके एक भतीजे फर्रुखसियर ने जो आजमुश्शान का दूसरा लड़का था, स्थिति का लाभ उठाकर सैय्यद भाइयो को अपनी ओर मिलाया और दिल्ली की ओर कूच कर दिया। उसके रास्ते मे कोई नही आया। जहानशाह भाग खड़ा हुआ और फर्रुख ने गद्दी प्राप्त कर ली। जहांदार को बाद मे कैद कर लिया गया और फर्रुख को सौंप दिया गया जिसने उसे 11 फरवरी, 1713 को मरवा डाला।

फर्रुखसियर (1713-19)

फर्रुखसियर इस तरह 1713 मे मुगल बादशाह हो गया। उसे सैय्यद भाइयों के समर्थन के कारण ही यह विजय मिली। इसी कारण उसने बडे भाई अब्दुल्ला खा को साम्राज्य के वजीर का पद तथा छोटे भाई हुसैन अली को मीर वख्शी का पद प्रदान किया। वे क्रमशः मुल्तान और बिहार के सूबेदार भी नियुक्त किये गए, उनके चाचा मुजफ्फर खा अजमेर के सूबेदार बनाये गए और उसके अन्य बहुत से सबधी सरकार के विभिन्न विभागों के पदों पर नियुक्त किये गए।

सैय्यद भाइयो को यह इनाम उनके अपने तथा सम्राट फर्रुखसियर के बीच पहले से चले आ रहे मित्रतापूर्ण सबधो के कारण ही नही प्राप्त हुआ बल्कि सही मानो में आपस मे यह उनका सुविधाजनक समझौता था। मुगल शासक, जैसा पहले ही सकेत दिया जा चुका है, ईरानी व तूरानी सामन्तो के हाथ में अधिक रहते थे। भारतीय मुसलमानो की शक्ति का यह आकस्मिक उत्थान मुगल दरबार मे विदेशी तत्त्वो के ईर्ष्या का विषय बन गया और नये बादशाह का कान भरा जाना प्रारम्भ कर दिया गया। सच में दोनों पक्षों मे आपसी अविश्वास पहले से था भी। यहा तक कि दिल्ली की ओर विजय-कूच के समय भी यह दृष्टिगत हुआ था। पर उनके आपस के स्वार्थों के कारण यह उग्र नही हो पाया। पर जैसे ही दिल्ली की स्थिति ठीक हो गई यह विचार-वैषम्य सीमोल्लघन करने लगा। फर्रुखसियर गद्दी-प्राप्ति के समय 30 वर्षीय युवक ही था। 1707 मे वह बंगाल का सूबेदार रहा था, पर न तो वह एक अच्छा प्रशासक था और न ही उसने दिल्ली राजनीति से अपने को जोड रखा था। उसकी अनुभवहीनता और अयोग्यता ने सैय्यद भाइयो में स्वतत्र रूप से कार्य करने की प्रवृत्ति को जन्म दे दिया जिसे पुराने सामत और सम्राट स्वय नापसन्द करते थे। इस तरह इन दोनो ने अपने ही उपकारको को नष्ट करने की योजना बनानी प्रारम्भ कर दी।

कम से कम तीन अवसरों पर सम्राट ने सैय्यद भाइयों के विरुद्ध षड्यत्र रचा जिससे उसका भंडाफोड ही हुआ और सैय्यद भाइयों के बर्दाश्त करने की क्षमता का अंत हो गया और अतत. इसी से उसका अपना अंत हो गया। एक अवसर पर उसने हुसैन अली को राजपूतों पर आक्रमण करने को भेजा पर गुप्त रूप से उसने राजपूत राजा अजीतसिंह को सूचित कर दिया कि सैय्यद उसका विश्वासपात्र नही है और यह भी कहला दिया कि सैय्यद को वह नष्ट कर सके तो उसे पारितोषिक प्रदान किया जाएगा। एक दूसरे अवसर पर हुसैन अली को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया गया। पर जब वह कार्यभार ग्रहण करने गया तो उसने दाऊद खा पन्नी को जो उस पद पर था, कहला दिया कि वह विरोध करे और किसी तरह सैय्यद को मार डाले। ऐसा करने पर उसे उस पद पर स्थायी

कर दिया जाएगा। एक अन्य अवसर पर जब महल में नौरोज का समारोह चल रहा था, बड़े भाई अब्दुल्ला के कत्ल का षड्यन्त्र किया गया। पर सैय्यद नेता को किसी तरह इसका पहले ही सुराग लग गया और उसने अपने शत्रुओं के षड्यन्त्र को असफल कर दिया। इसी तरह उसके छोटे भाई ने राजा अजीतसिंह को अपना मित्र बनाने मे सफलता प्राप्त कर ली और साथ ही दक्षिण में दाऊद खां को पराजित करने व मार डालने में भी सफल हुआ।

ये कुछ उदाहरण हैं, जिनसे पता चलता है कि फर्रुखसियर ने सैय्यद भाइयों से मुक्त होने की चेष्टा की जिसके फलस्वरूप उसके नहले पर उन्होने दहले का प्रयोग किया। जब हुसैनअली ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया, दिल्ली मे अब्दुल्ला खां का जीवन खतरे में पड़ गया। हुसैनअली को इस कारण उसके बड़े भाई ने दिल्ली में सहायतार्थ वापस बुला लिया। दक्षिण मे अपनी वापसी से पूर्व छोटे सैय्यद ने मराठों से एक समझौता कर लिया जिसके अतर्गत उसने उनकी सैनिक सहायता के बदले में उन्हें दक्षिण के छः प्रान्तों में चौथ और सरदेशमुखी देना स्वीकार कर लिया। इसके बाद मराठों की सहायता प्राप्त कर पेशवा बालाजी विश्वनाथ के साथ हुसैनअली ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। फर्रुखसियर ने इस संधि को अमान्य कर दिया। फलस्वरूप उसे हरम से घसीटकर बाहर लाकर अंधा करके कैद कर लिया गया और बाद मे 27 अप्रैल, 1719 की रात्रि मे उसे मार डाला गया। उसकी जगह पर रफी-उस-दरजात को जो रफी-उस-शान का पुत्र था, 18 फरवरी, 1719 को गद्दी प्रदान की गई।

रफी-उस-दरजात

फर्रुखसियर की पदमुक्ति और रफी-उस-दरजात की पदासीनता ने सैय्यद भाइयों को अपनी स्थिति और मजबूत करने का अवसर प्रदान किया। वे अब सही अर्थो में दिल्ली सम्राट निर्माता बन गए। रफी-उस-दरजात शक्ति प्राप्ति के समय 20 वर्षीय कुशाग्रबुद्धि युवक था। पर वह यक्ष्मा का रोगी था और सिंहासनासीन होते ही उसकी दशा गभीर हो गई। निकूसियार ने, जो अकबर का पुत्र और औरगजेब का पौत्र था, इस काल में विद्रोह किया और एक नागर ब्राह्मण मित्र-सेन की सहायता से आगरा में अपने को बादशाह घोषित किया। मित्रसेन विद्रोही सम्राट का वजीर था। इस विद्रोह के समर्थक निजामुलमुल्क जैसे लोग भी थे और स्थिति गंभीर थी। हुसैनअली आगरा जाकर विद्रोह को दबाना चाहता था। पर उसे भय था कि कहीं बीच ही में उसकी अनुपस्थिति मे सम्राट मर न जाए जिससे सैय्यद भाइयों की स्थिति इस नयी क्रांति से खराब हो जाय। रफी-उस-दरजात को इसीलिए प्रेरित करके रफी-उस-दौला के पक्ष मे पद छोड़ने को तैयार कर लिया गया। 6 जून, 1719 को रफी-उस-दौला शाहजहां द्वितीय की

उपाधि सहित बादशाह बनाया गया। दरजात की इस घटना के लगभग एक सप्ताह बाद मृत्यु हो गई।

रफी-उस-द्दौला

हुसैनअली ने अब आगरा की ओर कूच किया। निकूसियार को कैद कर लिया गया और उसे सलीमगढ़ के किले में बंदी बनाकर भेज दिया गया जहां 11 मार्च, 1723 को उसका देहान्त हो गया। मित्रसेन ने पकड़े जाने से पहले ही आत्महत्या कर ली। कानून व व्यवस्था की स्थिति इस तरह पुन ठीक हो गई। पर इसके पहले कि सैय्यद भाई प्रशासकीय समस्याओं की ओर गंभीरता से ध्यान दें, यक्ष्मा व अन्य शारीरिक तथा मानसिक बीमारियों से ग्रस्त रफी-उस-द्दौला की 17 सितंबर, 1719 को मृत्यु हो गई। उसने कुल तीन माह बारह दिन तक शासन किया।

मुहम्मद शाह (1719-48)

रफी-उस-द्दौला की मृत्यु के बाद सैय्यद भाइयो को एक अन्य कठपुतली को गद्दी देने में कठिनाई नही हुई। यह 17 वर्षीय युवा व्यक्ति जहानशाह का पुत्र रोशन अख्तर था जिसे मुहम्मदशाह के नाम से 27 सितंबर, 1719 को गद्दी प्रदान की गई। नवीन सम्राट राजोचित कार्यो से अधिक जानवरो की लड़ाई देखने मे समय देता था। उसमे प्रशासन करने की न तो क्षमता थी और न अनुभव ही जिसके फलस्वरूप सैय्यद भाइयो के हाथ मे शक्ति यथावत् बनी रही।

पर सैय्यद बहुत काल तक शक्ति नही बनाए रख सके। विदेशी तत्व ईरानी व तूरानी दलों को शक्ति को ग्रहण लगे बहुत काल बीत चुका था। पहले भी सैय्यद भाइयो को पद से हटाने की चेप्टा हुई थी। उदाहरणस्वरूप आगरा में निकूसियार को सम्राट बनाए जाने के समय ऐसा असफल प्रयास हुआ था। अब सैय्यदो के विरोधियों का षड्यंत्र और तीव्र हो गया और मुहम्मदशाह जो अपने सहायकों की सहायता से शक्ति प्राप्त कर चुका था, उसे निजामुलमुल्क ने सैय्यदों को प्रभावमुक्ति की प्रेरणा दी। निजामुलमुल्क, जिसे मालवा का सूबेदार बनाया गया था, ने हुसैनअली के शासन क्षेत्र खान देश पर आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण सफल नही हुआ जिसके फलस्वरूप हुसैन ने निजामुलमुल्क के विरोध में सम्राट को इसलिए साथ लेकर अभियान प्रारंभ कर दिया कि कही वह पीछे रहकर बखेड़ा न खड़ा करे। अब्दुल्ला दिल्ली मे ही बना रहा। जैसे ही हुसैनअली ने राजधानी से प्रस्थान किया, एक तूरानी नेता मुहम्मद अमीन खा ने एक षड्यंत्र रचा जिसमे उसे सरकारी तोपखाने के अधीक्षक हैदरअली से सहायता प्राप्त हुई। हुसैनअली की हत्या कर दी गई और सम्राट स्वय उस सेना का नेता हो गया और

मुहम्मद अमीन खां को उसने इतमादुद्दौला की उपाधि देकर वजीर नियुक्त किया। वह दिल्ली की ओर मुड़ा और 15 नवम्बर, 1720 को अब्दुल्ला खा को उसने आगरा के निकट बिलोचपुर मे पराजित कर कैद कर लिया। बडा सैय्यद भाई 1722 मे जेल में ही मर गया और इस तरह उन सैय्यद भाइयो की कहानी समाप्त की गई जिन्होंने पिछले 8 वर्षों से महा सम्राट की भांति कार्य किया था और जो दिल्ली के तख्त पर एक मुगल राजकुमार को बैठाते और दूसरे को हटाते रहे थे तथा जिन्होंने केन्द्र मे अधिनायकीय शक्तिया अपने हाथ में सजो रखी थी।

सैय्यद भाइयों का पतन स्वाभाविक था। इसके कारण थे। उन्होंने शक्ति का अपहरण किया था। इसे न तो सम्राट ही पसद करता था और न ही सामत, जिनके स्थानापन्न वे हो गए थे, चाहे वह शक्ति कितने भी स्वाभाविक ढग से उनके पास क्यो न पहुंची हो। क्रूर दड जो उन्होंने फर्रुखसियर तथा अन्य शत्रुओं को प्रदान किया उससे भी उनकी वदनामी हुई। उनकी गैर मुस्लिमो के प्रति उदारता एव सहिष्णुता की नीति भी कट्टर मुस्लिम तत्त्वों को असहनीय थी। मुगलों के इतिहास मे अब तक राजा के अधिकार का इतना अधःपतन, जिसने कि उनके भाग्य को इस तरह बनाया-बिगाड़ा हो, नही देखा गया था। इस तरह सैय्यदों का उत्थान प्रत्येक स्थान से ईर्ष्यालु निगाहो से देखा जाता था। तूरानी और ईरानी दलों की विरोधी शक्तिया सैय्यदो के उत्थानकाल से उनके विरुद्ध लग गई थी। सादात खां एव निजामुलमुल्क जैसे शक्तिशाली सामत उनके विरुद्ध कार्यरत रहते थे। उन्होंने शीघ्र ही अपनी शक्ति पुनर्स्थापित कर ली, सैय्यदों का सम्राट पर दु खदायी जुआ उनके द्वारा विरोध प्रचार का एक तीव्र माध्यम बन गया और सैय्यदों को पथ से हटा दिया गया।

फिर भी सैय्यदों की सफलतायें महान थी। धर्मान्धता एव कट्टरता के लवे अरसे के शासन के बाद उन्होंने ही राजतत्रीय इतिहास को प्रभावी ढग से उस दिशा की ओर मोडा जिसमे बताया गया कि कोई भी शासक इस देश में तब तक सफल नही हो सकता जब तक कि जनता का भी उसमें सहयोग न हो। भारत के सामान्य बहुलजन हिन्दू थे और उनकी भावना तथा उनके विश्वासो को आदर प्रदान करके ही दिल्ली को सुरक्षा प्रदान की जा सकती थी। जजिया को इसी कारण समाप्त किया गया और हिन्दुओ की अन्य धार्मिक अयोग्यताए समाप्त की गई। राजपूतो को तुष्ट किया गया। राजा अजीतसिंह की पुत्री का विवाह फर्रुखसियर से करके अकबर की साम्प्रदायिक समभाव नीति को दुहराया गया, राजा रतनचंद जैसे लोगों को ऊचा पद प्रदान किया गया और मराठों को भी हुसैनअली ने दक्षिण में चौथ और सरदेशमुखी का अधिकार प्रदान करके प्रसन्न करने का प्रयास किया।

व्यक्तिगत रूप से भी सैय्यद भाई दीनों और हीनों के प्रति दयालुता का भाव रखते थे। प्रतिदिन बहुत से लोग उनके दान व सहायता से लाभ उठाते थे। जनता के लिए उपयोगी कार्य जैसे सड़कों, पुलों और विश्रामगृहो का निर्माण भी प्रारंभ किया गया। भ्रष्टाचार समाप्त करने की चेष्टा हुई और कार्य-क्षमता व साहित्यिक गुणों को प्रोत्साहित किया गया।

पर मुगल शासन को क्षय का जो कीड़ा लग गया था, उसने सैय्यद भाइयो को अधिक काल तक चलने नही दिया। परिस्थितियो ने सैय्यदों के हाथ में स्वाभाविक शक्ति सौप दी थी। वे ऐसी दशा में बने कि वे अधिक दिनों तक इस पर नहीं बने रह सकते थे, पर साथ ही वे अपने को इसमे जल्दी मुक्त व अलग भी नही कर सकते थे। वे एक ऐसी धारा के अग थे, जो ढालू जमीन पर बहती-बहती अतत. समुद्र मे पता नही कहा समाहित हो जाती है। विरोधी हवा के रुख की ओर आगे बढना थोड़े काल तक तो सभव था, पर हमेशा के लिए नही।

राजनैतिक इतिहास की ओर वापस लौटें तो सैय्यदों के पतन के बाद मुहम्मदशाह के वजीर इतमादुद्दौला का 1721 में देहान्त हो गया और उसके स्थान पर उसके सबंधी चिन किल्च खा निजामुलमुल्क की उपाधि सहित नया वजीर बनाया गया। निजामुलमुल्क महत्त्वाकाक्षी और अवसरवादी वजीर था और दक्षिण भारत में स्वतंत्र रूप से राज्य स्थापित करके शासन करने की फिक्र मे था। उसकी दिल्ली की राजशाही को मजबूत करने की कोई इच्छा नही थी। सम्राट को शीघ्र ही पता चल गया कि कष्टपूर्ण सैय्यदो के चगुल से मुक्त होकर वह एक अपमानजनक जुए के नीचे दब गया है और उसकी स्थिति आसमान से गिरकर खजूर पर अटकने वाले व्यक्ति की हो गई है। इसलिए षड्यत्र के सहारे उसने निजामुलमुल्क से निबटने का निश्चय किया। उसे दक्षिण मे कार्य करने हेतु नियुक्त किया गया पर साथ ही वहा कार्यरत मुबारिजखा को गुप्त रूप से सूचित कर दिया गया कि वह निजामुलमुल्क को किसी तरह नष्ट कर दे। पर निजामुलमुल्क अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ और उसने लडकर मुबारिज को मार डाला और उसका कटा सर सम्राट के पास तिरस्कारार्थ भेज दिया। दरबार में दल-बंदी और षड्यंत्रों के फलस्वरूप प्रान्त केन्द्र से स्वतत्र होने लगे। बगाल, अवध दक्षिण, मालवा, गुजरात, बुन्देलखड, पजाब में सिखों, गगा के दोआब से रोहिल्लों, जाटों, राजपूतों तथा मराठो—सभी ने स्वतंत्र होना प्रारंभ कर दिया। इसी मध्य 1739 में नादिरशाह प्रकट हुआ और 1748 में अहमदशाह अब्दाली ने कई बार भारत पर आक्रमण किया। मुगलों की रही-सही शक्ति भी विच्छिन्न हो गई और बादशाह अपने रक्षकों की दया का पात्र रह गया जो एक के बाद दूसरे उसे कठपुतली के रूप में प्रयोग करते रहे। 15 अप्रैल, 1748 मे मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई और उसका उत्तराधिकारी उसका एकमात्र पुत्र अहमदशाह हुआ। इसके

पहले कि नये बादशाह के विषय मे कुछ लिखा जाय, यह उचित होगा कि भारत पर नादिरशाह के आक्रमण और उसके प्रभाव का विवेचन किया जाय। अहमदशाह अब्दाली का प्रथम आक्रमण इसी शासक के काल में हुआ और उसके शेष आक्रमण का विवरण अगले पृष्ठो में दिया जाएगा।

नादिरशाह का आक्रमण

जनवरी से मई 1739 के बीच दिल्ली एवं लाहौर में पूर्ण अव्यवस्था रही। इस काल मे नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया। नादिरकुली अफशार नामक तुर्कमान कबीले से सम्बद्ध था और खोराशान की राजधानी मशद के 50 मील उत्तर एक किले में 1688 में पैदा हुआ था। साधारण डाकू से जीवन प्रारभ करने वाला नादिर पूरे एशिया के लिए आतक हो गया। कई वर्षों के साहासिक जीवन के बाद नादिरकुली को *नादिरशाह के नाम से 1736 मे फारस का शासन प्राप्त* हो गया। शीघ्र ही उसने कान्धार, बल्ख और बोखारा पर विजय प्राप्त की और भारत मे प्रवेश किया।

अन्य बातों के अतिरिक्त जिसने नादिरशाह को भारत पर आक्रमण करने के लिए मजबूर किया उनमे से एक था भारत सम्राट मुहम्मदशाह का नादिरशाह के शासन सभालते ही फारस के दरबार से भारतीय दूत को वापस बुलाना और उस देश से कूटनीतिक सबध समाप्त करना जिसे पसंद नही किया गया। दूसरा कारण यह था कि जब नादिर ने अफगानिस्तान पर आक्रमण किया तो कुछ अफगान सामतों ने मुगल क्षेत्र मे शरण ली और इसके बावजूद कि वह उनकी रक्षा न करने के लिए वायदा कर चुका था, मुहम्मदशाह ने ऐसा कुछ न किया। तीसरा, नादिरशाह ने मुगल दरबार मे अपना दूत शीघ्र कार्यवाही हेतु तीन बार भेजा पर उसे कोई उत्साहवर्द्धक उत्तर न मिला। बल्कि तीसरी बार जब उसका दूत आया तो उसे एक वर्ष दिल्ली में रोककर झिडकी दी गई और उसे कोई समाचार तक न दिया गया। मुगलो की पतनवत् शक्ति व भारत की अव्यवस्थित स्थिति का लाभ उठाकर सामंतों का स्वतत्र होने का प्रयास किसी भी शक्तिशाली पड़ोसी देश के *लिए परिस्थिति से लाभ उठाने के लिए खुला आमत्रण था।* अपने इलाके में शक्ति को सगठित कर लेने के बाद नादिरशाह की महत्त्वाकांक्षा को भारत की—धनधान्य-पूर्णता ने भी एक शक्तिशाली आकर्षण प्रदान किया और अतत: दिल्ली के दो प्रमुख पर विश्वासघाती सामतों, निजामुलमुल्क और सादात खा ने उसके पास एक विशेष संवाद भारत पर आक्रमण करने के निवेदन के साथ भेजा और उन्हें सभी तरह की सहायता का आश्वासन दिया।

इन परिस्थितियो मे नादिरशाह ने, काजिलबासी, जार्जियन, तुर्क, खोरासानी, बल्खी आदि लोगों की मिश्रित; थकान व कठिन जीवन की अभ्यस्त सवा लाख

घुडसवार सेना लेकर, भारत पर आक्रमण कर दिया। उसने जलालाबाद और पेशावर पर आक्रमण कर दिया और झेलम तथा चेनाब को पार कर लाहौर की ओर चल पडा। वहां के सूबेदार जकारिया खां को 25 हजार घुड़सवारों की सेना सहित एक युद्ध मे पूर्ण रूप से पराजित कर दिया गया और उसे आक्रांता से दया की भीख मागनी पडी। 20 लाख रुपये के कर के बदले लाहौर को हत्याकाड के सत्रास से बचाया जा सका। जकारिया खां को लाहौर मे पद पर स्थायी कर दिया गया और नादिरशाह ने इस अवसर पर यहां सोने के सिक्के ढलवाये जिसमें एक ओर लिखा था *'सुल्तान नादिर'*, *तथा दूसरी ओर 'लाहौर की राजधानी मे ढाला गया* 1151, खुदा उसके राज्य की रक्षा करें', खुदा था। इसके बाद उसने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। 14 फरवरी, 1739 को नादिरशाह करनाल के मैदानी क्षेत्र मे आ गया जहा भारत सम्राट मुहम्मदशाह दो दिन पूर्व ही अपनी डेढ लाख घुडसवार सेना के साथ पहुच चुका था। बादशाह के पास इसके अतिरिक्त अन्य घुडसवारों की पल्टन अलग से थी। भारतीय सेना के आक्रमण से ही युद्ध प्रारंभ हुआ और पौरुषहीन मुगल सेना शक्तिशाली तुर्कोमान सेना के समक्ष टिक न सकी और परिणामतः वे पराजित ही नही हुए बल्कि लगभग 100 नामी सामत और अधिकारी कत्ल कर दिये गये और तीस हजार खेत रहे।

इसके बाद भारत सम्राट ने दया की भीख मागी और 20 करोड़ रुपये[1] की क्षतिपूर्ति करने को तैयार हुआ और नादिर की सेना को थकान से आराम पाने के लिए राजधानी मे रुकने की व्यय सहित सुविधा प्रदान की। इसके बाद दोनों बादशाह दिल्ली रवाना हुए और खजाने से सभी बहुमूल्य वस्तुए ले ली गई। नादिर के नाम से खुत्वा पढा गया। सभी कुछ शातिपूर्वक चल रहा था कि इसी बीच एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना हो गई। एक फारसी सैनिक ने क्रयार्थ कुछ कबूतरो को जबर्दस्ती छीनना चाहा जिस पर एक भीड एकत्रित हो गई और आवेश मे कुछ लोगों ने नगर के विभिन्न क्षेत्रों मे फारमी सैनिकों पर आक्रमण बोल दिया और 3000 लोगों को मार डाला। रोशन-उद-द्दौला की मस्जिद मे नादिरशाह पर भी गोली दागी गई। यह गोली पड़ोस की ही एक छत से आई थी। जिससे वह तो बाल-बाल बच गया पर निकट का साथी मारा गया। इस पर शाह क्रोध से उबल पड़ा और नगी तलवार निकालकर उसने पूरे नगर में वहा के निवासियों के हत्या का आदेश दे दिया। गोले दागे जाने लगे। "खून का दृश्य किले के सामने सर्राफा अर्दुई से ईदगाह तक दीखता था जो तीन कोस की दूरी मे था। चितली वत्र से तम्बाकू बाजार व पुल मिठाई तक भी यही दिखता था। पूरा दरीबा बाजार लाल खून से रंगा हुआ था'''स्त्री पुरुष और बच्चों का भेद भी कत्ल करने में नही किया गया

1. एक करोड़ दस लक्ष (एक लक्ष बराबर 10 लाख) के बराबर है।

था। दोपहर के दो बजे तक एक लाख बीस हजार से डेढ़ लाख के लगभग लोग मार डाले गये थे।" इसके बाद सामंतों ने जाकर शाह से नगर को क्रूर कांड से बचाने की प्रार्थना करते हुए कहा, "बदले की तलवार ने एक को भी नही बख्शा है। मगर अब भी आपकी इच्छा है कि यह कांड चलता ही रहे तो मरे हुए लोगों में पहले जान डालिये और फिर हत्याकांड प्रारभ कीजिये।"[1] नादिर ने उनका निवेदन स्वीकार कर लिया।

मुगल साम्राज्य का राज चिह्न छीन लिया गया, नागरिको का धन ले लिया गया, और प्रांतों के सूबेदारो से धन वसूला गया। और वह सोना, चांदी, जवाहरात एवं कोहनूर सहित बहुत-सा धन लेकर दिल्ली से अपनी वापसी यात्रा के लिए रवाना हुआ। उसने अपने लड़के नसरुल्लाह का विवाह औरगजेब के पौत्र अजीजुद्दीन की पुत्री से किया और स्वय अपना भी विवाह वह एक-दूसरे सामत की सुन्दर कन्या से करना चाहता था पर अपनी एक पत्नी के रोकने से रुक गया। अपने प्रस्ताव के समय उसने एक दूत लाहौर के एक अधिकारी जकारिया खां के पास एक करोड़ रुपये की मांग के साथ भेजा और उसने यह धन नगर के सामतों और व्यापारियों से वसूल कर भेजा। प्रस्थान से पूर्व उसने बहुत-से "हाथियो, घोड़ो, ऊटों और कीमती असबाब तथा हजारो चालाक मजदूरों और कलाकारो"[2] को एकत्रित किया और साथ ले गया।

नादिरशाह के आक्रमण का देश की राजनीति और इतिहास पर दूरगामी प्रभाव पडा। इस कारण व्याप्त अव्यवस्था का लाभ उठाकर पजाब मे सिखो ने जो स्थिर रूप से अपनी शक्ति के विकास मे लगे थे, पजाब के उत्तर-पूर्व के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया और पूरे अपर बड़ी दोआब क्षेत्र पर भी प्रभाव जमा लिया। और जब नादिरशाह के सैनिक यात्रा मे पंजाब होकर कीमती सामान सहित गुजरे और मई की भीषण गर्मी से त्रस्त धीमी गति से चले तो सिखो ने कई बार इनपर आक्रमण करके इनसे तमाम धन ही नही छीना बल्कि बहुत से भारतीय कारीगरों और अन्य लोगों को, जो फारस ले जाये जा रहे थे, उन्हे मुक्त कराया। सिखों का आक्रमण चेनाब में उस समय प्रारंभ हुआ[3] जबकि नादिर वहा नही पहुचा था। यह आक्रमण प्रत्येक दूसरी या तीसरी रात को विभिन्न दिशाओ से चलता रहा जब तक कि शाह भारत भूमि से निकल नही गया। इससे असतुष्ट होकर आक्राता ने जकारिया से मांग की, "ये लबे बालो वाले बर्बर कहा से आ गये जिन्होने मेरे ऊपर आक्रमण का साहस किया?" इसके उत्तर मे कहा गया, "ये फकीर हैं जो अपने

1. लतीफ, मुहम्मद : हिस्ट्री आफ पजाब, 194-205।
2. वही, 206-207।
3. फोर्स्टर : ए जर्नी फ्राम बगाल टू इगलैंड, भाग 1, 113, सिन्हा, एन० के० : राइज आफ द सिख पावर, 12।

गुरु के तालाब का दर्शन करने प्रति दूसरे वर्ष आते हैं और यहां आकर वे गायब हो जाते हैं।" "वे रहते कहा है ?" "वे घोड़ों की काठी पर रहते हैं।" उत्तर दिया गया, "तो सचेत रहो" नादिर ने चेतावनी दी, "क्योंकि तब तो बहुत समय नहीं लगेगा जब पूरे देश पर ये अधिकार कर लेंगे।"[1] यह चेतावनी सच सिद्ध हुई क्योंकि नादिर के आक्रमण ने देश मे ऐसी स्थिति पैदा की कि सिखों ने उससे लाभ उठाया।[2]

मुगल शक्ति का इस आक्रमण के कारण और पतन हो गया। मुहम्मदशाह पोरस की तरह कठिनाई मे साहस न खोने वालो में और प्रतिष्ठा को बनाये रखने वालो में नही था। उसकी समर्पण की प्रवृत्ति और अपने स्वार्थ हेतु अपमान सहने की क्षमता ने, देशवासियों तथा सामन्तो के समक्ष उसको निम्न कोटि का सिद्ध कर दिया था। इससे विद्रोही तत्त्वो को भी प्रोत्साहन मिला और मुगल साम्राज्य के दूर-दराज के क्षेत्रों में नये स्वतत्र प्रान्तों का सृजन प्रारंभ हो गया जैसे दक्षिण और बगाल।

इस धक्के से सभलने में दिल्ली को पर्याप्त समय लगा। इस काल ने मराठों, राजपूतों, जाटो तथा अन्य गैर मुस्लिम तत्त्वो को शक्ति बढ़ाने का अवसर प्रदान किया। दिल्ली मे धन व जन की अपार क्षति हुई थी। पूरा नगर लूट लिया गया था और बर्बाद हो चुका था। मात्र राजमहल ही नष्ट व अपमानित नही किया गया था बल्कि दिल्ली का प्रत्येक घर जीवन व प्रतिष्ठा की समाप्ति का प्रतीक बन गया था जिसे पैरों तले कुचल दिया गया था। फिर इन घरों की मरम्मत तथा निवास योग्य बनाने में भी समय लगा। पर जो अपमान नगर को झेलना पड़ा था वह आने वाली पीढी द्वारा भी नही भुलाया जा सकता। लोग यह अनुभव करने लगे कि उनकी प्रतिष्ठा और उनका जीवन मुगल शासकों के हाथ मे सुरक्षित नही है।

नादिर के दिल्ली वापसी से पूर्व सिंध के मुगलों के पश्चिम के सूबे सिंध, पश्चिमी पंजाब और काबुल सहित उसके राज्य मे मिला दिये गये थे। फारसी लोगों ने खैबर जैसे महत्त्वपूर्ण स्थान पर केन्द्र स्थापित कर भारत की शाति एवं *व्यवस्था के विरुद्ध स्थायी समस्या पैदा कर दी थी।*

मुहम्मदशाह के उत्तराधिकारी

1748 मे मुहम्मदशाह का एकमात्र पुत्र अहमदशाह उत्तराधिकारी हुआ। अहमदशाह का जनाना एक मील में फैला हुआ था जहां वह दिन-रात रंगरेलियां

1. देखें गार्डन . द सिक्स, 57-58।
2. और विवरण हेतु देखें, छाबडा . स्टडीज इन द हिस्ट्री आफ पजाब, भाग 1, अध्याय 22।

मनाता था और सप्ताहों तक उसे पुरुष के दर्शन ही नही होते थे। उसकी मां कुदासिया बेगम उसकी ओर से शासन करती थी। पर यह स्थिति अधिक समय तक नही चल सकती थी। 5 जून, 1754 को गाजिउद्दीन वजीर नियुक्त किया गया जिसने सामतों को एकत्रित कर सामूहिक निर्णय लिया कि सम्राट को पद से हटा दिया जाय। अहमदशाह को पद-मुक्त कर अधा बनाकर महल के निकट सलीमगढ मे कैद कर दिया गया और जुलाई, 1754 को जहादार शाह के पुत्र आलमगीर सानी को गद्दी पर बैठाया गया।

आलमगीर द्वितीय जब 1754 में गद्दी का उत्तराधिकारी हुआ उस समय अहमदशाह अब्दाली के अनवरत होने वाले आक्रमण और देश मे मुस्लिम सामतो तथा अन्य लोगों द्वारा स्थान देने की प्रवृत्ति ने मुगल साम्राज्य को सिकोडकर दिल्ली के आसपास तक ही सीमित कर दिया था। उसकी स्थिति व अधिकार शाहू की मृत्यु के बाद मराठों के छत्रपति से मिलती-जुलती थी। फर्क इतना था कि वह रंगरेलिया मनाने वाला न होकर एक साहित्यिक चरित्र था। शक्ति प्राप्त करने के समय वह 55 वर्ष का था पर अधिकतर बदी जीवन बिताने के कारण उसे प्रशासकीय अनुभव नही था जिससे उसे अपना सारा कार्य वेईमान, लालची और असयत वजीर इमादुलमुल्क को सौपना पडा जिसने बादशाह के पुत्र अलीगौहर को, जो बाद में शाह आलम कहलाया, भी परीशान किया और जो इसी कारण राजधानी छोडकर विहार मे शरण लेने को बाध्य हुआ। 1756 मे अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर चौथा आक्रमण किया, दिल्ली को लूटा और नजीबुद्दौला को अपना पूर्णाधिकारी दूत तथा मुगल सम्राट का बख्शी नियुक्त किया और तब अफगानिस्तान वापस गया। इस तरह सरकार का असली अधिकार नजीब के हाथों चला गया जिसे वजीर इमादुलमुल्क ने नापसद किया। सम्राट आलमगीर सानी भी वजीर से उसके परिक्षीण व्यवहार के कारण उससे मुक्त होना चाहता था। जिसके फलस्वरूप वजीर मराठो की ओर हो गया जिन्होंने दिल्ली में अपना प्रभाव स्थापित किया। वजीर ने दिल्ली के कोटला फिरोज शाह नामक स्थान पर षड्यन्त्र से 30 नवम्बर, 1759 को सम्राट को मरवा डाला और उसका कपड़ा खिचवाकर उसकी नगी लाश खुले में फिकवा दिया। इसके बाद उसका लड़का अलीगौहर जो पटना में इस समय था, राजगद्दी का उत्तराधिकारी हुआ।

अलीगौहर 1759 मे शाहआलम की उपाधि सहित शासक हुआ, पर 1771 तक वह दिल्ली नहीं लौटा। वह दिल्ली तभी आया जब मराठो ने वहां प्रभाव स्थापित करके उसे वहां आने को आमत्रित किया। वह अभी तक वजीर के भय से दिल्ली से दूर अवध के शुजाउद्दौला के यहां शरणार्थी की हैसियत से 1765 तक था जहा इसी समय इलाहाबाद की सधि के अनुसार वह अग्रेजों के सरक्षण में आ गया। अंग्रेजो ने उसे कडा व इलाहाबाद के क्षेत्र के अतिरिक्त 26

लाख रुपये वार्षिक उसके व्यय के लिए दिया और इसके वदले बादशाह ने अंग्रेजों को वगाल, विहार, उड़ीसा की दीवानी का अधिकार प्रदान किया। इस दुर्भाग्य-शाली शासक के जीवनवृत्त व कार्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने का अवसर अगले पृष्ठो में आयेगा। 1806 में उसकी मृत्यु हो गई और उसका एक लडका अकवर द्वितीय उत्तराधिकारी हुआ जो अपनी मृत्यु काल 1837 तक अंग्रेजो के सरक्षण मे वना रहा। अकवर द्वितीय एक अच्छा शायर तो था पर प्रशासक नही। उसका उत्तराधिकारी वहादुरशाह हुआ। उसने 1857 के विद्रोह में अंग्रेजों के विरुद्ध भाग लिया और फलस्वरूप उसे कैद करके रगून भेज दिया गया जहां 1862 में उसकी मृत्यु हो गई। इस तरह नाम मात्र का मुगल शासन समाप्त हो गया क्योंकि अंग्रेजों ने उसके किसी उत्तराधिकारी को वैध न माना।

मुगलों का पतन

मुगलों के पतन को जिन परिस्थितियों या कारणों ने ला उपस्थित किया उनमें औरंगजेब का व्यक्तिगत चरित्र व कार्यवाही का वड़ा स्थान है। वह भारतीयों के प्रति अपने पूर्वजों की भाति उदार न था। मुगल मुसलमान थे जबकि भारत मूल रूप से हिन्दू था। अकबर ने राजपूतो और अन्य हिन्दुओं के प्रति सहिष्णुता की नीति अपनाई और उसके शासन काल मे उन्होंने मुगल साम्राज्य को शक्तिशाली वनाने और विस्तृत करने मे प्रमुख भूमिका निभाई। पर औरगजेब एक कट्टर मुसलमान था जिसने हिन्दुओ पर जजिया जैसे विशेष कर लगाये और उनका धर्म परिवर्तन करने की चेष्टा की। दिल्ली मे सिख गुरु तेग वहादुर का मारा जाना तथा ऐसे ही हिन्दुओं के विरुद्ध अन्य वर्वर कार्यों ने उन्हें साम्राज्य के विरुद्ध व दूर कर दिया और हर जगह वे स्वतन्त्र होने लगे।

द्वितीय, जिस भाति औरंगजेब अपने पिता को कैद करके राज्य का अधिकारी वन गया था उससे वह स्वयं अपने लडकों के प्रति सदेहशील हो गया था। उनकी थोड़ी-सी भी जागरूकता उनके विरुद्ध दंड का कारण वन जाती थी जिससे वे पूर्णरूपेण हतोत्साहित हो जाते थे और वे असहाय, दीन, इच्छा-शक्तिविहीन और पहल शक्ति से दूर हो जाते थे। उसके पांच पुत्रों में एक जेल मे मर गया और दूसरा उसके जीवन काल में ही फारस मे देश निकाला का जीवन व्यतीत करता मर गया। शेष तीन मे कोई ऐसा न था जिसे वंदी जीवन व दंड अपने पिता के हाथों न भोगना पड़ा हो। एक पिता द्वारा प्रदान किये जाने वाले राजकुमारो को स्नेह व प्रशिक्षण के स्थान पर उन्हें पिता से अप्रतिष्ठा और उत्पीड़न ही नसीव हुआ। औरंगजेब की मृत्यु के बाद जब इन राजकुमारों के हाथ राजशक्ति पहुंची तब सामने आने वाले परिणाम स्वाभाविक थे।

औरंगजेब की दक्षिण नीति ने भी मुगल शक्ति के पतन मे महत्त्वपूर्ण योगदान

दिया। वह दक्षिण में 25 वर्ष रहा था और बीजापुर और गोलकुण्डा के शिया राज्यो पर अधिकार किया था। उत्तरी भारत से उसकी इतनी लंबी अनुपस्थिति ने देश के प्रशासन को पगु वना दिया और इस कारण सिख, जाट और अन्य लोगो ने स्वतन्त्रता के लिए दबाव डालना प्रारंभ कर दिया। दक्षिण मे शिया राज्यों के पतन ने स्थानीय मराठों की शक्ति को और वढा दिया और अव वे मुगल शक्ति के लिए सीधा खतरा वन गये। और तीसरा कारण यह था कि औरगजेव की इस नीति के कारण होने वाले अनवरत युद्धो ने उसको आर्थिक दृष्टि से दिवालिया वना दिया, सेना को थका दिया और उसके समर्थको की सतोप भावना को चूर-चूर कर दिया।

इसके अतिरिक्त कुछ सामान्य कारण भी थे जिन्होने मुगलो के पतन मे सहयोग दिया। मुगल विदेशी थे। अकबर ने देश के जन-साधारण वर्ग की मनोभावना व विश्वास के निकट अपने को पहुचाया, जहागीर व शाहजहा उदासीन ही वने रहे, जब कि औरगजेव पूर्णत: उनके विरुद्ध था जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय चरित्र को विदेशियों के विरुद्ध उभरने की परिस्थिति पैदा हुई। सैय्यद भाइयो के हिन्दुस्तानी दल ने फर्रुखसियर के काल मे ऐसा ही करके मुगल साम्राज्य को कमजोर बनाया।

साथ ही, मुगल शासन प्रणाली व्यक्तियों पर अत्यधिक आश्रित थी। प्रत्येक चीज़ सम्राट के व्यक्तित्व के चारों ओर घूमती थी जिसके शक्तिशाली और निश्चयात्मक होने पर मुगल प्रशासन जोरदार और कार्यक्षम होता था। पर औरंगजेव के उत्तराधिकारी जनाना के रगरेलियों मे व्यस्त रहते और थके-हारे अकर्मण्य थे। उनमें प्रशासन करने की न तो इच्छा थी न क्षमता। इससे भी मुगल शक्ति का पतन अवश्यम्भावी हो गया।

मुगलो की जब्तीकरण की नीति, जिसके अतर्गत मनसवदारो की सपत्ति उनके मरने के वाद राज्य का अग हो जाती थी, के कारण मुगल सामत अपव्ययी, सुस्त और अमीरी से पतनवत् हो जाते थे। वैराम खा जैसे सामतों का दिन लद गया था। अब तो सभी इस क्रूर कल्पना में लगे रहते थे कि कौन मुगल राजगद्दी पर वदलकर कब बैठेगा। ऐसी स्थिति में प्रशासन और जनहित के कार्य पतन को प्राप्त होने लगे थे।

मुगल सेना फारसी, अफगान, उजवेग और भारतीय लोगों की मिली-जुली जाति से वनी थी। उनका युद्ध करने का कोई केन्द्रीभूत उद्देश्य नही था। उनका वेतन प्राय: वाकी रहता था और वे प्राय: अपनी स्वामिभक्ति एक सेनापति से दूसरे को अपनी सुविधानुसार आर्थिक लाभों को ध्यान मे रखकर बदलते रहते थे। मनसवदारों के सैनिक सम्राट से अधिक उन्ही के प्रति स्वामिभक्त होते थे। वहा पर वे नैतिक मूल्यों से अधिक अवसरवादिता को महत्त्व देते थे।

मुगलो मे ज्येष्ठाधिकार का कोई नियम उत्तराधिकार पथ-प्रदर्शन के लिए नही था जिसके फलस्वरूप जब कभी सम्राट बीमार पडता था तो उसके बच्चे उसकी देख भाल करने की जगह पर अपनी तलवार उठाकर उत्तराधिकार प्राप्त करने की तैयारी मे जुट जाते थे। ऐसे भी कुछ उदाहरण थे जब उत्तराधिकार के युद्ध नहीं लड़े गये और उत्तराधिकारी ने मार-काट, खून-खराबी किये बिना ही शक्ति प्राप्त कर ली। यह सब खराब उदाहरण थे जिससे प्रत्येक व्यक्ति को 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की शिक्षा मिलती थी।

मुगल साम्राज्य बोझिल था और एक बार विद्रोह प्रारभ हुआ तो वह समाप्त नही हुआ। किसी मुगल बादशाह का, यहा तक कि शक्तिशाली मुगल शासकों का कोई काल शायद ही ऐसा रहा हो जब पूरे देश मे शाति रही हो। कमजोर शासको के काल मे चारो ओर विद्रोह होते रहते थे जो कम होने पर दवाये जा सकते थे। पर जब पूरब, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर चहुं दिशि स्वतन्त्र राज्यो का विकास प्रारभ हो गया तो उनके बस मे उस परिस्थिति से निवटना संभव नही रहा।

नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के विदेशी आक्रमण ने भी मुगल शक्ति का पतन ला देने मे सहायता की। इन आक्रमणो ने भारत और मुगल राजमहलों के धन-वैभव को चूस लिया। इसमे भारतीय शासको की प्रतिष्ठा को भी आघात पहुचाया जो देश की रक्षा व शाति-स्थापना के योग्य नही रह गये थे। प्रशासन से लोगो का विश्वास उठ गया था और लोग यह अनुभव करने लगे कि उनकी सुरक्षा उनकी अपनी शक्ति व सगठन मे निहित है न कि उनके समर्थन मे जिन्होने अपने बने रहने का औचित्य ही खो दिया है।

दक्षिण मे उत्पन्न होने वाला भक्ति आदोलन, जो पूरे देश मे फैला और जिसने हिन्दुओ को पुनर्जीवन प्रदान किया, उसने भी मुगल निरकुशता से भिडने और उनका शासन समाप्त करने की पृष्ठभूमि तैयार की। महाराष्ट्र मे मराठों और पजाब मे सिखों का उत्थान इसी आदोलन का परिणाम था जिसने लोगों को आज्ञाकारी व दासता के विरुद्ध समानता व स्वतन्त्रता का सदेश दिया।

अतिम रूप मे यूरोपीयों का भारत आगमन भी मुगल पतन का एक सहायक कारक सिद्ध हुआ। मुगलो ने नौ-सेना का विकास नही किया था जिसके कारण वे यूरोपीयो की प्रगति नही रोक सके। प्लासी मे अंग्रेजो की विजय भारत के इतिहास मे एक मोड़ लाने वाली घटना थी और 1764 मे बक्सर मे उनकी विजय ने जिसमे मुगल सम्राट व नवाब अवध दोनो ने धूल चाटी थी, मुगलों के स्थान पर ब्रिटिश साम्राज्य को प्रभावी स्थापना की ओर आगे बढ़ाया और इस तरह मुगल शासन पतन व लुप्तता की ओर अग्रसर हो गया।

2

शाहू का उत्थान (1708–1749)

शिवाजी महान के 1680 मे मृत्यु के पूर्व उनके सबसे बड़े पुत्र सम्भाजी को दुराचरण के कारण पन्हाला में कड़ी निगरानी मे रखा गया था। शिवाजी के द्वितीय पुत्र राजाराम की मां सोयराबाई ने महान मराठा सम्राट की मृत्यु की परिस्थिति से लाभ उठाकर राजाराम को सिंहासनासीन कराना चाहा। सम्भाजी ने अपने पिता की मृत्यु की हवा एव राजाराम की गद्दी प्राप्त करने की सूचना पाकर झपटकर शत्रुओं को दबाने की चेष्टा की और 28 जुलाई, 1680 को स्वयं सिंहासन प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की एव राजाराम को कारावास तथा उसके समर्थकों को बर्बर दंड प्रदान किया। पर उसमे एक शासक की दूरदर्शिता का अभाव था। वह आलस्य, मस्ती और विलासिता के जीवन का शिकार हो गया जिससे जनता से ही वह दूर न हो गया बल्कि उसने मुगलों को भी अपने को कैद कराने का अवसर प्रदान कर दिया। दिसबर 1688, मे सगमेश्वर मे बिना किसी रोकथाम के असुरक्षित, नशे व कामुक भ्रष्टता की अवस्था मे वह बंदी बना लिया गया। औरंगजेब के दरबार मे उसकी मुस्लिम धर्मग्रहण की अस्वीकृति ने उसे मृत्युदंड प्रदान करवा दिया। इससे राजाराम का रास्ता साफ हो गया जिसे बंदीगृह से निकाला गया और सम्भाजी के छ वर्षीय पुत्र शाहू को प्रतिशासक नियुक्त किया गया। 1690 में शाहू और उसकी मा यसूबाई को भी मुगलो ने रायगढ़ मे पकड़ लिया जिससे राजाराम को 1700 ई० तक स्वतत्र शासक की तरह शासन करने का अवसर प्राप्त हुआ। उसकी मृत्यु के बाद उसकी विधवा ताराबाई ने अपने पुत्र शिवाजी द्वितीय के प्रतिशासिका की हैसियत से शासन करना प्रारंभ किया।

औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा शाहू और उसके मा की मित्र हो गई जिससे सम्राट की ओर से सारी मानवोचित सुविधाएं उन्हें प्राप्त हो गई। उनके धर्म मे कोई हस्तक्षेप न किया गया और 1707 में अपनी मृत्यु के समय तक मुगल सम्राट ने राजकुमार के पालन-पोषण मे हर सुविधा प्रदान की। सम्राट ने शाहू का राजनीतिक प्रयोग करने की भी इच्छा की थी और उसने उसके लिए दो सुन्दर दुल्हनो की व्यवस्था ही नही की बल्कि उसे संवेदनशील स्नेह भी प्रदान किया था। कम से कम दो अवसरों पर उसने शाहू को मुक्त करने की योजना बनाई जिससे कि मराठो मे आपसी फूट पड़ जाय। पर अतत. उसने अपनी योजना को कार्यरूप

नही प्रदान किया। उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्रों में जब उत्तराधिकार का युद्ध छिडा, तो राजकुमार आजम ने, जिसकी कैद में शाहू था, अपने सेनापति जुल्फिकार खां के परामर्श पर उसे मुक्त कर दिया जिससे कि मराठे आपसी सघर्ष व द्वन्द्व मे फस जाय और दिल्ली की कमजोर स्थिति से लाभ न उठा सकें। आशा के अनुरूप ही हुआ, वैसे तो इसी बीच राजकुमार आजम जाजउ के युद्ध मे स्वय मारा गया और बहादुरशाह भारत का नया सम्राट हुआ।

शाहू को मई, 1707 मे इस शर्त पर रिहा किया गया कि वह आजमशाह का सामंत ना रहेगा। उसे दक्षिण के छ: सूबों के चौथ और सरदेशमुखी का अधिकार दिया गया तथा साथ ही गुजरात, गोण्डवाना और तंजोर के पैतृक राज्य व क्षेत्र का अधिकार भी सौंपा गया। उसके अच्छे व्यवहार के जमानत के तौर पर उसकी दो पत्नियां, मा और सौतेला भाई बंधक के रूप में रख लिये गये।

बालाजी विश्वनाथ

प्रारंभिक जीवन

शाहू का पेशवा या प्रधानमंत्री बनने और महत्ता प्राप्त करने से पूर्व बालाजी विश्वनाथ, जो कोंकण के एक आदरणीय देशमुख परिवार से सम्बद्ध था, भिन्न-भिन्न सरदारों के यहां छोटे-छोटे कार्यालयों मे काम कर चुका था। बालाजी के जीवन की प्रारभिक कहानी शाहू के लिए उसके दरबार से कारागार मुक्ति के बाद उसके लिए शक्ति प्राप्त करने से जुडी है।

मुक्त होने के बाद जैसे ही शाहू ने अपने राज्यक्षेत्र की यात्रा की, एक के बाद दूसरे सरदार ने उसकी मराठा राजगद्दी-प्राप्ति का समर्थन करना प्रारभ कर दिया। राजाराम की विधवा, जिसके हाथ मे मराठा राज्य की शक्ति थी और जो अपने पुत्र शिवाजी द्वितीय की ओर से शासन कर रही थी, शाहू को स्थान देने के पक्ष में न होकर युद्ध तक करने को उद्यत थी। बालाजी विश्वनाथ इस समय ताराबाई के सेनापति धनाजी जाधव की सेवा मे राजस्व प्रतिनिधि और सैनिक अधिकारी था। धनाजी ने बालाजी को व्यक्तिगत रूप से यह जानकारी प्राप्त करने को भेजा कि आनेवाला व्यक्ति असली शाहू है या नकली। शाहू से मिलने के बाद उसने सेनापति को ताराबाई के विरुद्ध शाहू का समर्थन करने को मनाया। अन्य बहुत से प्रमुख सरदारो ने ताराबाई का साथ छोड दिया। परिणामस्वरूप खेद के युद्ध मे, जिसमे रानी और शाहू के बीच लड़ाई हुई, परशराम त्रिम्बक प्रतिनिधि को छोडकर उसके पक्ष में लडनेवाला कोई नही था। अन्य लोग उससे अलग हो गये। शाहू युद्ध मे जीत गया, प्रतिनिधि लड़ाई के मैदान से भाग खड़ा हुआ और धनाजी ने सीधे शाहू का समर्थन करने का निर्णय किया। अन्य नेताओं ने भी उसका समर्थन किया और ये सभी अब ताराबाई के शासनकेन्द्र सतारा पर

घेरा डालने को आगे बढ़े। सतारा का भी पतन हो गया और ताराबाई कृष्णा नदी के दक्षिण चली गई। और इस तरह शाहू कृष्णा के उत्तर के क्षेत्र का शासक हो गया।

शाहू स्वभाव से सौम्य व सावधान था। वह अपने पिता की भांति प्रतिशोधी नहीं था और ताराबाई को वरणा के दक्षिण का भाग सौंपकर संतुष्ट करना चाहता था। पर वह अदूरदर्शी और कठोर थी और शाहू के मन्तव्यों का उचित उत्तर न देकर अपना अधिकार पुन: प्राप्त करने के लिए तैयारियां कर रही थी। उसे रंगना के किले में घेर लिया गया और यदि धनाजी ने घेरा उठा लेने का परामर्श न दे दिया होता तो इसका पतन भी हो जाता। शाहू के कायिक शक्ति न प्राप्त होने देने और ताराबाई के पूर्ण पतन न होने देने की नीति के पीछे धनाजी के अपने उद्देश्य थे। पर बालाजी ने जब एक बार नये मराठा राजा का समर्थन करना प्रारंभ कर दिया तो वह उसके प्रति वैसे ही विश्वस्त बना रहा। राज्याभिषेक के अवसर पर शाहू ने उसे अपने अमात्य अम्बूराय हन्मते का मुतलिग नियुक्त किया। 1708 में जब धनाजी की मृत्यु हो गई तो बालाजी को सेना संगठन हेतु सनाकर्ते नियुक्त किया गया और चंद्रसेन जाधव को सेनापति। बहुत-से मराठा नेताओं की विश्वासपात्रता शाहू और ताराबाई के बीच डगमगाया करती थी जबकि अन्य गड़बड़ मचाया करते और बिना सोचे-विचारे लूटपाट मचाया करते थे। एक ऐसे ही लुटेरे दमाजी थोरट ने षड्यन्त्र से बालाजी और शाहू को घेर लिया और छुड़ाई का धन लेकर ही उन्हें मुक्त किया। इस पर शाहू ने चन्द्रसेन और बालाजी को थोरट के विरुद्ध कार्यवाही की आज्ञा दी। चन्द्रसेन ने उसका साथ छोड़ दिया। शाहू ने बालाजी का समर्थन किया और चन्द्रसेन जाकर ताराबाई से मिल गया। चन्द्रसेन की जगह पर उसका छोटा भाई सताजी जाधव सेनापति बनाया गया। पर चन्द्रसेन के उदाहरण का अनुकरण अन्य बहुत-से सरदारों ने किया जिससे शाहू की शक्ति कमजोर हुई। इन परिस्थितियों में बालाजी ने अपनी संगठन शक्ति, कूटनीतिक चाल और वीरता से शाहू की समस्याओं का निदान किया और उसे विजय तथा बड़े साम्राज्य के निर्माण की ओर लेकर चल पड़ा।

बालाजी ने पर्याप्त धन महादाजी कृष्णानायक जैसे बड़े ऋणदाता से अपने उत्तरदायित्व पर लेकर सेना में भरती कर इसकी संख्या बढ़ाई और इसको हर भांति सुसज्जित कर शाहू के एक के बाद एक शत्रु के ऊपर आक्रमण करना प्रारंभ कर दिया। ताराबाई के कई सरदार या तो पराजित कर दिये गये या शाहू से मिल गये। ताराबाई के विरुद्ध इसी समय एक षड्यंत्र रचा गया जिसके अंतर्गत राजाराम की एक अन्य विधवा राजसबाई ने अपने पुत्र सम्भाजी को उस राजगद्दी का उत्तराधिकारी बताया। यह षड्यन्त्र सफल रहा, ताराबाई और उसके लड़के को 1711 में कैद कर लिया गया और राजसबाई ने अपने लड़के को

कोल्हापुर मे गद्दी दिलाई और शाहू द्वारा निर्देशित प्रभाव सीमा रेखा के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया।

तारावाई के पद से हटाये जाने के बाद शाहू ने अपना ध्यान एक दूसरे मराठा सरदार की ओर देना प्रारभ किया जिसने तारावाई के समर्थन से अपनी शक्ति काफी वढा ली थी और अव उसके पतन के वाद वह स्वयं विस्तारवादी नीति अपना रहा था। यह सर्वपरिचित मराठा जलनायक कान्होजी आगरे थे जिसके अधिकार मे बम्बई से लेकर वादी तक पूरा कोकण था। 1712 में शाहू ने अपने पेशवा वहिरोपंत पिंगले को उसके विरुद्ध भेजा। पर पेशवा पराजित होकर कैद कर लिया गया और कान्होजी ने तेजी से शाहू की राजधानी की ओर प्रस्थान करना प्रारभ कर दिया। इस घड़ी एक शक्तिशाली व्यक्ति की आवश्यकता थी और स्वाभाविक रूप से शाहू की दृष्टि बालाजी पर ही गई जिसे उसने 1713 में अपना पेशवा नियुक्त किया।

पेशवा के रूप में

जैसे ही बालाजी नया पेशवा हुआ उसने शाहू से मत्रियो मे कुछ हेरफेर करने का परामर्श दिया। उसने पेशवा के अतिरिक्त सेनापति का पद भी स्वय ग्रहण किया। उसने लगभग 4 हजार की एक शक्तिशाली सेना तैयार की और आगरे की सेना से भिड़ने को तैयार हुआ। पर सीधे विरोधी सेना से लड़ने की जगह उसने कूटनीतिक चाल चलने का निश्चय किया। कान्होजी के समक्ष दोनों पक्ष के लाभ की शर्तें रखी गई और शाहू के नेतृत्व को स्वीकार करने वाले जल सेनानायक से शाति सवध स्थापित हो गया। इसके वाद बहुत से विद्रोही सरदारो को उसने धराशायी किया तथा अब रक्षात्मक नीति के स्थान पर बालाजी ने आक्रामक नीति अपनाई जिसके फलस्वरूप उसका प्रभाव दिल्ली तक हो गया।

आजमशाह जिमसे शाहू ने अपने को मुक्त कराया था और जिसके पास अपनी पत्नियों व मा को बधक के रूप मे छोड आने को बाध्य हुआ था, को जाजउ के युद्ध मे मार डाला गया। पर बधक दिल्ली मे सुरक्षित थे। मुअज्जम, जो 1707 से 1712 के बीच बहादुरशाह की उपाधि धारण कर दिल्ली का शासन कर रहा था, उसका उत्तराधिकारी जहादारशाह और 1713 मे जहादारशाह का उत्तराधिकारी फर्रुखसियर हुआ। बालाजी ने फर्रुखसियर से ही बधको की वापसी का प्रयास किया। इसके लिए उचित अवसर भी आया जिसका पेशवा ने पूरा प्रयोग किया और इस तरह शाहू का प्रियजनो से पुर्नमिलन संभव हुआ।

1713 मे निजामुलमुल्क दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हुआ। पर दिल्ली के दरबार के षड्यत्र के कारण उसे वापस बुला लिया गया और 1714 मे सैय्यद हुसैनअली को उसके स्थान पर नियुक्त किया गया। सैय्यद अब्दुल्ला खा, जो

हुसैनअली का बड़ा भाई था, दिल्ली का प्रधानमंत्री बना रहा, पर उसका बढ़ता प्रभाव फर्रुखसियर की आखों में गड़ता रहा और वह दक्षिण मे हुसैन अली के विरुद्ध मराठों को उकसाता रहा तथा दिल्ली में अब्दुल्ला खां के विरुद्ध षड्यत्र करता रहा—पर दोनों मे उसे असफलता ही हाथ लगी। पर निजामुलमुल्क ने अब्दुल्ला का जीवन दूभर करने के लिए सम्राट की सहायता की जिसके फलस्वरूप अब्दुल्ला ने दक्षिण से अपने छोटे भाई को अपने सहायतार्थ बुला भेजा। हुसैन अली मराठों के विरोध के कारण दिल्ली न आ सका। ऐसी स्थिति मे उसने बालाजी से संधि हेतु प्रस्ताव किया और जुलाई, 1718 मे दोनो के बीच सधि हो गई। हुसैन ने बालाजी को आश्वस्त किया कि वह जैसे ही दिल्ली पहुचेगा इस सधि का अनुसमर्थन सम्राट से करा देगा।

सधि की शर्तें थी, (1) दिल्ली मे अभी भी पड़े बधक छोडे जायं, (2) सम्राट शाहू के उन सभी क्षेत्रों पर अधिकार को स्वीकार करें जिस पर कि शिवाजी का उनकी मृत्यु के समय अधिकार था, (3) आजमशाह द्वारा प्रदान किये गये दक्षिण के 6 प्रान्तों और मैसूर व तंजौर जैसे सहायक क्षेत्रो पर चौथ व सरदेशमुखी कर वसूलने के अधिकार की स्वीकृति, (4) मराठों द्वारा नवीन क्षेत्रो पर अधिकार को मान्य करना, (5) इन सबके बदले मराठे दक्षिण में शांति व व्यवस्था बनाये रखने मे सहायता करेंगे और 15 हजार की सेना सदा सम्राट के सहायतार्थ रखेंगे।

उपरोक्त सधि पर हस्ताक्षरोपरान्त हुसैनअली अपनी सेना के साथ दिल्ली रवाना हुआ। उसके साथ खांडेराव दभाडे के सेनापतित्व में 16 हजार मराठा सैनिक भी रवाना हुए। सान्ताजी भोंसले के साथ बालाजी भी सेना के साथ गये। यह तय हुआ कि हुसैनअली के साथ जब तक ये सैनिक रहेंगे वह मराठों को 50 हजार रुपये प्रतिदिन के हिसाब से धन देगा। दिल्ली पहुचने पर हुसैन ने फर्रुखसियर से सधि के अनुसमर्थन के लिए कहा। जब सम्राट ने इससे इकार किया तो उसे पदमुक्त करके अधा कर दिया गया और गला घोंटकर मार डाला गया। सैय्यदों ने 18 फरवरी, 1719 को रफी-उस-दरजात को गद्दी दिलाई जिसने संधि का अनुसमर्थन किया जिसके लिए बालाजी दिल्ली आया था। इस सारे कांड में मराठों के 2000 सैनिक मारे गये या घायल हुए। बालाजी अब वापस हुआ। यह उसकी एक महान सफलता थी पर वह अब अधिक दिनों तक सुफल भोगने को जीवित न रहा। 12 अप्रैल, 1720 को उसकी मृत्यु हो गई।

शाहू के प्रति बालाजी की सेवाए प्रशसनीय थी। एक महान सेनापति, प्रशासक और राजनेता बालाजी के प्रतिभा के अभाव में ताराबाई को विरोध पक्ष से हटाया नही जा सकता था और न ही मराठा राजा कान्होजी आंगरे के आक्रमण को झेल सकता था। उसने शाहू की अर्थ-व्यवस्था को पुनर्गठित ही नही किया बल्कि उसके प्रशासन को चुस्त बनाया और विद्रोही मराठा नेताओं को दबाया। उसने शाहू को

उत्तरी भारत में सीमा विस्तार के लिए प्रेरित किया जिसकी योजना के अंतर्गत मराठे दिल्ली के निकट प्रकट हुए और मुगल शक्ति को लगे हुए क्षय को देखा और इससे लाभ प्राप्ति हेतु ऐसी विश्वस्त योजना बनाई, जिससे उसके पुत्र पेशवा बाजीराव प्रथम ने लाभ उठाया। दिल्ली से बंधकों की मुक्ति ने उसे शाहू बाजीराव का कृपाभाजन बना दिया। जिससे प्रभावित होकर उसकी मृत्यु के बाद उसने उसके लड़के को पेशवा बना दिया। सीधे शाहू के प्रति स्थिर नीति व विश्वस्तता ने उसे मराठा शासक का इतना विश्वासपात्र बना दिया कि वह स्वय सतारा मे शातिपूर्ण जीवन बिताने लगा और रक्षा व प्रशासन का सारा उत्तरदायित्व उसके हाथ मे पूना मे सौंप दिया। इससे आगे चलकर मराठा राजा की शक्ति मे कमी आ गई और वह अब नाम मात्र का क्षत्रपति रह गया। दूसरी ओर पेशवा की शक्ति बढ गई और पूना मराठो की असली राजधानी हो गई।

सर रिचर्ड टेम्पुल ने लिखा है : बालाजी "शांत, कुशाग्र व प्रभावशाली बुद्धि का व्यक्ति था, उसकी चित्तवृत्ति काल्पनिक व महत्त्वाकांक्षी थी, उसका झुकाव नैतिक बल से अशिष्टता को दबाना था, उसमे कूटनीतिक समिश्रण की प्रतिभा थी और वह आर्थिक क्षेत्र मे सक्षम था। उसके राजनीतिक भाग्य ने उस ओर ढकेल दिया जहा उसके कष्ट प्रचड रहे···उसमें शक्ति के प्रहार से मराठा प्रभु-सत्ता को मुगलों से स्वीकृत दिलाई। अपने कूटनीति के हर मुहरे को उसने विजय दिलाई। वह इस निष्कर्ष के साथ जल्दी ही मर गया कि उसने मुस्लिम शक्ति के खडहर पर हिन्दू साम्राज्य की स्थापना कर दी है और इस साम्राज्य की पैतृक प्रधानता उसके परिवार के अधिकार मे है।"[1]

बाजीराव प्रथम

बालाजी की एक पत्नी राधाबाई के दो लड़कों में से एक विसाजी, जो बाजीराव के नाम से अधिक लोकप्रिय था, 18 अगस्त, 1700 में पैदा हुआ। बाजीराव के छोटे भाई चिमनाजी अप्पा थे जिन्होंने भविष्य में मराठा सेना का महत्त्वपूर्ण और सुलझे हुए सेनापति का पद संभाला और वह अत समय तक अपने बडे भाई का विश्वासपात्र बना रहा। बालाजी ने अपने दोनों लड़को को अपने जीवन-काल तक गहन अनुशासन के अन्तर्गत रखा था। पिता के साहसपूर्ण जीवन का उनके चरित्र और विचार पर गहरा प्रभाव पड़ा। बाजीराव प्रायः अपने पिता के साथ आक्रमणार्थ जाया करता था और उसने अपने पिता द्वारा शाहू के विरोधियों को परास्त होते देखा था। वह तब भी अपने पिता के साथ था जब वे दमाजी थोरट द्वारा कैद कर लिया गया था और बाद में शाहू के छुडाई धन देने पर मुक्त किया गया था। वह 20 वर्ष का ही था जब उसके पिता का देहान्त हुआ और शाहू ने

1. टेम्पल, सर रिचर्ड : ओरियन्टल एक्सपीरियन्स, पृ॰ 389-90।

उसे पेशवा का पद बालाजी की सेवाओ को ध्यान मे रखकर प्रदान किया।

जव बाजीराव पेशवा हुआ उस समय तक छत्रपति शाहू ने अपनी सारी शक्ति का परित्याग कर सतारा में शाति का जीवन व्यतीत करना प्रारभ कर दिया था। वैसे तो सरकार के कार्य का सचालन उसी के नाम से होता था पर असली शक्ति अब पेशवा के हाथ मे आ गई थी। उसने पैतृक शक्ति भी प्राप्त कर ली थी। उसके पास अंतिम आदेश के लिए सभी पहुचते थे। इस तरह इस 20 वर्षीय व्यक्ति के कधे पर गभीर उत्तरदायित्व आया। उसके समक्ष इस पद प्राप्ति के समय सबसे बडी समस्या यह आई कि वैसे तो मुगल शासक के मराठा राजा के लिए वैधानिक स्वीकृति प्राप्त कर ली गई थी और यह भी उससे स्वीकार कर लिया गया था कि शिवाजी की मृत्यु के समय अधिकार वाले क्षेत्र पर शाहू का भी अधिकार रहेगा, पर अब भी बहुत से ऐसे स्थान थे जिस पर मराठों का अधिकार नही था। इनमें से कुछ स्थान शक्तिशाली सीदी जजीरा के सरदारो जैसे लोगो के हाथ में थे जिन्हें वहां से हटाना सरल न था। दूसरी बात यह थी कि दक्षिण के 6 प्रान्तों पर मराठो के चौथ व सरदेशमुखी अधिकार को दिल्ली ने स्वीकार किया था, पर निजामुलमुल्क दक्षिण के अपने स्वतन्त्र राज्य का जो स्वप्न देख रहा था उससे कटुतापूर्ण संघर्ष की संभावना थी। तीसरे, मराठो द्वारा गुजरात व मालवा पर अधिकार किया जाना अभी शेष था। जो क्षेत्र कब्जे मे आये भी थे सगठित नही किये जा सके थे। कुछ विद्रोही लोगो को वहा अभी अनुशासन की परिधि में लाना था। अतिम रूप से बाजीराव को इतनी कम आयु मे पेशवा का पद प्राप्त होना नरो राममूर्ति, आनद राम सामन्त और श्रीपत राव प्रतिनिधि जैसे अनुभवी अधिकारियों के लिए ईर्ष्या का विषय बन गया। इनमें से अतिम सामत तो पेशवा का प्रमुख विरोधी हो गया। वह पेशवा से शाहू के समक्ष उसकी नीतियों पर विवाद के कार्यवाही मे बाधा उपस्थित करता था। पर बाजीराव के कुछ समर्थक ऐसे भी थे, जिनके कारण उसका कार्य कुछ सरल हो जाता था। उसमे से एक उसका छोटा भाई चिमनाजी अप्पा था।

शक्ति प्राप्त करने के तुरंत बाद बाजीराव ने मराठा राज्यों को समझाया कि रक्षा का मूल उपाय आक्रमण है और चूकि मुगल शक्ति पूर्ण समाप्ति की ओर अग्रसर है इसलिए मराठों को उत्तरी भारत में आगे बढ़कर क्षेत्र विस्तार करके लाभ उठाना चाहिए। बाजीराव ने शाहू के समक्ष विश्वस्तता से कहा, "तने पर प्रहार करें, प्रहार करें उसकी शाखायें अपने आप गिर जायेंगी। मेरी राय मानिये और मैं मराठा झडा अटक की दीवार पर गाड़ दूंगा।"

निजामुलमुल्क

उत्तर प्रस्थान से पूर्व मराठा प्रभाव को दक्षिण में सगठित करना आवश्यक

था जो निजामुलमुल्क के अधीन था और अपने क्षेत्रों में मराठों के 1719 में प्रदत्त चौथ व सरदेशमुखी के अधिकार को मानने को तैयार नहीं था। निजाम एक महान सेनापति व कूटनीतिज्ञ था और जानता था कि समायोजित अवसर से कैसे लाभ उठाया जाए। यह अवसर उसे बाजीराव के उत्तर की ओर रवानगी से अवश्य मिलता। उसका असली नाम कमरुद्दीन था और फर्रुखसियर ने उसे निजामुलमुल्क की उपाधि प्रदान करके दक्षिण के छः प्रांतों—खानदेश, बीजापुर, बीदर, बरार, हैदराबाद, व औरंगाबाद—की सूबेदारी सौंपी थी। ये सभी स्थान मुगल क्षेत्र के सपन्न स्थल थे। 1713 में नियुक्त वह सूबेदार दिल्ली तब वापस बुला लिया गया, जब हुसैनअली ने उसकी जगह से ली। जैसा हमने देखा है, सैय्यद भाइयों ने फर्रुखसियर को राजपद से हटा दिया और 1719 में रफी-उस-दरजात को सम्राट बना दिया जो कुछ ही माह के शासन के बाद मर गया। उसका उत्तराधिकारी रफी-उद-दौला हुआ जिसने थोड़े दिनों में ही अपना स्थान मुहम्मदशाह को सौंप दिया। मुहम्मदशाह के शासनकाल में ही निजामुलमुल्क को दक्षिण में अपना प्रभाव बढ़ाने और स्वतत्र राज्य स्थापित करने का अवसर मिला। दिल्ली की राजनीति पटल से सैय्यद भाइयों का विलोपन उसकी कार्यसिद्धि में सहयोगी हुआ। 4 जनवरी, 1721 को जब उससे बाजीराव चिखालथान में मिला तो उसने आश्वस्तता से कहा कि युद्ध के बिना मराठों का चौथ व सरदेशमुखी का अधिकार वह अपने क्षेत्र में नहीं स्वीकार करेगा।

मुहम्मदशाह ने 1721 में निजाम को दिल्ली में एक बार फिर प्रशासन में सुधार करने के लिए बुलाया। पर उसका दिल तो दक्षिण में ही था। दोनों के बीच इस बीच मतभेद भी प्रारभ हो गये जिस पर सम्राट ने उसे दक्षिण चले जाने देना ही उचित समझा। सम्राट ने इसी बीच गुप्त रूप से हैदराबाद के किलेदार मुबारिजखा को कहला दिया कि वह किसी तरह निजाम को समाप्त कर दे पर 2 अक्टूबर, 1720 को औरंगाबाद से 80 मील दूर शकरखेडा के युद्ध में निजाम ने मुबारिज को पराजित कर मार डाला और उसका कटा सिर सम्राट के पास भेज दिया। उसकी इस विजय ने दक्षिण पर उसके अधिकार को पैतृक बना दिया और अब मराठों से युद्ध आवश्यक हो गया।

1725 व 1726 में जब बाजीराव ने कर्नाटक में आक्रमण किया तो निजाम चिढ गया और उसकी चुनौती स्वीकार करते हुए तैयारी प्रारंभ कर दी। उसने चन्द्रसेन जाधव, उदाजी चावण एव रावरभा निम्बाल्कर जैसे मराठा सामंतों को अपनी ओर मिला लिया, सम्भाजी तथा शाहू के दल के बीच भेद-भाव पैदा करने की चेष्टा की और मराठों से दूर अपनी राजधानी औरंगाबाद से हैदराबाद कर ली जिससे मराठों के विरुद्ध उनकी गैर जानकारी में कार्य किया जा सके। जब बाजीराव ने उससे चौथ व सरदेशमुखी की मांग की तो उसने पूछा

कि मराठों का राजा शाहू है या सम्भाजी। सम्भाजी निजाम से मिल गया जिससे बाध्य होकर बाजीराव को 27 अगस्त, 1727 से निजाम के क्षेत्र जलना, बुरहानपुर और खानदेश में लूटपाट प्रारंभ कर देनी पडी। एक अवसर पाकर निजाम ने पूना मे तूफान मचा दिया। वहा उसने सम्भाजी को छत्रपति घोषित किया पर उसे शीघ्र ही बाध्य होकर फजलबेग को रक्षार्थ वहां छोडकर वापस जाना पड़ा। उसे पेशवा से भिडना आवश्यक हो गया क्योंकि उसने गोदावरी के आसपास के क्षेत्र मे भी लूटपाट प्रारंभ कर दी। दोनो सेनाएं दौलताबाद से 20 मील दूर पालखेद में मिली जहां निजाम को सधि करने के लिए बाध्य होना पडा।

6 मार्च, 1728 को मुगी शिवगांव की सधि पर हस्ताक्षर हुए जिसमें निजाम ने स्वीकार किया कि (1) वह शाहू की प्रभुसत्ता को स्वीकार करेगा और फिर कभी सम्भाजी का समर्थन नही करेगा, (2) वह दक्षिण में मराठो के चौथ व सरदेशमुखी के अधिकार को स्वीकार करेगा और अभी तक का शेष भी प्रदान करेगा।

पालखेद की विजय बाजीराव के जीवन के इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है। युवा पेशवा के लिए महत्त्वपूर्ण विजय के साथ ही यह "नि.सन्देह निजाम की प्रतिष्ठा के लिए एक आघात था...पालखेद ने पेशवा के विजयों का अविरल क्रम प्रारंभ कर दिया जो उसके नेतृत्व मे आने वाले वर्षो मे सामने आये। इससे एक शिक्षा शाहू के दरबार के असन्तुष्ट स्वदल त्यागियो को भी मिली कि पेशवा के अधिकार को चुनौती देना सरल नही था।"[1]

गुजरात

निजाम पर विजयोपरान्त पेशवा ने गुजरात की ओर ध्यान दिया। यह स्थान भडौच और सूरत जैसे महत्त्वपूर्ण व्यापार केन्द्र व बदरगाह के लिए प्रसिद्ध था। शिवाजी ने भी 1664 व 1670 में इसे लूटा था और बाद में भी मराठा नेताओं के आक्रमण लगातार यहा होते रहे थे। विशेषकर दभाडे परिवार जिसे सेनाजी ने सम्थापित किया था और जिसका पौत्र त्रिम्बकराव इस समय शाहू का सेनापति था। पेशवा ने अपने भाई चिमना जी अप्पा को 1730 मे गुजरात मे आक्रमणार्थ भेजा और इसके मुगल सूबेदार सरबुलन्द खा को 23 मार्च को बाध्य किया कि वह अपने प्रान्त में चौथ व सरदेशमुखी का अधिकार शाहू को सौंपे। जल्दी ही यहा का सूबेदार सरबुलद खा की जगह अभयसिंह को बनाया गया जिसने अपने पूर्वाधिकारी के वादे को पूरा करने का आश्वासन दिया। इससे त्रिम्बकराव सेनापति चिढ़ गया जो गुजरात पर अपने परिवार का ही प्रभाव क्षेत्र मानता था।

---

1. श्रीनिवासन, सी० के० : बाजीराव द फर्स्ट, द ग्रेट पेशवा, 1961, 40।

उसने निजाम से मिलकर बाजीराव को हटाने का षड्यंत्र रचना प्रारंभ कर दिया। सम्भाजी भी इन्ही से मिल गया और इस तरह शीघ्र ही एक शक्तिशाली संगठन पेशवा को नष्ट करने के लिए तैयार हो गया। पर बाजीराव ने इस स्थिति का मुकावला साहस से किया। सम्भाजी को वरणा नदी के किनारे ही पराजित कर दिया गया और 13 अप्रैल, 1731 को उसे सधि करने के लिए बाध्य होना पडा। जिसके अन्तर्गत शाहू और सम्भाजी के राज्य की सीमा वरणा नदी को ही मान लिया गया। इससे पहले ही 1 अप्रैल को त्रिम्बकराव को भी दभोई के युद्ध मे पराजित करके मार डाला गया। निजाम को भी लातुर के 8 मील उत्तर रोहे रामेश्वर में 27 दिसम्बर, 1732 के युद्ध मे पुनः मुंहकी खानी पडी। अव उसने वायदा किया कि वह मराठो के उत्तरी भारत के कार्यवाहियों में हस्तक्षेप नही करेगा।

पेशवा का प्रभाव गुजरात पर पूर्णरूपेण छा गया। पर शाहू ने त्रिम्बकराव के पुत्र यशवत राव को सेनापति बनाकर उसके परिवार के प्रति महामनस्यता दिखाई। एक समझौते पर हस्ताक्षर भी हुए कि गुजरात मे चौथ वसूल करने का कार्य वही करेगा। पर शर्त यह रहेगी कि उसकी वसूली का आधा मराठा खजाने में जमा कर दिया जाएगा।

मालवा की विजय

1719 मे दक्षिण मे मुगल शासन द्वारा चौथ का जो मराठा अधिकार स्वीकार किया गया था उसी तरह का अधिकार जब मालवा में नही स्वीकार किया गया तो उसे उस ओर ध्यान देना पड़ा। 1723 के प्रारंभ में पेशवा ने मालवा के दक्षिणी भागो की ओर प्रस्थान किया था जिसके वाद उसके सेनापतियो—रनोजी सिंधिया, मल्हार राव होल्कर और उदाजी पवार—द्वारा लगातार इस क्षेत्र मे आक्रमण करके चौथ वसूला जाता रहा और धीरे-धीरे प्रभाव वढाकर क्रमश. उनके द्वारा ग्वालियर, इन्दौर, एव धार में राज्य स्थापित कर लिया गया। प्रारभ में मराठों को इस क्षेत्र में अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पडा।

1725 मे सम्राट ने गिरिधर राव को मालवा का गवर्नर नियुक्त किया और उसे मराठों के समूह को उस क्षेत्र से निकालने का कार्य सौंपा। गिरिधर के सहायतार्थ दया बहादुर सेनापति को लगाया गया। 1725 से 1727 के मध्य पेशवा कर्नाटक मे व्यस्त रहा। 1728 में जब पालखेद में निजाम परास्त किया गया तब उसे मालवा की ओर ध्यान देने का अवसर मिला। राजधानी दिल्ली से आमेर के सवाई जयसिंह ने इसी दिशा मे कार्य करने का निर्देश व प्रोत्साहन दिया और अक्टूबर, 1728 में पेशवा ने चिमनाजी से सेनापतित्व तथा सिंधिया

होल्कर तथा पवार के सहायकत्व में एक बड़ी सेना एकत्रित की। चिमना जी ने सरकारी सेना को 29 नवम्बर, 1728 मे अजमेर के स्थान पर युद्ध करके अपने निर्भीक युद्ध सगठन और वीरतापूर्ण गुणो का प्रदर्शन करते हुए गिरिधर बहादुर और दया बहादुर दोनो को मार डाला और मुगल सेना को बुरी तरह से पराजित किया। वह अपनी सेना सहित उज्जैन तक आगे बढ़ा पर वस्तुओं के पूर्ति के अभाव में वापस लौट आया। इस तरह मालवा में मराठा शक्ति का अपार प्रभाव हो गया। वैसे उज्जैन जैसे कुछ स्थान विजित करने शेष रहे।

पर मुगल सम्राट मराठों के लिए कुछ भी करने को उद्यत था। उसने जयसिंह को यहां शक्ति पुनर्स्थापना के लिए चुना। राजपूत नेता ने सम्राट को मराठों से सुलह करने की राय दी। जिस पर उसने 1730 में यह कार्य मुहम्मद खां बंगश को सौपा। उसने निजामुलमुल्क से भेंट की और उससे मिलकर एक संयुक्त योजना पेशवा को पराजित करने के लिए बनाई। बाद मे इस सघ मे त्रिम्बकराव दभादे और सम्भा जी भी सम्मिलित हो गए। पर 1 अप्रैल, 1731 को त्रिम्बकराव की दभोई में पराजय और मृत्यु हो जाने से मुस्लिम नेताओं को अलग होने और पीछे हटने को बाध्य होना पडा। इस पर मुहम्मद खा को दिल्ली वापस बुला लिया गया और जयसिंह को पुन: मालवा का गवर्नर नियुक्त किया गया। पर वह भी होल्कर द्वारा एक युद्ध मे हरा दिया गया। इसके बाद मालवा पर दिल्ली से दो आक्रमण और किये गए पर मुगलो को 22 लाख रुपये मालवा के चौथ के रूप में देकर सधि करनी पडी। युद्ध 4 मार्च, 1736 तक और चला जिस समय बाजीराव जयसिंह से किशनगढ़ मे मिला। यहा जयसिंह ने सम्राट से मराठों की मांग मान लेने की राय दी। बाजीराव को मालवा का सहायक सूबेदार बना दिया गया। जिसका अर्थ था मालवा को मराठों के हाथ सौपना। वैसे सम्राट अभी ऐसा नही सोचता था जब तक कि पेशवा ने स्वय दिल्ली जाकर सत्यता का भान उसे नही करा दिया। इस तरह मालवा ने भी बाजीराव के समक्ष घुटने टेक दिया।

बुन्देलखंड में अभियान

जब औरंगजेब दक्षिण में व्यस्त था तब बुंदेलवशीय राजपूत छत्रसाल ने पूर्वी बुदेलखंड मे उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और एक स्वतत्र राज्य की स्थापना कर ली। मुगलो ने बुदेल नेता के विरुद्ध कई आक्रमण किये पर उसे रास्ते मे नही हटा पाये। वह अपना राज्य क्षेत्र बढाता ही गया और तब तक यही करता रहा जब तक कि 1727 मे इलाहाबाद के मुगल गवर्नर मुहम्मद खा बगश ने उसके विरुद्ध प्रयाण करके दिसंबर, 1728 मे उसे सपरिवार कैद नही कर लिया। इस मध्य छत्रसाल बराबर पेशवा से सहायतार्थ व्यग्र अनुरोध करता रहा। पर पेशवा

अन्य स्थानों पर व्यस्त रहने के कारण कोई सहायता नही
में उसने एक सेना एकत्रित की और बुंदेलखंड की ओर ब
से मुक्ति प्राप्त कर उसके पास पहुचा। वे दोनों जैतपुर
ने यह स्थान छोड दिया और यह वादा भी किया कि वह पुन

कृतज्ञ छत्रसाल इस तरह अपने स्थान पर पुन स्थापित
बदले उसने पेशवा को बुंदेलखंड मे एक जागीर प्रदान की अ
रखैल की सुन्दर कन्या मस्तानी उसे विवाह में दी। 14 दिस
अपने मृत्यु से पूर्व बुंदेल नेता ने बुंदेलखंड के कुछ और क्षेत्र पे
किया और इस तरह देश के इस क्षेत्र मे मराठा प्रभाव का विस्तार

जंजीरा के सीदी

सीदी, जो अफ्रीका के पूर्वी समुद्र तट से आये थे, उन्होंने दनकोट से
के बीच के सामुद्रिक क्षेत्र पर 1490 के तुरंत बाद अधिकार कर लिया।
समुद्र से सटा एक अजेय किला था जहा पर निजाम ने अपने ही एक आदम
सूबेदार नियुक्त किया। सम्भाजी के समय मे मुगलो से प्रोत्साहन पाकर सीदि
ने मराठों की भूमि को रौंदना प्रारंभ कर दिया और वे तब तक गंभीर समस्य
बने रहे जब तक कि राजाराम के द्वारा नियुक्त जल सेनानायक कान्होजी आगरे
1698 में दृश्य स्थल पर प्रकट नही हुआ।

1700 से 1701 के बीच कान्होजी ने सीदी क्षेत्रों पर कई बार आक्रमण
किया और उन्हें चन्देरी, कोलाबा और शंगरगढ क्षेत्र के राजस्व को दो तिहाई
भाग देने को बाध्य किया। 1707 से 1711 के मध्य उसने कुछ अंग्रेजी और डच
जहाजों को पकड़ा।[1] शाहू और ताराबाई के संघर्ष में वह तार ... भी
देना चाहता था। पर 1714 में बालाजी ने उसे शाहू के
जिसके बाद इस संयुक्त मराठा शक्ति ने ब्रिटिश को 1718
उन्हें पुर्तगालियों की सहायता पाने पर ... किया
मराठा जल सेनानायक ने अपनी ... समानता
सिद्ध की।

अपमानित करने के लिए अंजनवेल और गोवालकोट के सीदी गवर्नर सत ने ब्रह्मेन्द्र स्वामी नामक पवित्र सत की बेइज्जती की जिसे मराठा बड़ा आदर देते थे।

1728 में बाजीराव ने निजाम को पराजित करने के बाद सीदियों के विरुद्ध अभियान के विषय में सोचना प्रारभ किया। 1729 मे कान्होजी की मृत्यु के बाद उसके लड़के सेखोजी आगरे को जलसेना नायक बनाया गया। वह भी अपने पिता की भाति योग्य था और उसने पेशवा को अपना पूर्ण समर्थन दिया। 1733 मे सीदी रसूल याकूत खा की मृत्यु हो गई और उसके बाद उसके लड़कों में उत्तराधिकार का सघर्ष प्रारम्भ हो गया। इसमें उसका बड़ा लड़का अब्दुल मारा गया। उसके पुत्र अब्दुल रहमान ने मराठों से सहायता की अपील की। अब पेशवा के लिए लाल लोहे पर प्रहार का अवसर था। जजीरा घेर लिया गया, पर पेशवा कोई विशेष प्रभाव नही डाल पाया। इसी बीच 8 जून, 1733 को प्रतिनिधि ने रायगढ पर अधिकार कर लिया, जिसके फलस्वरूप मराठो द्वारा शत्रु के विरुद्ध सगठित प्रयास करने के स्थान पर उनमें आपस मे ईर्ष्या की वृत्ति का जन्म हो गया और उनका मन्तव्य कमजोर पड़ गया। अगस्त, 1733 में सेखोजी आंगरे की मृत्यु ने पेशवा को एक अन्य आघात पहुचाया और अब उसने शत्रु के साथ सधि करने का निश्चय किया।

हस्ताक्षरित सधि की धारा के अनुसार सीदियो ने अब्दुल रहमान को जजीरा का शासक स्वीकार किया और उनका अधिकार उन्ही के स्थानो अजनवेल, गोवालकोट और अदेरी तक बना रहा जब कि मराठा द्वारा विजित क्षेत्रों—रायगढ़, रेवास, थाल और चौल पर उनका अधिकार मान लिया गया।

जैसे ही बाजीराव सतारा वापस लौटा, सीदी छीने गए राज्यों पर अधिकार हेतु निकल पड़े। जून, 1734 मे उन्होंने रायगढ को वापस लेने का खतरा पैदा कर दिया। पर पेशवा ने एक शक्तिशाली सेना भेजकर सीदियों को वापस होने के लिए बाध्य किया। 19 अप्रैल, 1736 को चिमनाजी ने रेवास में रुके हुए सीदियो पर एकाएक आक्रमण किया और उनके नेता सीदा सत सहित लगभग डेढ़ हजार सैनिकों को मार डाला। 25 सितम्बर, 1736 को दुबारा होने वाली सधि के अन्तर्गत सीदियों के पास अब जजीरा, गोवालकोट और अजनवेल ही शेष रहा।

बाजीराव के इन आक्रमणो के परिणामस्वरूप "प्रकट रूप से सीदी समुद्र मे ढकेल दिये गये और उनकी कार्यवाही मुख्य रूप से जजीरा के सामुद्रिक किले तक सीमित हो गई।"[1] सीदियों की शक्ति पूर्ण रूप से समाप्त हो गई होती यदि प्रतिनिधि और पेशवा के बीच अनबन न हो गई होती और यदि सेखोजी आगरे की

1. श्रीनिवासन : पूर्वोद्धृत, 94।

अन्य स्थानों पर व्यस्त रहने के कारण कोई सहायता नहीं कर पाया। मार्च, 1729 में उसने एक सेना एकत्रित की और बुंदेलखंड की ओर बढ़ा। छत्रसाल कारागार से मुक्ति प्राप्त कर उसके पास पहुंचा। वे दोनों जैतपुर पहुंचे और मुहम्मदशाह ने वह स्थान छोड़ दिया और यह वादा भी किया कि वह पुनः वहां नहीं लौटेगा।

कृतज्ञ छत्रसाल इस तरह अपने स्थान पर पुनः स्थापित हो गया और इसके बदले उसने पेशवा को बुंदेलखंड में एक जागीर प्रदान की और अपनी मुस्लिम रखैल की सुन्दर कन्या मस्तानी उसे विवाह में दी। 14 दिसम्बर, 1731 को अपने मृत्यु से पूर्व बुंदेल नेता ने बुदेलखंड के कुछ और क्षेत्र पेशवा को प्रदान किया और इस तरह देश के इस क्षेत्र मे मराठा प्रभाव का विस्तार हुआ।

जंजीरा के सीदी

सीदी, जो अफ्रीका के पूर्वी समुद्र तट से आये थे, उन्होंने बनकोट से नगोथाना के बीच के सामुद्रिक क्षेत्र पर 1490 के तुरंत बाद अधिकार कर लिया। जजीरा समुद्र से सटा एक अजेय किला था जहां पर निजाम ने अपने ही एक आदमी को सूबेदार नियुक्त किया। सम्भाजी के समय मे मुगलों से प्रोत्साहन पाकर सीदियो ने मराठों की भूमि को रौंदना प्रारंभ कर दिया और वे तब तक गंभीर समस्या बने रहे जब तक कि राजाराम के द्वारा नियुक्त जल सेनानायक कान्होजी आंगरे 1628 में दृश्य स्थल पर प्रकट नहीं हुआ।

1700 से 1701 के बीच कान्होजी ने सीदी क्षेत्रो पर कई बार आक्रमण किया और उन्हें खन्देरी कोलाबा और शंगरगढ क्षेत्र के राजस्व को दो तिहाई भाग देने को बाध्य किया। 1707 से 1711 के मध्य उसने कुछ अंग्रेजी और डच जहाजों को पकड़ा।[1] शाहू और ताराबाई के संघर्ष में वह ताराबाई का पक्ष भी लेना चाहता था। पर 1714 में बालाजी ने उसे शाहू के पक्ष मे करा लिया जिसके बाद इस संयुक्त मराठा शक्ति ने ब्रिटिश को 1718 और पुन: 1721 में उन्हें पुर्तगालियो की सहायता पाने पर भी पराजित किया। 1724 में इस मराठा जल सेनानायक ने अपनी जलशक्ति की प्रधानता डचों के विरुद्ध भी सिद्ध की।

इसी बीच सीदियों ने अपनी शक्ति की पुनर्प्राप्ति कर ली और रायगढ सहित तमाम मराठा क्षेत्रों पर कब्जा कर लिया। रायगढ शिवाजी की राजधानी और इस तरह मराठा स्वतंत्रता संग्राम का प्रतीक मानी जाती थी। यह नगर सीदियो को औरंगजेब ने सौंपा था जिसे मराठो ने प्रतिष्ठाजनक समझा। मराठो की ओर

---

1. विस्तार के लिए देखिए, मालगावकर, मनोहर : कान्होजी आंगरे, मराठा ऐडमिरल, 1959, 224-54।

अपमानित करने के लिए अजनवेल और गोवालकोट के सीदी गवर्नर सत ने ब्रह्मेन्द्र स्वामी नामक पवित्र सत की बेइज्जती की जिसे मराठा बड़ा आदर देते थे।

1728 मे बाजीराव ने निजाम को पराजित करने के बाद सीदियो के विरुद्ध अभियान के विषय मे सोचना प्रारभ किया। 1729 मे कान्होजी की मृत्यु के बाद उसके लडके सेखोजी आगरे को जलसेना नायक बनाया गया। वह भी अपने पिता की भाति योग्य था और उसने पेशवा को अपना पूर्ण समर्थन दिया। 1733 मे सीदी रसूल याकूत खा की मृत्यु हो गई और उसके बाद उसके लड़को में उत्तराधिकार का सघर्ष प्रारम्भ हो गया। इसमे उसका बडा लड़का अब्दुल मारा गया। उसके पुत्र अब्दुल रहमान ने मराठो से सहायता की अपील की। अब पेशवा के लिए लाल लोहे पर प्रहार का अवसर था। जजीरा घेर लिया गया, पर पेशवा कोई विशेष प्रभाव नही डाल पाया। इसी बीच 8 जून, 1733 को प्रतिनिधि ने रायगढ पर अधिकार कर लिया, जिसके फलस्वरूप मराठो द्वारा शत्रु के विरुद्ध सगठित प्रयास करने के स्थान पर उनमे आपस में ईर्ष्या की वृत्ति का जन्म हो गया और उनका मन्तव्य कमजोर पड गया। अगस्त, 1733 मे सेखोजी आगरे की मृत्यु ने पेशवा को एक अन्य आघात पहुचाया और अब उसने शत्रु के साथ सधि करने का निश्चय किया।

हस्ताक्षरित सधि की धारा के अनुसार सीदियो ने अब्दुल रहमान को जजीरा का शासक स्वीकार किया और उनका अधिकार उन्हीं के स्थानों अजनवेल, गोवालकोट और अदेरी तक बना रहा जब कि मराठा द्वारा विजित क्षेत्रो—रायगढ, रेवास, थाल और चौल पर उनका अधिकार मान लिया गया।

जैसे ही बाजीराव सतारा वापस लौटा, सीदी छीने गए राज्यों पर अधिकार हेतु निकल पडे। जून, 1734 में उन्होंने रायगढ को वापस लेने का खतरा पैदा कर दिया। पर पेशवा ने एक शक्तिशाली सेना भेजकर सीदियो को वापस होने के लिए बाध्य किया। 19 अप्रैल, 1736 को चिमनाजी ने रेवास में रुके हुए सीदियो पर एकाएक आक्रमण किया और उनके नेता सीदा सत सहित लगभग डेढ हजार सैनिकों को मार डाला। 25 सितम्बर, 1736 को दुबारा होने वाली सधि के अन्तर्गत सीदियो के पास अब जजीरा, गोवालकोट और अजनवेल ही शेष रहा।

बाजीराव के इन आक्रमणों के परिणामस्वरूप "प्रकट रूप से सीदी समुद्र मे ढकेल दिये गये और उनकी कार्यवाही मुख्य रूप से जजीरा के सामुद्रिक किले तक सीमित हो गई।"[1] सीदियों की शक्ति पूर्ण रूप से समाप्त हो गई होती यदि प्रतिनिधि और पेशवा के बीच अनबन न हो गई होती और यदि सेखोजी आगरे की

1. श्रीनिवासन : पूर्वोद्धृत, 94।

संबंध सुधारने जा रहा है। बाजीराव को दाल में कुछ काला लगा। पर वह जल्दी में था इसलिए उसने उसका रास्ता नहीं रोका।

दिल्ली पहुंचने पर निजाम को अन्य तमाम मुगल नेताओं का सहयोग मिला और इस तरह सत्तर हजार सेना का नेतृत्व करता हुआ और पर्याप्त सैन्य सामान सहित वह मराठों से निबटने को निकल पड़ा। पेशवा ने इस चुनौती को प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार किया। अस्सी हजार मराठा सैनिक एकत्रित कर वह उत्तर की ओर आगे बढ़ा। पीछे उसने चिमना जी के साथ 10 हजार सैनिक इसलिए छोड़ दिये जिससे दक्षिण से आने वाली निजाम की सहायता को रोका जा सके। निजाम भोपाल पहुंचा और उसके आगे जाना उचित नहीं समझा क्योंकि वहां मराठों का प्रभाव अधिक था। पेशवा ने आक्रमण करने के स्थान पर इस नगर पर कड़ा सैनिक घेरा डलवा दिया। शीघ्र ही निजाम की विशाल सेना के लिए वस्तुओं का अभाव हो गया। दिल्ली प्रेषित उसका सहायता का व्यग्र अनुरोध बेकार गया क्योंकि वहां राजदरबार में ऐसे लोग भी बहुत थे जो निजाम का विनाश चाहते थे। उधर चिमनाजी ने दक्षिण से भी उसके पास कोई सहायता नहीं आने दी। इस तरह एक बार पुनः निजाम को संधि की नीति अपनाने को बाध्य होना पड़ा।

7 जनवरी, 1738 को दोराहा सराय में एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए जिसके अंतर्गत मराठों के लिए सम्राट की ओर से मालवा के सत्तान्तरण के लिए आश्वस्त किया गया। चम्बल और नर्मदा के बीच के क्षेत्रों पर मराठों का आधिपत्य स्वीकारा गया तथा 50 लाख रुपये हर्जाना उससे मांगा गया। निजाम ने कुरान लेकर संधि की शर्तों को पूर्ण रूप से मानने की शपथ ली।

भोपाल की विजय बाजीराव के जीवन की एक और महत्त्वपूर्ण सफलता थी। मालवा तथा चम्बल व नर्मदा के बीच के क्षेत्रों पर मराठा सर्वोच्चता को वैधानिक रूप से स्वीकृति मिल गई और निजाम को यह पूर्ण रूप से भान हो गया कि उसकी मुक्ति जीवन भर उसके द्वारा मराठा श्रेष्ठता को स्वीकार करने में ही है।

पुर्तगालियों के विरुद्ध

पुर्तगालियों ने चौल और दमन के बीच के क्षेत्रों पर अधिकार कर रखा था जो पेशवा की आंखों में खटकता था। ऐसा इसलिए था क्योंकि वे हिन्दुओं के प्रति असहिष्णु थे और साथ ही उन्होंने पेशवा के साथ किये गये एक वादे का उल्लंघन किया था जिसके अंतर्गत पुर्तगालियों ने सालसेट में मराठों को फैक्ट्री बनाने हेतु भूमि देने को कहा था।

चिमनाजी को उनके विरुद्ध अभियान पर भेजा गया। मार्च, 1737 में यह आक्रमण किया गया और थाना जिले पर अधिकार कर लिया गया। इसके बाद पूरे बेसीन द्वीप पर मराठों ने अधिकार कर लिया। इसके बाद सालसेट पर घेरा

3

वालाजी वाजीराव

वालाजी वाजीराव उर्फ नाना साहब पेशवा वाजीराव का सबसे बड़ा पुत्र था जिसका अपने चाचा चिमनाजी अप्पा की स्नेहपूर्ण छत्रछाया मे पालन-पोषण हुआ था। जून 1740 में 18 वर्ष की आयु मे, रघुजी भोसले और कुछ अन्य मराठा सरदारो के विरोध के वावजूद उसे शाहू द्वारा पेशवा नामित किया गया। इसी के काल में पेशवा का पद वैधानिकतापूर्वक पैतृक हुआ।

कहा जाता है कि वैसे तो पेशवा के शत्रु उसका उत्तराधिकार न रोक सके पर आगे चलकर शाहू के बीमार होने पर रघुजी भोंसले, प्रतिनिधि और रानी सकवर बाई सहित कुछ ने राजा के कान भरकर उसे पद से हटवा दिया। पेशवा ने तुरंत अपने पद चिह्न वापस कर दिये और निवेदनपूर्वक आगे के आदेश की प्रतीक्षा की। इससे राजा प्रसन्न हुआ और आगे जब उसे इस पद के योग्य कोई व्यक्ति नही मिला तो उसने एक दस्तावेज देते हुए सवैधानिक दृष्टि से उसे और शक्ति प्रदान करते हुए उसी पद पर पुनर्नियुक्त किया। इसी दस्तावेज के माध्यम से पेशवा के कार्यालय को नागरिक व सैनिक सरकार का केंद्र और पैतृक बना दिया गया। उसे शाहू वंशीय राजत्व की रक्षा के लिए उत्तरदायी वनाया गया जिससे कोल्हापुर वंश को अलग रखा गया। उसे जागीरदारो पर नियंत्रण शक्ति भी प्रदान की गई तथा नयी जागीर प्रदान करने की शक्ति भी दी गई। इस तरह पेशवा की विकसित होती पैतृक शक्ति को वैधानिक स्वीकृति प्राप्त हुई।

उसके काल की एक अन्य घटना ने भी छत्रपति की शक्ति को आघात पहुंचाया तथा मराठा कार्यों मे पेशवा की सर्व प्रमुखता को सिद्ध किया। निःसंतान शाहू एक पुत्र गोद लेना चाहता था। उदारतावश उसने रामराजा के पक्ष मे निर्णय लिया जो तारावाई और उसके शत्रु का पौत्र था। उसके लिए एक वसीयतनामा भी वन गया। पेशवा के शत्रुओ द्वारा रामराजा को अपना अधिकार जताने की सलाह दी गई जिससे पेशवा चौकन्ना हो गया और उसने जान-बूझकर अपने विरोधियो को समाप्त करने तथा अपने हाथ में ही शक्ति एकत्रित करने की नीति अपनायी। वाद मे 1750 मे जव पेशवा निजाम के क्षेत्र पर आक्रमण करने निकला तभी वालाजी गायकवाड की सहायता से तारावाई और उमावाई ने रामराजा को कैद मे डाल दिया और स्वय वालाजी वाजीराव

की शक्ति का अधिकार ग्रहण करने की चेष्टा की। यह सूचना पाकर पेशवा पीछे लौटा, गायकवाड़ को पराजित किया और अपनी शर्तें उससे मनवायी। जिसके अंतर्गत उसने अपना आधा क्षेत्र दिया, 20 लाख रुपये की क्षति पूर्ति की और पूना के कार्य क्षेत्र में पुनः दखल न देने का वादा किया। निराश ताराबाई ने स्वयं पेशवा से सुलह की और फिर राजनैतिक शक्ति प्राप्ति के प्रयास न करने का आश्वासन दिया। उसे रामराजा सहित सतारा पर अधिकार बनाये रखने दिया गया। उसने यह भी स्वीकार किया कि रामराजा ढोंगी है और सचमुच उसका पौत्र नहीं।

इसके बाद आगे 68 वर्षों यानी 1818 तक रामराजा, छत्रपति और उसके वंशज सतारा जेल में तब तक पड़े रहे जब तक कि लार्ड हेस्टिंग्स ने पेशवाशाही समाप्त कर छत्रपति को गद्दी नहीं दिलाई। इस मध्यावधि में पेशवा के हाथ में ही सारी शक्ति आ गई और पूना मराठा कार्यवाहियों का केंद्र बन गया।

1749 में मृत शाहू के विषय में भी दो शब्द यहां अपेक्षित हैं। मुगल जनाना में पोषित शाहू ने अपने प्रारंभिक दिन आराम और विलासिता में बिताये थे। जब वह वहां से स्वतंत्र हुआ उस समय उसमें शक्तिशाली सरकार के लिए न तो बुद्धि थी, न इच्छाशक्ति। यह उसका सौभाग्य था कि उसके पास एक-से-एक क्षमता वाले एवं स्वामिभक्त पेशवा थे जिन्होंने दूर-दूर तक उसकी विजय व प्रतिष्ठा की पताका फहराई। नि.संदेह शाहू आदरणीय था और कभी-कभी अपनी शक्ति भी जताता था। उदाहरण के लिए रघुजी भोंसले और पेशवा में, पेशवा और दभादे में भेदभाव समाप्त कराने में उसने प्रमुख भूमिका अदा की। पेशवा बालाजी बाजीराव को पदमुक्त करना भी ऐसा ही काम था। शाहू मूलरूप से एक आरामतलब व्यक्ति था जो अवकाशपूर्ण जीवन से प्रेम करता था।

पुनश्च बालाजी बाजीराव को प्रारंभ करें तो कह सकते हैं कि वह अपने पिता और पितामह की भांति उच्चकोटि का सैनिक गुणों वाला था। उसी के काल में मराठा संघ जिसकी नींव पहले ही डाली जा चुकी थी, अधिक प्रभावी हुई। व्यक्तिगत मराठा नेताओं में अधिकतर महत्त्वाकांक्षी हो गये और वे अब अपने हथियार का प्रयोग सिंध नदी के किनारे अटक तक करने लगे और रास्ते में आने वाली सब चीजें लूटने लगे। इस तरह मुसलमानों को ही नहीं हिंदुओं को भी अपने से दूर करने लगे जिसके फलस्वरूप 'हिंदू पद पादशाही' का सिद्धांत हवा हो गया। पेशवा ने भी सेनापति से अधिक वित्त के रूप में लाभ कमाया क्योंकि उसने अपने पिता द्वारा किए गये 14½ लाख रुपये के ऋण से मुक्ति हेतु अपनाई गई नीति से लोगों को प्रभावित किया। उसके समय में कुछ राजस्व एवं न्यायिक सुधार भी किये गये जिसके लिए सदाशिव राव भाऊ साधुवाद का पात्र था। उसने कर एकत्रित करने वालों पर नियंत्रण रखा और जनता को हिंसा और कष्ट से मुक्ति

प्रदान की। न्यायिक क्षेत्र मे सुधार हेतु दूसरी ओर, बाल शास्त्री गाडगिल भी उत्तरदायी था।

बालाजी बाजीराव "स्वभाव से अकर्मठ व्यक्ति था और चूंकि वह योग्य सहायको पर निर्भर करता था इसलिए आदतन निष्क्रिय था। वह स्वयं उत्तरी भारत कभी नही गया और अंत तक उसने दिल्ली की राजनीति की महत्ता नही समझी। उसने उत्तर की अवहेलना की और दक्षिण की ओर अधिक ध्यान दिया जिसके फलस्वरूप उसे अफगान कठिनाई की सीमा समझ में न आई।"[1]

मालवा

उसके काल की महत्त्वपूर्ण घटनाओ मे से एक था, मालवा मे प्राप्त उसके द्वारा लाभ, जिस पर बाजीराव प्रथम के काल मे ही मराठा अधिकार स्वीकार किया जा चुका था। पर उस पर अभी तक औपचारिक अधिकार नही किया गया था। जयपुर के राजा जयसिंह के माध्यम से पेशवा सम्राट के पास पहुचा और मालवा के सहायक गवर्नर के पद की प्राप्ति की और अहमदशाह नाममात्र का गवर्नर बना रहा। इसके बाद पेशवा ने सम्राट के प्रति स्वामिभक्त बने रहने को कहा, मुगल दरबार मे स्थायी तौर पर 500 मराठा सैनिक भेज दिये और आवश्यकता पड़ने पर अन्य 4,000 सैनिकों की सहायता देने का आश्वासन दिया।

उड़ीसा में रघुजी भोंसले

1707 में औरंगजेब की मृत्यु के समय बंगाल और उडीसा का प्रान्त मुर्शीदकुलीखां के अंतर्गत था जिसकी मृत्यु के बाद 1727 ई० मे शुजाउद्दौला यहां का सूबेदार हुआ। उसने बिहार पर भी विजय प्राप्त की और 1733 मे इन तीन प्रांतो पर सर्फराजखां उत्तराधिकारी हुआ जिसे 1739 में अलीवर्दीखां ने, जो बिहार का सहायक सूबेदार था, पद से हटा दिया और तीनों प्रातो का सूबेदार हो गया। उडीसा के एक सामंत मीर हबीब ने अलीवर्दीखा के विरुद्ध विद्रोह किया और नागपुर के रघुजी भोसले से सहायता की याचना की। भोसले ने भास्करराव के नेतृत्व में एक सेना भेजी जो पराजित हो गई। 1743 में भोंसले स्वयं वहा आया। पर इसी समय पेशवा ने भी आक्रमण किया। अलीवर्दीखां ने पेशवा को 22 लाख रुपये दिया और उसकी सहायता से रघुजी को अपने क्षेत्र से निकाल दिया। भोसले ने शाहू से पेशवा के विरुद्ध अपील की और तीनों प्रांतों पर मात्र अपना प्रभाव पाने में सफल हुआ। इसके बाद 1744

1. नादकर्णी : पूर्वोद्धृत, पृ० 234।

में रघुजी ने भास्कर राव को मुर्शिदाबाद पर आक्रमण करने के लिए भेजा। पर मराठे हार गये और भास्कर राव षड्यंत्र से मार डाला गया। दूसरे वर्ष रघुजी स्वय आगे बढा और उड़ीसा पर अधिकार कर लिया। पर अलीवर्दीखां से युद्ध मे वह भी हार गया। भोंसले ने 1746 मे उड़ीसा पर फिर अधिकार किया और मीर हवीव को सूबेदार नियुक्त किया। मीर हवीव जव 1752 में मर गया तो भोसले ने उड़ीसा का प्रशासन स्वयं अपने हाथों में ले लिया।[1] जवकि अन्य दो प्रांतो मे मराठों की लूटमार चलती रही।

अलीवर्दीखां एक महान सैनिक व शासक था। पर उसे भी मराठा हथियारों को झेलना पडा और अगर वंगाल व बिहार अव भी उसके साथ थे तो भी वह अपने को मराठा चौथ से नही वचा सका जिसे उसे अन्य शुल्कों के अतिरिक्त देना पड़ता था।

"मराठा आक्रमण के दो राजनैतिक प्रभाव हुए। प्रथम, इन आक्रमणो ने अलीवर्दीखां को मराठो के साथ युद्ध मे व्यस्त रखा, उसके अधिकारियो को षड्यंत्र करने को उत्तेजित किया और वंगाल की सरकार को शक्तिहीन किया और इस तरह वंगाल मे अंग्रेजों के उत्थान को अवसर, समय और दिशा प्रदान की। दूसरे, इससे उड़ीसा मे एक दशक के लिए अव्यवस्था का वातावरण फैला रहा···असुरक्षा और चिंता की ऐसी स्थिति में लोग अपना-अपना काम कर पाने में भी परतंत्रता का अनुभव करते थे।"[2]

राजपूत नीति

मराठो की राजपूत नीति मे पेशवा बालाजी बाजीराव के काल मे कुछ परिवर्तन हुआ। इस तरह जहा उसके वंशज 'हिंदू पद पादशाही' के उद्देश्य को लेकर पूरे देश के हिंदुओं को मित्र वनाना चाहते थे, वहां नवीन पेशवा के काल मे यह उद्देश्य नगण्य होकर व्यक्तियो के साधारण स्वार्थो पर आकर अटक गया। यहा तक कि राजपूत भी उनसे दूर हो गये और पानीपत के तीसरे युद्ध मे मराठों को अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध अकेले ही सब कुछ करना पडा।

मराठो और राजपूतों के मध्य खुले भेदभाव की बात 1743 मे मराठो के राजपूत मित्र जयपुर के राजा जयसिंह की मृत्यु के समय देखने मे आई। उनका उत्तराधिकारी उनका सबसे बडा लड़का ईश्वरी सिंह हुआ। पर उसका विरोध उसके छोटे भाई माधवसिंह ने किया। माधवसिंह ने मेवाड शासक व अपने मामा जगतसिंह की सहायता अर्जित की और मराठों से भी सहायता मागी। मराठे

---

1. नादकर्णी : पूर्वोद्धृत, पृ० 234।
2. रे, बी० सी० : उड़ीसा अंडर मराठाज, 1751-1803, इलाहाबाद, 1960, पृ० 20-21।

उसकी सहायता के लिए तैयार हो गये थे पर उसके बड़े भाई से अधिक लाभ प्राप्त कर वे उसकी ओर हो गये। दोनों के बीच होने वाले संघर्ष में बड़े भाई की विजय हुई। पर छोटे भाई ने हिम्मत नही हारी। अपने मामा की सहायता के अतिरिक्त उसने बूदी के उम्मेदसिंह की सहायता भी प्राप्त की और मराठों में भी विभाजन करने मे वह सफल हो गया क्योंकि मल्हार राव होल्कर उसका पक्षधर हो गया और जयप्पा सिंधिया ईश्वरीसिंह के साथ बना रहा। 1747 मे राजमहल नामक स्थल पर होने वाली लडाई में वह पुन: पराजित हुआ।

माधवसिंह ने अब भी संघर्ष जारी रखा और अब उसने पेशवा से सम्पर्क स्थापित किया जिसने व्यक्तिगत तौर पर जयपुर पहुंचकर बड़े भाई को छोटे भाई के पक्ष में चार महाल का क्षेत्र छोडने के लिए मनाया। पर जैसे ही पेशवा पूना वापस लौटा ईश्वरी सिंह ने वादा अमान्य कर दिया जिसके फलस्वरूप मल्हार राव होल्कर को उन स्थानों पर अधिकार करके माधवसिंह को देने को बाध्य होना पडा। पर कठिनाई का अंत यही नही हुआ। होल्कर ने ईश्वरी सिंह पर कुछ कर भी लगाया जो वह नही दे सका जिसके फलस्वरूप 1750 मे मराठों ने कर प्राप्ति के लिए युद्ध छेड़ दिया। ईश्वरी सिंह के समक्ष भीषण स्थिति आ गई। वह न तो मराठो से लड सकता था और न धन अदा करने के लिए जनता को लूट सकता था। ऐसी स्थिति में विषपान कर मृत्यु की शरण मे जाना ही उसने उचित समझा।

ईश्वरी सिंह की मृत्यु के बाद जयपुर मे माधवसिंह को शक्ति प्राप्त हुई। पर अब तक वह मराठो के चरित्र से पूर्ण परिचय प्राप्त कर चुका था। उनकी मैत्री का भरोसा करने के स्थान पर उसने उनके विनाश की परिकल्पना कर बहाना बनाकर कुछ हजार मराठों को अपने नगर मे आमंत्रित कर उन्हें तलवार के घाट उतरवा दिया। इससे रुष्ट मराठो ने राजपूत क्षेत्र पर लगातार आक्रमण प्रारंभ कर दिये। पर जल्दी ही उत्तर मे मुगल वजीर सफदरजंग के निमंत्रण पर राजपूतो की क्षमायाचना और राजपूत शासक से कुछ हर्जाना ले करके चले गये। पर थोड़े ही दिन बाद वे जयपुर मे पुन: प्रकट हुए जिसके फलस्वरूप माधवसिंह को बाध्य होकर सहायतार्थ अवध के शुजाउद्दौला और अफगानिस्तान के अहमदशाह अब्दाली से संपर्क करना पडा। 1759 मे अब्दाली के भारत आक्रमण ने मराठों को जयपुर से वापस होने को बाध्य किया और बाद मे उन्हें पानीपत मे 1761 में उसके हाथो बर्बाद ही कर दिया।

मारवाड़

अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध मराठा सहायता के बदले सफदरजंग ने अजमेर पर उनके स्वत्व को स्वीकार कर लिया। पर इस समझौते को सम्राट

का अनुसमर्थन नही मिला जिसके कारण मारवाड़ शासन ने अजमेर पर मराठों का अधिकार नही माना। मराठों को मारवाड़ शासक अभयसिंह की मृत्यु पर अवसर मिला। यहां पर बख्तसिंह और शक्तिसिंह मे जब शक्ति-प्राप्ति का संघर्ष छिड़ा तो शक्तिसिंह ने अपने को कमजोर पाकर जयप्पा सिंधिया से सहायता मागी। जब सितंबर 1752 में सिंधिया तैयार होकर चला तभी बख्तसिंह की मृत्यु हो गई और उसका लडका विजयसिंह उत्तराधिकारी हुआ। मराठा नेता ने पूरे मारवाड में आतंक फैलाते हुए उसकी तलाश की। विजयसिंह ने मुगल सम्राट, रोहिल्लों और जयपुर के माधवसिंह से सहायता मांगी। माधवसिंह ने उसे सहायता दी और विजयसिंह ने मराठो का एक वर्ष तक मुकाबला किया जिसके बाद दोनों पक्षो में संधि-वार्ता आरंभ हो गई। सिंधिया के समक्ष एक राजपूत मिशन उपस्थित हुआ और संधि-वार्ता के दौरान जुलाई 1755 मे सिंधिया की हत्या कर दी गई। मिशन के सदस्यों के ऊपर संदेह करके सभी को मार डाला गया। विजयसिंह ने राजपूतों की अज्ञानता दर्शाते हुए विरोध किया और दोनों पक्षो मे पुनः संघर्ष प्रारंभ हो गया। फरवरी 1756 में जयप्पा सिंधिया के छोटे भाई दत्ताजी के प्रयास से संधि हो पायी और वे पूना लौट आये।

1756 की संधि की शर्त के अनुसार मारवाड नेता ने अजमेर पर मराठो का अधिकार मान लिया और हर्जाने के रूप मे 50 लाख रुपये देना स्वीकार किया। मारवाड़ का राज्य विजयसिंह और रामसिंह के बीच बाट दिया गया। विजयसिंह को मारवाड का आधा और जालौर एव शेष भाग रामसिंह को मिला।

रघुनाथराव और जाट

भरतपुर का जाट, सूरजमल उत्तरी भारत मे एक धनी राज्य का स्वामी था और रघुनाथ राव, जो राघोवा भी कहलाता था और पेशवा का भाई था, उसकी कीमत पर धनी बनाना चाहता था। सूरजमल ने ईश्वरीसिंह का पक्ष लेकर राजपूत राजनीति में भी रुचि ली थी जिससे मराठे उससे रुष्ट थे। आगरा तक बढा हुआ उसका प्रभाव भी आख मे गड़ता था। आखिर वह अवसर आ ही गया जब मराठे उसके विरुद्ध प्रयाण करें। मुगल वजीर सफदरजग ने जहा एक ओर जाट राजा से सम्राट के विरुद्ध सहायता मागी, वही मीर बख्शी इमादुल-मुल्क ने सम्राट के पक्ष मे इसलिए सहायता मागी कि सूरजमल का प्रभाव बढ़ न जाय।

जैसे ही राघोबा ने सूरजमल के विरुद्ध सेना भेजने की तैयारी की, सूरजमल ने मराठा आक्रमण से अपने क्षेत्र को बचाने के लिए उसे 40 लाख रुपये देने को तैयार हो गया। राघोबा इससे सतुष्ट न हुआ और उसने मल्हार राव होल्कर

को भेजकर जाट राजा को कुंभेर में घिरवा लिया। सूरजमल अब भी मराठों से मैत्री का बहाना बनाता रहा और इसी बीच उसने इस सम्बन्ध मे सम्राट मे संबंध स्थापित किया। सम्राट के जाट राजा से मिल जाने की सभावना को देखकर मराठों ने जाट नेता से इस शर्त पर संधि कर ली कि दस-दस लाख रुपये तीन बार में मिलाकर वह तीस लाख रुपये देगा।

अपनी नीति के कारण ही मराठो ने जाटो को भी अपने से दूर कर दिया। इतने पर भी जाट राजा ने पानीपत मे अहमदशाह के विरुद्ध भाऊ की सहायता को कहा। मराठा नेता के उद्धत व्यवहार के बावजूद वह उनका साथ देता रहा, पर फिर कदम पीछे खीच लिये। मराठों के पराजय और कुछ के अफगान हाथ से बच जाने पर जाट राजा ने अपने पास आने वालो की सहायता की।

कर्नाटक

महान मराठा सेनापति चिमनाजी के पुत्र सदाशिव राव भाऊ के नेतृत्व में मराठा सेना ने शिवाजी के एक वशज तजौर के राजा प्रतापसिंह के सहायतार्थ वहा के नवाब दोस्त अली के विरुद्ध कार्यवाही की और नवाब को युद्ध मे पराजित ही नही किया बल्कि मार डाला। इससे कर्नाटक में मराठो का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया गया। मराठो ने और आगे बढकर चादा साहब के अधिकार वाले क्षेत्र त्रिचनापल्ली को घेर लिया। चादा साहब सफदरअली का सबधी था जो अपने पिता दोस्त अली की मृत्यु के बाद कर्नाटक मे उत्तराधिकारी हुआ था। चादा को कैद कर पूना ले जाया गया और मराठो की ओर से त्रिचनापल्ली का सूबेदार मुरारी राव को बनाया गया। वैसे तो कर्नाटक पर मराठो का प्रत्यक्ष अधिकार तो न हुआ पर उनका प्रभाव तुगभद्रा और कृष्णा के बीच स्थापित हो गया।

1748 मे निजामुलमुल्क की मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी होने वाले हैदराबाद के सलावतजग के विरुद्ध भी मराठो ने अभियान छेडा। सलावतजंग के स्थान पर उन्होंने दिल्ली मे उपस्थित उसके बडे भाई गाजिउद्दीन को उस पद पर नियुक्त किया। पर उसे उसकी एक सौतेली मा ने विष देकर मार डाला और इसके फलस्वरूप सलाबत अपने पद पर बना रहा। निजाम से कुछ क्षेत्र छीनने के लिए मराठे उसके विरुद्ध आगे बढे लेकिन फ्रासीसी सेनापति बुसी के द्वारा प्रशिक्षित सेना द्वारा वे पराजित कर दिये गये। आगे चलकर जब तृतीय कर्नाटक युद्ध मे अग्रेजो से लडने के लिए बुसी को वापस बुला लिया गया तो मराठो को अवसर मिला। उन्होंने भाऊ के नेतृत्व मे 1758 मे उदगिर नामक स्थान पर सलावतजग को बुरी तरह पराजित किया।

इस पराजय के फलस्वरूप सलाबतजग ने मराठो को असीरगढ, बीजापुर, अहमदनगर, दौलतावाद और बुरहानपुर के किले प्रदान किये तथा साथ ही

वार्षिक कर भी देना स्वीकार किया। इससे सदाशिवराव भाऊ की प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि हुई जिसे पेशवा ने अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध युद्ध करने के लिए नामित करके भेजा। साथ ही दक्षिणी भारत में मराठों की शक्ति सगठित हो जाने के बाद अब वे उत्तरी भारत में अपना मन्तव्य पूरा करने को स्वतत्र थे।

मुगलों से सम्बन्ध

1748 में निजामुलमुल्क की मृत्यु के बाद जब नासिरजंग हैदराबाद मे उसका उत्तराधिकारी हुआ तो दिल्ली मे जावेद खां के नेतृत्व मे एक विरोधी दल ने उसे वजीर सफदरजंग के विरुद्ध लडने हेतु आमंत्रित किया। इन परिस्थितियो मे वजीर ने पेशवा से संपर्क स्थापित किया जिसके निर्देश पर दिल्ली जाने वाले नासिर का रास्ता सिंधिया और होल्कर द्वारा रोक लिया गया और इस तरह सफदरजंग की प्रतिष्ठा बची।

1751 मे मराठो और मुगलो के बीच दुबारा सपर्क हुआ जब दोआब मे अफगानो और रोहिल्लो ने सम्राट के विरुद्ध विद्रोह किया और एक युद्ध में सफदरजंग को पराजित किया। रोहिल्लो ने अपनी सहायता के लिए आश्वस्त करते हुए अहमदशाह अब्दाली को भारत पर आक्रमणार्थ आमत्रित किया। वजीर ने मराठों से पुनः सपर्क किया और उनकी सहायता से अफगानो को पराजित किया।

जब अहमदशाह ने पंजाब पर आक्रमण कर वहां के सूबेदार मुइनुलमुल्क को पराजित कर दिल्ली की ओर बढ़ते हुए सम्राट से लाहौर और मुल्तान देने की माग की, उसी समय मराठो ने 1752 में सम्राट से एक सधि की जिसके अंतर्गत वे उसे आंतरिक विद्रोह और बाह्य आक्रमण के विरुद्ध सहायता देने को राजी हुए। इसके बदले पेशवा को अजमेर और आगरा की सूबेदारी तथा लाहौर, मुल्तान, सिंध, हिसार व मुरादाबाद के कुछ जिलो से चौथ वसूली का अधिकार प्राप्त हुआ। वैसे तो यह समझौता सम्राट द्वारा स्वीकृत न हुआ क्योंकि *उसने लाहौर और मुल्तान अहमदशाह को दे दिया पर फिर भी इससे उपरोक्त* स्थानो पर मराठो का अधिकार स्थापित हो गया और इससे उन्हें राजपूतो और उन लोगों के विरुद्ध सघर्ष करना पडा जिनका उस स्थान पर सचमुच अधिकार था।

लाहौर और मुल्तान प्रांत प्राप्ति और अहमदशाह अब्दाली के लौटने के बाद मराठों ने अपनी दिल्ली उपस्थिति का लाभ उठाते हुए सम्राट को नासिरजग के स्थान पर उसके बड़े भाई गाजिउद्दीन को हैदराबाद का वाइसराय बनाने को राजी किया। गाजिउद्दीन ने इसके बदले उन्हे 30 लाख रुपये देने को कहा। पर यहां पुनः मराठे कोई लाभ न उठा सके क्योंकि जैसा हमने देखा है गाजिउद्दीन को

कुछ काल बाद ही उसकी एक सौतेली मा द्वारा विष देकर मार डाला गया और नासिरजंग हैदराबाद का निजाम बना रहा।

अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण और पानीपत का तृतीय युद्ध (1761)

पर बालाजी बाजीराव कालीन सबसे महत्त्वपूर्ण घटना पानीपत का तृतीय युद्ध था। जिसने उत्तर की ओर मराठा महत्त्वाकाक्षा को भयानक धक्का दिया और ब्रिटिश शक्ति को भारत में विकासकरने मे सहयोग प्रदान किया। यह घटना 1761 मे युद्ध के रूप में अफगान शासक अहमदशाह अब्दाली और मराठों के बीच घटी जिसमे मराठे पराजित हुए।

सही घटना के विवरण प्रस्तुत करने और उन तात्कालिक परिस्थितियो का विवेचन करने से पूर्व जिसके कारण यह घटित हुई, यह अनुचित न होगा कि हम अब्दाली नेता के प्रारंभिक जीवन तथा उसके भारत पर प्रारंभिक आक्रमण का विवरण दे दे। 1724 मे उत्पन्न, अफगानिस्तान के सदोजाई कबीले से वह सबद्ध था जिसके सदस्य सामान्य रूप से अब्दाली या अली के सेवक कहलाते थे। प्रारभ में ये शिया मत के थे पर बाद मे इन्हें सुन्नी मत स्वीकार करना पड़ा। अहमदशाह जमानशाह का पुत्र था और जब उसका बड़ा भाई, जो नादिरशाह की सेना मे था, महत्त्वपूर्ण स्थान पर पहुंच गया तो उसने अपने छोटे भाई को भी अच्छी जगह दिलवा दी और अहमद, जिसमें वीरता के व्यक्तिगत गुण थे, नादिरशाह का व्यक्तिगत दास हो गया। कुछ समय बाद अहमदशाह एक हजार सैनिको का नेता हो गया और उसकी विश्वासपात्रता और सेवाओ के कारण जब नादिरशाह भारत पर आक्रमण किया तो उसने उसे अपने व्यक्तिगत 6000 की सेना का नायक बना दिया। अहमद के विषय में दिल्ली के एक मुगल सामत आसफजाह से मिलने की कहानी का विवरण मिलता है। यह व्यक्ति लोगों का चेहरा देखकर भाग्य भांप लेता था और उसने भविष्यवाणी की थी कि अहमद दुर्रानी एक दिन सम्राट होगा।[1] 19 जून 1747 में जब नादिरशाह की हत्या हो गई उस समय अवसर का लाभ उठाकर अफगानिस्तान के स्वतत्र राज्य का प्रथम राजा होकर उसने भविष्यवाणी सच सिद्ध की।

अहमदशाह के उत्थान का प्रारंभ ही था इसलिए उसे अफगानो का ध्यान कहीं और बटाना था अन्यथा वे उसी के विरुद्ध खडे हो जाते। अफगान दूर-दराज के क्षेत्रो मे साहसिक कृत्यो मे प्रसन्नता अनुभव करते थे और अहमद की वृहद सेना का व्यय खजाने पर बडा बोझ था जिसके कारण भारतीय चादी और सोने ने उसे

1; देखें छाबड़ा, जी० एस० : स्टडीज इन हिस्ट्री ऑफ पजाब, 1960, पृ० 377।

अपनी ओर आकर्षित कर आर्थिक समस्या समाधान का पथ प्रशस्त किया। जब अहमदशाह भारत पर आक्रमण करना चाहता था उसे लाहौर के सूबेदार शाहनवाज खा से निमंत्रण मिला जिसने पजाब पर अधिकार कर लिया था पर जिसे दिल्ली के वजीर कमरुद्दीन ने नापसन्द करते हुए पदमुक्त करने की तैयारी प्रारभ कर दी थी। इन कारणों से जनवरी 1748 में उसने भारत पर प्रथम आक्रमण किया। सरहिन्द से उत्तर-पश्चिम 10 मील दूर मनुपुर के युद्ध में, वजीर एक तोप के गोले से मारा गया, पर उसके लड़के मुइनुलमुल्क ने दुर्रानियों को पंजाब से बाहर निकाल दिया और इसलिए पारितोषिक के तौर पर इस प्रात की सूबेदारी पर उसे नियुक्त किया गया।

दुर्रानी ने दूसरा आक्रमण 1750 के प्रारंभ मे किया। पर अपनी मांग के अनुसार कुछ क्षेत्र पा जाने के कारण वह फ्रंटियर से ही वापस लौट गया। उसने तीसरा आक्रमण 1751 में किया जब वह लाहौर में प्रकट हुआ और मुइनुलमुल्क को पराजित कर पकड़ लिया। पर उसकी वीरता देखकर उसे क्षमा कर अपनी ओर से उसे लाहौर का सूबेदार नियुक्त किया गया। उसने अपनी सेना कश्मीर के विरुद्ध भी भेजी, घाटी को जीता और वापस हो गया।

अब्दाली ने चौथा आक्रमण 1756 में किया जब मुइनुलमुल्क की मृत्यु के बाद अपने पति का उत्तराधिकारिणी होने वाली मुगलानी बेगम ने उसे शक्ति प्राप्ति करने वाले अपने विरोधियो से बचाने के लिए आमत्रित किया। उसने उसे लिखा : "करोड़ो का नकदी और सोना मेरे दिवंगत ससुर के घर में गड़ा है, साथ ही बहुत-सी चादी और सोना छतों के अन्दर मेरी जानकारी मे है। सम्राट आलमगीर द्वितीय, उसके वजीरो और सामंतों के बीच गभीर मतभेद है और अगर आप इस समय भारत पर आक्रमण करें तो आपको पूरे भारत पर विजय प्राप्त करने तथा इस करोडो के धन को बिना व्यय प्राप्त करने मे सफलता मिलेगी।"[1] अब्दाली ने बिना विरोध दिल्ली की ओर प्रस्थान किया, मुगलानी के निर्देशानुसार हर घर लूटा; मथुरा और वृन्दावन को लूटा जहां सात दिनो तक रुधिरपात के कारण तथा मृत्यु प्राप्त लोगों के शरीर एकत्रित होने के कारण एक समकालीन लेखक के अनुसार यमुना नदी का पानी लाल हो गया, और सत्रह वर्षीय मुहम्मदशाह की पुत्री हजरत बेगम से जबरदस्ती विवाह करके तथा इमादुलमुल्क को दिल्ली का वजीर नियुक्त करके 28,000 ऊंटों, हाथियों, खच्चरो, बैलों व गाड़ियों पर लूट का माल लादकर वह वापस हो गया। उसके 80 हजार घुडसवार व पैदल सभी सैनिको के पास लूट की भरपूर सामग्री थी। "सामान ढोने के उद्देश्य से अफगान राजा ने कोई घोड़ा और ऊंट किसी घर में नही छोड़ा, यहा तक कि एक

1. अली-उद-दीन : इबरतनामा (1854), पृ० 1146।

गधा भी नही।"[1]

दुर्रानी ने अपने ग्यारह वर्षीय लडके तैमूर को पीछे लाहौर का सूबेदार बना कर छोड़ दिया जिसका सहायक दुर्रानी सेनापति जहान खां बनाया गया था। अदीना बेग को जालंधर दोआब का फौजदार नियुक्त किया गया।

तत्कालीन परिस्थितियां

तृतीय पानीपत के युद्ध की तत्कालीन परिस्थितियां अधोलिखित थी। जैसा हमने पहले ही देखा है, मराठों ने 1752 में मुगलों से एक समझौता किया था जिसके अन्तर्गत उन्होंने सम्राट को रोहिल्लो के आंतरिक विद्रोह आदि तथा बाह्य आक्रमण के अवसर पर सहायता का वचन दिया था। इसके बदले मे उन्हें पंजाब, सिंध तथा दोआब पर चौथ का अधिकार और पेशवा को आगरा व अजमेर की सूबेदारी प्रदान की गई। होल्कर एवं सिंधिया जिन्होंने इस संधि पत्र पर हस्ताक्षर किया था, इसके बाद दक्षिण पेशवा के पास चले गये और उसका भाई रघुनाथ राव अक्टूबर 1756 में मराठा उत्तरदायित्व के निर्वाह हेतु दिल्ली की ओर रवाना हुआ। इसी बीच रोहिल्लो का नेता नजीबुद्दौला ने अहमदशाह से सहायता की याचना की। अब्दाली ने अपना चौथा आक्रमण किया, दिल्ली, मथुरा व वृन्दावन को लूटा और अपने लड़के तैमूर को पंजाब का सूबेदार और अदीना बेग को जालंधर व दोआब का नेतृत्व सौंपकर वापस चला गया। रघुनाथ राव या राघोवा अभी तक दिल्ली नही पहुंचा था अतः कोई सहायता भी नही कर सका। दिल्ली पहुंचने पर उसने नगर पर नियन्त्रण किया जिससे कुछ मुगल सामंत असन्तुष्ट हो गये क्योंकि वे अहमदशाह के भारत के आक्रमण मे हित समझते थे। नजीबुद्दौला की इस घोषणा ने, कि मराठों के विरुद्ध संघर्ष इस्लाम की रक्षा के हित मे है, अवध के नवाब शुजाउद्दौला को भी उसका पक्षधर बना दिया और उसने भी अब्दाली नेता को आमन्त्रित किया।

इसी बीच पंजाब की घटनाओं ने भी दुर्रानी को पांचवा आक्रमण करने के लिए बाध्य किया। अदीना बेग ने तैमूर के अधिकार के विरुद्ध विद्रोह किया और अफगानों को पंजाब से हटाने के लिए मराठों को आमंत्रित किया। तैमूर ने पहले भी सिखों के हाथ पर्याप्त हानि उठाई थी। इसलिए जब राघोवा ने पंजाब में प्रवेश किया तो अफगान वहां से भाग खड़े हुए। मराठों ने अदीना बेग को लाहौर का तथा अब्दुससमद खां को सरहिन्द का सूबेदार नियुक्त किया। मराठों के हथियारों की मार अटक तक पहुंच गई और राघोबा ने तो अफगानिस्तान तक

---

1. गुप्ता, एच०आर० : हिस्ट्री आफ द सिक्ख, भाग 1, पृ० 102-103 (फुट नोट्स)।

मराठा साम्राज्य
अटक
लाहौर
मुल्तान
पानीपत
दिल्ली
मथुरा
नेपाल
अवध
लखनऊ
भरतपुर
जोधपुर
जयपुर
आगरा
सिंध
अजमेर
ग्वालियर
पटना
असम
उदयपुर
कोटा
इलाहाबाद
बनारस
होलकर
मुर्शिदाबाद
अहमदाबाद
बड़ौदा
नर्मदा
कलकत्ता
भोंसले
उड़ीसा
ताप्ती
नागपुर
कटक
पूना
निजाम
सतारा
हैदराबाद
गोवा
बंगाल की खाडी
अरब सागर
मद्रास
कोचीन
त्रावणकोर
लंका

जीतने की योजना बनाई। वैसे भाग्य से उसने इस योजना को कार्यरूप प्रदान नही किया।

अदीना बेग की मृत्यु के तुरत बाद मराठों ने सबजी को पंजाब का सूबेदार बनाया। अहमदशाह इस समय फारसी लोगो के विरुद्ध लड़ने मे व्यस्त था। इस लिए उसने जहान खां को पजाब पर एक बार पुन: अधिकार करने के लिए भेजा। पर वह सबजी और सिखों के संयुक्त प्रयास से पराजित कर दिया गया।

मराठे पंजाब में लगभग दो वर्ष तक रहे पर उन्होने उस क्षेत्र के कार्यक्षम्य प्रशासन का कोई प्रयास नही किया। पेशवा दक्षिण की राजनीति मे इतना ग्रस्त था कि उसे व्यक्तिगत रूप से उत्तर आने का अवसर तक न था। इन परिस्थितियो मे जहां पंजाब पर अधिकार बनाये रखने तथा दुर्रानी से रक्षा के लिए 1 लाख सेना की आवश्यकता थी उन्होंने वहां मात्र 15 हजार सैनिक और वह भी पाच-पांच हजार के तीन भागो मे विभाजित कर रख छोड़ी थी। एक सेना चलती-फिरती सबजी की अध्यक्षता मे, दूसरी लाहौर में तुकोजी होल्कर के नेतृत्व मे तथा तीसरी मुल्तान मे बापूजी त्रिम्बक के नेतृत्व में थी। पर इनमे से कोई भी अहमद-शाह-के स्तर का सेनापति नही था।

सिखो व मराठों के हाथ पराजय ने जहान खा के इस निश्चय को और दृढ़ कर दिया कि पंजाब अपने नेता के लड़के के लिए वापस लिया जाय। इसीलिए जल्दी ही वह पहले से भी बड़ी एक सेना को लेकर आगे बढ़ा। पजाब मे तितर-बितर *सैनिकों के कारण सबजी के लिए यह सकटकाल था और वह तैयार भी न* था। वह बटाला में था और बिना एक गोला दागे जहान खा वजीराबाद पहुच गया। मराठे उसे उसके भाग्य-भरोसे छोड़कर यहां से भाग खड़े हुए।

1759 में एक बड़ी सेना का नेतृत्व करते हुए अहमदशाह दुर्रानी लाहौर पहुंचा। सभी ने अप्रतिष्ठापूर्ण शीघ्रता मे पंजाब छोड़ दिया, सिख आगे आये और पंजाब से गुजरते हुए दुर्रानी को लगभग अपने दो हजार सैनिकों से हाथ धोना पड़ा।

अब्दाली ने जरची करीमदाद खां को लाहौर का अधिकारी नियुक्त किया तथा कांगड़ा के राजा घुमण्डचंद को जालंधर दोआब का सूबेदार नियुक्त कर उसने सतलज पार किया। तरावड़ी मे मराठो ने उसे रोकने की चेष्टा की पर 24 दिसबर की लड़ाई में वे बुरी तरह से हारे, उनके 400 सैनिक मारे गये तथा वे युद्ध का मैदान छोडकर भाग खड़े हुए। अब्दाली दिल्ली के निकट पहुंचा जहां कुछ रोहिल्ले उससे आ मिले। वह मराठो के विरुद्ध आगे बढ़ता रहा। दत्ताजी सिंधिया उससे यमुना नदी के तट पर बेरारी घाट पर मिला, पर वह मार डाला गया और उसके सैनिक भाग खड़े हुए। मल्हार राव होल्कर उससे 4 मार्च 1760 को मिला पर वह भी पराजित हो *गया। अब्दाली ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और अवध*

की सीमा पर अनूपशहर तक बढ आया जहां शुजाउद्दौला अपने 40 हजार पैंदल और घुडसवार सैंनिको सहित उससे मिल गया। यहा पर उसने पूना से मराठा सेना के आने की प्रतीक्षा की।

युद्ध

बार-बार मराठा दुर्घटना के समाचार पूना पहुंच रहे थे जिसके कारण पेशवा ने मराठों की एक बहुत बड़ी सेना तैयार की और उसे 30 वर्षीय युवक सदाशिव राव भाऊ के नेतृत्व में रवाना किया। जिससे उत्तर मे मराठा शक्ति बनी रह सके। भाऊ ने दिल्ली पर 22 जुलाई को आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर लिया। प्रत्येक तर्कजनित सधि के प्रस्तावो को ठुकराते हुए और युवावस्था के नशे मे वह उत्तर की ओर दुर्रानी से भिड़ने को आगे बढा। पर दुर्रानी ने भाऊ के यमुना के घाट की उचित सुरक्षा न करने की कमजोरी का लाभ उठाकर नदी पार की और पानीपत पहुंच गया। भाऊ को भी अपना कदम पीछे खीचना पड़ा और उस स्थान की ओर आगे बढना पडा।

पानीपत मे दोनो सेनाएं एक-दूसरे के आमने-सामने पडाव डाले रही। लतीफ के अनुसार भाऊ की "सेना की संख्या 3 लाख थी जिसमे 55 हजार वेतनभोगी घुडसवार, लूटमार करने वाले घुडसवार सैंनिक, पैंदल तथा सहायक राज्यों की सेना सम्मिलित थी। उनके पास 300 तोपें भी थी। अब्दाली के सैंनिकों की संख्या 40 हजार अफगान और फारसी, 13 हजार भारतीय घुड़सवार और 38 हजार भारतीय पैंदल थे। उसके पास 70 तोपें थी जो भारतीय मित्रों से प्राप्त की गई थी।"[1]

यहां पर दोनो पक्षों ने एक-दूसरे के मालपूर्ति के साधन को काटने का प्रयास किया। लगभग 12 हजार मराठे गोविन्दराव बुंदेला के नेतृत्व मे क्षेत्र मे फैल गये और हर संभव अफगान पूर्ति के रास्ते को काट दिया। पूर्ति के अभाव ने अफगानो को कठिनाई मे डालना जैसे ही प्रारंभ किया, अतय खां पोपलजी ने गोविन्दराव के खेमे पर एकाएक आक्रमण करके उसे नष्ट कर दिया। इस तरह अफगानो ने अपने वस्तुपूर्ति साधन की पंक्ति को टूटने न दिया बल्कि अब उसी के अभाव में मराठों की कठिनाइया बढ गईं। लगभग 3 माह तक दोनो सेनाए एक-दूसरे के आमने-सामने पडी रही, जब मराठों के भूखों मरने की स्थिति पैंदा हो गई। "जानवरों की लाशो से घिरे, मृत्यु प्राप्त पशु भूखे साथियो की दर्द भरी भटकती आवाजों ने वातावरण को अत्यधिक कष्टसाध्य, असहनीय बना दिया था···मराठों ने अत्यधिक कष्ट से ऊबकर भाऊ के खेमे को घेरकर यह निवेदन

1. लतीफ : हिस्ट्री आफ द पंजाब, पृ० 236; छाबड़ा : पूर्वोद्धृत, पृ० 430।

किया कि वह जल्दी धावा बोलकर उनके कष्ट का अंत करे।"[1]

भाऊ अब अपने खेमे से निकलकर अफगानों पर आक्रमण करने को बाध्य हो गया। 'हर हर जय महादेव' का नारा लगाते हुए मराठे अफगानों पर टूट पड़े। प्रारंभ में उनकी स्थिति ठीक जान पडी पर अंततः वे पराजित हो गये। भाऊ विश्वासराव, जो पेशवा का सबसे बड़ा पुत्र था, और बहुत से प्रमुख सैनिक नेता मारे गये। लतीफ के अनुसार लगभग 2 लाख मराठे मारे गये, 22 हजार कैद किये गये और 50 हजार घोड़े व पर्याप्त धन अफगानों के हाथ लगा।

मराठा पराजय के कारण

"यह महान युद्ध, जिससे हत्याकाड के मामले में कम ही युद्ध आगे बढ़ पाये होंगे, विनाश का संदेश लेकर आया। इस घटना ने मराठों के नेतृत्व में अति उत्साही राष्ट्र का भाग्य ही मुहरबंद कर दिया।"[2] मराठा पतन के लिए उत्तरदायी कई कारण थे। प्रथम महत्त्वपूर्ण कारण जिसने मराठो का पतन किया वह था—इसका युवा एवं गर्म खून वाला नेतृत्व। अपने उत्कृष्ट नेतृत्व प्रतिभा के बावजूद वह मूल रूप से एक ऐसा युवा व्यक्ति था जो शीघ्र निर्णय लेने और हार मानने की कल्पना ही नही करता था। दिल्ली मे अपनी प्रथम सफलता के बाद वह उत्साह से पागल हो गया और दुर्रानी को पराजित करने तथा संपूर्ण भारत पर अधिकार करने की उसने अकल्पनीय योजनाएं बना डाली। किसी भी संधि की शर्त ने उसकी बुद्धि और महत्त्वाकांक्षा को संतुष्ट नही किया। अनुभवी बड़ों का मत भी वह नीची निगाह से देखने लगा। उसने उनकी बुद्धि व अनुभव पर भरोसा नहीं किया और अपने अकेले की ही बात मानी जिसके फलस्वरूप सभी चीजें उसके अहम् मे केन्द्रित हो गईं। साथ ही वह उत्तरी भारत की जलवायु से भी अनभिज्ञ था। उसे भारत के भूगोल की भी सही जानकारी न थी और इस क्षेत्र के लोगों की आदतों व जीवन के विषय मे भी उसे अज्ञानता थी। जब वह दिल्ली छोड़कर दुर्रानी से मिलने चला तो उसकी इस भूल ने अंततः मराठा भाग्य को मुहरबंद कर दिया। जमुना नदी के घाट की सुरक्षा हेतु कुछ नही किया गया और जैसे ही भाऊ उत्तर की ओर बढ़ा दुर्रानी ने धीरे से नदी पार की और पानीपत मे पड़ाव डालकर जम गया।

इसके अतिरिक्त भाऊ की इतनी बडी सेना मे गोविन्द राव के नेतृत्व मे केवल 10 हजार मराठों को, वस्तुएं उपलब्ध कराने और शत्रु के पूर्ति के पथ में बाधा पैदा करने के लिए नियुक्त किया गया। और वह भी तब जब पूरा युद्ध

1. लतीफ : हिस्ट्री आफ द पजाब, पृ० 267; छाबड़ा : पूर्वोद्धृत, पृ० 430।
2. वही, पृ० 238।

योजना पर ही निर्भर करता और केन्द्रित था। भाऊ ने गोविन्द राव के लिए सकट काल में सहायता जुटाने का भी प्रबंध नही किया। उसकी बेकार जासूस व्यवस्था ने भी उसे कठिनाई मे डाला और एक दिन प्रातः काल गोविन्द राव पर आक्रमण कर बर्बाद कर डाला गया और इस तरह मराठों की पूर्ति पंक्ति काटकर उन्हें नैराश्यपूर्ण स्थिति की ओर ढकेल दिया गया।

युद्ध स्थल के मध्य जब पेशवा के सबसे बड़े पुत्र विश्वास राव की मृत्यु हो गई, भाऊ ने अपने हाथी से उतरकर अपने भतीजे के मृत शरीर पर जाकर दुःख व्यक्त किया। तुलनात्मक दृष्टि से एक तुच्छ हानि को लेकर अनावश्यक विह्वलता व्यक्त कर उसने अच्छे सेनापति के गुण का परिचय नही दिया क्योंकि इससे उसकी सेना को उसके न दिखाई पड़ने पर यह संदेह हो गया कि वह भी मर गया है जिससे सेना में सनसनी फैल गई। हाथी से एक बार उतर जाने पर वह सेना की सामन्य भीड़ में खो गया जो उसकी सेना के नैतिकबल के लिए अनर्थ-कारी हो गया।

और फिर मल्हार राव होल्कर, दामाजी गायकवाड़ एव जनकोजी सिंधिया प्रत्येक एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्यालू थे और षड़यंत्र में लगे हुये थे जिससे स्पष्ट है कि भाऊ के सहायकों में एकता नही थी। इसी कारण जैसे ही भाऊ हाथी से उतरा, होल्कर अपनी सेना सहित युद्ध मैदान से भाग खड़ा हुआ।

पूना के गृह अधिकारी भी उचित तर्क-संगत योजना के लाभों व समर्थन के प्रति विस्मरणशील लगते थे। भाऊ को एक दिन की सूचना पर तैयार होना पड़ा और इसपर भी उसे अपने साथ एक बड़ा वजनी तोपखाना, बहुत-सा सामान तथा अधिकारियो के परिवार को ले जाना था जैसे कि वह एक पिकनिक पर जा रहा हो। नावों की कोई व्यवस्था न की गई और नही सर्वेक्षण की ही। भाऊ आगे बढ़ा और जब वह चढ़ी हुई जमुना के पास पहुचा तब नावो के एकत्र करने पर विचार किया गया और दलों को इनकी तलाश के लिए भेजा गया। इस तरह पूरा जून का महीना बर्बाद कर दिया गया जो देश में गर्म मौसम होने के कारण पहाड़ी क्षेत्र से आने वाले अफगानों के विरुद्ध बड़ी सफलता से प्रयोग किया जा सकता था। दिल्ली से भाऊ की पेशवा से भोजन सामग्री प्राप्ति हेतु दयनीय अपीलें किसी काम न आईं। दिल्ली पहले से ही उसकी मागें पूरी करने में असमर्थ था। पेशवा ऐसी स्थिति से निबटने योग्य न था।

और फिर सिखों से सहायता लेने का प्रयास भी नही किया गया और न ही उत्तरी भारत के किसी हिन्द नेता से ही मराठों ने सहायता लेने की स्थिति पैदा की। बल्कि हुआ यह कि गगा व दोआब के हिन्दू जमीदार व नेता अपने क्षेत्र मे प्रविष्ट होने वाले मराठो के विरुद्ध उठ खड़े हुए। और इसके लिये मराठों की अपने विरोधियों की लूटने-खसोटने की उग्रतर विशेपता, जिसमें जाति व विश्वास

का कोई स्थान न रह गया था, भी बहुत कुछ उत्तरदायी थी। उत्तरी भारत के हिन्दुओं ने, पहले ही कई अवसरों पर मराठों का अपहरण और उतावलापन देखा था।

दूसरी ओर मराठों के विरोधी भयानक अफगान थे जो इतने दूर-दराज के अपने देश से यहां आये थे, जिनके समक्ष जीतने के अतिक्ति कोई विकल्प नहीं था। साथ में पानीपत में मराठों के प्रारंभिक आक्रमण के अवसर पर जब अव्यवस्था में अफगान भागने लगे तो दुर्रानी के वजीर ने उन्हें पुकारकर एकत्र किया और संबोधित किया : "हमारे देश बहुत दूर हैं, मेरे दोस्त, तुम कहां भाग रहे हो ?"[1]

और फिर अहमदशाह स्वयं एक अनुभवी सेनापति था। वह योजना बनाना और अपने शत्रु की कमजोरी का लाभ उठाना जानता था। जहां मराठे अपने देश के लोगों व स्वधर्मियों की ही सहायता नहीं प्राप्त कर सके, आक्रमणकारी दुर्रानी ने सरलता से शक्तिशाली मुस्लिम सामंत शुजाउदौला जैसे लोगों को अपने पक्ष में करने में सफल हो गया।

महत्त्व

फलस्वरूप पानीपत में मराठों की पराजय भारतीय इतिहास के भविष्य की धारा पर एक हिंसात्मक परिवर्तन लाने को बाध्य थी। वैसे तो पानीपत मे विजय के बाद पूरा देश विजेता दुर्रानी की दया पर आश्रित हो गया। पर उसके सैनिकों ने घर जाने के लिए विद्रोह किया और अपने भारतीय मित्रों मे विश्वास न रखने के कारण दुर्रानी को भी इस देश को बिना अपनी सफलता के फल चखे वापस हो जाना पड़ा।

दुर्रानी की वापसी के बाद नियंत्रणार्थ यहां कोई मजबूत शक्ति न रही। दुर्रानी तथा मराठो के चले जाने के बाद यहां एक रिक्तता आ गई। लड़खड़ाते मुगल साम्राज्य को धक्का लगा और 11 वर्ष तक मुगल सम्राट एक भगोड़े का जीवन जीता अपने रक्षकों की दया का पात्र बना रहा। वह अवध में एक शरणार्थी था, जब 1765 में उससे क्लाइव ने बगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी के अधिकार प्राप्त किये और उसे अपनी सुरक्षा मे ले लिया। जब तक कि मराठों ने उसे पुनः सहायता नही की और उसे अपनी सुरक्षा मे नही ले लिया। वह 1771 से पूर्व दिल्ली वापस नही जा सका।

मराठे धीरे-धीरे अपना प्रभाव बढ़ा रहे थे और आशा करते थे कि शीघ्र ही पूरा भारत उनके प्रभाव में आ जायेगा और वे एक राष्ट्रीय मराठा साम्राज्य की स्थापना करेंगे। पर ऐसा होना न था। मराठों की विशाल सेना पूरी तरह

1. सतीफ : पूर्वोद्धृत, पृ॰ 237।

बर्बाद हो चुकी थी। उनमें से कुछ हजार ही बचे थे जिन्होंने बचकर रास्ते का कष्ट भोगते हुए लंबी यात्रा के बाद अपना घर पुनः देखा।

मराठों के प्रमुख नेताओं ने पानीपत में युद्ध करते अपनी आहुति दे दी या इसी पराजय के धक्के से वे जाते रहे। इसमें बदनाम मराठा नेता रघुनाथ राव को यह अवसर मिला कि वह अपना प्रभाव विकसित करे। वह यही आदमी था जिसने मराठा स्वतंत्रता ब्रिटिश हाथों बेंच दी और ब्रिटिश लोगों के लिए विस्तार का पथ प्रशस्त कर दिया।

पानीपत में जो धक्का मराठों को लगा उससे उबरने में उन्हें एक दशक लगा। तब वे दिल्ली पर पुनः अधिकार कर पाये। पर इसी बीच बहुत कुछ घट चुका था। उनकी पराजय ने ही ब्रिटिश एकाधिपत्य को, बंगाल, बिहार और उड़ीसा पर 1765 की इलाहाबाद की संधि के अनुसार फैला दिया। अवध उनकी दया का पात्र हो गया और अब वे दिल्ली पर अधिकार की योजनाएं बनाने लगे।

युद्ध का एक अन्य परिणाम यह हुआ कि पंजाब से मराठे नेस्तनाबूद हो गये। इससे सिखों को पूरे प्रांत पर अधिकार जमाने का अवसर मिला। उनकी राखी प्रथा ने 12 विभिन्न क्षेत्रों के निर्माण में सहायता की जिनमें से एक ने शेष सभी पर राजस्व के आधार पर शासन शुरू कर दिया।

सिखों ने अपनी शक्ति विकसित करनी जारी रखी और वे अंततः पंचनद क्षेत्र की भूमि पर राज्य स्थापित करने में सफल हुए। अंग्रेज अपनी शक्ति बढ़ाते रहे और अंततः भारत में साम्राज्य स्थापित करने में सफल हो गये। मराठा शक्ति का भारत से पराभव हो गया और पतन को प्राप्त होकर यह राष्ट्रीय शक्ति से सिमट कर छोटे-छोटे स्थानीय क्षेत्रों में बट गये। इन्हीं में से एक ने बाद में दिल्ली पर अधिकार कर लिया और आगे चलकर दिल्ली पर ब्रिटिशों का अधिकार हो गया।

24 जनवरी 1761 को पेशवा बालाजी बाजीराव को भिलसा में मराठों के पानीपत में पराजय का समाचार प्राप्त हुआ। उस समय वह कुछ सेना ले भाऊ की सहायता के लिए जा रहा था। वह कुछ आगे बढ़ा और उसे पक्का समाचार मिला कि अब सब कुछ समाप्त हो चुका है और अब इन सैनिकों की किसी को आवश्यकता नहीं है। वह पूना लौट पड़ा और 23 जन 1761 को मराठों की हानि पर पछताते हुए मर गया। कुछ लोगों का कहना है कि पानीपत के धक्के ने उसकी जान ले ली।

बालाजी बाजीराव की सफलताएं महान थीं। उसी के काल में पेशवा का पद वैधानिक व पैतृक हुआ। "पेशवा के ऊपर कभी-कभी यह आरोप लगाया जाता है कि उसने शिवाजी महान के वंशजों को पद से हटाया, पर यह स्वीकार

किया जाना चाहिए कि उसने मुकुट को नाली से निकाला, न कि किसी के माथे से प्राप्त किया।"[1]

इसी के काल में मराठों ने राजपूतों, जाटों तथा मुगलों पर अपना स्वामित्व जताया। उसकी सेना बंगाल, बिहार और उड़ीसा तक पहुच गई और उसकी शक्ति दक्षिण में सगठित हो गई। पर इन सारी सफलताओ में ही मराठों के पतन के बीज दबे पड़े थे। इनमे से बहुतों का निर्माण पेशवा ने व मराठा सेनापतियों ने किया था और जैसे-जैसे यह प्रभाव दूर-दूर तक फैलता गया, मराठा अधिकार का केन्द्र-स्थल कमजोर होता गया।

वैसे तो पानीपत के विनाश ने मराठा भाग्य के सूर्य को एक दसक से अधिक तक अंधेरे मे रखने में समर्थता न प्राप्त की, पर पेशवा के हाथ से जो पहल शक्ति निकली वह पुन: वापस न आ पाई। पेशवा को दक्षिण में अपने को अत्यधिक व्यस्त रखने के लिए कभी क्षमा नही किया जा सकता। अगर उसने उत्तर में व्यक्तिगत रुचि ली होती और अपने सेनापतियों को राजपूत एवं सिख जैसे हिंदू नेताओ से दूर बने रहने की आज्ञा न दी होती तो मराठों को भारत में 'हिंदू पद पादशाही' स्थापित करने में सफलता मिल जाती जो अब मात्र एक स्वप्न ही रह गया जिसका उच्चारण बिना किसी बहाने के शर्मिंदा करने वाला हो गया।

अहमदशाह अब्दाली के अन्य आक्रमण

इस अध्याय में चूकि हम प्रथम पांच आक्रमणों का विवेचन कर आये है इसलिए यहां पर उसके शेष आक्रमणों का विवरण देना भी समीचीन होगा। वैसे तिथि क्रमानुसार संभव है यह उचित स्थान न हो।

छठा आक्रमण

जब अब्दाली अपने पांचवें आक्रमण के बाद भारत छोड़कर वापस हुआ त पंजाब मे विशेपकर पूर्ण अव्यवस्था छा गई जिसका लाभ उठाकर सिखो ने लाहौर पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उन्होने पंजाब मे जन्दियाला के उदासी महंन्थ अकिलदास के विरुद्ध आक्रमण किया क्योकि वह सिखों के विरुद्ध आक्रमणकारी दुर्रानी और पंजाब के सूबेदार की सहायता करता था। अकिलदास ने दुर्रानी से सहायता की याचना की। अफगान शासक पहले ही सिखों के लाहौर पर कब्जा करने से चिढ गया था और जब सहायता की याचना उसके पास पहुंची, उसने बड़ी तेजी से अपने प्रसिद्धि के अनुकूल भारत की ओर कदम बढाया और लाहौर पहुंचकर वहां अपना केन्द्र बनाकर जन्दियाला की ओर आगे बढ़ा। सिख

1. नादकर्णी : पूर्वोद्धृत, पृ० 221।

वहां से हट गये और सरहिन्द के सूबेदार जैनखां पर आक्रमण कर दिया। अब्दाली लाहौर वापस लौटकर 150 मील की यात्रा करता और 36 घंटे में ही दो नदियों को पार करता, सिखों को आश्चर्य मे डालता 5 फरवरी 1762 को एकाएक मालेर कोटला में प्रकट हुआ। इसके 6 मील उत्तर मे 50 हजार सिखों की एक सेना कुप गांव में डेरा डाले पड़ी थी। सिखों पर आक्रमण कर उनका पीछा किया गया और उनमे से 24,000 को मार डाला गया। यह सिखों की बहुत बड़ी हानि थी। इसके बाद अब्दाली ने पटियाला के राजा अलनसिंह से कर वसूली की और लाहौर वापस लौट आया। अमृतसर का गुरुद्वारा गोला-बारुद से उड़ा दिया गया। उड़ाये गये स्थल से कुछ आकर उसको लगा जिससे घबड़ाकर तेजी से वह वापस हो गया। पर इसके पहले उसने पूरे क्षेत्र को गाय और बैलो की अंतड़ियों और खून से अपवित्र कर दिया।

इसी बीच अब्दाली ने कश्मीर के सुखजीवनलाल के विरुद्ध दो आक्रमण कराये जिसे उसने पहले सूबेदार बनाया था और जो अब अपने को स्वतंत्र घोषित कर चुका था। नूरुद्दीन की अध्यक्षता में दूसरा आक्रमण सफल हुआ। कश्मीर का सूबेदार पकड लिया गया और घाटी अफगान अधिकार में आ गई। उसने काबुलीमल को लाहौर का सूबेदार नियुक्त किया, शाह आलम को दिल्ली का बादशाह स्वीकार किया और पेशवा को दक्षिण की प्रमुख शक्ति के रूप में मान्य किया तथा सरहिन्द की सूबेदारी पर जैनखां को स्वीकार किया। जालधर दोआब पर सादात यारखां को सूबेदार माना गया। कुछ और सिखो से संघर्ष के बाद अफगानिस्तान में एक विद्रोह का समाचार सुनकर वह वापस हो गया।

सातवां आक्रमण

सरहिन्द प्रांत पर सिख अधिकार और लूटपाट तथा शेष पजाब पर छीना-झपटी की सूचना पाकर अहमदशाह ने दिसम्बर 1764 में पुनः सिंध पार किया और शीघ्र ही लाहौर पहुंचा। जन्डियाला, बटाला और आदिनगर में सिखों ने अफगानों को बडी हानि पहुंचायी। शाह सरहिन्द तक आगे बढा पर तब तक मार्च का प्रारभ हो गया जब भारत मे अत्यधिक गर्मी पड़नी प्रारंभ हो जाती है। शाह को उसके साथियों ने सिखों को दंडित किये बिना अफगानिस्तान वापसी की सलाह दी। पर उसकी घर वापसी की यात्रा भी सुखद नही होने जा रही थी। सिखों ने अफगानों के सतलज पार करते ही युद्ध करने को बाध्य किया। सात दिनों तक युद्ध चला। जब अफगान अपने घर की ओर चले तब भी सिख तब तक वापस नही हुए जब तक कि अफगान चेनाब तक नही पहुच गये और उन्हें अत्यधिक हानि नहीं पहुंचा दी गई।

इस बीच शाह पजाब मे रहा व उसने अनेक गांवो मे खड़ी फसलें बर्बाद की।

सिखों का धन बर्बाद किया गया और उनके मंदिरों को लूटा गया और अप्रतिष्ठा पहुंचाई गई।

आठवां आक्रमण

जैसे ही अहमदशाह अपने सातवें आक्रमण के बाद वापस हुआ, सिखों ने पुनः लाहौर पर अधिकार कर लिया और पूरे प्रांत में फैल गये। उन्होंने यहां तक कि दिल्ली के निरकुंश नेता नजीबुद्दौला की जागीर भी लूट ली। भरतपुर के राजा से कर वसूला और धौलपुर के निकट मराठों को हराया। पंजाब में अपने अधिकार को पुनः स्थापित करने हेतु अहमदशाह ने दिसम्बर 1766 में आठवां आक्रमण किया।

सिंध नदी पार करने के बाद शाह ने 8000 सिख सैनिकों को रोहतास से कुछ मील दूर बेघी में छिन्न-भिन्न किया। अबकी बार उसे सिखों की उठती शक्ति को दबाने की अपनी नीति की निर्मूलता समझ में आई। इसीलिए उसने लेहनासिंह को, जिसने लाहौर पर पहले ही अधिकार कर लिया था, अपनी ओर से सूबेदारी देकर प्रसन्न करना चाहा। पर इसमें उसे सफलता न मिली। इससे उसका क्रोध बढ़ा ही पर वह कुछ न कर सका। जहां भी वह गया सिख उसके इर्द-गिर्द मंडराते रहे और इस कारण जब शाह दिल्ली की ओर बढ़ा तो नजीब ने उसे राय दी कि उसे बार-बार अपनी सेना के पृष्ठ भाग के लूट की हानि नही उठानी चाहिए बल्कि पंजाब मे अपनी स्थिति पहले मजबूत करनी चाहिए। पर दुर्रानी ने जितना ही सिखों को बर्बाद करने का प्रयास किया, वे उतने ही बहादुर होते गये। चाल, उदारता और शक्ति सभी इस वीर राष्ट्र को दुर्रानी के शासन के समक्ष सफलता स्वीकृत कराने मे असफल हुए और अंततः अहमदशाह को इस देश को निराशा और आक्रोश में त्याग देना पड़ा।

जब पंजाब गर्मी मे जलने लगा और नदियां बढ़ने लगी तो अहमदशाह ने अपनी भारतीय कार्यवाही पर रोक लगा दी। उसने दादनखां को लाहौर का सूबेदार बनाया और अपने देश के लिये रवाना हो गया। पंजाब असंगठित ही पड़ा रह गया और वह फिर उठते सिखों की महत्त्वाकांक्षा और शक्ति का शिकार बनने को बाध्य हुआ।

नवां और दसवां आक्रमण

जैसे ही दुर्रानी पंजाब से हटा कि सिखों ने लाहौर पर फिर से अधिकार कर लिया और पूरे पंजाब मे फैलकर उसे आपस मे बांट लिया। उन्होने दिल्ली और गंगा व दोआब तक को लूटा और उनकी कार्यवाही के समक्ष नजीब असहाय लगने लगा। इन परिस्थितियों में दिसम्बर 1768 में अहमदशाह कांधार छोड़

वहां से हट गये और सरहिन्द के सूबेदार जैनखां पर आक्रमण कर दिया। अब्दाली लाहौर वापस लौटकर 150 मील की यात्रा करता और 36 घंटे में ही दो नदियो को पार करता, सिखों को आश्चर्य में डालता 5 फरवरी 1762 को एकाएक मालेर कोटला मे प्रकट हुआ। इसके 6 मील उत्तर में 50 हजार सिखो की एक सेना कुप गांव में डेरा डाले पड़ी थी। सिखों पर आक्रमण कर उनका पीछा किया गया और उनमे से 24,000 को मार डाला गया। यह सिखों की बहुत बड़ी हानि थी। इसके बाद अब्दाली ने पटियाला के राजा अलनसिंह से कर वसूली की और लाहौर वापस लौट आया। अमृतसर का गुरुद्वारा गोला-बारुद से उड़ा दिया गया। उडाये गये स्थल से कुछ आकर उसको लगा जिस घबड़ाकर तेजी से वह वापस हो गया। पर इसके पहले उसने पूरे क्षेत्र को और बैलों की अंतड़ियों और खून से अपवित्र कर दिया।

इसी बीच अब्दाली ने कश्मीर के सुखजीवनलाल के विरुद्ध दे कराये जिसे उसने पहले सूबेदार बनाया था और जो अब अपने घोषित कर चुका था। नूरुद्दीन की अध्यक्षता में दूसरा आक्र कश्मीर का सूबेदार पकड लिया गया और घाटी अफगान अ उसने काबुलीमल को लाहौर का सूबेदार नियुक्त किया, का बादशाह स्वीकार किया और पेशवा को दक्षिण मान्य किया तथा सरहिन्द की सूबेदारी पर जैनखां दोआब पर सादात यारखां को सूबेदार माना गय बाद अफगानिस्तान मे एक विद्रोह का समाचार

सातवां आक्रमण

यदि अहमदशाह की भारत में सफलता के कारणों को जानना हो तो कहा जा सकता है कि बढ़ती आयु और गिरता स्वास्थ्य उसके पतन के लिए उत्तरदायी थे। उसकी नाक में मौजूद कैंसर ढलती आयु के साथ बढ़ता गया जो अंततः लाइलाज हो गया। उसकी सहिष्णुता पूर्ण उदारनीति, उच्च वेतन तथा अपने देश मे कम कर वसूली ने उसे प्रारंभिक काल मे दयालु व उदारमना शासक की प्रतिष्ठा दिलाने में अवश्य सहयोग किया पर अंत में यह विनाशात्मक सिद्ध हुआ। सेना मे बढ़ती संख्या के व्यय वहन करने मे भारत आक्रमण के बाद प्राप्त लूट का धन ही सहयोगी होता था। पर जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया, लूट की प्राप्ति का धन कम होता गया। उदाहरणार्थ दिल्ली में उसके पूर्णाधिकारी दूत नजीबुद्दौला ने उसे सात वर्षों में मात्र दो लाख रूपये दिया जबकि उसे लगभग दो करोड़ देना था। धीरे-धीरे सैनिकों का वेतन तक देना कठिन हो गया और उसके सैनिक विद्रोही होते गये।

उसके भारतीय मित्र व सहयोगी भी उसके अंतिम वर्षों तक विश्वासपात्र नही बने रह सके। उनमें से लगभग सभी अवसरवादी थे और अपने उद्देश्य पूर्ति-काल तक ही उसकी सहायता करते रहे। पर उनकी समझ मे यह आ गया कि दुर्रानी पंजाब मे सिखों के विरुद्ध अपना शासन स्थापित करने मे सफल नही होगा तो उन्होने उसमे मुख मोड लिया। इस तरह उसके भारत पर आठवें और अंतिम आक्रमण के समय केवल नजीबुद्दौला ही स्वयं उसके समक्ष उपस्थित हुआ जब कि शेष ने पूरी तरह से उसकी पुकार को अनसुना कर दिया।

सिखों का दृढ़ निश्चय और उनकी लौह इच्छा, जिन्होने सभी बलिदान किया था और विदेशी शासन को नही स्वीकार किया था, भी उसके असफलता का एक प्रमुख कारण थी। सिखो को अफगानों से अधिक यह सुविधा थी कि वे अपने देश में ही लड़ते रहे थे जिसकी भौगोलिक स्थिति का ज्ञान अफगानों को उतना नही था। अफगानों, मुगलो और मराठो के त्रिकोणात्मक युद्ध से भी उन्हें लाभ हुआ। और इसके अतिरिक्त जनता की सहृदयता भी उन्हें प्राप्त थी जो विदेशियो को पंजाब मे नही प्राप्त हुई।

फिर भी भारत पर अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण ने देश के भाग्य पर दूरगामी प्रभाव डाले। नजीबुद्दौला की दिल्ली मे नियुक्ति ने लड़खडाते मुगल साम्राज्य को पंजाब व अन्य स्थानों पर एक गहन धक्का दिया। जिसके फल-स्वरूप मुगल सम्राट को कुछ क्षेत्र उसे प्रदान करना पडा। मुगल कोष अपनी धन-धान्यता से महरूम हो गया और भारत में एकत्रित किया गया तमाम चांदी व सोना अफगान ले गये जिसका दुष्प्रभाव जनता पर पड़ा। यह तृतीय पानीपत के युद्ध का ही परिणाम था कि दुर्रानी ने पानीपत में मराठों को पराजित किया

पंजाब पर प्रभाव जमाने के लिए पुनः रवाना हुआ। पर वह अब अधिक उम्र का हो चुका था और उसके अपने ही देश की ही अराजकता उसे परेशान किये थी। उसके सैनिक सिखों के विरुद्ध अपना विश्वास खो चुके थे, पंजाब के मैदान की भयानक गर्मी और इस क्षेत्र की बढी हुई नदियां उन्हे हतोत्साहित कर रही थी। भारत का गिरता राजस्व शाह को उस स्थिति तक पहुंचा चुका था कि वह अपने सैनिकों का उसमे वेतन तक न दे पाता था। जिससे वे विद्रोही होते जा रहे थे। जब वह काबुल और पेशावर के बीच में था तो एक अवसर पर उसकी सेना मे विद्रोह भी हुआ। जिसके कारण कई महत्त्वपूर्ण अधिकारी और सैनिक मारे गये। बड़ी सख्या में सैनिक तितर-बितर हो गये और शाह को बड़ी खराब दशा मे बिना सिध पार किये काधार वापस लौटना पड़ा।

दिसम्बर 1769 मे शाह ने पुन' एक बार भारत के विरुद्ध आक्रमण की योजना बनाई। उसने यह निर्णय भयानक अफगानों के ध्यान को दूसरी ओर आकृष्ट करने के लिए लिया। पर उसके सैनिक पुनः सिखो से युद्ध करने को तैयार नही थे। संभवत. वे शाह के साथ अफगानिस्तान की ठडक से बचने के लिए हो गये और पेशावर की सुदर जलवायु ने भी उन्हे सभवतः आकृष्ट किया जो उसे शाह के व्यय पर प्रयोग कर सकते थे। इसीलिए पेशावर पहुंचकर वे विरोध करने लगे। शाह ने उन पर नियंत्रण समाप्त होते देखकर फिर बिना सिध नदी पार किये वापस हो जाना ही उचित समझा।

इसके बाद उसने फिर कभी भारत के विरुद्ध आक्रमण करने का साहस नही किया। वह बूढ़ा होता जा रहा था और उसका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। उसकी अचकजाई देश मे मुर्घा नामक स्थान पर 14 अप्रैल 1772 में मृत्यु हो गई और इस तरह उसके उस प्रयास की कहानी समाप्त हुई। जिसके अंतर्गत वह पजाब और पजाब के माध्यम से शेप भारत पर अपनी शक्ति स्थापित करना चाहता था।

अहमदशाह भला, महान और बुद्धिमान था। लतीफ ने उसके विषय मे लिखा है : "अगर हम उसकी एशिया के बहुत से शासको से तुलना करें तो वह जिन्हें उसने दबाया उनसे अधिक सौम्य और कम लोभी दिखता है; अपनी प्रजा के लिए वह विचारशील एव एक सीमा तक न्यायशील था; उनके लिए जिन्हे उसने अपने समाज मे लिया वह भद्र, प्रसन्नचित व स्वतंत्र था; उनके लिए जिन्होने उसके लिए कष्ट सहा उसने उन्हें सहायता दी, उनके लिए वह उदार व दयालु था; गरीब व आवश्यकतावालो के लिए वह सदा मित्रवत् व दानी; और विद्रोहियो के लिए कठोरों में कठोरतम था।"[1]

1. लतीफ, पूर्वोद्धृत, पृ॰ 289।

यदि अहमदशाह की भारत में सफलता के कारणों को जानना हो तो कहा जा सकता है कि बढ़ती आयु और गिरता स्वाथ्य उसके पतन के लिए उत्तरदायी थे। उसकी नाक में मौजूद कैंसर ढलती आयु के साथ बढता गया जो अतत. लाइलाज हो गया। उसकी सहिष्णुता पूर्ण उदारनीति, उच्च वेतन तथा अपने देश में कम कर वसूली ने उसे प्रारंभिक काल मे दयालु व उदारमना शासक की प्रतिष्ठा दिलाने में अवश्य सहयोग किया पर अंत में यह विनाशात्मक सिद्ध हुआ। सेना मे बढती संख्या के व्यय वहन करने में भारत आक्रमण के बाद प्राप्त लूट का धन ही सहयोगी होता था। पर जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया, लूट की प्राप्ति का धन कम होता गया। उदाहरणार्थ दिल्ली मे उसके पूर्णाधिकारी दूत नजीबुद्दौला ने उसे सात वर्षों में मात्र दो लाख रूपये दिया जबकि उसे लगभग दो करोड़ देना था। धीरे-धीरे सैनिकों का वेतन तक देना कठिन हो गया और उसके सैनिक विद्रोही होते गये।

उसके भारतीय मित्र व सहयोगी भी उसके अतिम वर्षों तक विश्वासपात्र नही बने रह सके। उनमें से लगभग सभी अवसरवादी थे और अपने उद्देश्य पूर्ति-काल तक ही उसकी सहायता करते रहे। पर उनकी समझ में यह आ गया कि दुर्रानी पंजाब में सिखों के विरुद्ध अपना शासन स्थापित करने मे सफल नहीं होगा तो उन्होंने उससे मुख मोड़ लिया। इस तरह उसके भारत पर आठवें और अंतिम आक्रमण के समय केवल नजीबुद्दौला ही स्वयं उसके समक्ष उपस्थित हुआ जब कि शेष ने पूरी तरह से उसकी पुकार को अनसुना कर दिया।

सिखो का दृढ़ निश्चय और उनकी लौह इच्छा, जिन्होने सभी बलिदान किया था और विदेशी शासन को नही स्वीकार किया था, भी उसके असफलता का एक प्रमुख कारण थी। सिखों को अफगानों से अधिक यह सुविधा थी कि वे अपने देश मे ही लड़ते रहे थे जिसकी भौगोलिक स्थिति का ज्ञान अफगानो को उतना नही था। अफगानो, मुगलों और मराठों के त्रिकोणात्मक युद्ध से भी उन्हें लाभ हुआ। और इसके अतिरिक्त जनता की सहृदयता भी उन्हे प्राप्त थी जो विदेशियों को पंजाब में नहीं प्राप्त हुई।

फिर भी भारत पर अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण ने देश के भाग्य पर दूरगामी प्रभाव डाले। नजीबुद्दौला की दिल्ली मे नियुक्ति ने लड़खड़ाते मुगल साम्राज्य को पजाब व अन्य स्थानो पर एक गहन धक्का दिया। जिसके फल-स्वरूप मुगल सम्राट को कुछ क्षेत्र उसे प्रदान करना पड़ा। मुगल कोष अपनी धन-धान्यता से महरूम हो गया और भारत में एकत्रित किया गया तमाम चांदी व सोना अफगान ले गये जिसका दुष्प्रभाव जनता पर पड़ा। यह तृतीय पानीपत के युद्ध का ही परिणाम था कि दुर्रानी ने पानीपत में मराठों को पराजित किया

और मराठों की भारत मे एक साम्राज्य स्थापित करने की महत्त्वाकांक्षा को भयानक धक्का दिया जिससे कि वे एक दशक तक नही संभल सके। इस बीच भारतीय राजनीति मे नई मोड़ लाने वाली बहुत-सी घटनाएं घटी। इसी काल मे उत्तर से मराठा प्रभाव समाप्त प्राय हो गया, ब्रिटिशों ने मुगल सम्राट शाह आलम, अवध के नवाब शुजाउद्दौला और बगाल के भूतपूर्व सूबेदार मीर कासिम की सयुक्त सेना को बक्सर मे पराजित किया। 1765 में इलाहाबाद की सन्धि के अतर्गत मुगल सम्राट ब्रिटिश सुरक्षा में आ गया और पूरा अवध पराजित हो उनके समक्ष लेट गया। इसके बाद धीरे-धीरे उन्होने अपनी शक्ति इतनी विकसित कर ली कि कोई भी भारतीय शक्ति उसे चुनौती देने की स्थिति मे न रही।

दुर्रानी के आक्रमण ने पंजाब मे सिख शक्ति के उदय की परिस्थिति पैदा की। जब मराठे पीछे हटने को बाध्य हो गये, और दिल्ली को अपने अधिकार को जताने की स्थिति मे नही रही तो सिखों को पंजाब मे अवसर मिला। इसका उन्होंने पूरा लाभ उठाया। सिख शक्ति का आधारस्तंभ रख दिया गया जिसपर आगे चलकर रणजीत सिंह ने राजतत्र की स्थापना की।

4
माधवराव प्रथम

1761 मे बाजीराव की मृत्यु के बाद उसका सत्रह वर्षीय द्वितीय पुत्र माधव राव पेशवा के रूप मे उत्तराधिकारी हुआ। सतारा के नाम मात्र के शासक ने इसे स्वीकार कर लिया। पेशवा परिवार के वरिष्ठतम सदस्य रघुनाथ राव पेशवा को प्रतिशासक बनाया गया और अवा पुरंदरे को मत्री बनाया। "उस समय तो ऐसा लगा कि मराठे अपनी शक्ति बढाने का निश्चय कर चुके थे और ईमानदारी से अपनी शक्ति और राजनैतिक प्रतिष्ठा बढ़ाने मे जुटे थे। दुर्भाग्य से…रघुनाथ की महत्त्वाकांक्षा ने उसके चरित्र की कमजोरियो सहित और उसकी अनिदानीय दूसरो से राय लेने की प्रवृत्ति ने शुभ समापन के पथ में रोडा डाल दिया।"[1]

माधवराव के उत्तराधिकार के समय राज्य कई कठिनाइयो से ग्रस्त था। थोड़े काल पूर्व पानीपत की पराजय ने मराठा भाग्य के सितारे को अत्यधिक नीचे ला दिया था। युवा पेशवा को अपने चाचा राघोबा और अन्य महत्त्वाकाक्षी सामंतों द्वारा प्रस्तुत आतरिक कठिनाइयां भी भोगनी थी और साथ ही उसने अपने सामने ही उत्तर से मराठा प्रभाव समाप्त होते हुए भी देखा जबकि दक्षिण मे उसके शत्रु निजाम तथा मैसूर के उदीयमान नक्षत्र हैदरअली ने मराठों के दुर्भाग्य से लाभ उठाने का प्रयास किया और उनके विरुद्ध और कीमत पर राज्य-वृद्धि की नीति अपनाई।

आन्तरिक स्थिति

पहला कार्य जो पेशवा को करना था वह था अपने चाचा राघोबा के महत्त्वाकांक्षी नियंत्रण से राज्य को मुक्त कराना था। ग्राण्ड डफ ने लिखा है, "स्वाभाविक रूप से शक्ति के भूखे रघुनाथराव ने परम संतोष के साथ विचार किया कि अपने भतीजे के अल्पवयस्कता में अपनी प्रिय इच्छा को तृप्त करने की दिशा में बढा जाय।"[2]

राघोबा की महत्त्वाकांक्षा के दर्शन तब हुए जब उसने पेशवा और निजाम के विरोध के अवसर पर निजाम से लाभपूर्ण शर्तो पर संधि कर ली। अगर संघर्ष

1. बैनर्जी, ए० सी० : पेशवा माधव राव I, कलकत्ता, 1968, पृ० 14।
2. ग्राण्ट डफ : हिस्ट्री आफ द मराठाज, सस्करण, एस० एम० एडवर्ड्स, भाग II, पृ० 533।

कुछ और काल तक चलता रहता तो निजाम से अधिक सुविधा प्राप्ति की आशा थी। पर ऐसा नही होना था। राघोबा के ऊपर निजाम के साथ बड़े गुप्त सपर्क का सदेह किया गया। यहा तक कि कुछ सैनिक अधिकारियो ने उसकी आलोचना तक की जिसका परिणाम यह हुआ कि उसने प्रतिशासक के पद से यह सोचकर त्यागपत्र दे दिया कि उसकी अपरिहार्यता पेशवा को पुनः उसे उस पद पर वापस बुलाने को बाध्य करेगी। पर माधवराव ने कई उत्तरदायी सहायकों की नियुक्ति करके शासन को सीधे अपने हाथ मे लेते हुए उसकी आशा को झुठला दिया।

इससे राघोबा के लिए स्थिति उलझनपूर्ण हो गई जिसने निजाम तथा जनोजी भोसले जैसे कुछ विद्रोही सामंतो का सहयोग प्राप्त कर खुला विद्रोह कर दिया। भतीजे और चाचा की लड़ाई मे पेशवा दो बार पराजित हुआ और अंततः राघोबा से दौलताबाद, असीरगढ़, शिवनेर और अहमदनगर के किले देकर सुलह कर लिया। साथ ही सुखाराम बापू जैसे उसके सहायको को उचित पारितोषिक भी उसने प्रदान किया।

वैसे तो अब भी चाचा पेशवा को किसी न किसी तरह कष्ट देता रहा। पर उसने निजाम के विरुद्ध उसकी सहायता की और उसने रक्षाभुवन के मुस्लिम नेता को प्रभावी रूप से दबाने में भी उसका साथ दिया। वह उसके कर्नाटक के प्रथम अभियान के दौरान भी माधवराव के साथ था, पर समय बीतने के साथ उसकी अविश्वस्तता बढ़ती गई। जब पेशवा ने कर्नाटक पर दूसरी बार आक्रमण किया तब उसने राघोबा के संबध मे विरोधी कार्यवाहियो की सूचना पायी और बाध्य होकर उसे सेना का नेतृत्व लेने का कार्यभार सौंपना पड़ा। यहा पर पुनः उसने मैसूर के हैदरअली को बिना मतलब उदार संधि शर्तें देकर पेशवा को हानि पहुचायी। उसकी कार्यवाहिया तब तो और असहनीय हो गईं जब उसने स्वय सेना संगठित करनी प्रारभ कर दी और शीघ्र ही उसने पेशवा के राज्य का कुछ भाग मागना प्रारंभ कर दिया।

माधवराव् ने अपने चाचा को कुछ उत्तरदायी प्रशासकीय स्थान सौंपकर प्रसन्न करना चाहा। पर उसने पैतृक क्षेत्र की मांग से हटने से स्पष्ट इनकार कर दिया। अपने भतीजे के दृष्टिकोण मे तर्क ढूढ़ने और उससे सुलह करने के स्थान पर राघोबा ने हैदरअली, निजाम और भोसले से संपर्क करना प्रारभ कर दिया। यहा तक कि उसने ब्रिटिशों से उसके विरुद्ध संघ बनाने हेतु संपर्क किया। माधवराव को चुनौती स्वीकार करनी पडी और कुछ काल तक अपने बाह्य शत्रुओं की ओर से आंखें मूंदकर, उसने अपने विश्वासपात्र सिंधिया, होल्कर और गोपालराव से राघोबा को शिक्षा देने के लिए कहा। राघोबा उस समय धोडप मे था जहां जून 1768 में युद्ध हुआ और पेशवा विजयी हुआ। रघुनाथराव को कैद कर पूना भेजकर रख दिया गया। एक उपयुक्त भत्ता उसे प्रदान कर उसकी शरारत

करने की शक्ति को समाप्त कर दिया गया। उसके सभी अनिष्टकारी परामर्शदाताओं को एक-एक कर अनुकरणीय दंड प्रदान किया गया।

पेशवा का दूसरा आंतरिक शत्रु नागपुर का जनोजी भोंसले था। वह राघोबा से पेशवा के विरुद्ध मिला हुआ था पर जब उसका भतीजे से समझौता हो गया तब वह निजाम से मिल गया। पर पेशवा ने उसे 32 लाख रुपये वार्षिक की एक जागीर प्रदान कर अपनी ओर मिला लिया। निजाम के विरुद्ध रक्षाभुवन की लड़ाई में भोसले पेशवा के साथ था और 32 लाख रुपये की आय का क्षेत्र जो एक मुस्लिम सामंत से छीना गया था उसे स्वामिभक्ति हेतु पारितोषिक में प्रदान किया गया।

पर भोंसले ने अब भी पेशवा के विरुद्ध नीति न त्यागी और उसके विरुद्ध हैदरअली से गुप्त संपर्क किया। माधवराव को निजाम का सहयोग उसके विरुद्ध जाता था। 1766 में भोंसले पराजित कर दिया गया। पर राघोबा के उसकी ओर से बीच-बचाव के कारण तुलनात्मक दृष्टि से उसे हल्का दंड दिया गया। उसे निजाम को 24 लाख रुपये का क्षेत्र देना पड़ा जो उसने रक्षाभुवन के बाद प्राप्त किया था। इन क्षेत्रों में से पेशवा को केवल 9 लाख मिला जब कि शेष 15 लाख रुपये का क्षेत्र निजाम को वापस कर दिया गया। पेशवा के इस कार्य से उसकी कुछ आलोचना भी हुई जिसमे उसे अवसरवादी बताते हुए कहा गया कि वह अपने लाभ के लिए अपने सहायक के विरुद्ध अपने शत्रु से भी मैत्री कर सकता है। पर पेशवा के पास संभवतः कोई अन्य चारा ही न था।

पर भोंसले ने अब भी कोई पाठ न सीखा। उसके मन्त्री दिवाजीपंत का उस पर विनाशकारी प्रभाव था और वह राघोबा से उस समय मिल गया जब उसने पेशवा के विरुद्ध स्वतन्त्र सेना स्थापित कर युद्ध छेड़ दिया। जब राघोबा जून 1768 में धोडप मे पराजित कर बंदी बना लिया गया तो पेशवा ने नागपुर पर आक्रमण कर सारे क्षेत्र की भूमि को बर्बाद कर दिया। उसे संधि करने को बाध्य होना पड़ा और 1769 मे कनकपुर की संधि पर हस्ताक्षर हुए जिसके अन्तर्गत भोसले ने पेशवा की सत्ता स्वीकार की, उसे उसके शत्रुओं के विरुद्ध सहायता का आश्वासन दिया, निजाम को उसका शेष क्षेत्र भी जिस पर उसका अधिकार था वापस किया और उसके लिए कोई कठिनाई पैदा न करने को आश्वस्त किया। जब तक माधवराव जीवित रहा उसे पुनः उसकी ओर से किसी विरोध का सामना न करना पड़ा।

अन्य कठिनाइयां पैदा करने वालों में एक कपटी सदाशिवराव भाऊ था जिसने मराठा सेना का पानीपत में नेतृत्व किया था और जिसके विषय मे सूचना थी कि वह मर गया है पर उसकी लाश नही पहचानी जा सकी थी। सुखलाल नामक एक अकनोजी ब्राह्मण 1761 के अंत में प्रकट हुआ और अपने को भाऊ

बताने लगा। बुदेलखंड के कुछ छोटे कर्मचारियों ने इसे प्रमाणित किया और उस व्यक्ति ने कुछ समर्थन भी प्राप्त किया और उसकी कर वसूली तथा धन एकत्र करने की नीति ने पूना में हतप्रभता का वातावरण फैला दिया। उसके सच्चे चरित्र संबधी सूचनाए भी सहायक नही हुई और इसमे कुछ समय लगा जब उसने अपराध स्वीकार किया और आजीवन करावास का दड भागी हुआ।

बाबू नायक जोशी, जो एक पुराना मराठा अधिकारी था और जिसने शाहू के मुक्तिकाल से ही मराठों का उत्थान देखा था, माधवराव को ईर्ष्या से देखता था और उसे हैदरअली और अन्य मराठा शत्रुओं के साथ षड्यंत्र करता पाया गया था। पेशवा ने रामचन्द्र गणेश के नेतृत्व में एक सेना भेजी जिसने मार्च 1766 मे उसके महत्त्वपूर्ण किलों पर अधिकार कर लिया और उसे बारामती की एक छोटी जागीर देकर पश्चाताप का जीवन जीने को छोड दिया गया।

हैदराबाद का निजामअली

आंतरिक शत्रुओं के साथ ही युवा पेशवा को उन बाह्य शत्रुओं का भी सामना करना पड़ा जो मराठों के प्रत्येक दुर्भाग्य से लाभ उठाने मे लगे रहते थे। ऐसा ही एक शत्रु हैदराबाद का निजाम था जो मराठो के पानीपत पराजय का पूर्ण लाभ उठाने की इच्छा रखता था और इसीलिए उसने उन कुछ मराठा राज्यों पर अधिकार कर लिया जिसे मराठो ने उससे छीना था। पेशवा के कुछ साथ छोड़ने वालों की सहायता से उसने पूना पर आक्रमण कर दिया जिसके कारण पेशवा के परिवार व कोष को वहां से सुरक्षित स्थान पर तब तक के लिए हटाना पड़ा जब तक कि पेशवा ने 1762 मे निजाम को एक युद्ध में पराजित नही कर दिया। राघोबा के बीच-बचाव के कारण किसी तरह निजाम दड से मुक्ति पा सका।

बाद मे जब पेशवा और रघुनाथराव के मतभेद बढ़ते गए, रघुनाथराव के कहने पर निजाम माधवराव के विरुद्ध सेना मे उसके साथ पुन. मिल गया। पर पेशवा अपने चाचा को पुन. अपने पक्ष में लाने मे सफल हो गया। फिर भी निजाम उसके विरुद्ध अब भी युद्ध की तैयारी करता रहा। उसे कुछ मराठा पक्ष त्यागने वाले जनोजी भोंसले जैसे लोगों का सहयोग भी प्राप्त था-और एक स्थिति तो यह आ गई जब उसने अपने को इतना शक्तिशाली समझ लिया कि उसने पेशवा से भीम नदी के पूर्व के सभी क्षेत्रों की माग की, उन मराठा नेताओं की जागीर भी उसने वापस मांगी जो उसके साथ थे, उसने पेशवा के प्रतिशासक के रूप मे अपने व्यक्ति को नियुक्त करने को कहा और ऐसी ही बहुत-सी मांगें जिसने पेशवा और उसके सहायको को आश्चर्य मे डाल दिया। एक युद्ध से अब नही बचा जा सकता था। अब पेशवा ने व्यक्तिगत रूप से सेना लेकर आगे बढ़कर अपने

विरोधियों के बीच इस धारणा को गलत करने का प्रयास किया कि उसकी युवावस्था व व्यक्तिगत चरित्र उसके रास्ते में आड़े नहीं आयेगी। उसने उन सभी साथ छोड़ने वाले मराठों को अपने पक्ष में करने में सफलता प्राप्त की जो निजाम से मिल गये थे और एकाएक सेना लेकर निजाम के क्षेत्र में प्रवेश कर गया तथा भयानक रूप से लूट-पाट प्रारंभ कर दी। आक्रमण और रक्षा की स्वयं विस्तार से योजना बनाते हुए पेशवा ने गोदावरी के तट पर रक्षाभुवन में युद्ध किया जहां उसे महत्वपूर्ण विजय प्राप्त हुई। 25 सितंबर 1763 में पेशवा ने निजाम को औरंगाबाद की संधि करने को बाध्य किया जिसके अंतर्गत उसे पानीपत काल से विजित क्षेत्र वापस करना पड़ा तथा कुछ और स्थान भी देने पड़े। सब मिलाकर 82 लाख रुपये वार्षिक राजस्व की आय वाले क्षेत्र पर पेशवा ने अधिकार पा लिया। इन क्षेत्रों का कुछ भाग, जैसा हम देख चुके हैं, जनोजी भोंसले को पेशवा के समर्थन के लिए प्रदान किया गया।

डॉ० बैनर्जी ने लिखा है कि औरंगाबाद की संधि "मराठा इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण संधि है। जहां तक पूना और हैदराबाद के बीच संबंधों का प्रश्न है इसके द्वारा प्रारंभ चीजें खर्दा के युद्ध तक (1795) बनी रही। पेशवा के राज्य क्षेत्र पर निजाम का पुनः आक्रमण का साहस न हुआ। दूसरे जैसा कि समकालीन अखबारनवीस का विचार है कि मराठों की इस समर्थ विजय ने दक्षिण में और पूरे भारत पर प्रभाव डाला। पानीपत के पराभव के बाद यह मराठों का पहला पुनर्जीवन था। अंततः इस विजय के कारण मराठों के गृह क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन उपस्थित किया। इसने रघुनाथराव के प्रतिशासन के काल की समाप्ति की ओर माधवराव के स्वतंत्र जीवन कार्य का प्रारंभ किया। यह सभी को स्पष्ट हो गया कि अनुभवहीनता के बावजूद यह युवा शासक युद्ध व कूटनीति दोनों में महान था और नेतृत्व की अत्यधिक क्षमता रखता था जिसका कि उसके चाचा में अभाव था।"[1]

मैसूर का हैदरअली

हैदरअली एक अन्य शासक था जिसने मराठा कठिनाइयों से लाभ उठाया और मैसूर के हिन्दू राजा की शक्ति का अपहरण कर, अनेक मराठा क्षेत्रों पर अधिकार कर कर्नाटक में भी 50 लाख रुपये राजस्व मूल्य का क्षेत्र अपने अधिकार में कर दिया। जनवरी 1762 में रघुनाथराव के नेतृत्व में कर्नाटक पर पहला आक्रमण किया गया। पेशवा भी उसके साथ था। कित्तूर और बिदनूर क्षेत्र से कर वसूला गया और हैदर के विरुद्ध कार्यवाही की गई जिसने उनके

1. बैनर्जी : पूर्वोद्धृत, पृ० 37।

विरुद्ध खुला युद्ध नहीं किया और एक जंगल मे वापस चला गया। इसी बीच वर्षा का मौसम आ गया और मराठे हैदरअली को दंडित किये बिना वापस चले गये।

मराठों की शीघ्र वापसी ने हैदरअली के साहस को बढ़ा दिया जिसमे निजाम का और कुछ विद्रोही मराठो का समर्थन प्राप्त कर कृष्णा नदी के दक्षिण के मराठा क्षेत्रो पर अधिकार करना प्रारभ कर दिया। उसने शिवनूर, सुद और कर्नूल आदि क्षेत्रों पर अधिकार किया, सभी जिलों को अस्त्र-शस्त्र पूर्ण सैनिकों से सज्जित किया और कर्नाटक पर एक अन्य मराठा आक्रमण की तैयारी करने लगा।

इसी बीच पेशवा ने निजाम पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली और पूना में अपनी शक्ति मजबूत कर ली और हैदर की महत्त्वाकांक्षी कार्यवाहियो को रोकने के लिए गंभीरता से सोचा। उसने अपने नेतृत्व में एक बडी सेना तैयार की, अपना मुख्य परामर्शदाता सखाराम बापू को बनाया और 17 फरवरी 1764 में कृष्णा को पार किया और किले बद स्थानों को घेरने के स्थान पर उस क्षेत्र को बर्वाद करना प्रारभ किया। उसने सबनूर के असंतुष्ट नवाब को अपनी ओर मिलाया जो हैदर के हाथों परेशान हो चुका था।

हैदरअली ने मराठों से खुला युद्ध करने से अपने को दूर रखा और मराठों को परेशान करने के लिए एक अभेदनीय जंगल मे जाकर शरण ले ली। पेशवा ने इसके विरुद्ध कूटनीतिक चाल चली। गोपालराव हैदर के समक्ष केवल 4,000 सैनिकों सहित उपस्थित हुआ और हैदर ने इसका लाभ उठाते हुए इस छोटी सेना को बर्वाद करने के लिए आक्रमण कर दिया। गोपालराव ने पीछा करती हुई शत्रु सेना के साथ पीछे हटना प्रारंभ कर दिया और फिर उन्हें मुख्य मराठा सेना के समक्ष पहुंचा दिया जहां पेशवा के नेतृत्व में 50,000 सेना थी। इस युद्ध मे हैदर के 2,000 सैनिक या तो मारे गये या घायल हो गए और मराठों में केवल 250 सैनिक ही मारे गये।

वर्षा ऋतु पुनः आ गई पर अबकी बार वापस जाने की जगह पर पेशवा ने हैदर को पराजित करने का निश्चय कर शत्रु को आश्चर्य और निराशा में डाल दिया। उसने हवेड़ी और धारवाड़ पर अधिकार कर लिया और 1 दिसंबर 1764 को शत्रु को जदी हंवाती के निर्णायक युद्ध में लड़ने को बाध्य किया। पेशवा ने स्वयं हैदर को घायल किया और उसके 2[illegible] ों को मार डाला।

जैसे होनाली, अनन्तपुर, चीतलदुर्ग तथा बिदनूर की ओर रवाना हुआ। यहां के किले में शत्रु ने अपने को बंद कर रखा था। हैदर की ओर से शांति संदेश आये और जब थोड़े ही प्रयास से शत्रु का सफाया हो जाता, रघुनाथराव ने मार्च 1765 में अनंतपुर में उससे एक संधि कर ली।

इस संधि की शर्तें थी : (1) हैदरअली ने 30 लाख रुपये कर के रूप में देना स्वीकार किया, (2) तुगभद्रा के उत्तर के क्षेत्र मराठों को दे दिये और (3) वादा किया कि मुराररात्र एव सवनौर के नवाब को कोई कष्ट न दिया जाएगा जो मराठों के सहायक बन चुके थे।

राघोबा की इस बात के लिए आलोचना हुई कि उसने हैदर की शर्तें स्वीकार कर ली। पर उसका कहना था कि निजाम ने पुनः कठिनाई पैदा करनी प्रारंभ कर दी थी, ब्रिटिशों ने बम्बई के कुछ मराठा क्षेत्रों को लूटा था और बिदनूर जाने वाली सड़क के बीच में पड़ने वाला जंगल असुरक्षित था। पेशवा को इसमें संतोष करना पड़ा कि उसने अपने चाचा को संधि का अधिकार सौंप दिया था।

मराठों को जहां कृष्णा के दक्षिण के क्षेत्रों की अभी प्राप्ति करनी थी, वहां हैदरअली की महत्त्वाकाक्षा इस स्थिति को स्वीकार करने को तैयार न थी। उसने ब्रिटिशों से सहायता मांगी। पर उन्होने कोई उत्साहवर्द्धक उत्तर ही नही दिया बल्कि मराठों की ओर सदेह से देखा। उनका हैदरअली के कारण शक्तिशाली न होने देना उन्होने पसन्द किया क्योकि वे ही उनके महत्त्वाकांक्षा के विरुद्ध एक बाधा थे। हैदर के सेनापति मराठों के कर्नाटक अधिकार क्षेत्र को लूटा करते थे जिसका परिणाम यह हुआ कि जनवरी 1767 में पेशवा ने पुनः कृष्णा को पार किया और कृष्णा को पारकर सीरा, मदगिरि, हस्कोटे, नंदीगढ़ और अन्य स्थानों पर अधिकार कर लिया और संधि करने के लिए उसे पुनः बाध्य किया।

मई 1767 में नवीन समझौता हुआ : (1) हैदरअली ने मराठों को किस्तों में 32 लाख रुपये देना स्वीकार किया, और (2) पेशवा ने मदगिरि और हस्कोटे नामक कई स्थान ले लिये और सीरा तथा नदीगढ़ जैसे कुछ स्थान वापस कर दिये।

1769 के प्रारंभ में हैदरअली के विरुद्ध उसे एक अन्य आक्रमण करना पड़ा। उस समय के ब्रिटिशों के विरुद्ध सफलता पा जाने से वह और महत्त्वाकाक्षी हो गया था। अक्टूबर 1769 तक हैदरअली ने मराठो को कुछ हानि पहुचाई जिसके कारण पेशवा एक बड़ी सेना लेकर प्रकट हुआ। हैदरअली ने पेशवा के रास्ते में पड़ने वाले क्षेत्र के सभी खेतों को नष्ट कर उसने उनके लिए वस्तु अनुपलब्ध की स्थिति पैदा करने की नीति अपनाई। पेशवा ने दूसरी ओर अपना रास्ता बदलते हुए दूर-दूर तक उसके क्षेत्र को लूटा। हैदर के कई प्रमुख स्थान

उसके समक्ष धराशायी हो गये। पर अबकी बार का विरोध लंबा सिद्ध हुआ। पेशवा यहा का काम त्रिम्बकजी और गोपालराव को सौपकर पूना लौट आया। इससे हैदर के पुत्र टीपू ने प्रोत्साहित होकर मोती तालाब और मलुकोटे में 1771 के प्रारंभ मे मराठों को कुछ हानि पहुंचाई। पर अन्ततः अपनी राजधानी श्री रंगपट्टम वापस हो जाने को बाध्य हुआ। रास्ते में उसे 12 हजार सैनिकों से हाथ धोना पड़ा।

मराठे निश्चित रूप से अब बेहतर स्थिति मे थे और यदि वे लाभ उठाना चाहते तो श्री रंगपट्टम राजधानी पर भी अधिकार कर सकते थे। पर दुर्भाग्य से इसी समय गोपाल राव की मृत्यु हो गई, मराठों में आपसी मतभेद भी बढ गया और हैदरअली की राजधानी के घेरे मे कोई प्रगति नही हो पायी। पेशवा पूना मे गम्भीर रूप से बीमार हो गया और उसने इस युद्ध को रोकना भी चाहा। इसीलिए अप्रैल 1772 मे एक नवीन समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत हैदर ने मराठों को 25 लाख रुपये दिया और साथ ही 6 लाख रुपये के जवाहरात दिए। इसके अतिरिक्त उसने 19 लाख रुपये तीन किस्तों में देने का भी वादा किया और मराठों द्वारा विजित कुछ स्थान उसे वापस भी कर दिये गए।

थोड़े दिन बाद माधवराव मर गया और पूरी मराठा राजनीति अस्त-व्यस्तता की स्थिति मे पहुच गई। हैदरअली ने अपने चाहे सभी क्षेत्रों पर अधिकार करके परिस्थितियों का लाभ उठाया।

उत्तर की ओर

मराठो के पानीपत में पराजय के थोड़े ही दिन बाद दिल्ली, दोआब और अन्य उत्तरी क्षेत्रों से उनका प्रभाव जाता रहा। उत्तराधिकार के प्रारंभिक वर्षों में युवा पेशवा अपनी आंतरिक समस्याओं के अतिरिक्त निजाम व हैदरअली से संघर्ष में फंसा रहा। 1765 तक पेशवा ने अपने को इस परिस्थिति मे पाया कि उत्तर पर मराठा अधिकार पुनः स्थापित किया जाय। अतः उस वर्ष के अन्त तक रघुनाथराव एक सेना लेकर उत्तर की ओर रवाना हुआ। महादाजी सिंधिया और मल्हार होल्कर भी उसके साथ सम्मिलित हुए। राघोबा ने भोपाल से कर वसूला और गोहद पर घेरा डाल दिया। घेरा दिसम्बर 1766 मे तब उठाया गया जब गोहद के राणा ने 15 लाख रुपये देना स्वीकार किया। इसी समय पंजाब में अब्दाली के पुनः आक्रमण की सूचना उसे मिली और अवध के शुजाउद्दौला और ब्रिटिशो के इस प्रयास के बावजूद कि सब मिलकर विदेशी का मुकाबला करें, उसने यह बहाना बनाकर कदम वापस खीच लिये कि पेशवा ने वस्तुओं की पूर्ति न करके उसे भूखो मार डाला है।

राघोबा के उत्तर जाने के पांच वर्ष बाद पेशवा ने एक बार और चेष्टा की

कि दिल्ली, दोआब आदि क्षेत्रों पर सम्राट मराठा प्रभाव फिर से स्थापित किया जाय। अबकी बार महादाजी सिंधिया और तुकोजी होल्कर के अन्तर्गत सेना भेजी गई जिसने नजीबुद्दौला के पुत्र जबीता खां को दिल्ली के पद से हटा दिया और नगर पर फिर से अधिकार कर लिया। उस समय शाहआलम ब्रिटिशों की सरक्षता में इलाहाबाद में था। उसे दिल्ली आने को और गद्दी प्राप्त करने को आमंत्रित किया गया। ब्रिटिशो ने सम्राट को अपने से अलग होने से रोकने का प्रयास किया लेकिन मराठो ने जो लालच उसे दी थी वह बहुत बड़ी थी। वह दिल्ली लौट आया जहा मराठों ने उसे अपने संरक्षण में ले लिया और उसी के माध्यम से दिल्ली का प्रशासन करने लगे। उन्होंने सम्राट से यह भी स्वीकार करा लिया कि 1765 में हुई इलाहाबाद की संधि के अन्तर्गत उसे प्राप्त इलाहाबाद और कड़ा जिले पर मराठों का अधिकार होगा। वैसे ब्रिटिशों ने समय से हस्तक्षेप कर ऐसा न होने दिया। *उन्होंने दोआब के कुछ क्षेत्रो पर भी पुनः अधिकार कर लिया।*

1772 में कुछ ही काल बाद जब पेशवा माधवराव की मृत्यु हो गई तो मराठा नेताओं को अपने लाभ की देखभाल व रक्षा के लिए शक्ति संघर्ष के अवसर पर पूना जाना पड़ा। इस तरह जो कुछ भी उत्तर में प्राप्त हुआ था वह पुनः हाथ से निकल गया। आगे महादाजी सिंधिया ने जब तक दिल्ली पर अपना पुनः अधिकार नही किया, वहां यही स्थिति बनी रही।

ब्रिटिशों से सबंध

अब मात्र माधवराव और ब्रिटिशों के बीच संबध के पुनरावलोकन की आवश्यकता है। हम देख चुके है कि किस तरह बाजीराव प्रथम के काल में जब मराठों ने कुछ समुद्र तटीय क्षेत्रों पर अधिकार किया तो बम्बई के अधिकारियों ने भयभीत होकर अपने को और शक्तिशाली बनाया। पानीपत में मराठों की पराजय ने ब्रिटिशों को प्रसन्न ही किया और उन्होंने जलसेना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण साल्सेट और वेसीन पर अधिकार करने का अवसर प्राप्त करना चाहा। लगता है उस समय इसका अवसर भी आ गया जब निजाम ने पूना पर आक्रमण किया और मराठों ने ब्रिटिशों से सहायता मागी। पर जब अंग्रेजों ने युद्ध में सहायतार्थ व्यय सहित साल्सेट और वेसीन की माग की तो मराठों ने उनसे सहायता का निवेदन वापस ले लिया।

कर्नाटक पर दूसरी बार आक्रमण के अवसर पर ब्रिटिशो से पुनः सहायता हेतु सपर्क स्थापित किया गया। पर इसका कोई परिणाम नहीं निकला। कुछ ही समय बाद पेशवा ने उनसे हैदरअली के विरुद्ध संघ में सम्मिलित होने के लिए संपर्क स्थापित किया पर ब्रिटिशों ने इन्हें इतना आश्वासन दिया कि वे मराठों के विरुद्ध किसी भी उनके विरोधी की सहायता करेंगे। इस आश्वासन पर वे विश्वस्त बने

रहे और हैदरअली के कितने भी प्रयास पर वे मराठों के विरुद्ध नही गए।

प्रथम आग्ल मैसूर युद्ध के समय अग्रेजो ने एक शिष्ट मंडल पेशवा के दरबार में सहायतार्थ तथा माल्सेट व वेसीन किसी अन्य क्षेत्र के वदले मागने के लिए भेजा। पर इसमे उन्हे सफलता नही मिली जिसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिशों ने अपनी इच्छापूर्ति के लिए राघोवा और अन्य लोगों से मिलकर षड्यंत्र प्रारंभ कर दिया। ब्रिटिशो से इन्ही सपर्कों के कारण माधवराव की मृत्यु के वाद राघोवा ब्रिटिश संरक्षण मे चला गया और प्रथम आग्ल मराठा युद्ध प्रारंभ हो गया।[1]

18 नवम्बर 1772 को 8 वजे प्रातः युवा पेशवा माधवराव ने यह भौतिक जगत छोड़ दिया। 1770 में ही उसने "भयानक बीमारी के आगमन का अनुभव किया जिसने उसे युवा काल मे ही उठा लिया। इसे उसने संभवतः अपने पिता से विरासत मे पायी थी। पर हम यह सोचने की स्थिति में हैं कि यह बीमारी अत्यधिक कार्य और चिंता से और निकट आ गई। दुआ, दवा अथवा स्थान परिवर्तन में से किसी ने भी उसमे कोई स्थायी सुधार नही किया।"[2]

ग्राण्ट डफ लिखता है : "माधवराव की मृत्यु से तत्काल कोई उत्तेजना नही फैली। उसकी बीमारी की भाति यह क्षीण रूप में दृष्टिगत हुआ। पर पहले से ही छिन्न-भिन्न और फैला हुआ देश का पेड़ जिसकी जड़ें उसने अनुप्राणित की थी, यह लगा तने से ही अलग हो गई। पानीपत का युद्ध मैदान भी मराठा साम्राज्य के लिए उतना मृत्युवत् नही सिद्ध हुआ जितना कि इस होनहार युवा की मृत्यु।"[3]

इतिहास मे ऐसे कम ही उदाहरण हैं जहा इतने अल्पायु शासक ने इतनी महत्त्वपूर्ण सफलता अर्जित की हो। अगर वह वहा न होता तो उसके पिता की मृत्यु के वाद उसका चाचा रघुनाथ राव उत्तराधिकार की शक्ति प्राप्त करता जो षड्यंत्र की बुद्धि से भरा था। जैसा उसके आगे के कार्यों से प्रमाणित है, ऐसा होने पर मराठा शक्ति का और पतन होता। इसकी पूर्ण सभावना थी कि पानीपत के धमाके के बाद उस स्थिति में मराठो की राजनैतिक मृत्यु ही हो जाती। यह माधवराव ही था जिसने मराठा राष्ट्र को धक्के से शीघ्र उबारा ही नही बल्कि पानीपत के एक ही दशक के भीतर इसे इस योग्य वना दिया कि वह 1761 तक प्राप्त सफलताओं से अधिक की भी आकाक्षा करे।

माधवराव था युवा पर उसके पास एक अनुभवी व मजे हुए व्यक्ति का शात व सूझ-बूझ वाला मस्तिष्क था। उसकी वह कूटनीति कि उसने कमजोर होने पर भी

1. इसके लिए वारेन हेस्टिग्स के अध्याय को देखिए।
2. बैनर्जी : पूर्वोद्धृत, पृ० 179।
3. ग्राण्ट डफ : पूर्वोद्धृत, पृ० 209-10।

अपने चाचा को अपनी ओर मिला लिया और बाद में शक्ति प्राप्त करने पर उसको दबा दिया उसकी उस बुद्धि का परिचायक है कि किस समय क्या किया जाय। उसने विकट शक्ति वाले निजाम को दबाया, हैदरअली, जो ब्रिटिशों तक के लिए आतंक था, को हराया और 1772 में अपनी मृत्यु से पूर्व उसने उत्तर मे मराठों को वहां पुनः पहुंचा दिया जहां वे पानीपत से पूर्व थे। यदि माधव कुछ वर्षो और रहा होता तो मराठो को क्या कुछ और न मिल गया होता ? भाग्य मराठों के साथ नही था, माधव की मृत्यु पानीपत पराजय से भी बड़ी धक्का थी जिससे वे फिर कभी न उभर सके।

माधवराव मात्र महान् सैनिक नेता ही न था, उसमें एक प्रतिभाशाली शासक के भी गुण थे जो उसके न्यायिक, आर्थिक और नागरिक सुधारों के कार्यों की रुचि में दिखाई पड़ते हैं। ऐसे उदाहरण भी हैं जब उसने साधारण चोरी के मुकदमो में भी रुचि दिखाई। सेना के कूच के समय फसलों को बचाने के लिए कठोर नियम बनाये गये। मूल्य नियंत्रित किया गया, कष्टदायी कर बंद किये गये, बेगारी खत्म की गई और भ्रष्ट अधिकारी कठोर दंड के भागी हुए। क्षेत्रीय सेना व नव-सेना सभी ने उसका ध्यान प्राप्त किया। पर उसका काल छोटा था, जो कुछ उसने पाया था उसे ही संजो नही पाया था कि उसकी मृत्यु हो गई।

माधवराव की मृत्यु इस बात की सूचना लेकर आई कि अब केन्द्र मे सैनिको की महत्ता का काल आ रहा है। हर जगह पेशवा और अन्य छोटे-छोटे पदों के लिए संघर्ष प्रारभ हो गया। पूरा राष्ट्र पतन की शक्ति की ओर हिंसा के मार्ग पर आगे बढ़ा। बाद में तीन आग्ल मराठा युद्ध[1] हुए और मराठा शक्ति पूरी तरह टूट गई।

1. अगले पृष्ठों में विवेचन है।

5
मराठा प्रशासन

मराठा प्रशासन व्यवस्था का विवेचन करते समय महाराष्ट्र में स्थिति क्षेत्र जो मराठों की अपनी भूमि थी और जिसे वे स्वराज्य कहते थे, उसमें तथा साम्राज्य में महाराष्ट्र के बाहर जो क्षेत्र थे जिससे मराठे चौथ व सरदेशमुखी वसूल करते थे उसके अतर को जान लेना आवश्यक है। दोनों के बीच अतर स्वाभाविक था जिसके कारण थे। *प्रथम तो स्वराज्य छत्रपति व पेशवा के सीधे अधीन था।* "दूसरे मानव जातीय एव सास्कृतिक दृष्टि से दूरदराज फैले राज्यों से यह अधिक सगठित था। तीसरे विजय कार्य इतना बहुकालीन तथा आशिक था और देश के विभिन्न भागों की स्थिति इतनी भिन्न थी कि मैत्रीपूर्ण व सपूर्ण मेलजोल की आशा नही थी।" स्वराज्य क्षेत्रों पर कम या अधिक शिवाजी ने विजय प्राप्त की थी जब कि साम्राज्य क्षेत्र मराठो के नियत्रण मे पेशवा की प्रधानता के काल मे आया।

केन्द्र सरकार

राजा

मराठा सरकार का नेता राजा था जिसे मराठे छत्रपति कहते थे। उसका निवास केन्द्र सतारा था और वह शिवाजी के काल तक शासन का केन्द्र-बिन्दु था। अपने शासन के अन्तिम दिनों में शिवाजी ने मुगल सम्राट की सत्ता भी अस्वीकार करनी प्रारंभ कर दी थी। पर उसके पौत्र शाहू ने उसे वार्षिक कर देना ही स्वीकार नही किया वल्कि उससे 10 हजार की मनसब भी स्वीकार की। वैसे जब तक छत्रपति शाहू जीवित रहा तब तक उसका सरकार पर पूर्ण अधिकार बना रहा। उसने अपने राज्य के मत्रियों व कर्मचारियो की नियुक्ति व पदमुक्ति की, पर समय बीतने के साथ वह अपने इस व्यवहार में ढीला पड गया। यह कार्य उसने पेशवा के हाथ मे सौंप दिया जिसका फल यह हुआ कि उसकी मृत्यु के बाद छत्रपति की शक्ति इतनी घट गई कि उसका अधिकार सच न होकर मात्र दिखावे का रह गया। वैसे तो प्रतिष्ठा के वस्त्र तथा नियुक्तिया औपचारिक रूप से अन्त तक उसी से प्राप्त होती रही। शाहू के बाद छत्रपति सतारा का कैदी मात्र रह गया *जिसका अपने घर के नौकरो तक पर अधिकार न रहा था जो अपनी उन्नति के*

लिए पेशवा की ओर देखा करते थे। उसके गृह-व्यय के आंकड़ो की भी कड़ाई से जांच होती थी।

पेशवा

शिवाजी के काल मे राजा 'अष्टप्रधान' नामक आठ मन्त्रियों की सभा से सहायता प्राप्त करता था। इन आठ मंत्रियो में से एक को मुख्य प्रधान, पेशवा या मुख्यमत्री कहते थे; जबकि अन्य को मंत्री, आमात्य, सुमंत, सचिव, पंडितराव, न्यायाधीश और सेनापति कहते थे। इन आठ मंत्रियों में राजाराम के समय एक नाम अर्थात् प्रतिनिधि और आ जुडा। पर शाहू के काल में एक के बाद दूसरे पेशवा के द्वारा महत्त्वपूर्ण सेवा करने के कारण तथा विशेष परिस्थितियों में अपने चरित्र के कारण वह ही सर्वशक्तिमान हो गया और अष्टप्रधान लुप्त ही हो गए। सिद्धान्ततः तो अब भी पेशवा छत्रपति के बाद था पर व्यवहार मे और शाहू की मृत्यु के बाद विशेषकर वह एक प्रमुख अधिकारी था जिसका राजा की तरह पैतृक कार्यालय था और जो राज्य का कार्यभार ही अपने हाथ में नही रखता था बल्कि छत्रपति के निवास तक उसके अधिकार की पहुंच थी। पेशवा की स्थिति हिन्दू अविभाजित परिवार मे सबसे बडे पुत्र की भांति थी, जिसमे पिता के बूढ़े हो जाने पर उसके जीवितावस्था मे ही परिवार का असली मालिक वह लड़का हो जाता है जिसकी दया पर उसके पिता को भी रहना पडता है और जिसके हाथों उसे प्राय. उसका दुर्व्यवहार भी झेलना पडता है और अपमानित होना पडता है। पेशवा पूना मे रहता था और वही सभी कार्यों के लिए मराठा सरकार का केन्द्र था न कि सतारा जहां छत्रपति का मुख्य केन्द्र था।

हजूर दफ्तर

हजूर दफ्तर पूना में राजकीय सचिवालय था जहां लगभग 200 लोग काम करते थे और जहा रुपये के लेनदेन व रसीद के कागज रखे जाते थे। मराठा अभिलेखागार जो इसके कारण विकसित हुआ, बहुत बड़ा था और मराठा अभिलेख जिनमे से बहुत से अब भी हैं, विश्वस्त सामग्री की अमूल्य उपलब्धि है जिससे मराठा प्रशासन और उसकी विशिष्टता के पुनर्लेखन मे सहायता मिलती है।

स्थानीय सरकार

संघ

केन्द्र सरकार के अधीन[1] सिन्धिया, होल्कर, गायकवाड़ और भोंसले जैसे क्षेत्रीय नेताओं का संघ था। शिवाजी ने कभी जागीर, सरंजाम या पैतृक आधार पर क्षेत्र नही बाटा। पर शाहू के काल मे जब मराठा सैनिक नेताओं को विभिन्न क्षेत्र केन्द्र को कुछ धन के बदले मराठा अधिकार स्थापित करने के लिए सौंपे गए तो इन मराठा नेताओ ने मराठा शक्ति की पताका दूर-दूर तक पहुंचाई। उन्होंने उत्तर-पश्चिम भारत मे अटक व पेशावर तक प्रभाव बढ़ा लिया तथा बंगाल, बिहार और अन्य दूर-दराज के क्षेत्रो से कर लेने मे सफल हुए। चूकि उन्होंने अपना अधिकार अपनी शक्ति से स्थापित किया, न कि छत्रपति के किसी क्षेत्र को उनके नियंत्रण मे दिया गया, इसलिए उन्होने अपने को स्वतंत्र घोषित करना आरंभ कर दिया। यह उस समय तो और हुआ जब पेशवा ने छत्रपति के अधिकार का अपहरण किया। यह प्रवृत्ति तब और जोर पकड़ गई जब पेशवा की शक्ति छत्रपति के मुख्यमंत्री नाना फडनीस के हाथ चली गई। ये नेता किसी भी सामूहिक शत्रु के विरुद्ध एक हो जाते थे और आंतरिक रूप से वे मराठा मुकुट के प्रति स्वामिभक्त होते हुए भी स्वतन्त्र बने रहते थे। एकत्रित हो वे मराठा संघ का निर्माण कर लेते थे, वैसे इसके लिए कोई संवैधानिक आधार नही था बल्कि यह नियम पर आधारित न हो सुविधा पर अधिक आधारित था। इन सामंतों द्वारा अधिकृत क्षेत्र प्रारंभ में साम्राज्य क्षेत्र थे पर बाद में इनके द्वारा विजित बहुत-सी जगहें ही उनका क्षेत्र हो गई। इस कारण यहां का आतंरिक प्रशासन एक से दूसरे शासक का भिन्न होता था।

स्वराज्य क्षेत्र

पेशवा के अधिकार क्षेत्र मे रहने वाले स्थान सरकारों मे विभक्त थे जिसे प्रान्त भी कहते थे। यह स्थान मामलातदार नामक अधिकारी के हाथ मे होता था जो मराठा राज्य मे अपने क्षेत्र का सबसे बडा न्यायिक, प्रशासकीय और आर्थिक अधिकारी था। उसका पद बडा लाभप्रद था और कहा जाता है कि उसकी बिक्री तक होती थी। पर उसके अधिकारों पर कुछ प्रतिबंध भी थे। उसके नीचे आठ सीधे केन्द्र से सम्बद्ध पैतृक शक्ति प्राप्त दरखदार होते थे जो उसके साथ और कभी-कभी सूबेदार के विरुद्ध तब तक काम करते थे जब तक वह अनियमिततायें करता था। वह उसके चालचलन की सूचना भी ऊपर से भेजता था। साथ ही उसके

1. मराठा सघ के और विस्तृत विवेचन के लिए लार्ड कार्नवालिस का अध्याय देखें।

द्वारा हुजूर दफ्तर को प्रेषित हिसाव-किताव तब तक स्वीकार नही किए जाते थे जब तक उन्हे देशपांडे और देशमुख सत्यापित नही कर देते थे।

प्रत्येक सरकार कई परगनो मे विभाजित होती थी जिनमे से प्रत्येक कमविसदार के अधीन होता था जो मामलातदार की तरह अपने क्षेत्र का कार्यपालिका, आर्थिक और न्यायिक नेता था और ऊपर से मामलातदार के संरक्षण मे रहता था। परगना महालो या तारफो मे वंटा होता था जो हवलदार के अधीन होता था। हवलदार की सहायता हिसाव-किताव रखने वाला मजूमदार और आडीटर के रूप में महाल फडनीस करता था। अशम दफ़दरदार, अशम फड़नीस हशमनवीस और हाजिर नवीस नामक चार सेना अधिकारी क्षेत्र मे कानून व व्यवस्था स्थापित करने में सहायता करते थे।

"सवसे नीचे मराठा राजनैतिक व्यवस्था मे ग्राम समूह (पंचायत) थे। पूरे भारत में साथ मे यह एक-सा ही था। सभी कालों में अपने देश में इस तत्त्व की सार्वजनिक उपस्थिति ने राजनैतिक इतिहास के उतार-चढ़ाव के वावजूद हमारी संस्कृति और सभ्यता को सुरक्षित रखा और बचाया है। यह समाज थोड़े में ही राज्य के सभी तत्त्व समाहित किए हुए था और अपने सदस्यो की सुरक्षा का पर्याप्त ध्यान रखता था चाहे कोई सरकार न भी हो।"[1]

प्रत्येक गांव पटेल नामक एक पैतृक कार्यकारी के नेतृत्व मे एक आत्मनिर्भर इकाई था। पटेल पेशवा के प्रति उसके अधिकारी करभरी के माध्यम से उत्तरदायी था। पटेल गांव समाज के कार्यपालिका, राजस्व और न्यायपालिका का अधिकार रखता था। गांव के विभिन्न पेशों के जैसे लोहार और सोनार के बारह लोग उसे प्रशासन में अपना मत देते थे। बारह आदमियों का यह समूह बड़ा वलुक कहलाता था। पटेल को कुलकर्णी और चौगुला आदि कारकूनों से सहायता मिलती थी जो राजस्व वसूली और अन्य कार्यो मे सहयोग करते थे। पटेल स्थानीय ऊंचे अधिकारियों मे और आवश्यकता पड़ने पर केन्द्र सरकार मे भी अपने गाव का प्रतिनिधित्व करता था।

कस्वे का नेतृत्व कोतवाल करता था जिसके पास वहां के लोगों के ऊपर पुलिस न्यायिक व प्रशासनिक अधिकार होते थे। उनको सहायता के लिए भी अनेक कारकून होते थे जो उनकी कार्यवाहियो की गुप्त देखभाल करते और उसकी अनियमितताओं की संबंधित अधिकारियो को सूचना देते थे।

एक शब्द मराठा पुलिस के सबध मे भी, जो अत्यधिक कार्यक्षम मानी जाती थी। इसकी तुलना तत्कालीन लंदन पुलिस से की जा सकती थी जिसे आगे चलकर ब्रिटिश पुलिस व्यवस्था में वम्बई की प्रेसीडेन्सी के अन्तर्गत मिला लिया गया।

---

1. देखें, शर्मा, एस०आर० : द फाउन्डिंग आफ द मराठा फ्रीडम, वम्बई, 1964, पृ० 417।

प्रत्येक गांव मे पटेल महार नामक पुलिस अधिकारी की सहायता से कानून और व्यवस्था स्थापित करता था। गाव का चौकीदार एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति था जो अपराधियो को पकड़वाने और उन्हे सजा दिलाने मे सहायता करता था। इस ग्रामीण पुलिस व्यवस्था की ब्रिटिशों ने भी प्रशसा की और हर कीमत पर चलते रहने दिया। जिला पुलिस मामलातदार के अधीन होती थी जबकि कस्बे में यह कार्य कोतवाल करता था। पुलिस नियम और अनुशासन अत्यन्त कठोर थे जिससे कि पेशवा बाजीराव द्वितीय तक न बच सके। उदाहरणार्थ यह कहा जाता है कि पूना मे एक कठोर नियम था कि कोई भी वहा बाहर गलियो में रात के 10 बजे के बाद नही जा सकता था क्योकि ऐसा होने पर उसे कैद करके रातभर रोका जा सकता था। पेशवा ने स्वय नियम भग किया और एक साधारण व्यक्ति की तरह सजा काटी। साथ ही स्थानीय पुलिस को अतिरिक्त मेलों और त्योहारों तथा विशेष स्थानो पर तीर्थाटन के अवसर पर विशेष पुलिस की भी व्यवस्था की जाती थी।

राजस्व प्रशासन

मराठो के स्वराज्य क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण आय का स्रोत भारत के अन्य स्थानो की तरह भूमि-कर था। कर-निर्धारण हेतु कहा जाता है, देश की भूमि का विभाजन तीन सिद्धान्तो पर किया गया था; भूमि का प्रकार अर्थात् यह अच्छी है, खराब है या बीच की है, भूमि की सिंचाई की सुविधा क्या है तथा तीसरे वहां किस तरह की फसल पैदा की जाती है। इसके बाद इसकी सही माप की जाती थी और जमीन की कोटि के अनुसार तथा उपरोक्त सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर तय किया जाता था। सबसे अच्छी भूमि से, कहा जाता है, कर के रूप मे उसकी उपज का 2/5 प्राप्त होता था। पेशवा माधवराव प्रथम के काल मे इस तरह "प्रथम श्रेणी की प्रति बीघा भूमि पर पाच रुपये, द्वितीय श्रेणी की भूमि पर चार रुपये और तृतीय श्रेणी की भूमि पर तीन रुपये लिया जाता था। राजस्व रुपये या अनाज के रूप में दिया जा सकता था···कभी-कभी परगना की रचना कर उसके राजस्व का कुछ अग्रिम अधिकारियो से प्राप्त कर लिया जाता था जिस पर उन्हे ब्याज प्रदान किया जाता था।"[1]

राजस्व सग्रह की व्यवस्था के लिए डॉ० एस० एन० सेन का मत यहा प्रस्तुत किया जा सकता है : "राजस्व वसूली के समय आने पर महार पाटिल के कार्यालय पर करदाताओ को गावो की चवदी पर बुलाता था। गांव का हिसाब-किताब रखने वाला कुलकर्णी अपने कागजात सहित पाटिल के सहायतार्थ

1. बैनर्जी, ए० सी० : पूर्वोद्धृत, पृ० 184-85।

उपस्थित रहता था। पोतदार भी वहां रहते थे। पोतदार रुपये देते समय उसकी जाच-पडताल कर मुहर लगाते थे और कुलकर्णी करदाता को उसकी रसीद देता था। वसूली हो जाने के बाद रुपया कामविसदार के पास एक पत्र सहित चौगुला की अधीनता में और उसी तरह का एक पत्र या उसी पत्र की प्रतिलिपि महार की अधीनता में देशमुख के पास भेजी जाती थी। चौगुला मामलातदार से देय धन की रसीद प्राप्त करता था जिसे कुलकर्णी के गांव के हिसाब-किताब के बडल में सुरक्षित रखा जाता था। कभी-कभी जिले के अधिकारी तर्फ पाटिल के राजस्व एकत्र करने में सहायतार्थ शिबन्दी को भी भेजता था। राजस्व प्रायः चार किश्तों मे या कभी-कभी तीन किश्तों में देय होता था।"[1]

सरकार सिंचाई के लिए बांधो और नहरों का निर्माण करती थी। व्यक्तिगत तौर पर भी लोगों को बाध निर्माण के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। ऐसा रिवाज था कि यदि कोई बाध बनाए और 100 बीघे का बाग लगा दे तो उसे इनाम के तौर पर 10 बीघा भूमि प्रदान की जाती थी।[2] तगाई नामक ऋण कृषि उत्थान हेतु दिया जाता था और दुर्भिक्ष आदि के समय राजस्व वसूली पूरी या कुछ माफ कर दी जाती थी। ऋण छोटी किश्तो मे वसूल किया जाता था और इसका ध्यान रखा जाता था कि राजस्व किसान और वसूली करने वाले किसानो को दबाने न पाए। गलती करने वाले अधिकारी दडित किए जाते थे और इसके लिए कडे आदेश थे कि सेना के आगे बढ़ने के समय फसलें न बर्बाद होने पाएं। यदि किसी किसान की इस कारण हानि होती थी तो उसे उचित मुआवजा दिया जाता था। खराब और ऊसर जमीन को उपजाऊ बनाने के लिए हर प्रोत्साहन दिया जाता था।

"बालाजी बाजीराव, माधवराव और नाना फडनीस के अतर्गत राजस्व प्रबध की व्यवस्था सतर्क थी। पेशवाओं द्वारा किया गया इस काम का बदोबस्त बताता है कि बिना रैय्यत को दबाने की आकुलता के इसका ध्यान सदा रखा जाता था कि सरकार के अधिकार सुरक्षित रहे।···राजस्व कागजातों के अध्ययन से सामान्य रूप से यह लगता है···कि यह ठीक था।"[3]

राजस्व के अन्य स्रोतों में व्यापार व बिकने वाले माल पर लगने वाला सीमा-शुल्क, चुंगी तथा फेरी-शुल्क आदि भी थे जिसमें से पहले को महतरफा और बाद वाले को जकात कहते थे। ब्राह्मण अपने प्रयोग के लिए कोई भी वस्तु बिना शुल्क मगा सकते थे। न्यायिक क्षेत्र मे भी आय होती थी। "मुकद्दमा जीतने

1. सेन, डॉ० एस० एन० : ऐडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम आफ मराठाज, कलकत्ता, 1925, पृ० 225।
2. बैनर्जी, ए० सी० : पूर्वोद्धृत, पृ० 185।
3. रानाडे एवं तेलंग : पूर्वोद्धृत, पृ० 185।

वाले से प्रायः नजर ली जाती थी। परिवार के संपत्ति विभाजन के अवसर पर भी शुल्क (पूरे धन का $\frac{1}{4}, \frac{1}{6}, \frac{1}{10}$,) लिया जाता था। चोरों से सामान वसूली के लिए भी शुल्क लिया जाता था। नि.संतान व्यक्ति के मरने पर उसके धन का कुछ अंश सरकार भी ले लेती थी और शेष उसकी मां और विधवा के लिए छोड़ दिया जाता था।"[1]

जंगलों से लकड़ी काटने के लिए आज्ञा पत्र की बिक्री से भी आय होती थी। व्यक्तिगत टकसाल मालिकों को स्तरीय मूल्य व गुण के सिक्के ढालने के लिए लाइसेंस प्रदान किए जाते थे। लोग व्यवसाय के अनुसार व्यवसाय-कर भी देते थे। औषधि निर्माण के लिए एकाधिकार प्रदान किए जाते थे। इसके अतिरिक्त अन्य कोर्ट के भी शुल्क होते थे जैसे उत्तराधिकार शुल्क, गृह-कर और चरागाह-कर आदि।

पर अन्य आय का सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत चौथ और सरदेशमुखी था जो साम्राज्य क्षेत्रों से लिया जाता था और इन दोनों स्रोतों का अध्ययन भी रुचिकर है। सरदेशमुखी भू-राजस्व का $\frac{1}{10}$ होता था। मुगल काल में देशमुख यही राशि राजस्व संग्रह तथा अपने क्षेत्र में कानून व व्यवस्था बनाए रखने के लिए पाता था। चौथ किसी राज्य या क्षेत्र से उनके राजस्व का $\frac{1}{4}$ उस क्षेत्र की विदेशी आक्रमण से रक्षा के लिए लिया जाता था। बाद वाली प्रथा की तुलना सहायक संधि की प्रथा से की जा सकती है, जो बाद में लार्ड वेलजली ने भारत में लागू की जिसके अंतर्गत एक के बाद दूसरा राज्य या तो ब्रिटिश नियंत्रण में आ गया या प्रत्यक्ष रूप से समय बीतने के साथ वह उनके अधिकार में आ गया।

इस संबंध में हम न्यायाधीश रानाडे के विचार प्रस्तुत करने को बाध्य हैं: "पुराने मुस्लिम शासकों के हाथ से मराठा संघों के हाथ में शक्ति हस्तान्तरण की कथा ऐसे तथ्य प्रस्तुत करती है जिसे भारत के भूतकालीन इतिहास में नहीं देखा गया, पर जो विश्वसनीयता से मार्क्विस वेलजली की इस सदी के प्रारंभिक वर्षों के सफलता के इतिहास से मिलता-जुलता था जिनके अंतर्गत उसने सहायक संधि की प्रथा संगठित की। यह संबंध स्थानीय शासकों से किये गए जिसके अंतर्गत ब्रिटिश कंपनी के सार्वभौम शक्ति को भारत महाद्वीप में स्वीकार किया गया। सहायक संधि का यह विचार सबसे अधिक संगठित ढंग से 500 वर्ष पूर्व मराठा नेताओं के नीति की पुनरावृत्ति थी जिसके अंतर्गत उन्होंने चौथ और सरदेशमुखी का अधिकार दिल्ली के शाही अधिकारियों तक से प्राप्त किया था।"[2]

---

1. देखें. बैनर्जी : पूर्वोद्धृत, पृ० 191।
2. रानाडे, महागोविन्द : राइज आफ द मराठा पावर, बम्बई, 1961, पृ० 97।

सरदेशमुखी और चौथ के अधिकार की माग 1650 में शिवाजी प्रथम के काल में मुगल सम्राट से करते हुए उसके कुछ भूमि पर अधिकार को स्वीकार करने को कहा गया जिसे अस्वीकृत कर दिया गया। 1668 मे शिवाजी ने अपने आप गोलकुडा और बीजापुर शासको से सरदेशमुखी और चौथ का अधिकार प्राप्त करते हुए उनकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व लिया। 1671 मे इसे खानदेश, 1674 मे पुर्तगाली क्षेत्र कोंकण; 1676 में कर्नाटक तथा 1680 मे मुगलो के कुछ दक्षिण के सूबो पर यह कर लगाया गया।

1705 में औरंगजेब को स्वयं अपने दक्षिण के छ. सूबों पर मराठों के सरदेशमुखी कर की स्वीकृति देनी पड़ी जिससे मराठो की भूख और बढ़ी और 1709 मे शाहू ने दक्षिण के मुगल सूबेदार को बाध्य कर बाह्य आक्रमण से रक्षा का आश्वासन दे चौथ का अधिकार भी प्राप्त कर लिया। 1713 मे जब निजामुलमुल्क दक्षिण का सूबेदार हुआ उसने अपने पूर्ववर्ती सूबेदार के इस मराठा अधिकार की स्वीकृति का विरोध किया जिसके फलस्वरूप मराठो को उसके विरुद्ध युद्ध छेड़ना पड़ा। बाद में जब सैय्यद हुसैनअली दक्षिण का सूबेदार हुआ तो उसने मराठों को पुनः दोनों अधिकार वापस किये जिसके बदले मे मराठों ने मुगल सम्राट को 10 लाख रुपये की पेशकश देना स्वीकार किया और साथ ही आवश्यकता पड़ने पर 15 हजार घुडसवार सेना तैयार रखने को कहा जो सूबेदार के माध्यम से सम्राट को भेजी जा सकती थी। इस सधि की मुगल सम्राट फर्रुखसियर से स्वीकृति हेतु बालाजी विश्वनाथ सैय्यद सूबेदार के साथ दिल्ली भी गया। मुगल सम्राट ने इसे स्वीकार नही किया जिसके फलस्वरूप उसे गद्दी से हटाकर मार डाला गया। उसके उत्तराधिकारी मुहम्मदशाह ने 1719 मे शक्ति प्राप्त करते ही तुरन्त इस सधि की पुष्टि कर दी।

1719 मे मराठों ने दक्षिण के प्रांत खानदेश, बरार, बीजापुर, हैदराबाद, औरंगाबाद और बीदर पर सरदेशमुखी और चौथ के अधिकार प्रभावी किये और हम यह पहले ही देख आये हैं कि किस तरह हैदराबाद का महत्त्वाकांक्षी निजाम इस अपमानजनक शर्तों को स्वीकार नही कर सका जिससे मराठे उससे लड़ते रहे और कभी-कभार बकाये की धनराशि और कर वसूलते रहे। अंत मे मराठा संघ के नेताओं ने उसे खर्दा के युद्ध मे हराया और फलस्वरूप वह ब्रिटिशों की सुरक्षा मे चला गया और इस तरह मराठों के लूटपाट से सदा के लिए बच गए।

जैसा हमने पहले ही देखा है, मराठा संघ के नेताओ ने बाजीराव प्रथम, बालाजी बाजीराव और माधवराव के काल में दक्षिण के छः प्रातों के अतिरिक्त भारत के अन्य भागों पर भी इसी तरह के अधिकार प्राप्त किए और अटक व पेशावर तक आक्रमण किया। उन्होंने दोआब, बगाल, बिहार, उड़ीसा, गुजरात, काठियावाड, मालवा, बुदेलखंड व राजपूताना पर सरदेशमुखी व चौथ का कर

लगाया। दिल्ली भी उससे नही बचा।

यह स्मरणीय है कि ये कर स्थानीय नेताओं को स्वीकार्य न थे और प्रायः जब दिल्ली के राजअधिकारियों द्वारा भी उन्हें अनुदान मे कुछ प्राप्त होता था तो भी वे मराठो का तब तक विरोध करते रहते थे जब तक वे उन्हें तलवार से परास्त नही कर देते थे।

वेलजली की सहायक प्रथा की भांति चौथ व सरदेशमुखी ही ऐसे कर थे जिसे राज्यों से वसूला जा सकता था जो मात्रा में अधिक होता था और जिसको देने के बाद स्थानीय शासन के लिए कुछ न बचता था। इन परिस्थितियो मे सरक्षित राज्यो की स्थिति बिगड़ जाती थी और अंततः वे मराठों के अधिकार मे चली जाती थी।

न्यायिक प्रशासन

उस समय कोई लिखित कानून या संहिता की प्रक्रिया न थी। वैसे मनु और याज्ञवल्क्य के नियमों को दिग्दर्शन हेतु अवश्य देख लिया जाता था। न्याय प्रायः स्थानीय रिवाजो पर आधारित था जो न्यायाधीश की व्यक्तिगत आकांक्षा से हस्तक्षेपित होता था जो कभी-कभी धन से भी प्रभावित हो जाता था।

राजा से न्याय स्रोत होने की अपेक्षा की जाती थी। पर शाहू के बाद उसकी शक्ति पेशवा के इर्द-गिर्द घूमने लगी। वह मराठा देश मे न्याय का उच्चतम न्यायालय हो गया। पेशवा न्यायाधीश से सहयोग पाता था और माधवराव प्रथम के काल मे इस पद पर पदासीन रामाशास्त्री ने न्यायिक अधिकारी के रूप मे बड़ा नाम कमाया। उन्होंने देश के न्याय के क्षेत्र में बहुत से सुधार किए। अपनी-अपनी जागीरो मे जमीदारों को भी अंतिम न्याय के अधिकार प्राप्त थे। पर जो जमीदार पेशवा के प्रभावी अधिकार मे थे कभी-कभी वहां के मुकदमे पेशवा के पास भी भेजे जाते थे। ये न्यायालय प्रारंभिक और अपीलीय दोनो थे।

"देश की परंपरानुसार पेशवा जांच-पड़ताल हेतु आया करता, शिकायतें सुनता और दंड देता था। बाउटन यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया था कि कितनी सरलता से उस समय भी न्याय प्राप्ति हेतु दौलतराव शिंदे तक पहुंचा जा सकता था जब वह युद्ध अभियान पर भी होता था। महान रामाशास्त्री शिकायतें और गवाहियां अपने निवास तक पर सुनता था पर उसकी प्रतिष्ठा पर कोई संदेह नही करता था।"[1] "कभी-कभी वह सघर्षशील लोगो के मित्रों से भी परामर्श करता था। पर निष्कर्ष रूप मे वह पूर्ण न्याय की धारणा से जुड़कर

1. शर्मा, एस० आर० . पूर्वोद्धृत, पृ० 426।

ही कार्य करता था।"[1] यह लिपिबद्ध करना रुचिकर है कि एक मुकदमे मे एक मुकदमेबाज ने "रामाशास्त्री पर भी पक्ष लेने का आरोप लगाने मे सकोच नही किया जिस पर पेशवा ने दूसरे न्यायाधीश को वह मुकदमा सुनने का निर्देश दिया।"[2]

इसके नीचे मामलातदार, कमविसदार और पचायतो के न्यायालय थे। कोतवाल कस्बों मे न्यायाधीश की शक्ति का प्रयोग करते थे और मामलातदार प्रायः पंचों की नियुक्ति करके उनकी राय से ही मुकदमो का निर्णय करता था।

गांव की पंचायतो की अपनी महत्ता थी क्योकि पच परमेश्वर का प्रतीक माना जाता था और पेशवा से छोटे-से-छोटे कर्मचारी भी उसके निर्णय को ग्रहण करते थे।

दंड सामान्यतया सदय होते थे। अपराध के मुकदमे मे कभी-कभी मृत्यु-दंड भी दिया जाता था जिसमे अपराधी को फांसी पर लटकाया जाता, टुकड़ो मे काटा जाता या अंग भंग किया जाता था। कभी-कभी अपराधी की खोपडी हथौडे से तोडी जाती थी। पर ब्राह्मण को मृत्यु-दंड विष देकर या भूखों मारकर दिया जाता था। शरीर के अंगभंग के उदाहरण भी मिलते है जिसमे अपराधी पुरुषो के हाथ व पांव तथा अपराधी नारियो की नाक, छाती या कान काट लिये जाते थे। यदि एक पत्नी आत्महत्या कर लेती तो पति को अर्थदंड देना पड़ता था। अग्नि-परीक्षा संपत्ति-अपहरण, अपराधियों का किलो मे बदी बनाया जाना और कोड़े मारने की सजा का भी प्रचार था।

नागरिक मुकदमो में भी दंड सदय ही थे और प्रायः अर्थदंड और कैद से काम चल जाता था। पर राजनैतिक अपराधों में दंड कठोर थे। ए०सी० बैनर्जी लिखते है : "कुछ लोगों ने तुलाजी अंग्रिया (एक राजनैतिक अपराधी) को मुक्त करने का प्रयास किया, उनका घर-भूमि सरकार ने जब्त कर ली और उनके परिवार को कैद कर लिया। यही दंड उस व्यक्ति के परिवार को भी दिया गया जिसने तुला जी के पुत्र को वीसापुर के किले से भगाने मे सहायता पहुचाई···कुछ राजनैतिक बंदियो के मामले में तो भोजन के समय छोड़कर उन्हें लोहे से जकड़कर रखा गया। पर नारियो के संबंध मे अपवाद रखा गया।"[3]

जैसा हमने देखा है न्याय राज्य के आय का एक अच्छा स्रोत था और कभी-कभी तो गंभीर मुकदमे भी रुपये के बदले छोड दिये जाते थे। मुकदमे जीतने

---

1. सेन : पूर्वोद्धृत, पृ० 370।
2. बैनर्जी : पूर्वोद्धृत, पृ० 189-90।
3. वही पृ० 190।

और हारने वाले दोनों दल धन देते थे। पहले वाले नजराना और दूसरे वाले जुर्माना देते थे। चुराई गई वस्तुओं के मिल जाने पर शुल्क देना पड़ता था।

सैनिक प्रशासन

घुड़सवार सेना

मराठा सेना का मुख्य भाग घुडसवार सेना का था जो दो भागों में विभाजित थी : (1) बड़गीर जो राज्य की ओर से घोड़े और युद्ध सामग्री पाते थे, (2) शिलेदार जो स्वयं अपने घोड़े और युद्ध सामग्री लाते थे। दोनों सरे नौबत (सेनापति) की अध्यक्षता मे रहते थे। घुड़सवार सेना की प्रारंभिक इकाई हवलदार के नेतृत्व मे 25 बड़गीरों की होती थी। प्रत्येक पांच हवलदार पर एक जमादार होता था, दस जमादारो पर एक यकहजारी होता था। घुड़सवार सेना मे सरे नौबत के नीचे पांचहजारी का पद सबसे बडा होता था।

मराठा सेना में मुगलों की ही भांति घुडसवार सेना एक महत्त्वपूर्ण शाखा थी। पर इसका सबसे बडा दोष शिलेदार होता था जो युद्ध मे अपने घोड़े का मर जाना इसलिए बर्दाश्त न कर पाता था क्योंकि इससे उसकी बर्बादी आ जाती थी और वह इस धक्के से जल्दी संभल नही पाता था।

पैदल सेना

मराठे पैदल सेना भी रखते थे पर इसकी सेवा उतनी अच्छी न थी। ब्रिटिशों के विरुद्ध पराजय के कारणो मे यह भी एक था। पैदल सेना के सैनिकों को पाइक कहते थे। 9 पाइकों की एक इकाई नायक की अध्यक्षता में होती थी। 50 नायक एक हवलदार की अध्यक्षता मे, पाच हवलदार एक जमादार के नेतृत्व में रहते थे। उनके ऊपर हजारी होता था। सरे नौबत के नीचे इस सेना मे सबसे उच्च सातहजारी होता था।

वेतन रुपयो में दिया जाता था। एक जमादार जो 100 से 125 होन्स[1] वार्षिक, हजारी को 1,000 होन्स और पंचहजारी को अधिक से अधिक 2,000 होन्स प्राप्त होता था।

तोपखाना

मराठों के पास तोपखाना भी था। पर इस शाखा की सेना का कार्य व संबधित वस्तुओं की पूर्ति फ्रासीसी जैसे विदेशियो पर निर्भर करती थी।

---

1. एक सोने का सिक्का जिसका वजन $3\frac{1}{2}$ माशा होता था।

किले

उन्होंने किलों का निर्माण भी किया जिसमें उन्हें आक्रमण के समय शरण मिलती थी जहां सैनिक साज-सामान, भोजन व चारा एकत्रित किया जा सकता था। उन्होंने तीन तरह के किलों का निर्माण किया, (1) गढ, जो पहाड़ी की सबसे ऊंचाई पर बनाए गए, (2) कोट, जो मैदानी भाग मे बनाए गए, (3) दुर्ग, जो समुद्र के किनारे बनवाए गए। सभी के पास लगी भूमि भी होती थी। यहा प्रशासन कार्य के लिए तीन समान अधिकार रखने वाले अफसर होते थे। सवनिस संग्रहशाला की देखभाल करता था; हवलदार चाभियों का मालिक था और सूबेदार किला संबंधी नागरिक व राजस्व कार्य-कलापों से संबद्ध था।

जलसेना

मराठों ने जलसेना को भी आवश्यक महत्ता दी। शिवाजी ने अल्पकाल ही में इसके संगठन के क्षेत्र में महती सफलता प्राप्त की और पेशवाओं के काल में भी इस क्षेत्र में विकास का प्रयास किया गया जिससे सुरक्षा और व्यापार का उद्देश्य पूरा हो सके। एक टुकड़ी एक मुस्लिम दरयासारंग और एक हिंदू मयनायक के नेतृत्व मे होती थी। उनके पास कई बंदरगाह थे और उन्होंने पुर्तगालियों से वेसीन छीना। उनके पास बहुत-सी जहाजें भी थी, कम-से-कम 700 थी ही। वे दूर-दराज तक व्यापार भी करते थे, उन्होंने चीन और अरब की यात्रा की और वहां कुछ मराठा व्यापारी बस भी गए। "जनवरी 1680 मे बवई के निकट हुई केनरी में अंग्रेजो के विरुद्ध शिवाजी द्वारा कठोर सघर्ष के बाद प्राप्त विजय महान् थी। यह प्रतिष्ठा कान्होजी आंगरे (समुद्र के शिवाजी) ने बनाए रखी। पर बाद में पेशवा ने अंग्रेजों का साथ करके इसे नीचा दिखा दिया।"[1]

मराठो ने अपनी सेना और जलसेना सेवा मे कड़ा अनुशासन बनाए रखा। "उदाहरणार्थ प्रत्येक सैनिक की युद्ध वस्तुएं आक्रमण से पूर्व सविवरण नोट की जाती थी और अत मे भी देखी जाती थी। देखभाल करने पर अतिरिक्त सामान सैनिक के पास से निकलता था वह राज्य खजाने का हो जाता था। एक सुई या एक पाई भी सैनिक को लेने की आज्ञा नही थी। सेना के आय-व्यय का लेखा-जोखा तैयार करके हजारी, मजूमदार, करभरी और जाम नवीस नामक चार अधिकारियों के हस्ताक्षर से जमा किया जाता था।"[2]

सामान्य रूप से पुनर्विवेचन करने पर मराठा प्रशासन व्यवस्था प्राचीन हिंदू विश्वासों और तत्कालीन मुगल शासन प्रथा दोनो से ली गई थी और ऐसी

---

1. शर्मा : पूर्वोद्धृत, पृ॰ 422।
2. वही, पृ॰ 42।

जनता की कमजोरी उसमे थी जिन्होने 'हिंदू पद पादशाही' स्थापित करने के उद्देश्य से कार्यारंभ कर स्थानीय क्षेत्रों के छोटे-छोटे सामंतों के रूप मे आपस में स्वार्थ हेतु लड़ना प्रारंभ कर दिया। मराठों को ऐसे डाकुओं के रूप मे भी प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है जहां उन्होने जाति, बिरादरी और धर्म का भेद नही किया। विस्तारवादी नीति में व्यस्त उन्हे शिक्षा या शाति की कला को विकसित करने का अवसर ही न मिला। सबसे भयानक बुराई जो उनमें आ गई वह पैतृकता का सिद्धात थी जो राजा मे लेकर छोटे-से-छोटे नागरिक व सैनिक कर्मचारी व विभाग मे प्रवेश कर गई। देश की आर्थिक प्रगति के लिए कम प्रयास किया गया और सामतो की आपसी ईर्ष्या ने जनता की नैतिकता पर डाका डाल दिया। सेना जो पहले पूर्ण राष्ट्रीय थी अब उसमे पठान, अरब, यूरोपीय और अन्य आ गए जो तनिक भी विश्वस्त न थे। मराठो का पतन, जो कार्य के हर क्षेत्र मे कम अनुशासित थे, ब्रिटिशो के आगमन से अवश्यम्भावी हो गया व स्वाभाविक रूप से आ उपस्थित हुआ।

विवरण समाप्त करने से पूर्व यह बताया जाना आवश्यक है कि अधिकतर प्रशासकीय दोष और लूटपाट की आदत, जिससे मराठे ग्रस्त थे, वे सब स्वराज्य क्षेत्रों से अधिक साम्राज्य से जुडी थी। उनके साम्राज्य प्रबंध मे, जैसा हमने पहले ही देखा है, बहुत कुछ ऐसा है कि सनकी भी उसकी प्रशंसा न करेगा।

मराठा शक्ति के विकास के कारण

मराठा शक्ति को शिवाजी महान ने जन्म दिया और 18वी सदी के प्रथम अर्द्ध सदी मे एक साम्राज्य के रूप मे विकसित कर दिया। 1761 मे पानीपत मे इसे एक धक्का लगा जिससे उभरने में उन्हें लगभग एक दशक लगा। पर वे पुन. ब्रिटिशो द्वारा छोटे-छोटे राज्यों के रूप मे दबाए गए और बिखराए गए और यह स्थिति 1818 और बाद तक चली। इस शक्ति के उदय का इतिहास यहा हमारे क्षेत्र के बाहर है, पर शाहू के काल से लेकर माधवराव प्रथम तक उनके विकास का विवेचन हम कर आए है। तीन आंग्ल मराठा युद्ध और इनका पतन, हमारे विवेचन का उत्तम अंत होगा यदि हम यह बता दे कि किन तत्त्वों ने इस शक्ति का विकास किया।

पहला तत्त्व उनका वह विचित्र देश था जहां के वे थे। इस स्थान की भौगोलिक व भौतिक स्थिति जिसने उन्हे वह सुविधा दी जो शासक वर्ग के दु.ख आमंत्रण का कारण बनी और उन्हें अपनी रक्षा की चेष्टा करनी पड़ी। "मराठा जाति जिस क्षेत्र मे रहती है वह भारतीय समुद्र और वर्धा नदी के मध्य है। उनकी उत्तरी सीमा सतपुड़ा पहाड़िया हैं और पश्चिम मे उनकी सीमा गोवा तक है। उनकी शक्ति पश्चिमी घाट के बाधापूर्ण क्षेत्रो मे है जो मैदान की ओर

पूर्वी क्षेत्र मे बढ़ता गया है और जिधर की भूमि नीची है और इस तरह मराठा सीमायें बंगाल की खाड़ी तक चली गई हैं।"[1] मराठों को इस तरह पीछे से प्राकृतिक सुरक्षा-व्यवस्था प्राप्त हुई जहां वे आसानी से अपना कार्य भी कर सकते थे और शत्रु से लड़ भी सकते थे।

मराठा जाति का चरित्र भी उनके उत्थान व विकास से किसी-न-किसी तरह संबद्ध है। दो ओर से बड़े पहाड़ों से घिरा—सहयाद्री रैंन्ज उत्तर से दक्षिण तक फैला हुआ व सतपुडा और विन्ध्या रैंन्ज पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ: "महाराष्ट्र के पठार में ऐसे लोग बसे है जिनमे आर्य और द्रविड़ समानुपात मे मिश्रित है जिसके कारण इनके दोनो के गुण इनमे विद्यमान है और उनमें दोषो का विस्तार भी नही होने पाया है।"[2] आत्म नियंत्रित व एकाकी बाह्य विश्व से असंबंधित मराठे स्वतंत्रता प्रेमी थे जिसने उन्हें दासता से दूर रखा और उन्हें अपने लिए एक राजनैतिक शक्ति के सृजन की शक्ति दी।

मराठों के लोकप्रिय धर्म "ने संप्रदायवादिता की पराकाष्ठा से अपने को बचाया जिसने एक ओर दो बड़े क्षेत्रों को असंगठित और बर्बाद कर दिया और दूसरी ओर जाति भेद जो कि उत्तरी भारत मे महत्त्वपूर्ण बना दिया गया था यदि वे संगठित न हुए तो भी उन्होंने अन्यमनस्कतापूर्ण सहिष्णुता को अपनाया ठीक वैसा ही जैसा उनका देश है।"[3] इसमें संदेह नही कि इसने भी मराठा को स्वतंत्रता प्रेमी बनाने में सहयोग दिया होगा और इससे धार्मिक एकता की स्थापना हुई होगी।

मराठो ने पहले से ही दक्षिण के राज्य गोलकुंडा और बीजापुर आदि में सैनिक अफसरों तथा कूटनीतिज्ञो के रूप मे सेवा की थी। यह प्रशिक्षण और मलिक अम्बर की गुरिल्ला युद्ध तकनीक उनके खून में थी जिसने उन्हें विश्वास के साथ लड़ने और शासन करने के लिए प्रोत्साहित किया।

विलासिता व धनधान्यता जो उनके जीवन धारा के रुधिर का अंग बन चुका था उसके कारण उत्पन्न जब आंतरिक भेदभाव और पौरुषहीनता ने दक्षिण की सल्तनतों का पतन प्रारंभ कर दिया तब मराठों को अपना उत्थान करने का अवसर प्राप्त हुआ। उस समय इन्हे और अवसर मिला जब ये राज्य आगे चल कर औरंगजेब द्वारा नष्ट कर दिए गए और अब मराठो के पड़ोस में कोई ऐसा राज्य न रह गया जो भय का कारण हो।

---

1. नांदकर्णी : पूर्वोद्धृत, पृ० 271।
2. रानाडे, एम० जी० ऐण्ड तेलग, के टी० ; राइज आफ द मराठा पावर ऐण्ड अदर एसेज ऐण्ड ग्लीनिंग्स फ्राम मराठा क्रानिकल्स, बम्बई, 1961, पृ० 10-12।
3. वही, पृ० 13।

दक्षिण भारत में उत्पन्न होने वाले धार्मिक आंदोलन ने शीघ्र ही भक्तिधारा के रूप मे पूरे देश में अपना स्थान बना लिया। यह इस्लाम के धार्मिक कट्टरता का परिणाम था और इसका प्रभाव मराठो पर भी बहुत था। यह वही आंदोलन था जिसने सिख धर्म को पंजाब मे जन्म दिया और जिसके कारण उस क्षेत्र मे मुगल शक्ति को एक धक्का लगा और जिसके कारण अफगान आक्रमण को सिंध के उस पार ढुलका दिया गया। पंजाब मे नानक की तरह महाराष्ट्र में भी नाम देव, एकनाथ और तुकाराम जैसे संत हुए जिन्होंने प्रेम दर्शन और आत्मा की स्वतंत्रता की शिक्षा दी। उन्होंने मानव एकता का भी संदेश दिया और ईश्वर की एकरूपता को भी स्वीकार किया। छोटे और बड़े के भेदभाव को भी इन्होंने नकारा जिसके आधार पर राजनैतिक दासता को उन्होंने अस्वीकार किया।

आर्थिक तत्त्वों ने भी महाराष्ट्र के लोगो को राजनैतिक बंधनों से मुक्त होने की प्रेरणा दी और प्रतिष्ठा से भोजन, वस्त्र व रहने की भावना का उदय किया। अलाउद्दीन खिल्जी से शिवाजी के काल तक लोगों ने अत्यधिक कर का भार, बेगार और ऐसे ही अन्य आर्थिक कष्ट का भार झेला था। मुगल आक्रमणों ने स्थिरता का विनाश किया, शांतिपूर्ण पेशे को कठिन कर दिया और लोगों का आर्थिक कष्ट भयानक हो गया। "भारत में विकलता का प्रमुख कारण आमतौर से आर्थिक है" रॉलिन्सन ने लिखा है, "और ये शिवाजी के आर्थिक सुधार थे जो जनता के लिए संस्तुत किए गए।"[1] मराठा चौथ और सरदेशमुखी जिसका भार पड़ोसी शक्तियो पर पड़ता था और जिससे मराठा जनता की सुविधाएं बढ़ती थी इससे मराठा नेताओं के प्रति प्रजा की विश्वासपात्रता में वृद्धि होती थी।

औरंगजेब की अविचारित नीति और कट्टरता जो उसने बीजापुर और गोलकुंडा के मुस्लिम राज्यो के लिए अपनाई उससे भी मराठो की उत्पत्ति और विकास को बल मिला। उन गैर मुसलमानो के प्रति जिनको उसने जबरदस्ती धर्म परिवर्तन कर मुसलमान बनाया तथा उनके ऊपर विशेष राजनैतिक अधिकार और जजिया लगाया, उसकी धर्मान्धता दर्शनीय थी। इसने मराठो को मुगल अधिकार को चुनौती देने के लिए बाध्य किया तथा स्वतंत्रता की लड़ाई लडने की प्रेरणा दी। इस तरह वे दक्षिण के मुस्लिम राज्यों मे सहायता पा सके जिन्होंने अपने को मुगल विनाश से बचाने के लिए मराठो को प्रसन्न करने और अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया।

मराठों के उत्थान और विकास का आधार मुगलो के पतन की स्थिति थी। औरंगजेब के उत्तराधिकारी कमजोर और पौरुषहीन सिद्ध हुए जिन्होंने अपना

1. रालिन्सन, एच० जी० . शिवाजी द मराठा, पृ० 95।

समय हरम के विनाशात्मक आकर्षण में व्यय करना अधिक उपयुक्त समझा, युद्ध के मैदान में कम। औरंगजेब के अनवरत युद्ध ने अपने पीछे एक ऐसा समाज छोड़ दिया जो बढ़ते हुए आर्थिक दबाव से झुझलाता रहा। सेना पर से धर्म के जादू का पर्दा हट गया। इसमें अबहर जाति, राष्ट्रीयता व धर्म के लोग काम करने लगे थे। सदा चलते रहने वाले युद्धों व कठिनाइयों ने इस भावना को कमजोर कर दिया और अब इस पर थकावट और विनाश के चिह्न अंकित हो गए।

इसके विपरीत मराठा समाज उत्थानवत तथा युवा कार्यवाहियो मे भावना सहित रत था। शिवाजी में एक सेनापति, संगठनकर्त्ता व प्रशासक के गुण के अतिरिक्त उनका व्यक्तिगत चरित्र, शाहू से लेकर माधवराव प्रथम के काल तक के बीच युवा व उत्साही पेशवाओ का एक समूह जिन्होने मराठा सेना को महाराष्ट्र से बाहर ले जाने का सामर्थ्य दिया एवं उत्तर-पश्चिम मे अटक व पेशावर तक, उत्तर व उत्तर-पूर्व मे दिल्ली व बंगाल तक उनकी युद्ध यात्रा ने उनके विकास मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इनकी नयी युद्ध शैली ने भी प्रारंभ में मराठों के विकास में कम महत्त्वपूर्ण भूमिका न अदा की। उनकी गुरिल्ला शैली स्थिति और परिस्थिति के अनुकूल थी। विरोधी सेना के एक भाग पर आक्रमण कर उसे उसके चारो ओर घूम-घूमकर परेशान करना और फिर भी युद्ध से अपने को बचाए रखना, यह सब मराठो के लाभ प्राप्ति मे सहयोगी हुआ जिससे उनकी इच्छा पूरी हुई।

6
भारत में युरोपीयों का आगमन

पुर्तगाली

पूरे मध्यकाल में युरोप के बाजारों में भारतीय मिट्टी के बर्तनों की बड़ी मांग रही और इस पर होने वाला लाभ ह्वाइटवे के अनुसार इतना अधिक था कि "इससे कई इलाकों से होकर यात्रा का व्यय निकल जाता थ तथा अनेकानेक वाहनान्तरण का व्यय भी पूरा हो जाता था।" इस तरह दोहरी यात्रा पर होनेवाले विशाल व्यय के अतिरिक्त जेद्दा होकर युरोप जाने वाले माल प्रेषित करने वाले कैरों के सुल्तान को अपनी वस्तु के मूल्य का 1/3 देने को बाध्य थे। जेद्दा से स्वेज तक 5% देना पड़ता था। कैरों से 1 मील दूर तक एक और बड़ा कर देना पड़ता था। अलेक्जान्ड्रिया में खरीदने और बेचने वाले दोनों 5% तथा इसके अलावा 5% "जहाज वाले को समुद्र से सुरक्षित निकलने के लिए" देना पड़ता था।"[1]

इस सभी ने युरोपीय राष्ट्रों को भारत के लिए नये और सीधे रास्ते की अनुभूति कराई। इस समय केवल स्पेनी और पुर्तगाली ही पूर्व के व्यापारियों में थे और इनमें से भी पुर्तगालियों ने अफ्रीका तटीय क्षेत्रों में 1471 में भूमध्य रेखा को पार कर पर्याप्त शक्ति जमा की थी। पर उन्हें महानतम सफलता 17 मई 1498 में तब मिली जब वास्को द गामा ने कालीकट से 8 मील उत्तर में एक भारतीय गाव में अपना जहाजी लंगर डाला। यह भारत में प्रथम पुर्तगाली की यात्रा तो न थी पर वास्को द गामा ने आशा अन्तरीप से मोजाम्बीक होकर वहां से कालीकट का जो मार्ग खोजा था वहां नया और सीधा भारत को पहुंचने वाला सामुद्रिक मार्ग था जिसने "युरोप के इतिहास पर" तत्काल ही स्पष्ट प्रभाव डाला। सर ई० डेनिसन रॉस ने लिखा है, "सम्भवतः मध्यकालीन किसी भी घटना ने इस तरह का दूरगामी प्रभाव सभ्य जगत पर नहीं डाला जितना भारत के लिए खुलने वाले इस सामुद्रिक मार्ग ने।"[2]

नवीन खोज के फलस्वरूप भारतीय विलासिता की सामग्री तमाम क्षेत्रों से होती हुई भेजी जाने के स्थान पर सीधे पुर्तगाल भेजी जा सकती थी। इसने

---

1. ह्वाइटवे : राइज आफ पोर्तगीज पावर इन इंडिया, पृ० 7-8, कोटेड इन कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 5।
2. देखें, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 5, पृ० 6-8।

मुस्लिम शासको को जिनके क्षेत्र से होकर अभी तक व्यापार होता था, अपंग बना दिया। जेनेवा और वेनिस जो इससे बहुत धनी-मानी हो गये थे उन पर भी बुरा प्रभाव पडा। मुस्लिम व्यापारी जिनका भारतीय सागर और लाल सागर पर एकाधिकार था उनके हाथ से सारी शक्ति निकल गई। और पुर्तगाल एकाएक प्रतिष्ठा और धन-प्राप्ति दोनो मे ऊचा उठ गया। इसीलिए 1502 में पोप अलेक्जाण्डर षष्ठ ने पुर्तगाली शासक को "इथियोपिया, अरब, फारस और भारत के जहाजरानी, विजय और व्यापार के स्वामी" की उपाधि प्रदान की।

जब वास्को द गामा कालीकट पहुचा, यह क्षेत्र एक हिन्दू द्वारा, जिसे जमोरिन की पैतृक उपाधि प्राप्त थी, शासित था। साथ ही कोचीन, कन्नौर और विजयनगर पर भी हिन्दू शासकों का प्रभाव था जब कि मुसलमानो का अधिकार दिल्ली, बरार, बीदर, गुजरात, बीजापुर और अहमदनगर पर था। चूंकि भारत के लिए व्यापार का सीधा सामुद्रिक मार्ग मुस्लिम व्यापारियो के लिए सीधी चुनौती थी जिसका इस देश के व्यापार पर एकाधिकार था इसलिए यह महत्त्वपूर्ण था कि वास्को द गामा ने एक हिन्दू क्षेत्र पर पदार्पण किया।

जब द गामा ने समुद्र यात्रा हेतु लिस्बन छोडा था उसके पास तीन जहाजे और 1700 व्यक्ति थे। यह अभियान, पुर्तगाली शासक राजा इमैनुअल की संरक्षता मे भारत के सीधे रास्ते की तलाश कर मसाले की प्राप्ति और ईसाई धर्म के प्रचार के उद्देश्य से किया गया था। पर लगता है कि पुर्तगाली तीव्र मस्तिष्क और कूटनीति कुशल न थे क्योकि जहा जमोरिन ने उनका स्वागत किया वहां वे उसको प्रसन्न कर भारतीयो से लाभ उठाने हेतु भेटें नही लाये। उनको यह भी गलतफहमी थी कि यदि कोई मुसलमान नही था तो वह ईसाई ही होगा। इसी कारण वास्को द गामा तीन माह तक एक हिन्दू क्षेत्र मे रहने के बावजूद यह नही समझ पाया कि वह जिनके बीच था वे हिन्दू थे। उसकी भावशून्यता और अज्ञानता सच में इतनी स्पष्ट थी कि उसने एक हिन्दू मंदिर मे प्रवेश कर पूजा भी की तब भी उसको लगा कि वह एक गिरजाघर मे होकर आया है। उसका व्यवहार भी भारतीयो के प्रति अच्छा न था जिनकी सदाशयता उसके लिए इस कारण आवश्यक थी कि वे मुसलमान व्यापारियो से दूर रहें। 29 अगस्त 1498 को भारत से वापस होते समय उसने पांच लोगो को इस अपराध के कारण बन्दी बना लिया कि उन्होंने उसके अपने देश ले जाने वाले सामान को कुछ देर मे मुक्त किया था। पर फिर भी गामा का अभियान सफल रहा। जब वह दो वर्ष की अनुपस्थिति के उपरान्त घर पहुंचा तो उसके पास अब भी 55 लोग जीवित थे और उन तीन जहाजों मे जो वह ले गया था, वह अब भी बचकर कालीकट मे प्राप्त व्यापारिक वस्तुओं से भरी हुई वापस आ गई थी। वह पुर्तगाली व्यापारियों को यह बताने की स्थिति मे भी था कि

उनका कौन-सा सामान जमोरिन की जनता में खपत योग्य है।

द गामा की सफलता से प्रोत्साहित हो पुर्तगालियों ने 1,200 आदमियों एवं जहाजों का एक बड़ा बेड़ा पेड्रो अल्वारेज कैब्राल की अध्यक्षता में भेजा था जो 13 सितम्बर 1500 को कालीकट पहुंचा। कैब्राल का भी जमोरिन ने स्वागत किया पर वह द गामा से भी कम कूटनीति का ज्ञान रखता था, जिसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही काल में उसने शासक से संबंध खराब कर लिये और उसे वहा से कोचीन की ओर भागना पडा। कालीकट से पीछा करते एक बेड़े के कारण उसे शीघ्र ही चुपके से पुर्तगाल वापस होना पड़ा। कैब्राल की यात्रा भी इस दृष्टि से सफल रही क्योंकि लौटते समय वह पाच जहाजों में भारतीय सामग्री भरकर लाने मे सफल हुआ जिससे इस अभियान का व्यय पूरा हो गया।

1501 मे चार और पुर्तगाली व्यापारी जहाज कोचीन मे प्रकट हुए और सफलतापूर्वक वापस हुए। 29 अक्टूबर 1502 को द गामा दूसरी बार कालीकट मे 20 जहाजों के साथ पहुचा। दूसरी बार द गामा की यात्रा के समय तक पुर्तगालियो ने यह अनुभव किया कि वे विशद भारतीय व्यापार से तभी लाभ उठा सकते हैं जब अरबों को वे इस क्षेत्र से निकाल दें। उन्हें पता लगा कि इसकी सम्भावना है कि हिन्दू शासक अरबो की तुलना मे उन्हें अवसर इसलिए दे सकते हैं क्योंकि अरब मुसलमान है और युरोपीय लोग भारतीय बाजारो में कई तरह की नवीन वस्तुएं ला सकते है, क्योंकि हिन्दू ईसाई न होकर अन्य धर्म वाले हैं और जो भारत के मुस्लिम शासको से अच्छे संबंध नही रखते रहे है, जिनका अरबों के प्रति सहायता का रुख था, कि कोचीन बन्दरगाह के रूप मे कालीकट से भी अच्छा था और इन दोनो स्थानो के शासक थे तो हिन्दू पर आपस में अच्छे संबंध नहीं रखते थे जिससे युरोपीयो को लाभ की आशा थी। इस तरह पुर्तगालियों की सफलता की अच्छी आशा थी यदि वे सहिष्णुता और कूटनीतिज्ञता से आगे बढते। द गामा, जैसा हमने पहले ही देखा है, इस कार्य के लिए बहुत उपयुक्त न था और उसकी दूसरी यात्रा के दौरान उसका व्यवहार अपने विरोधियो के प्रति और बर्बर व अत्याचारपूर्ण हो गया और मित्रों के प्रति और कम आरामदायक तथा आत्मीय रह गया। इसलिए यह आश्चर्यजनक नही है यदि इसकी सफलता अपेक्षित रूप से स्पष्ट नही रही। फिर भी जब वह लिस्बन वापस गया तो कोचीन में एक फैक्ट्री स्थापित करके एवं कन्नूर में एक रक्षात्मक घेरा बनाकर ही गया।

इसके बाद पुर्तगालियों ने वार्षिक व्यापार अभियान की नीति का परित्याग कर 1505 में एक वायसराय की नियुक्ति कर दी जिसे भारत में तीन वर्ष रहना था। इस पद पर पहला व्यक्ति फ्रांसिस्को द अल्मीडा नियुक्त हुआ जो अपनी 'नीला पानी' नीति के लिए प्रसिद्ध था जिसके अन्तर्गत उसका विश्वास था कि

भारत मे पुर्तगाली बस्ती बढाने से बेहतर जलसेना शक्ति बढ़ाना है। उसके साहसिक कार्यो की सफलता ने स्वागत करते हुए जमोरिन के एक जहाजी बेड़े को नष्ट करा दिया, पुर्तगालियों को नष्ट करने हेतु मिस्र का जहाजी बेडा दिव के निकट पराजित कर दिया गया, कोचीन का हिन्दू राजा पुर्तगालियो के हाथ का खिलौना हो गया और पुर्तगाली मालावार तट पर कोचीन, कन्नानूर और अन्जादीव में छोटे-छोटे दुर्ग स्थापित करने में सफल हो गये। अल्मीडा का उत्तराधिकारी 1509 मे अलबुकर्क हुआ।

अलबुकर्क (1909-15)

अलबुकर्क भारत में पुर्तगाली क्षेत्र का गवर्नर होकर 5 नवम्बर 1509 मे आया। वह पुर्तगाली विजेताओ और प्रशासकों में सबसे महान था जिन्हें इस कार्य के लिए भेजा गया था।

. अलबुकर्क की सबसे महान सफलता उसकी बीजापुर के शासक युसुफ आदिल खां के विरुद्ध 4 मार्च 1510 मे गोवा की विजय और उसकी प्राप्ति थी। इसके कुछ समय ही बाद बीजापुर के शासक ने इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया और अलबुकर्क को अन्जादीव चले जाना पड़ा। पर बीजापुर के शासक की सफलता अस्थायी थी और नवम्बर के अंत तक पुर्तगाली इसकी पुनः प्राप्ति मे सफल हो गए। गोवा की सुरक्षा को मजबूत करने हेतु अलबुकर्क 1512 में एक और महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त करने में सफल हुआ जब उसने बहादुरी से आगे बढकर गोवा से 6 मील दूर बनसतेरिम के किले पर अधिकार कर लिया। इसे बीजापुर के शासक ने मजबूती से सुरक्षित कर रखा था। गोवा इस तरह पुर्तगाली हाथों मे पूर्ण रूप से सुरक्षित हो गया और अलबुकर्क ने इसे पुर्तगाली केन्द्र में परिवर्तित कर दिया। इस व्यापारिक महत्ता को बढ़ाने के लिए पास-पड़ोस से होकर जाने वाले जहाजो को यहां आने को बाध्य किया गया। बाहर से लोगो को यहां तक कि हिन्दू और मुसलमान व्यापारियों को गोवा मे बसने का प्रोत्साहन दिया गया। उसने युरोपीयों को भी यहा से भारतीय पत्नियां ले जाने का लालच दिया और हिन्दू रीति-रिवाजों जैसे सती प्रथा मे सुधार करने का भी प्रयास किया।[1]

अलबुकर्क की एक अन्य महान सफलता सुदूरपूर्व मे 1511 मे मलक्का की विजय थी। यह स्थान मूरो के अधिकार मे था और भारत व चीन के व्यापार का प्रमुख मार्ग था, और मक्का व कैरो की समृद्धि मे प्रमुख भूमिका अदा करता था। यहा पर पुर्तगालियों के अधिकार ने वेनिस को उस पर निर्भर बना दिया

1. गुप्ता, ए० दास : मालाबार इन एशियन ट्रेड (1740-1800), कैम्ब्रिज, 1967, पृ० 9-10; और देखिये, डानवर्स, एफ० सी० : द पोर्तगीज इन इंडिया, लदन, 1894, दो भाग।

क्योंकि मुसलमान व्यापारियों से मिलने वाला सामान अब उन्हें इन्हीं से मिल सकता था। इसीलिए इसमें आश्चर्य नहीं कि जब पोप को इस स्थान पर अधिकार की सूचना मिली तो उसने पुर्तगालियों की इस सफलता को कई जन-सभाएं आयोजित कर उसे धन्यवाद देने हेतु धर्मानुष्ठान किया।

साथ ही अलबुकर्क यह भी अच्छी तरह जानता था कि पुर्तगालियों का भारत व्यापार पर अधिकार तभी हो सकेगा जब मुसलमान व्यापारियों के विरोध के खतरे को आधार स्रोत फारस की खाड़ी और लाल सागर में ही समाप्त कर दिया जाए। इसीलिए उसने 1513 में अदन पर आक्रमण किया। पर दुर्भाग्य से इसमें सफल नहीं हो सका। पर फारस की खाड़ी के एक द्वीप आर्मूज पर पुर्तगालियों ने 1515 में अधिकार कर लिया और अलबुकर्क इससे अपने को इतना समर्थ अनुभव करना प्रारंभ कर दिया कि उसने फारस के इस्माइल सफदी के कूटनीतिक संबंध स्थापित करने के एक प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया क्योंकि वह यह सोचता था कि ऐसा करने से उपरोक्त द्वीप पर वह अधिकार न रख पाएगा।

भारत में पुर्तगाली साम्राज्य का संस्थापक, पुर्तगालियों का नायक, निःस्वार्थी देशभक्त व अपने नेता पुर्तगाल के राजा का स्वामिभक्त सेवक अलबुकर्क 16 दिसम्बर 1515 में मृत्यु को प्राप्त हुआ। वह पूर्वदर्शी और दूरदर्शी दोनों था जिसने अल्मीडा की भांति जनसेवा शक्ति मात्र बढ़ाने की जगह पर उन स्थानों पर अधिकार करने की आवश्यकता भी अनुभव की जो व्यापार के प्रमुख रास्ते में पड़ते थे या जो उनके लिए खतरा थे। सर ई० डी० रास ने लिखा है : उसने अनुभव किया कि पूर्वी व्यापार की तीन चाभियां मलक्का, आर्मूज और अदन हैं। उसने प्रथम दो पर पूर्ण अधिकार कर लिया और तीसरे को लगभग पा लिया।"[1] यदि वह अपने इच्छित स्थान को नहीं जीत सका तो उसने वहां पर कोचीन की तरह दुर्ग बनाने की कोशिश की और जब वह यह भी नहीं कर सका तो उसने उस स्थान के व्यापारियों को पुर्तगाली राजा की महत्ता स्वीकार करने के लिए लालच देने का प्रयास किया। उसका पुर्तगालियों को भारतीय स्त्रियों से विवाह करने का प्रोत्साहन इस उद्देश्य से था कि भारतीय क्षेत्रों में पुर्तगाली उपनिवेश स्थापित किए जाएं और वह इसमें बिल्कुल सफल रहा।

अगर अलबुकर्क और जीवित रहा होता तो उसने अदन पर भी निश्चित रूप से अधिकार कर लिया होता। फिर भी पुर्तगाली राष्ट्र को उसकी सेवाएं कम न थीं। आर्मूज से मलक्का तक उसने जल सेना के अड्डे स्थायी कर दिए। व्यापार की ही देख-रेख नहीं हुई बल्कि विदेशी जहाजों को पुर्तगाली दया की छाया में आना पड़ा। उसको और लोग इसके लिए भी प्रेम और आदर प्रदान करते थे केवल

1. कैम्ब्रिज, पूर्वोद्धृत, पृ० 6-8।

पुर्तगाली ही नही भारतीय भी उसकी उदारता और ईमानदारी की कद्र करते थे। पर अरबों और मिस्रियों के लिए, जिन्हे पुर्तगालियों ने व्यापार से हटाकर उनका स्थान ले लिया था, वह केवल एक निर्दयी शैतान था जो अपने शत्रुओं से व्यवहार करते समय किसी चीज का ध्यान नही करता। उसने स्वय पुर्तगाल सम्राट को लिखा था : "मैं मुसलमानो का कोई भी कसवा या भवन नही छोड़ता हू। जो जीवित मिल जाते है उन्हे भून डालने की आज्ञा मैं देता हूं..."

निनो द कुन्हा

अलबुकर्क के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण भारतीय क्षेत्र का पुर्तगाली गवर्नर निनो द कुन्हा था जिसने नवम्बर 1529 मे कार्यभार ग्रहण किया। यह वही था जिसने मुगल सम्राट हुमायू और गुजरात के बहादुरशाह के बीच संघर्ष का लाभ उठाते हुए कूटनीति और शक्ति का प्रयोग कर 1534 मे बेसीन और 1537 मे दिव पर अधिकार कर लिया। पुर्तगालियो ने इमादुलमुल्क, जो गुजरात का एक प्रमुख सामंत था और उस स्थान के राजस्व पर पर्याप्त प्रभाव रखता था, के हाथ से 1559 में दमन भी छीन लिया। इसी बीच 1518 मे उन्होने लका मे अपने लिए एक किला बनाने मे भी सफलता प्राप्त कर ली थी और 16वी सदी के मध्य तक पूरे लंका पर उनका अधिकार हो गया।

एण्टानिओ द नोरोन्हा

एक अन्य पुर्तगाली गवर्नर जिसका नाम यहा दिया जा सकता है एण्टानिओ द नोरोन्हा था जिसने अपना कार्यभार सितवर 1571 मे सभाला। इसी के काल मे 1572 मे अहमदाबाद में सम्राट की अधीनता स्वीकार करने वाले गुजरात के राजा मुल्तान मुजफ्फर से मिलने के बाद अकबर कैम्बे गया और वहां पुर्तगालियों से पहला परिचय प्राप्त किया। पुर्तगालियों और मुगल सम्राट के सम्बन्ध का परिणाम हुआ वह 'जेसुइट मिशन' जिसका मुगल दरबार मे 1580 में स्वागत किया गया।

पर भारत मे पुर्तगाली शक्ति का उत्थान लंबी अवधि तक नहीं चला। 1580 में स्पेन के फिलिप द्वितीय ने पुर्तगालियों को अलकान्तारा मे बुरी तरह पराजित कर पुर्तगाल पर अधिकार कर लिया और इसके तुरन्त बाद पूर्व मे पुर्तगाली शक्ति में एक दीमक लग गया। डचों के स्थान पर शक्ति अर्जित करने वाले अंग्रेजो ने एक के बाद दूसरे पुर्तगाली क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। [illegible] ने उनके क्षेत्र अम्बोयना पर अधिकार कर लिया। डचों ने 1640 मे [illegible] पर, ईरान ने 1622 मे ओर्मुज पर और मराठों ने 1739 में बेसीन पर [illegible]

कर लिया। 1656 में पुर्तगाली लंका से भी निकाल दिए गए। और अब उनके पास अंतिम रूप से जो स्थान बच रहे और जिस पर उनका अभी कुछ काल पहले तक अधिकार रहा, वे थे गोवा, दमन व दीव।

पुर्तगाली शासन के प्रभाव

भारतीय क्षेत्र के भागो पर पुर्तगाली शासन का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह था कि इन्होने यहा एक राजनीतिक तत्त्व को पहले से उपस्थित पुराने राजनीतिक शक्तियो के सग्रह मे लाकर जोड़ दिया। यह नवीन तत्त्व युरोपीय मजबूती से विकासगति की ओर बढ़ता गया। पुर्तगालियों के बाद डच और उसके बाद फ्रांसीसी और वे सभी बाद मे ब्रिटिशो द्वारा स्थानापन्न हो गए जिन्होने मजबूती से भारत मे अपनी शक्ति को बढ़ाया और अंततः पूरी भारत भूमि को ब्रिटिश साम्राज्य मे बदल दिया। यदि पुर्तगाली, तुर्कों के इन प्रयासो में सफल न हुए होते जिसमे उन्हे भारत से हटाने की चेष्टा हुई थी तो इसमे सदेह नही कि युरोपीय शक्तियों की स्थापना यदि हमेशा के लिए समाप्त नही तो कम-से-कम "सदा के लिए स्थगित कर दी गई होती।"

इस शासन का दूसरा प्रभाव यह हुआ कि कालीकट के जमोरिन को मालाबार क्षेत्र मे हिन्दू शासन के अतर्गत राजनैतिक एकता स्थायित्व करने में सफलता नही मिली। पुर्तगालियो ने महत्त्वाकांक्षी जमोरिन से प्रारभ मे ही अपने संबंध खराब कर लिये। उन्होंने अनेक राजाओ को अपना मित्र बनाया जैसे कोचीन और उनमें आपस मे वैर भाव पैदा करके उनको पूरी तरह बाट दिया।

युद्ध कला के क्षेत्र में उन्होने नवीन विधि का प्रारंभ कराया। बेहतर चाल के स्तर और कार्यक्षमता का भी प्रारंभ हुआ। बंदूको और तोपखानों में उनकी कार्य-क्षमता ईर्ष्या उत्पन्न करने वाली थी और उनके शत्रु उस समय भयातुर हो जाते थे जब वे हथियार लेकर खड़े होकर आग उगलना प्रारंभ करते थे।

पर उनका राजनैतिक प्रभाव उस क्षेत्र से बाहर नही पड़ा। यदि वे विजय नगर के राज्य के मित्र थे तो भी उन्होंने उसे मुस्लिम शत्रुओं के विरुद्ध सहायता नही दी और उन्होने अपने सीमित व्यापार के क्षेत्र से बाहर जाने की चेष्टा कभी नही की। इसीलिए इसमे आश्चर्य की कोई बात नही है कि यदि उन्होने देश मे अपनी शक्ति मजबूत की तो उन्होंने अपनी बंदूकों को अपनी जहाजों की सीमा मे ही रखा।

यह भी नही कहा जा सकता कि उन्होंने भारत मे युरोपीय व्यापार के विकास मे कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। भारत से सीधे व्यापार पथ की खोज ने उन्हे मुसलमान व्यापारियों का स्थान प्रदान कर दिया। इससे भारत में

युरोपीय वस्तुओ के लिए कोई नयी बाजार नही तैयार हो सकी जो पहले जैसी विलासिता और कलाकृतियों तक सीमित रहकर जीवन की आवश्यक वस्तुओं से नही जुडी। पश्चिमी अफ्रीका व ब्राजील में भारतीय कपास की वस्तुओं के लिए नये बाजार का विकास मात्र संयोग था जो व्यापार के नये मार्गों की खोज के कारण संभव हुआ था। इसमें पुर्तगालियो के उत्साह और वुद्धि की कोई भूमिका नही थी।

पर जब हम व्यापार की बात करते है, हम पुर्तगालियों की उस देन को नही भुला सकते जिसके अंतर्गत उन्होंने भारत के व्यापार मार्गो को सुरक्षा प्रदान की। समुद्री डाकुओं के गुप्त स्थल, जिसने मालाबार व अन्य स्थानों पर व्यापार कार्य को एक साहस का कार्य बना दिया था, अब सुरक्षित व नियंत्रित हो गए। पुर्तगालियो की बंदूक से सजी नावें व्यापार-पथ पर चलती रहती व सहायता मांगने वालो की सहायता करने लगती। और यदि इसके लिए वे विदेशी व समुद्र के किनारे के व्यापारियों पर कर लगाते थे तो यह समझदारी की बात अधिक है, ईर्ष्या की कम।

यदि हम सास्कृतिक प्रभावो की ओर दृष्टि फेरें तो पता चलता है कि पुर्तगालियों ने इस क्षेत्र में आत्म-प्रशंसा योग्य कुछ नही किया। पुर्तगाली क्षेत्र के वहुत से भारतीयों को यों तो ईसाई धर्म स्वीकार करना पडा। पर ब्राह्मण ब्राह्मण और क्षत्रिय क्षत्रिय ही रहे। हां, अब वे अपने को ब्राह्मण ईसाई और क्षत्रिय ईसाई कहने लगे। बंगाल के पुर्तगालियों के संबंध मे बर्नियर लिखता है "ये ईसाई नाम के ही हैं, उनका जीवन घृणित है, बिना अनुताप और पछतावे के वे एक-दूसरे को कत्ल करते रहते या विष देते रहते हैं।"[1] निस्संदेह पुर्तगालियो द्वारा भेजी गई जेसुइट मिशनरियां उदाहरण के लिए मान्सरेट और अक्वाविया का स्वागत मुगल दरबार में 1580 मे किया गया और दुबारा 1594 मे भी जब जैवियर और पिनहीरो ने मुगल सम्राट पर यह प्रभाव डालने की चेष्टा की कि उनका धर्म महान है। वे सभी अपने उद्देश्य मे असफल हुए, पर मान्सरेट की कमेन्ट्री तथा जैवियर के पत्रों का ऐतिहासिक मूल्य किसी भी स्थिति में कम नही आंका जा सकता। भारतीयों से किए जाने वाले पुर्तगालियों के विवाह सांस्कृतिक क्षेत्र में उनके लिए सहयोग के स्थान पर विरोध ही.उपस्थित किये। वे भारतीयों को तब भी अधिक प्रभावित नही कर सके जब उन्होंने हिन्दू सामाजिक कुप्रथा जैसे सती प्रथा को सुधारने में पूरी तरह से असफलता प्राप्त की।

पुर्तगाली उपनिवेशों में हर चेष्टा की गई कि लोग पुर्तगाली भाषा सीखें और अपनी भाषा भूल जाएं। 1684 मे तत्संबंध मे एक कड़ा आदेश भेजा गया

---

1. बर्नियर, एफ० : ट्रैवेल्स इन मुगल इम्पायर, पृ० 438, 443-44।

और 1745 मे बिशप फादर डीलोरेन्जो द सान्ता मारिया ने ब्राह्मणों को यह आदेश दिया कि पुर्तगाली भाषा छः महीने मे सीख लें। अन्य जाति के लोगो के लिए यह अवधि एक वर्ष कर दी गई। यह भी कहा गया कि "जो पुरुष या स्त्री पुर्तगाली भाषा नही जानते, प्रयोग नही करते या नही बोलते वे विवाह नही कर सकते।" पर यहा भी उन्हें कोई महत्त्व की सफलता नही मिली और गोवा के लोग अपनी कोंकणी भाषा बोलते रहे जो अन्य भारतीय भाषाओ से मिलती थी।

पुर्तगालियों की असफलता के कारण

अंग्रेजों की भाति पुर्तगालियों को भारत में साम्राज्य स्थापित करने मे सफलता नही मिली। उनकी असफलता का कारण एक रुचिकर अध्ययन प्रस्तुत करता है।

उनकी असफलता का एक सबसे महत्त्वपूर्ण कारण उनकी कूटनीतिभिज्ञता की कमी एवं बडे पुर्तगाली अधिकारियों के व्यवहार मे शत्रु व मित्र दोनो के प्रति सयम का अभाव था। वास्को द गामा के अनावश्यक प्रतिशोधपूर्ण व्यवहार, जिसे हम पहले ही देख चुके है, ने मुसलमान व्यापारियो को उन्हें भारतीयो के समक्ष बदनाम करने का अवसर दिया। केब्राल की जमोरिन के सबंध के प्रति असावधानी ने उनको और उनके देश को अपमान ही प्रदान किया जब उसे कालीकट को छोड़कर भागना पडा। कुछ बहुत छोड़े अपवादो को छोड़कर जो गवर्नर या वायसराय और हुए उन्होंने किसी बेहतर गुण का प्रदर्शन नही किया।

पुर्तगालियो ने भारत से छीने क्षेत्रों के आंतरिक प्रशासन में कोई व्यक्तिगत ईमानदारी और अच्छे चरित्र का आदर्श भी प्रस्तुत नही किया। वे घूसखोरी और अक्खडपन के लिए जाने जाते थे। हत्या और "एक दूसरे को बिना अनुताप और पछतावे के विष देना" उनको बर्नियर द्वारा प्रदान किया गया चरित्र प्रमाण पत्र था। अलबुकर्क संभवतः प्रथम और अन्तिम पुर्तगाली गवर्नर था जिसमे प्रशासन की क्षमता थी। इससे यह आश्चर्यजनक नही है कि वे लोगों के हृदय मे स्थान नही बना सके जो उनके भारत परिचय के साथ इतना आवश्यक हो गया था।

बर्नियर के अनुसार पुर्तगाली "ईसाई केवल नाम ही को थे।"[1] उन्होंने अपने धर्म मे लोगों के परिवर्तन के मामले मे उत्साह प्रदर्शित किया और क्रूरता का भी व्यवहार किया। 1540 में पुर्तगाली राजा के आदेशानुसार गोवा के सभी हिन्दू मंदिरो के गिराए जाने और 1560 मे धर्माधिकरण (इन्क्वीजीशन) के

1. बर्नियर : पूर्वोद्धृत, पृ० 358; राव, आर० पी० : पोर्तगीज रूल इन इंडिया, कुन्हा, टी० बी० : गोआज फ्रीडम स्ट्रगल भी देखें।

लागू करने से भारतीयो का सहयोग मिलने के स्थान पर उनसे उनकी दूरी बढ़ गई। उनकी प्रशासकीय ईकाई धर्म के फैलाने में पूरी तरह लगा दी गई और वे प्रायः कम ही जनता के हित की सोच पाए क्योंकि वे अपने धार्मिक कार्य के लिए वचनबद्ध थे।

भारत में पुर्तगाली कर्मचारियों का वेतन भी कम था। इस कारण उनमे से बहुत से लोग वैधानिक या अवैधानिक रूप से व्यक्तिगत व्यापार भी करते थे जिससे उनकी अपने राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के प्रति स्वामीभक्ति पर्दे के पीछे चली गई।

मिले-जुले विवाह पद्धति के प्रारंभ ने उनके उपनिवेश के विकास करने के स्थान पर पुर्तगालियों के प्रति पहले से ही सिद्ध आतक की भावना को दृढ किया। पुर्तगालियों की नयी पीढ़ी जो विकसित हुई उसमें न तो अपने पिता का ही गुण था और न माता का। वे एक पतनवत जाति हो गए थे जिनमे पूर्व पुर्तगालियों से अधिक अक्खडपन था। इसने उन्हें अपमान और घृणा, न कि प्रशंसा व प्रेम का, पात्र बना दिया था।

पुर्तगाली भारत एव भारतीयों को समझने की चेष्टा कर रहे थे कि उसी समय महान मुगल शक्ति का आगमन हुआ। एक क्षेत्र के बाद दूसरा क्षेत्र मुगल शासकों के नियत्रण मे जाता रहा, पुर्तगालियो के लाभ उठाए जाने वाली कमजोरी का केन्द्र धीरे-धीरे गायब होता गया और उन्होंने पाया कि उनकी शक्ति और प्रभाव को समुद्र किनारे के क्षेत्र पर ऊंची दीवार ने अलग कर दिया है।

और जब औरगजेब की मृत्यु के बाद मुगल राज्य के पतन का प्रारंभ हो गया उस समय तक पुर्तगालियो को अनेक अनुशासनहीन भारतीयो का मुकाबला कम करना पड़ा। अब उन्हे बेहतर ढंग से प्रशिक्षित डच और फ्रासीसियो का तथा इससे भी अधिक अनुशासित, स्फूर्तिवान, महत्त्वाकांक्षी एवं कूटनीतिक अग्रेजो का विरोध झेलना पड़ा जिनके सामने वे कुछ न थे। पुर्तगालियो की प्रारंभिक प्रतिष्ठा प्राप्त जल सैन्य शक्ति का स्थान ब्रिटिश उत्कृष्ट जल सेना ने ले लिया। इसलिए यह आश्चर्यजनक नही है कि जहां भारत मे ब्रिटिश शक्ति बढ़ी वहा पुर्तगाली शक्ति घटी और बर्बाद हुई।

पुर्तगाली बड़े राष्ट्र के थे भी नही। अपने राष्ट्र मे उनके सीमित साधन थे और उसे भी उन्हे भारत तथा ब्राजील में अपने साम्राज्य के नियत्रण मे लगाना होता था। और फिर ब्राजील के प्रति इनका आकर्षण और ध्यान भारत की तुलना मे अधिक था।

इसके अतिरिक्त 1580 मे पुर्तगाल स्पेन के अधीन हो गया। लिस्बन की पुरानी महत्ता समाप्त हो गई। पुर्तगाल के नये शासको का पूर्व मे अधिकार के प्रति उनका पुर्तगालियो से भिन्न दृष्टिकोण था। स्पेनियो ने भारत के पुर्तगालियो का स्थान ग्रहण कर यहां के लोगों के शोषण में अधिक और सगठन में कम रुचि

दिखाई। वे भारत मे अपने पूर्ववर्तियो के विकास मे भी रुचि नही ले रहे थे। और जब तक पुर्तगाली पुन: स्वतन्त्रता प्राप्त करें तब तक नर्मदा के नीचे काफी पानी वह चुका था। अब पुर्तगालियों के लिए नये सिरे से प्रयास वेकार था।

डच

फिलिप द्वितीय के विरुद्ध स्वतंत्रता आंदोलन में विजय की घड़ी ने डचों की समाप्तप्राय शक्ति को एकाएक उत्साह प्रदान किया और वे पूर्व से उत्साहपूर्वक व्यापार करने लगे। उन्होंने पुर्तगालियो के विरुद्ध विरुदपूर्ण सफलता प्राप्त की। पहली डच कम्पनी 1592 मे संगठित की गई। इसके बाद ऐसी ही तमाम कंपनिया बनी। परिणाम यह हुआ कि अव्यवस्था व्याप्त हो गई जिसके कारण अधिकारियो ने 1602 में सभी को एक में मिला दिया और इसे 'डच ईस्ट इडिया कंपनी' का नाम देकर पूर्व से व्यापार करने का चार्टर उन्हे प्रदान कर दिया।

नव संगठित डच कम्पनी व्यापार क्षेत्र में एक धमाके सहित प्रविष्ट हुई और एकाएक सुदूरपूर्व में मसाले के द्वीपो पर अधिकार कर लिया। यहां पर 1623 मे अम्ब्वायना के हत्याकाण्ड की घटना हो गयी जिसमें अंग्रेजों को हानि हुई और वे द्वीप से भगा दिए गए। पर बाद मे क्रामवेल ने इसके लिए 85,000 पौंड की क्षतिपूर्ति प्राप्त की। 1641 मे पुर्तगालियों से उन्होंने 'मलक्का' प्राप्त किया और 1658 तक पुर्तगाली लंका भी गंवा वैठे जहा डचों का अधिकार हो गया।

पर शीघ्र ही ईस्ट इंडीज द्वारा बहकाये जाने की गलती का भान उन्हें हुआ। उन्हें स्पष्ट हुआ कि विश्व राज्य की कुजी सच में भारत मे निहित है। इसलिए वे पूर्वी आर्चपिलागो से आगे बढ़े और मालाबार पर आक्रमण किया। पुर्तगाली एक स्थान से दूसरे सभी स्थानों से हटाए जाते रहे जब तक कि डचो ने नागापट्टम में अपना केन्द्र बना लिया और उन्हे दक्षिणी भारत से एकदम निकाल न दिया।

पर डचों को शीघ्र ही पता चला कि वे अंग्रेजो द्वारा वही व्यवहार पा रहे हैं जैसा व्यवहार डचो ने अंग्रेजों के साथ मसाले के द्वीपो मे किया था। सुदूरपूर्व में हारने के बाद अंग्रेजों ने भारत में अपने भाग्य की पुनर्प्राप्ति की चेष्टा की, उसके लिए एकाग्रचित्त हो शक्ति लगाई और धीरे-धीरे एक शक्ति के रूप में उभरे जो डचों की तुलना मे बहुत आगे थे। डच जैसे ही अंग्रेजो के समक्ष आए एक के बाद दूसरी विफलतायें प्राप्त करने लगे। 1759 में हुगली में उनका जहाजी बेड़ा पूर्णतया बर्बाद कर दिया गया और 1781 तक वे अपने केन्द्र नागापट्टम तक से हटाकर खदेड़ दिए गए।[1]

---

1. विस्तार के लिए पढ़िये, दत्ता, के० के० ; डच इन बगाल एण्ड बिहार।

फ्रांसीसी

सर परसीवल ग्रिफिट्स ने लिखा है, "भारत में फासीसियों का विकास सुविधापूर्वक तीन अवस्थाओं में बांटा जा सकता है जिसमें से प्रथम था शांतिपूर्ण बसने का काल जो 1715 के लगभग समाप्त हुआ जिस बीच फ्रासीसियो के प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी डच थे, दूसरा काल था पुनर्संगठन और व्यापारिक विकास का, इसके वाद अंग्रेजों से सैनिक सघर्ष का काल आया जो 1741 के लगभग प्रारंभ हुआ और 1763 तक पूर्णतः समाप्त हो गया।"[1] हम यहां संक्षेप मे पहली दो अवस्थाओ का विवेचन कर सकते है और तीसरी अवस्था का विवेचन अगले अध्याय के लिए सुरक्षित रख सकते है।

1527 में लगभग एक अग्रेज के भारत में पदार्पण से लगभग 50 वर्ष पूर्व एक फ्रांसीसी व्यापारिक जहाज दिव मे दिखाई पड़ी। इसके वाद तमाम व्यक्तिगत प्रयास पूर्व से व्यापार संबंध सुधारने के लिए किए गए। पर फ्रांस के लोगो ने तत्संबंध मे अंग्रेजो की तुलना मे कम रुचि, उत्साह और शक्ति दिखाई। अंतत. युरोपीय राष्ट्रों के उत्साह और प्रगति से प्रभावित होकर फ्रांसीसी सरकार ने स्वयं हर क्षेत्र में पहल की। परिणामस्वरूप फ्रासीसी मत्री कोलबैर के प्रयास से 1664 में दो कंपनियां स्थापित हुई। एक का नाम वेस्ट इंडिया कपनी था जिसका काम विजय और धर्म परिवर्तन था और दूसरी ईस्ट इडिया कंपनी थी जिसे डचो और अंग्रेजों की प्रतिस्पर्धा मे व्यापार करना था।

फ्रासीसी ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के पूर्व फ्रांसीसी अधिकारियो ने इसमें धन लगाने हेतु आमंत्रण देते हुए खूब प्रचार किया। लेकिन फ्रासीसी व्यापारियों का इस संबंध मे प्रतिउत्तर कई कारणो से उत्साहवर्धक नही था। पहला यह था कि फ्रासीसी जनता का विश्वास सरकार में नही था और उसके प्रचार को वे अपने लिए कष्ट का आमत्रण मानते थे। दूसरे वे अभी तक स्पेन से होने वाले युद्ध के फलस्वरूप भोगे गए हानि के नीचे दवे हुए थे और तीसरे उनमें ऐसे कार्यो के लिए साहस के गुणों का अभाव था। फ्रांस के महान फ्रांसीसी कार्डीनल रीशलू ने स्वयं पहले कहा था : "फ्रांसीसीयो का अतिशीघ्रता का स्वभाव जिसके अंतर्गत वे विचार रक्षण में ही अपनी इच्छापूर्ति की कामना करने लगते हैं उनके लिए लंबी जल-यात्राएं उचित नही है।" इसका परिणाम यह हुआ कि डेढ करोड़ लीवर की आवश्यक पूंजी की जगह पर मात्र 25 लाख एकत्रित हो सकी जब कि राजा ने अपनी ओर से 30 लाख अग्रिम प्रदान किया।

फ्रांसीसी ईस्ट इंडिया कंपनी के बनते ही इसके समक्ष दुहरा कार्य आ गया। मेडागास्कर द्वीप का उपनिवेशीकरण और भारत से व्यापार। मेडागास्कर के

---

1. ग्रिफिट्स, सर परसीवल : द ब्रिटिश इम्पैक्ट आन इण्डिया, पृ॰ 60।

उपनिवेशीकरण के पीछे उद्देश्य था : "फ्रांसीसी जहाजों के लिए भारत जाने के समय के लम्बे रास्ते में बदरगाह की व्यवस्था और इसे ऐसी जगह पर अवस्थित करना जहां से कंपनी की जहाजें हर दिशा में आसानी से जा सकें।"[1] कागज पर योजना तो अच्छी थी और ईर्ष्या पैदा करने वाली थी पर जब व्यवहार में इस पर कार्य प्रारंभ हुआ तो मेडागास्कर योजना अत्यधिक जोखिम भरी लगी जिसके परिणामस्वरूप इस योजना को छोड़कर भारत से सीधे व्यापार पर ध्यान केन्द्रित किया गया।

इस कार्य में सम्मिलित होने हेतु फ्रासीसी जनता की प्रतिक्रिया जो भी रही हो पर उत्साहवर्धक नही थी। यहा तक कि 1664 का सीमित उत्साह भी 1665 आते-आते हिस्सेदारों से जब दूसरी किश्त मांगी गई, और घट गया। यह उत्साह तीसरी किश्त के समय 1664 मे तो इतना घट गया कि फ्रांसीसी कंपनी मात्र फ्रांसीसी सरकार का एक विभाग रह गई।

एक फ्रासीसी एजेण्ट वेरवेर ने मुगल सम्राट औरंगजेब से एक फरमान प्राप्त किया और पहली फ्रासीसी फैक्ट्री सूरत मे दिसंबर 1667 मे स्थापित की गई। दूसरी फैक्ट्री मछलीपट्टम में दिसंबर 1669 में प्रकट हुई और शीघ्र ही फ्रांसीसी व्यापार फ्रांसिस के डाइरेक्टर जनरल पदाधीन विकसित होने लगा। कारों के मतानुसार : "फ्रांसीसी सरकार ने 1669 में भारतीय सागर में द लाहये के नेतृत्व मे एक शक्तिशाली बेड़ा अपने शासन के शक्ति के छोटे से उदाहरण"[2] के रूप मे आसपास के राजाओ को शक्ति प्रदर्शित करने के लिए भेजा। पर द लाहये और कारो के बीच मतभेदो के कारण फ्रासीसी अपनी शक्ति डचो के समक्ष नही दिखा सके जहा इस समय इसकी सबसे अधिक आवश्यकता थी। इन्होने गोलकुडा के राजा के समक्ष अपनी मुट्ठी बांधी और सेण्ट थोम पर दो वर्षों तक कब्जा बनाए रखा। पर अंतत. 1674 मे वह हाथ से निकल गया। 1672 मे बैंसे तो कारो को वापस बुला लिया गया और भारत में उसके उत्तराधिकारी फ्रांसिस मार्टिन ने द लाहये को आवश्यकतानुसार हर सहायता और सहयोग प्रदान किया। भारत मे फ्रांसीसी बेड़े ने जो प्रभाव छोड़ा वह यह था कि डचो से पहले वह बहुत कमजोर था।

पर फ्रांसिस मार्टिन कारो से चतुर था। अगर कुछ नही तो भी बीजापुर से राजा को गोलकुडा के विरुद्ध लड़ाकर इस अवसर से लाभ उठाकर उसने बीजापुर राजा से पांडिचेरी क्षेत्र पाने में सफलता प्राप्त की जो भारत मे फ्रांसीसियों का प्रमुख केन्द्र बना।

1. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 5, पृ० 61-65।
2. वही, पृ० 67।

आगे के 40 वर्षो में फ्रासीसियों और डचो के बीच या तो युरोप और भारत में या मात्र भारत में संघर्ष चलता रहा। पांडिचेरी डचों द्वारा 1693 मे छीना गया जो 1697 मे फांसीसियों को रिसविक की सधि के अंतर्गत वापस मिल गया। इसी समय मार्टिन पुन. गवर्नर भी नियुक्त किया गया। मार्टिन इस पद पर अपनी मृत्यु के समय 1706 तक बना रहा।

भारत भेजे गए फ्रांसीसी गवर्नर जनरलों में योग्यतम मार्टिन की मृत्यु पर जो अव्यवस्था फैली उसमे डचों से हो रहे अनवरत संघर्ष ने फ्रांसीसी कंपनी की आर्थिक स्थिति को पंगु बना दिया। यह स्थिति 1720 तक चलती रही जब जीन लॉ ने कंपनी को पुनर्गठित किया और इसे पुनः व्यापारिक उत्थान के पथ पर अग्रसर किया। कंपनी ने माही पर 1725 में और कोरोमंडल तट पर स्थित कारीकल पर 1739 में अधिकार किया। कासिम बाजार, चन्द्रनगर और बालासोर मे भी बस्तियां बनाई गई। 1735 मे नियुक्त पाडिचेरी के गवर्नर ड्युमा मे भारत स्थित फ्रांसीसियो को एक योग्य और साहसी गवर्नर मिला। ड्युमा ने मुगल अधिकारियों से सिक्के ढालने तक की आज्ञा प्राप्त की। और इस तरह कंपनी ने 1740 तक बेहतर आधार पर अपने को संगठित करना प्रारंभ कर दिया जब उसे अंग्रेजों से नयी चुनौती का सामना करना पड़ा।

अन्य छोटी शक्तियां

डेनों ने 1616 मे अपनी व्यापारिक कपनी का संगठन करते हुए भारत मे अपनी बस्तियां स्थापित की जिनमें से एक 1620 मे ट्रंकूबार में और दूसरी 1755 में सेरामपुर मे बनाई गई। पर उनके सफलता के रास्ते मे असफलता आई और उन्होंने यही ठीक समझा कि अपनी फैक्ट्री वे ब्रिटिशो को बेच दें। उन्होने 1845 मे भारत छोड़ दिया।

1723 मे एक आस्ट्रिया की व्यापारी सस्था ने व्यापार के लिए एक संगठन बनाया और दूसरी सस्था 1755 मे बनाई गई। पर ये दोनो कंपनियां स्वीडिश ईस्ट इंडिया कंपनी की भांति समाप्त हो गई। इन्हे 1731 मे चार्टर दिया गया था पर जल्दी ही ये पतन के पथ पर अग्रसर हो गई।

7
ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी

स्थापना और प्रारंभिक विकास

1600 का वर्ष भारत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है। इसी वर्ष यहां से बहुत दूर लदन के सौदागरों का एक छोटा-सा समूह इंगलैण्ड की रानी एलिजाबेथ महान से मिला और एक सरकारी चार्टर प्राप्त किया। जिसके आधार पर ईस्ट इडिया कंपनी का नाम रखा गया, "द गवर्नर एण्ड कंपनी आफ मर्चेण्ट्स आफ लदन ट्रेडिंग इन टु ईस्ट इडीज।" भारत में प्रवेश करते ही इस व्यापारिक कंपनी ने शीघ्र ही अपनी कार्यशैली बदल दी और 1765 तक यह एक ऐसी क्षेत्रीय शक्ति के रूप में उभरी कि एक साम्राज्य निर्माण की दिशा मे चल पड़ी जिसने भावी भारत के लगभग 200 वर्षों के भाग्य पर नियन्त्रण किया। इस कंपनी की स्थापना की परिस्थिति, इसका व्यापारिक संस्था के रूप में प्रारंभिक संविधान व विकास, इसका अतिम रूप से क्षेत्रीय शक्ति के रूप में परिवर्तन आदि स्पष्ट रूप से आधुनिक भारत के अत्यधिक महत्त्वपूर्ण शीर्षक है जिनका विवेचन यहा होना चाहिए।

जैसा हमने देखा है युरोप मे 15वी सदी आश्चर्यजनक रूप से कर्मठता का काल है। इस काल में अब आटोमन तुर्को ने लेवान्त के आस-पास के क्षेत्रो पर अधिकार कर लिया तथा युरोप के पूर्वी व्यापार को जो उनके अधिकार क्षेत्रो से होकर गुजरता था उन्हें बाध्य किया कि वे भारत से व्यापार करने के लिए नये सामुद्रिक मार्गों को तलाश करे। पुर्तगालियो ने इस संबध मे बडा कष्ट सहा और अतत आशा अतरीप से होकर एक पथ तलाश करने में सफलता प्राप्त की जिसका विवरण हम पीछे दे आये है। इसके शीघ्र बाद स्पेन भी इस क्षेत्र मे प्रविष्ट हुआ जिससे दोनों देशों मे संघर्ष प्रारभ हो गया। अंततः दोनों के मध्य शांति स्थापना के लिए पोप ने हस्तक्षेप किया। 1493 की मई मे पोप अलेक्जेण्डर षष्ठ ने एक आदेश के अतर्गत केप वार्दे द्वीप के 370 लीग पश्चिम और दक्षिण मे एक काल्पनिक पक्ति बना दी। इस आदेश-पत्र के अंतर्गत आविष्कारित गैर ईसाई भूमि को पुर्तगाल और स्पेन के मध्य बाट दिया गया। इसी के अनुसार इस पक्ति के पूर्व की सभी भूमि पुर्तगालियों की व्यापार करने की कार्यस्थली होनी थी और इसके पश्चिम के क्षेत्र स्पेन के अधिकार मे जाने थे। यह आदेश-पत्र 1506 मे जूलियस

द्वितीय के आदेश-पत्र द्वारा स्वीकृत किया गया और पुनः 1514 में लियो दशम के आदेश-पत्र द्वारा भी स्वीकृत किया गया। इस तरह पूर्वी समुद्र पुर्तगाली लोगों के व्यापार नियत्रण में आया जो 16वीं सदी में इसके सर्वेसर्वा बने रहे और युरोप की कोई भी ईसाई शक्ति पूर्व से संबध स्थापित करने का साहस न करती थी क्योंकि इससे पोप के आदेश का उल्लंघन होता।

16वीं सदी के प्रारंभ के उत्तरार्द्ध मे युरोप की दशा मे परिवर्तन हुआ। पोप का अधिकार घटने और भयानक धक्के पाने लगा। बहुत दिनों से इगलैण्ड पुर्तगालियो की धन-धान्यता से ईर्ष्या करता था, पर अभी तक पोप के आदेश उसे पूर्व से सबंध स्थापित करने से रोकते थे। इगलैण्ड के नाविको का भारत के लिए नये रास्ते की खोज का प्रयास सफल नही हुआ था और अव वे किसी दूसरे रास्ते पर विचार करने लगे। शीघ्र ही इंगलैण्ड मे धर्म सुधार आदोलन प्रारभ हो गया जिससे पोप का अधिकार वहा कमजोर पड़ने लगा। 1580 में पुर्तगाल पर स्पेन का अधिकार हो गया और कुछ ही समय वाद स्पेनी आर्मीडा पर इंगलैण्ड की विजय ने इंगलैण्ड के व्यापारियो को पूर्व की ओर व्यापार करने की इच्छा का स्मरण दिलाया। 1591 मे भारत और वर्मा से होकर रोल्फ फिच की सफल वापसी और उसके रोचक यात्रा संस्मरणो ने पूरे इग्लैण्ड मे सनसनी फैला दी और इन परिस्थितियों में ब्रिटिश व्यापारियों की पूर्व से व्यापार करने की योजना ने विकसित रूप लिया। 22 सितंबर, 1599 को लदन के कुछ प्रमुख व्यापारियो ने फाउन्डर्स हाल मे बैठक की जिसमे भारत से व्यापार संबधी विचार-विमर्श हेतु एक परिषद का निर्माण हो गया। यह बैठक लार्ड मेयर की अध्यक्षता मे हुई और बैठक के वाद एक योजना का प्रार्थना-पत्र तैयार करके रानी के समक्ष प्रस्तुत किया गया जिसमें उन्हें कपनी के रूप में इडीज से व्यापार करने के लिए स्वीकृति देने को कहा गया। 31 दिसवर 1600 को रानी ने एक अधिकार-पत्र की घोषणा चार्टर के आधार पर की और इस तरह ईस्ट इडिया कपनी की स्थापना हुई।

चार्टर ने कंपनी को स्वतंत्र व्यापार व ट्रैफिक की सुविधा दिलाई "ईस्ट इंडीज, एशिया, अफ्रीका के भागों एव अमेरिका के सभी वदरगाहों, द्वीपों, स्थानो, नगरो व संकरी खाडियों" या उनमे से कही कप आफ बोना एसपेरान्जा से लेकर मैंजलान के स्ट्रेट तक से भी आगे व्यापार की सुविधा हुई। चार्टर 15 वर्षो के लिए स्वीकार किया गया। पर यह किसी भी समय दो वर्ष की पूर्व सूचना पर समाप्त किया जा सकता था।

संविधान

इस चार्टर मे कंपनी के संविधान की रूपरेखा भी प्रस्तुत की गई और इसकी

शक्ति और अधिकार परिभाषित हो गए। कंपनी को रेग्युलेटेड कंपनी का स्वरूप दिया जाना था जिसकी महत्ता एस० सी० इलबर्ट के अनुसार यह थी: "ऐसी कंपनी के सदस्य कुछ सामान्य नियमों के अंतर्गत होते थे और कुछ सामान्य अधिकार के भी अधिकारी होते थे। पर इनमें से प्रत्येक अपनी पूंजी से व्यापार करता था और इसमें मिले-जुले व्यापार की बात नही थी।"[1] इस तरह यह ज्वाइंट स्टाक कंपनी से भिन्न होती थी। इसके सदस्यो को प्रत्येक पूर्वी व्यापार के अभियान के अवसर पर धन देना पडता था और इससे प्राप्त धन देय धन के अनुपात मे आपस मे बट जाता था।

इस तरह प्रत्येक व्यापार अभियान सदस्यों व व्यक्तिगत सदस्यों के लाभ की दृष्टि से भिन्न ही रहता था।

पर कई बातो मे कपनी एक पूर्णरूपेण विधिविहित संस्था से भिन्न थी। इसका कोई भी सदस्य इस संस्था से अलग किसी से व्यापारिक सबंध नही रख सकता था और उसे अपना चंदा एक निश्चित व्यापारिक अभियान के लिए जो कंपनी के समितियो या निर्देशको द्वारा सयोजित की जाती थी, देना होता था। इस तरह प्रारंभ मे ऐसा उद्देश्य न होने पर भी ज्वाइंट स्टाक कंपनी का बीजारोपण हुआ।

कंपनी का संपूर्ण कार्य 24 कमेटियो द्वारा सहयोग प्राप्त गवर्नर द्वारा नियंत्रित होता था। इस नियत्रक संस्था को व्यापारिक माल को जहाज मे बाहर भेजने, उसे विश्व के कोने-कोने में पहुंचाने और आयातित माल के विक्रय की व्यवस्था करने की व्यवस्था करनी पडती थी। कपनी के सुचारु रूप से कार्य-संचालन हेतु बाद में डिप्टी गवर्नर, सेक्रेटरी एवं ट्रेजरर की भी नियुक्ति की गई। यहां यह बता देना आवश्यक है कि कमेटी कोई कई व्यक्तियों की ही नही बल्कि एक व्यक्ति नियत्रित थी। इन्ही कमेटियो ने ही बाद मे डाइरेक्टरो का नाम प्राप्त किया। कमेटियों का कोर्ट आफ प्रोपराइटर्स की बैठक में कंपनी के भागियों द्वारा वार्षिक चुनाव होता था। चाहे जिस व्यक्ति के कितने भी भाग क्यों न हो, एक व्यक्ति को एक मत का अधिकार था। प्रथम 24 कमेटियां और प्रथम गवर्नर टामस स्मिथ का नाम वैसे प्रथम चार्टर में ही दे दिया गया था। एक भागीदार द्वारा चाहे उसके कितने ही भाग क्यों न हो, एक मत की प्रणाली ने बाद में एक रोचक कार्यवाही की शुरआत करा दी जिसके अंतर्गत उन्होने, जिनके पास अधिक भाग होते थे वार्षिक चुनाव के समय अस्थायी तौर पर अपने संबंधियों और विश्वस्तों में इसे बांटना प्रारंभ कर दिया जिससे वे अधिक मत प्राप्त कर सकें।

---

1. इलबर्ट, एस० सी० : गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया, हिस्टोरिकल सर्वे, पृ० 7।

कंपनी की सदस्यता पूंजी में भागीदारों तक ही सीमित नही रही। इसे उत्तराधिकार, भेंट, प्रवेश शुल्क देकर, अप्रेन्टिस करके व सेवा करके भी प्राप्त किया जा सकता था। कभी-कभी इसके सहायतार्थी भी सदस्य हो जाते थे। सामान्यतया एक व्यक्ति 200 पौंड देकर इसका सदस्य हो सकता था। प्रारंभिक चरण में कंपनी की सदस्य सख्या 217 थी जो बाद मे पर्याप्त रूप में बढ़ गई।

जहा तक कि कंपनी की शक्ति और अधिकार का संबध है उपरोक्त व्यापारिक शक्ति के साथ कंपनी की अच्छी सरकार हेतु, इसके सेवको के उचित नियत्रण के लिए एवं "व्यापार एवं ट्रैफिक के बेहतर विकास व चलते रहने देने के लिए" इसे आदेश अथवा आर्डिनेन्स प्रसारित करने और इस क्षेत्र के विधि व प्रथा के अनुसार उपनियम बनाने की विस्तृत शक्ति प्राप्त थी। कंपनी को अपने सेवकों को उनके अपराधों के लिए कैद करने या अर्थ-दड देने का न्यायिक अधिकार भी प्राप्त था।

कंपनी को दिए गए एकाधिकार स्पष्ट रूप से विस्तृत थे पर यदि इन्हे तत्कालीन परिस्थितियो के संदर्भ मे देखा जाए तो इसका अपना औचित्य है। ये वे दिन थे जब भारत जैसे सुदूर क्षेत्रो से व्यापार युरोप के देशों के आपसी व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण बड़ा कठिन हो गया था। साथ ही समुद्र-पथ जलीय डाकुओ से आच्छन्न थे और उनसे निबटकर ही सामान्यतया व्यापार लाभ प्राप्त हो सकते थे। कंपनी को स्थायी शासको से आवश्यक व्यापार सुविधाए प्राप्त करने के लिए बनावटी आन-बान पर भी व्यय करना होता था। और अतत. उन दिनो अंतर्राष्ट्रीय कूटनीति का उतना विकास भी नही हुआ था। इन परिस्थितियों मे स्पष्ट रूप से एक विस्तृत एकाधिकार और शक्ति कंपनी को देनी आवश्यक थी।

एस० सी० इलबर्ट ने लिखा है: "भारत में ब्रिटिश अधिकार (1600-1765) ऐतिहासिक दृष्टि से दो स्रोतों पर आधारित है। यह कुछ तो ब्रिटिश ताज और संसद से प्राप्त हुआ और कुछ मुगलो व यहा के स्थानीय शासको से प्राप्त हुआ।" 1600 से 1765 तक इलबर्ट ने आगे लिखा है कि "ईस्ट इंडिया कंपनी मूलतः व्यापारी थी।"[1] पर समय बीतने के साथ इस व्यापारी संस्था ने धीरे-धीरे क्षेत्रीय शक्ति प्राप्त कर ली और 1765 तक इसका क्षेत्रीय चरित्र ज्यादा या कम स्थापित हो गया। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त शक्ति और उसके प्रभाव से होने वाले कंपनी की प्रकृति में परिवर्तन का सक्षिप्त परिचय यहां प्रस्तुत है।

ताज और संसद से प्राप्त शक्ति

1603 में महारानी एलिजाबेथ मर चुकी थी और इस समय तक कंपनी

1. इलबर्ट, एस० सी० : गवर्नमेन्ट आफ इंडिया, हिस्टोरिकल सर्वे, पृ० 9, 15।

इतनी सम्पन्न हो चुकी थी कि एलिजाबेथ के उत्तराधिकारी जेम्स प्रथम ने, अपने को डब्लू० डब्लू० हटर के मतानुसार : "कपनी के मुक्त सहयोगी एवं राजकीय अधिकार सहित सहायक एव राजकीय ध्वज लेकर चलने वाले व्यक्ति के रूप में अपनी सेवाए सौंपी। पर कपनी की भविष्य दृष्टि में आया कि इतने बडे व्यक्ति को साथ लेकर वे अपने अधिकारियो का स्वतंत्र चुनाव गंवा बैठेंगे क्योकि अतत वह राजा या दरबार का नामित व्यक्ति ही रह जाएगा।" उन्हें यह भी भय लगा कि वे राज्य के कीमती योजनाओं और युद्धों से भी संबद्ध हो जाएगे। इस तरह उन्होने उस चट्टान से अपने को बचाया जिस ओर जाकर फ्रांसीसी कपनी ने अपना जहाज ही तोड डाला और निवेदन सहित सम्राट का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।"[1] फिर भी स्टुअर्ट शासक ने 1609 में कंपनी के चार्टर के पुनर्नवीनीकरण में बाधा नही डाली। चार्टर सदा नवीन होता रहा, भले ही इसे तीन वर्ष की सूचना पर समाप्त करने की बात कही गई रही हो।

इसके 6 वर्ष बाद कपनी को युद्ध संबधी कानूनों के कुछ और अधिकार सौंपे गए जिससे वे लबी सामुद्रिक यात्राओं पर अनुशासन स्थापित रख सके। 1623 के चार्टर ने कपनी को नियत्रित करने और अपने सेवको को दडित करने की और शक्ति प्राप्त की। कपनी को अपने मुख्य अधिकारियो और प्रेसीडेंटों को कपनी के भूक्षेत्र मे कार्य करने वाले सेवकों को दडित करने हेतु कमीशन प्रदान करने का अधिकार दिया। पर यह निश्चय किया गया कि मृत्यु दंड के मुकदमे जूरी की सहायता से निर्णीत होंगे।

चार्ल्स प्रथम के अंतर्गत

पर चार्ल्स प्रथम के समय मे कपनी कठिन परिस्थितियो मे फंस गई। ईस्ट इंडीज मे उसे डचों से बहुत बड़ी व्यापारिक स्पर्धा का सामना करना पड़ा जिससे उसका लाभ विशेष रूप से घटता-बढता रहा। इतना ही नही, कंपनी को मलाया आरकीपेलाजो से हटा दिया गया और व्यापारिक स्पर्धा का परिणाम अंततः फरवरी 1623 के कंपनी के सेवको के हत्याकाड के रूप मे अम्ब्वायना मे सामने आया। कंपनी के कष्ट की समाप्ति यही नही हुई। देश के बाहर जब इसे ऐसे अपमान के घूट पीने पड़ रहे थे, देश मे सम्राट ने कपनी के प्रति सहानुभूति की जगह विरोधी रुख अपनाया। 1635 मे चार्ल्स प्रथम ने सर विलियम कोर्टे को ईस्ट इंडीज मे व्यापार करने हेतु व्यापार सस्था बनाने के लिए 'कोर्टे एशोसिएशन' नामक सस्था बनाने की अनुमति दी जो अस्सादा कपनी भी कहलाई। वैसे तो

1. सर हटर, डब्लू० डब्लू० : ए हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इडिया, भाग-2, कोटेड फ्राम कैलेण्डर आफ स्टेट पेपर्स ईस्ट इडीज, 1622-24 नं० 511।

नयी कपनी ने इस क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण सफलता नही प्राप्त की, पर पुरानी कंपनी को राजकीय समर्थन समाप्ति के साथ एक नयी कंपनी की स्पर्धा की कठिनाइया भी भोगनी पडी।

आलिवर क्राम्वेल

क्राम्वेल के काल में पुरानी कंपनी की तकदीर एक बार पुनः मुस्कराई। आलिवर क्राम्वेल ने इसके हित का समर्थन किया और 1654 मे हस्ताक्षरित वेस्ट मिनिस्टर के संधि के द्वारा 85,000 पौड अम्ब्वायना के हत्याकांड के क्षतिपूर्ति के रूप में डच कपनी से लिये गए। 1657 मे उसने नवीन चार्टर प्रदान करते समय 'कोर्टे एशोसिएशन' एवं पुरानी कंपनी को एक किया। 1657 का चार्टर इसलिए भी स्मरणीय था कि इसने कंपनी की प्रकृति ही बदल दी। 1612 तक इस कंपनी ने एक ऐसी विधिविहित संस्था के रूप में काम किया जिसके प्रत्येक सदस्य प्रत्येक समुद्र यात्रा के आधार पर आपस में चंदा देते थे। पर कंपनी के सदस्य 1612 के बाद अब एक या कई समुद्री यात्रा के लिए या कई वर्षो के लिए चंदा नही देते थे। नयी पद्धति के अन्तर्गत कई-कई 'ज्वाइट स्टाक' सस्थाए बन गई जिनका हिसाब-किताब अलग-अलग रखने के कारण बडी गडबडी होती थी। 1657 के चार्टर ने साथ ही दो कपनियो के विरोध को ही नही समाप्त किया वल्कि कई 'ज्वाइंट स्टाक' को अनवरत चालित 'ज्वाइट स्टाक' मे बदल दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि नवीन ज्वाइंट कपनी अब "मध्यकालीन कमजोर व्यापार से गिल्ड के रूप में बदल गई जिसने आगे चलकर ज्वाइट स्टाक कपनी का स्वरूप ग्रहण किया।" नवीन चार्टर के अनुसार कोई भी 5 पौंड देकर इसका सदस्य और 100 पौड देकर कपनी के स्टाक का सदस्य हो सकता था। चार्टर ने यह भी नियम बनाया कि जिसके पास 500 पौड मूल्य का स्टाक नही है वह मत देने का अधिकार नही पाएगा और वह व्यक्ति किसी कमेटी का सदस्य नही चुना जा सकेगा जिसके पास 1,000 पौड का स्टाक नही है। गवर्नर और डिप्टी गवर्नर की कालावधि घटाकर दो वर्ष कर दी गई।

क्राम्वेल की कंपनी के प्रति सेवाए महान् थी। पर इसका अंधेरा पक्ष भी था। क्राम्वेल ने राज्य के लिए कंपनी से 15,000 पौड का ऋण लिया जिसे कभी वापस नही किया। एक तरह से एक राज्य ने अनुचित कार्य प्रणाली प्रारभ की क्योंकि कपनी को सुविधाएं प्रदान करने के बदले उसका मूल्य उससे वसूलने की प्रवृत्ति का समारंभ हुआ।

1657 मे आलिवर क्रामवेल की मृत्यु हो गई और 1660 में चार्ल्स द्वितीय को अंग्रेजी गद्दी का शासक बनाकर उसकी वापसी क्रिया संपन्न हुई। 1660 की तिथि कपनी के इतिहास में इसलिए महत्त्वपूर्ण थी क्योंकि इसके बाद जहां एक

ओर कपनी की समृद्धि तेजी से बढी दूसरी ओर अब इसके व्यापारिक स्वरूप के साथ-ही-साथ यह एक क्षेत्रीय शक्ति का स्वरूप भी प्राप्त करने लगी। यहा उन परिस्थितियों का परिचय रुचिकर होगा जिसने कंपनी के स्वरूप में यह परिवर्तन किया।

चार्ल्स द्वितीय द्वारा 1669 मे बबई की भूमि का कपनी को स्थानातरण एक कदम था जिसने कंपनी की प्रकृति मे परिवर्तन किया। इसका व्यापार जिन कठिनाइयों में फसा रहा उसके कारण नयी भूमि पर इन्हें प्रायः लडाई करनी पड़ी और फलस्वरूप इन्हे क्षेत्र भी प्राप्त हुआ। "17वी सदी की समाप्ति काल पर दो प्रतिशत मे बढाकर साढे तीन प्रतिशत की गई चुगी ने कपनी को मुगलों के विरुद्ध ला खडा किया। जितना ही कपनी ने भारतीय राजनीति से अपने को जोड़ा, उसका भार बढता ही गया।" 1760 मे अपने भारतीय जीवन काल के प्रारभ मे क्लाइव ने भी अनुभव किया कि "कपनी के पास तुरत ऐसी आय होने की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे वे ऋणमुक्त रहें और अपने देश को सामान से लदी जहाजे भेज सके।"[1] इसी कारण क्लाइव को कंपनी के बगाल के कुछ जिलों में व्यापार करने के अधिकार के साथ ही मुर्शिदावाद के नवाब से उसे कपनी के लिए भूमिकर से अधिक भाग माग करने को बाध्य होना पड़ा। इस तरह कंपनी का राजनीति मे स्वभाव विकसित हुआ और "कम-से-कम 18वी सदी के मध्य से कपनी का लाभ व्यापार के साथ ही क्षेत्राधिकार से भी प्राप्त होने लगा।" और "प्रारभ में क्षेत्र और व्यापार के बीच अन्यतम सबध का पोल तब खुला मिलता है जब हम दोनो के आंकडो के मिश्रित हो जाने के कारण अव्यवस्थित स्थिति की जानकारी प्राप्त करते है जिसकी सूचना 1773 मे नियुक्त कमिश्नरों···की शिकायत की रीति से स्पष्ट है।"[2]

यह उलझन 1765 तक चली जिसके बाद क्षेत्रीय उद्देश्य व्यापारिक हित पर निश्चित रूप से हावी हो गया। यह कैसे हुआ रंग्नास्वामी ने इसका सुन्दर ढग से परिचय दिया है: "1762 तक भारत एवं इंगलैण्ड के व्यापार का सतुलन इगलैण्ड द्वारा भारत को चादी भेजकर ठीक किया जाता था। बाद में किसी भी कारण से भारत मे इसे भेजने में कमी आती गई। इस अभाव की पूर्ति के लिए एक नयी विधि अपनाई गई जिसके अंतर्गत कपनी के राजस्व का एक निश्चित भाग भारत मे सामान खरीदने और उसे इंगलैण्ड भेजने के लिए

---

1. टाम्सन एण्ड गैरेट : राइज एण्ड फुलफिलमेण्ट ऑफ ब्रिटिश रूल इन इडिया, पृ० 98-106।
2. देखें, बर्कस वर्क्स, बहुम्स एडिशन, भाग 4, 31; रंग्नास्वामी : सम इम्पनुयन्सेज दैट मेड ब्रिटिश एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम, पृ० 4।

निश्चित कर लिया गया।" कपनी की इस लागत नीति से उसकी दिशा ही वदल गई। इस लागत नीति ने "भारत से इंगलैण्ड को भेजी जाने वाली वस्तुओं के लिए बनावटी प्रोत्साहन दिया और देश की धनधान्यता का झूठा विंव प्रस्तुत किया जिससे स्वाभाविक रूप से ईस्ट इंडिया के भागीदारो मे अपना भाग बढाने के लिए प्रोत्साहन मिला।" इसका तात्कालिक प्रभाव बंगाल ही में यह दिखाई पड़ा कि कंपनी के प्रोपराइटरों के वार्षिक लाभ मे 2 लाख पौड की बढत हो गई जिसने पुराने लाभाश में भारतीय व्यापार पर लगातार दवाव डालकर बढ़त प्राप्त कर ली और अब 8 लाख पौड वार्षिक सदा बनाए रखना आवश्यक हो गया। "लाभांश की इस भूख की शाति के लिए लागत को बढ़ाते रहना आवश्यक था। वंगाल द्वारा प्रारंभ मे लगाया गया धन 5 लाख पौड था जिसे 1767-68 तक बराबर 7 लाख पौंड कर दिया गया।" इसके लिए कपनी की वाह्य और आतरिक नीति को पुनः समायोजित किया गया जिससे अनवरत युद्धो की एक कडी उपस्थित हो गई। दक्षिण में फ्रांसीसियो से सबंध लागत के लिए उपलब्ध धन से जुड़ा था। अधिक धन होने पर वे शाति से रहते थे और धन के अभाव मे इनमे विद्रोहवृत्ति दिखाई पड़ती थी। क्षेत्रो की हानि लागत मे कमी कर देती थी और क्षेत्र की वृद्धि इनमे वृद्धि।" स्पष्ट रूप से इस तरह यदि भागीदारो को संतुष्ट किया जाता था तो भारत में क्षेत्र विस्तार के लिए प्रयास भी किया जाता था।"[1]

चार्ल्स द्वितीय के काल मे कंपनी को प्रदान किए गए चार्टर इस दृष्टि से महत्वपूर्ण थे क्योंकि इन्होंने कंपनी की प्रकृति मे इस धीमे विकास को स्वीकार किया और वदली परिस्थिति में इसे आवश्यक शक्ति प्रदान की। इनमे से प्रथम 1661 का था जिसने कंपनी के क्षेत्र विकास सबंधी विशेषाधिकार मे अभिवृद्धि तो की ही साथ ही इसके स्वरूप को पुनर्गठित किया।

1661 का चार्टर

इस चार्टर की महत्त्वपूर्ण धाराएं निम्नलिखित थीं :

(1) कम्पनी को 'ज्वाइट स्टाक' के आधार पर पुनर्गठित किया गया। प्रत्येक सदस्य जिसकी भागीदारी 500 पौड की थी उसी को मत का अधिकारी माना गया।

(2) तत्कालीन परिस्थितियो मे कपनी की शक्ति व नेतृत्व को प्रभावी वनाने के लिए कंपनी की शक्ति किलों पर बढा दी गई और उसे गवर्नरो तथा सहायक अधिकारियों की नियुक्ति का अधिकार दे दिया गया।

1. रम्नास्वामी : पूर्वोद्धृत, पृ० 6-10।

(3) अपने कर्मचारियों के ऊपर शासन करने और आज्ञा न मानने व दुर्व्यवहार के विरुद्ध दंडित करने के अधिकार में वृद्धि की गई।

(4) मद्रास, बंबई और कलकत्ता के व्यापार केन्द्रों तथा प्रत्येक फैक्टरियों के गवर्नरों और कौंसिलों को कंपनी के द्वारा यह अधिकार दिलाया गया कि वे अपने अधीन कर्मचारियों के ऊपर अंग्रेजी कानून के अनुसार नागरिक और आपराधिक न्याय करें। जहां गवर्नर न हों, वहां का प्रतिनिधि या उसका परामर्शदाता ऐसे व्यक्ति को न्याय हेतु वहां भेज सकता था जहां गवर्नर हों।

1668 का चार्टर कंपनी के व्यापारिक तत्त्व से क्षेत्रीय शक्ति प्राप्ति के युगांतर-काल में एक और आगे बढ़ा हुआ कदम था। और जब 1669 में बंबई का द्वीप कंपनी को हस्तांतरित कर दिया गया तो इस वर्ष के चार्टर ने कंपनी की सुरक्षा के नाम पर क्षेत्रीय शक्ति में यहां की किलेबंदी का अधिकार देकर और यहां के निवासियों पर कर लगाने का अधिकार देकर उसकी प्रभुशक्ति को और बढ़ा दिया। जहां तक बंबई द्वीप और बन्दरगाह की बात थी वहां अच्छी सरकार के लिए कंपनी को स्वतंत्र रूप से कानून बनाने और आर्डिनेन्स प्रसारित करने का अधिकार प्राप्त हुआ। 1676 में कंपनी को बंबई में सिक्के ढालने का भी अधिकार प्राप्त हुआ।

इस दिशा में दूसरा महत्त्वपूर्ण कदम 1683 का चार्टर था जिसने कंपनी को एक निश्चित सीमा में सेना रखने एवं अमरीका, अफ्रीका एवं एशिया के गैर ईसाई राष्ट्रों से युद्ध व संधि का अधिकार प्रदान किया। कंपनी को अपने मिलों की सुरक्षा के लिए मार्शल ला प्रयोग का अधिकार दिया गया। इस शक्तिदेयता को स्वीकार करते हुए ए० बी० कीथ ने लिखा है कि मुख्य सिद्धांत जिस पर जोर दिया गया, वह था—"ताज की प्रजा के द्वारा प्रभुसत्ता की प्राप्ति ताज की ओर से थी उनकी अपनी ओर से नहीं।"[1] और इसीलिए ताज की शक्ति को कंपनी की शक्ति में युद्ध और शांति के मामलों में सुरक्षित कर दिया गया।

1686 के चार्ल्स द्वितीय के चार्टर ने कंपनी के अधिकार और लाभों को सुरक्षित रखते हुए उसमें और वृद्धि का प्रावधान किया। 1687 में कंपनी को मद्रास में एक म्युनिसिपैलिटी और मेयर का कोर्ट स्थापित करने का अधिकार दिया। कंपनी को एडमिरल और अन्य सामुद्रिक अधिकारों को नियुक्त करने का अधिकार मिला तथा साथ ही तरह-तरह के इकाई के सिक्के बनाने का भी अधिकार। इस तरह 1687 में कंपनी को प्रदान अधिकार उसके क्षेत्रीय प्रवृत्ति की अभिवृद्धि में एक कदम और जोड़ने वाले थे।

---

1. कीथ, ए० बी० : ए कान्स्टीच्युशनल हिस्ट्री आफ इंडिया।

शानदार विप्लव

1688 के शानदार विप्लव के बाद अनेक तत्त्वों ने कंपनी के और उत्थान में बाधा डाली। ह्विग जो अधिकार प्राप्त करने मे सफल हुए थे, वे एकाधिकार के पक्षधर न थे और इसीलिए इस समय एक नयी कंपनी ने जन्म ले लिया जो पुरानी कंपनी के लिए सिर-दर्द बनी रही। भारत में भी इस कंपनी ने अनजाने में मुगल अधिकार को चुनौती दी और फलस्वरूप नैतिक और भौतिक क्षेत्र में अत्यधिक हानि उठाई। कंपनी के नेता सर जोसिया चाइल्ड की प्रतिष्ठा और प्रभाव को भी कुछ समय से घुन लग गया था। और इन सब बातों ने कंपनी का जीवन दूभर बना दिया था। 1691 में संसद ने यह निश्चय किया कि ईस्ट इंडीज मे व्यापार केवल एक अधिकार सपन्न ज्वाइंट स्टाक कंपनी के द्वारा उचित रीति से चल सकता है और इसीलिए यह प्रस्तावित किया गया कि दोनो कंपनिया एक में मिला दी जाए। सर जोसिया चाइल्ड के कारण संसद और पुरानी कंपनी में भेदभाव आ गया था। संसद ने ताज से यह निवेदन किया कि कंपनी को तीन वर्ष की नोटिस देकर काम समेटने को कहा जाय और एक नयी कंपनी को चार्टर प्रदान कर दिया जाय। जोसिया चाइल्ड के लिए यह भयानक परीक्षा की घडी थी जिसके तीव्र मस्तिष्कने स्थिति बचा ली। उसने बडे सरकारी कर्मचारियों को विशेष भेंटें देकर पुरानी कंपनी के लिए 1693 मे चार्टर प्राप्त कर लिया।

1693 का चार्टर

नये चार्टर ने कंपनी के पुराने अधिकारो को बना रहने दिया और साथ ही उन्हें कुछ नये अधिकार प्रदान किए। कंपनी की पूजी को बढाकर 7 लाख 44 हजार पौंड कर दिया गया जिससे इसकी सदस्य संख्या भी बढ गई। किसी एक व्यक्ति को 10 हजार पौंड से अधिक जमा करने की आज्ञा नही दी गई। मताधिकार 1,000 पौंड स्टाक जमा करने वाले को प्रदान किया गया। एक व्यक्ति को अधिक से-अधिक 10 मताधिकार प्राप्त हुए। वही सदस्य गवर्नर या डिप्टी गवर्नर नियुक्त किए जा सकते थे जिन्होंने 4,000 पौंड स्टाक जमा किया हो। कमेटी का सदस्य वही हो सकता था जिसने 1,000 पौंड स्टाक जमा किया हो। कंपनी को दिए गए अधिकार 21 वर्ष चलने थे। पर इसे 3 वर्ष की सूचना देकर पहले ही वापस लिया जा सकता था।

उत्तरकालीन घटनाएं

1694 के चार्टर ने अधिकारियों के बीच चक्रानुक्रम के सिद्धांत को आवश्यक बना दिया। 24 कमेटियों में से 8 को प्रत्येक वर्ष निवर्तमान होना

था। उसी वर्ष कंपनी के विशेषाधिकारों को लेकर एक वैचारिक आक्रमण भी इस पर किया गया जिसमें यह मांग की गई कि "इंगलैण्ड के सभी निवासियों को ईस्ट इंडीज के साथ व्यापार करने का अधिकार है जब तक कि संसद के ऐक्ट के अनुसार इसमें कोई अवरोध न हो।" यह तब और आवश्यक हो गया जब कंपनी ने 'रेड ब्रिज' नामक एक जहाज को ईस्ट इडीज जाने के संदेह में पकड़ लिया। कपनी की इस कार्यवाही को संसद के कुछ सदस्यो ने नापसंद किया और उपरोक्त प्रस्ताव पारित किया। वैसे तो कपनी की अपार शक्ति के कारण इस पर कोई बुरा प्रभाव न पड़ा पर यह महत्त्वपूर्ण था कि संसद का कंपनी के कार्यों पर नियंत्रण कुछ प्रभावी हो गया।

1698 मे एक अन्य चार्टर कंपनी को प्रदान किया गया जिसके अन्तर्गत प्रशासकीय नियमों मे कुछ परिवर्तन किया गया। मत देने वालों की योग्यता कम करके 1,000 पौंड स्टाक से घटाकर 500 पौंड स्टाक कर दी गई और एक व्यक्ति को अधिक-से-अधिक 5 मत देने का निश्चय हुआ। और नियम पुराने ही यथावत् चलते रहे।

संयोजन

नयी कपनी के साथ संबंधो मे कठिनाई चलती रही। दोनों कंपनियों ने बड़ी-बड़ी धन राशि ऋण के रूप मे सरकार को देकर शक्ति और विशेषाधिकार प्राप्त करने की चेष्टा की। वित्तमंत्री माटेग्यु ने परिस्थिति का लाभ उठाया और दोनो से धन उधार लेकर राज्य के आर्थिक बोझ को कम किया। उसने पुरानी कंपनी से 7 लाख पौंड का धन लिया और उसे एक संसदीय ऐक्ट के माध्यम से चले आ रहे अधिकार को स्वीकृत कराने के लिए आश्वस्त किया। नयी कंपनी से 2 लाख पौंड लेकर उसी तरह के आश्वासन दिए गए। कुछ आश्वासनो की पूर्ति हेतु सितंबर 1698 मे पुरानी कंपनी की ही भांति नयी कंपनी को भी निर्मित करने का प्रयास किया गया। लगभग उसी तरह की शक्ति व विशेषाधिकार भी इसे प्रदान किए गए और इस कंपनी का नाम "द इंगलिश कंपनी ट्रेडिंग इन द ईस्ट इंडीज" रखा गया। इस तरह दोनो कंपनियो में भयानक स्पर्धा की स्थिति पैदा हो गई जो दोनो के हित मे अनिष्टकारी थी।

नयी कंपनी प्रारंभ से ही कठिनाई से घिर गई क्योंकि इसने अपना सारा धन ऋण के रूप मे दे दिया। अब इसके पास व्यापार चलाने के लिए बहुत कम पैसा शेष रह गया था। तुलनात्मक दृष्टि से पुरानी-कंपनी की स्थिति बेहतर थी। पुरानी कंपनी के पास व्यापार क्षेत्र, फैक्ट्रियां व अनुभवी कर्मचारी होने के कारण उनकी स्थिति और दृढ़ हो गई थी। पर पुरानी कंपनी भी भारत में पारस्परिक स्पर्धा एवं दोनों के कर्मचारियों के झगड़े के कारण गंभीर हानि से अपने को न

बचा सकी। यह स्थिति 1702 तक चलती रही और तब स्थिति बदली। स्पेनी उत्तराधिकार के मसले को लेकर होने वाले युद्ध ने दोनों कंपनियों को एक-दूसरे के निकट पहुचाया। उनके बीच एक समझौता हुआ जिसमें दोनों कंपनियां और रानी एन सम्मिलित हुईं। 1702 के इस समझौते के अनुसार पुरानी कंपनी को सात वर्ष बाद अपना काल समाप्त करने को कहा गया। इस बीच दोनो कंपनियों का व्यापार 24 प्रबंधकों के निर्देशन मे सामूहिक रूप से चलाने का निश्चय हुआ, जिसमें 12-12 दोनों कंपनियों द्वारा चुने जाते थे। व्यापार की कार्यवाही अंग्रेजी कंपनी के नाम से होती थी।

सात वर्ष के अंत में अर्थात् 1709 से पुरानी कंपनी ने अपना चार्टर रानी एन को सौंप दिया और इस तरह दो कंपनियों को मिलाकर नयी कंपनी का निर्माण हुआ जिसका नाम "द युनाइटेड कंपनी आफ मर्चेंट्स आफ इंगलैण्ड ट्रेनिंग टु द ईस्ट इंडीज" रखा गया। 1702 के समझौते के अन्तर्गत नयी कंपनी का संविधान लगभग पुरानी कंपनी जैसा ही था। वैसे इसमें कुछ आधुनिक शब्दावली का प्रयोग किया गया: (1) इस नयी कंपनी के वे सभी सदस्य हुए जो इसमें भागीदार थे जिसका धन अब 20 लाख पौंड था, (2) प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जिसका 500 पौंड का स्टाक था वह एक मत दे सकता था, और प्रोपराइटर्स की बैठक मे भाग ले सकता था, (3) बैठक की कालावधि मे प्रोपराइटर्स लोगों की सस्था को 'जनरल कोर्ट आफ प्रोपराइटर्स' कहा गया, (4) इन प्रोपराइटर्स को अपने मे से प्रति वर्ष 24 डायरेक्टर्स को चुनना था जिसे 2,000 पौंड का स्टाक रखना आवश्यक था, (5) डायरेक्टरों की बैठक के लिए कोरम 13 का रखा गया, (6) यह भी तय हुआ कि वर्ष में पाच बार जनरल कोर्ट्स की बैठक अवश्य होगी, (7) प्रोपराइटरों मे से एक समिति भी बनाने का निश्चय हुआ जो ससद के ऐक्ट के अंतर्गत कानून बनाएगी, यह तय किया गया। यह कानून संसद के ऐक्ट की भांति प्रभावी होंगे यह भी माना गया।

यह भी स्मरणीय है कि नयी कंपनी लगभग उसी समय बनाई गई जब 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल शक्ति का भारत मे अवसान प्रारंभ हुआ।

उत्तरकालीन परिस्थितियां

नयी कंपनी के प्रारंभ होने के पश्चात्, ऋण के बदले शक्ति और विशेषाधिकार प्राप्त करने की पहले की कंपनियों की परंपरा को लेकर स्थिति गंभीर होती गई। 1711, 1730 और 1744 आदि के ऐक्टों के द्वारा बड़े ऋणों के बदले कंपनी को बहुत से विशेषाधिकार प्रदान किए गए। 1709, 1726, 1754 और 1757 के चार्टरों ने कंपनी के लिए भारत मे सैनिक शक्ति स्थापित करने, लूट का माल बांटने और नये स्थानों पर अधिकार करने आदि की शक्ति

प्रदान की। इस तरह कंपनी को इंगलैण्ड के ताज और संसद दोनों से अधिक शक्ति व विशेषाधिकार प्राप्त हुए और अंततः 1765 तक कंपनी प्रकृति क्षेत्र स्थापित करने लगी एव यह राजनीतिक हो गई।

मुगलों और अन्य से प्राप्त शक्ति

जैसा पहले ही बता चुके है भारत मे कंपनी को शक्ति ब्रिटिश ताज और ससद से उतनी ही प्राप्त हुई जितनी भारत के मुगल एवं अन्य स्थानीय शासको से। भारत मे ऐसे स्थानीय शासकों से प्राप्त शक्ति का परिचय भी यहा दिया जा सकता है। भारत में, प्रारंभ में कंपनी मात्र मुगलों के अधीन लोगो से ही सबंध स्थापित कर सकती थी और यहां भी पुर्तगाली प्रभाव आड़े आकर अंग्रेजी व्यापारियों की इच्छा के मुताबिक संबंध स्थापित होने देता था। 1611 मे विलियम हाकिन्स के माध्यम से जेम्स प्रथम का भारत से अनवरत व्यापार हेतु मुगल सम्राट से आवश्यक आज्ञा को नकार दिया गया। वैसे सूरत के स्थानीय अधिकारियों ने अग्रेजी व्यापारियो को कुछ व्यापार की सुविधा प्रदान की जिसे एक केन्द्रीय फरमान द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई। 1615-19 मे सर टामस रो को अंग्रेजी राज्य का दूत बनाकर मुगल सम्राट से संधि हेतु भेजा गया। पर वह भी सफल नही हुआ। उसे केवल राजकुमार खुर्रम से जो गुजरात का सूबेदार था, स्थानीय अधिकारियों के हस्तक्षेप के बिना व्यापार करने का अधिकार प्राप्त हुआ। सही मानी मे अंग्रेजी व्यापारी भारत मे पुर्तगालियों के मुगलो पर प्रभाव व शक्ति बने रहने तक भारत में व्यापार क्षेत्र मे कोई आशा नही कर सकते थे। इनके प्रभाव के कम होने के बाद ही कंपनी की शक्ति बढने लगी।

मद्रास में अंग्रेज बस्ती

वैसे तो सूरत में अग्रेजी व्यापार आरभ से ही प्रारभ हो गया, पर यहा पर कपनी को क्षेत्रीय अधिकार पहले नही प्राप्त हुआ। इस सम्बन्ध मे वान्डीवाश के स्थानीय हिंदू प्रधान व राजा ने 1639 मे कपनी को मद्रास पर शासन करने, वहा किला बनाने और सिक्का ढालने का अधिकार इस शर्त पर प्रदान किया कि कपनी उसे अपना बन्दरगाह का आधा राजस्व व चुगी प्रदान करेगा। इससे कंपनी की बड़ी सहायता हुई। इस तरह सितम्बर 1641 मे कंपनी का केन्द्र कोरीमंडल कोस्ट पर फोर्ट सेण्ट जार्ज पर स्थापित हुआ। 1645-46 मे गोल कुडा के हिंदू राजा ने मद्रास क्षेत्र मे अग्रेजो की बस्ती को तबाह कर दिया, पर नये शासक ने कंपनी के पुराने अधिकार ययावत् बना रहने दिया। चुगी के बटवारे के सम्बन्ध में 1658 मे एक नया समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत तय हुआ

कि अब कंपनी 480 पगोडा प्रतिवर्ष के हिसाब से राजा के [illegible] करेगी। इस राशि को 1672 मे बढ़ाकर 12 हजार पगोडा कर दिया गया जिसके वदले कंपनी को मद्रास मे न्याय, सरकार और देखभाल का अधिकार दे दिया गया और स्थानीय हस्तक्षेप समाप्त कर दिया गया। 1687 मे गोलकुडा पर औरंगजेब ने अधिकार कर लिया पर कंपनी की शक्ति व अधिकार यथावत् वने रहे। यह वताना आवश्यक है कि अंग्रेज कपनी की मद्रास मे स्थिति परिपूर्ण थी और मद्रास पर मुगल सम्राट का प्रभुत्व, उसे लगान देकर और मुगल आदेश के अनुरूप सिक्के ढालकर, स्वीकार किया गया। 1693 मे कपनी ने मद्रास के निकट तीन गाव प्राप्त किए और 1702 में पांच गाव और ग्रांट मे प्राप्त किए। वाद के गांवों पर स्थानीय अधिकारियो ने तीन वर्ष वाद अधिकार कर लिया। 1717 में सम्राट फर्रुखशियर के दरबार मे जान सरमन के मिशन के द्वारा कंपनी का इन गांवों पर आधिपत्य स्वीकृत हुआ। पर स्थानीय अधिकारी इसे नही मानते थे।

कलकत्ता में अंग्रेज बस्ती और उसका विकास

वंगाल में वहुत समय तक कंपनी को प्रभावी प्रभुसत्ता नही मिल पायी। वैसे 1656 मे शाहशुजा से इसने कुछ व्यापारी विशेषाधिकार प्राप्त किये थे पर कपनी के प्रयासों के बावजूद कोई केन्द्रीय स्वीकृति इसे प्राप्त नही हुई। 1678 में सूबेदार ने पुराने अधिकार को सम्राट की अनुमति से स्वीकार किया। पर सम्राट का इस संवंध में स्वयं का फरमान 1680 में ही प्राप्त हुआ। पर स्थानीय अधिकारियों के कारण कंपनी को शोरा के व्यापार में गंभीर कठिनाइयो का सामना करना पड़ा जिसके फलस्वरूप कम्पनी ने मुगलों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया पर इस स्तर पर उसे पराजित होना पडा। 1690 में बम्बई के अधिकारियों के माध्यम से शांति स्थापित हुई और कंपनी ने अब व्यापार की राजकीय अनुमति प्राप्त कर ली जिसके अंतर्गत 4,000 रु० के वार्षिक कर देने के वदले सभी देय शुल्क से मुक्ति प्राप्त कर ली। अगस्त 1690 के इसी संधि के बाद कंपनी ने सुतानाती में अपनी बस्ती वनाई जहा भविष्य में कलकत्ता विकसित हुआ। 1696 में यहां के फैक्ट्री की किलेवंदी की गई और 1698 में कंपनी ने 12,000 रु० के बदले सुतानाती, काली कटा और गोविन्दपुर नामक तीन गांवों की जमीदारी अधिकार प्राप्त किए। किलेवंदी फैक्ट्री का नाम 1700 मे फोर्ट विलियम रखा गया जो इस क्षेत्र की प्रेसीडेन्सी की राजधानी हो गया। इस तरह से प्राप्त गांवों में कंपनी ने अंग्रेजों पर रॉयल चार्टर से प्राप्त अधिकारो के अधीन मेयर के माध्यम से शासन किया जवकि भारतीयों पर नागरिक और फौजदारी अधिकार का प्रयोग जमीदारी न्यायालय के द्वारा ही होता था जहा मौत की सजा

मुर्शिदाबाद के नाजिम की स्वीकृति से ही संभव हो पाती थी। कुछ क्षेत्रों में कलकत्ता पर कंपनी के अधिकार मद्रास से कम थे। उदाहरण के लिए 1757 तक इन्हें कलकत्ता में सिक्के ढालने का अधिकार नहीं प्राप्त हुआ।

नॉरिस शिष्टमंडल

कंपनी के अधिकार अपर्याप्त पाकर नयी अंग्रेज कंपनी ने 1698 में मुगल सम्राट से अपने संबंध को नॉरिस शिष्टमंडल द्वारा नियमित बनाने का निश्चय किया। नॉरिस को औरंगजेब के दरबार में अंग्रेजी सम्राट से प्राप्त अधिकार के अंतर्गत व्यापार क्षेत्र में औपचारिक रूप से अंग्रेज बस्तियों में ग्रान्ट व सुविधा प्राप्त करने के लिए विशेष दूत के रूप में भेजा गया। इस उद्देश्य से राजा के एक परामर्शदाता की शक्ति प्राप्त कर एवं भारत में रहने वाले अंग्रेजों तक नयी कंपनी के कर्मचारियों का नेतृत्व करते हुए वह आया। इसलिए यह स्वाभाविक था कि पुरानी कंपनी ने इस शिष्टमंडल की पूर्ण असफलता के लिए प्रयास किया होगा जिसमें उसे पूरी सफलता मिली।

सरमन शिष्टमंडल

1707 में संयुक्त कंपनी जीवित तो हुई, पर तत्काल मुगल सम्राट से स्थायी संधि का कोई प्रयास नहीं किया। 1714-17 में सरमन की अध्यक्षता में एक शिष्टमंडल फर्रुखशियर के दरबार में भेजा गया। सरमन ने सम्राट से गुजरात, हैदराबाद और बंगाल के स्थानीय अधिकारियों के नाम तीन फरमान प्राप्त किए जिसमें उनके पुराने अधिकारों को स्वीकृति मिली और कुछ नये अधिकार भी प्रदान किए। पर यह वह काल था जब राजकीय सत्ता को प्रांतों में नहीं माना जाता था और इसलिए कंपनी द्वारा प्राप्त किए गए फरमानों से अंग्रेजों की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया।

बंगाल की क्रान्ति

राजकीय अधिकार के पतन ने वैसे कंपनी को दूसरी तरह से सहायता की। जब केन्द्र से हस्तक्षेप होना रुक गया तो दूर-दराज के प्रान्तों में शक्ति संघर्ष प्रारंभ हुआ जिसमें कंपनी ने षड्यन्त्र और कूटनीति का सहारा लेकर लाभ उठाया। प्लासी के युद्ध से पूर्व सिराजुद्दौला के अनिर्णायक पराजय के बाद कंपनी ने उसे फरवरी 1757 में एक औपचारिक संधि करने को बाध्य किया जिसमें कंपनी के पुराने अधिकारों को ही स्वीकृत नहीं किया गया बल्कि उसे किलेबंदी तथा सिक्के ढालने का भी अधिकार प्राप्त हुआ। बाद में प्लासी के युद्ध के बाद जब सिराजुद्दौला को हटाकर बंगाल की नवाबी पर मीरजाफर को स्थापित किया गया तो कंपनी ने

व्यापारिक रूप बनाए रखते तक चलती रही।

ऐसी सभी फैक्ट्रियां कौंसिल के गवर्नर द्वारा शासित होती थीं। गवर्नर को प्रेसीडेन्ट भी कहते थे। गवर्नर फैक्ट्री का कार्यपालिका अध्यक्ष था, पर उसे यह शक्ति कौंसिल मे ही प्राप्त थी जिसके सदस्य वरिष्ठ व्यापारियों में से ही सामान्यतया चुने जाते थे। कौंसिल एक प्रभावी संस्था थी जो गवर्नर के प्रशासनीय कार्यवाहियों की छानबीन भी करती थी और परामर्श भी देती थी जिससे कि वह विद्रोही न हो सके। इस तरह की थी फैक्ट्री की सरकार जिसे बाद में प्रेसीडेन्सी कहा गया। यह शब्द स्पष्ट रूप से प्रेसीडेन्ट शब्द से निकला।

8

कर्नाटक का प्रथम युद्ध (1746—1748)

हम फ्रांसीसी शक्ति के विकास का 1740 तक का इतिहास पीछे दे आए हैं और छठें अध्याय में हमने देखा है कि किस तरह इन्होंने युरोप के अन्य लोगो के हितों को तब तक उभरने नही दिया जब तक कि ब्रिटिश इनके विरुद्ध चुनौती के रूप में नही आ गए। सातवें अध्याय मे हमने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कपनी की स्थापना व प्रारंभिक विकास का विवेचन किया है। अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के मध्य अवश्यम्भावी सघर्ष 1746 के लगभग हुआ और यह तब तक चलता रहा जब तक कि फ्रांसीसी भारतीय राजनीति क्षेत्र से नेस्तनाबूद न हो गए और भारत के शेष सभी युरोपीय शक्तियो मे ब्रिटिश मात्र ही शेष नही रह गए। अंग्रेज फ्रांसीसी संघर्ष, जिसने मात्र अन्य युरोपीय विरोधियों के विरुद्ध ही ब्रिटिशों की प्रमुखता ही नही सिद्ध कर दी बल्कि भारतीय राजाओं की लडखडाती शक्ति के विरुद्ध भी उन्हें महत्त्वशाली बना दिया, को तीन चरणो मे विभाजित किया जा सकता है : प्रथम 1746 से 1748 तक, द्वितीय 1749 से 1757 तक तथा तृतीय 1758 से 1763 तक। इन दोनो शक्तियो के बीच संघर्ष हेतु भूमि दक्षिण ने प्रदान की, विशेषकर वे भाग जिन्हें कर्नाटक कहा जाता था। इसके कारण ही इन्हें तीन कर्नाटक युद्धो के नाम से जाना जाता है। अत. इसके पहले कि हम नाटक के प्रथम दृश्य अथवा प्रथम कर्नाटक युद्ध का विवेचन करें, यह समीचीन होगा कि हम यह जानें कि किन परिस्थितियो ने इसकी भूमिका तैयार की।

दक्षिण के भारतीय शासकों की लड़खड़ाती शक्ति

जुलाई 1904 मे मैंसन हाउस, लंदन में एक भाषण मे लार्ड कर्जन ने कहा, "मेरे लिए यह संदेश ग्रेनाइट पर खुदा हुआ है, यह प्रारब्ध के चट्टान से काटकर गिराया गया है—हमारा काम उचित है और स्थायी बना रहेगा" और माइकेल एडवर्ड्स, या कोई राष्ट्रवादी भारतीय या कोई मार्क्सवादी इस भावना का अधिक-से-अधिक उपहास ही करेगा, पर कर्जन को विश्वास था कि "भारत के लोगों का भाग्य···ईश्वर द्वारा अंग्रेजो को ही सौंपा गया था।"[1] पर सच्चाई का

1. एडवर्ड्स, माइकेल : हाई नून आफ द इम्पायर, 1965, पृ॰ 247, 251-52।

पता इससे लगेगा की दक्षिण मे भरे पूरे भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का विकास अंग्रेजो के उत्साह व प्रयास से उतना न हुआ जितना प्रो० अल्फ्रेड मार्टिनो के अनुसार उन "अशुभ शक्तियो द्वारा जिन्हें हम संयोग या दैवयोग और कभी-कभी भाग्य का नाम देते है।"[1] मुगल केन्द्रीय अधिकार के पतन के साथ दक्षिण मे जो राजनैतिक अव्यवस्था फैली और जिस परिस्थिति का लाभ केवल ब्रिटिश ही उठा सके, वही विचारणीय है।

भारत के सभी स्थानो मे दक्षिण ही ऐसा था जिसकी मिट्टी ने अतिम महान मुगल सम्राट औरगजेब को कब्र मे सोने का स्थान ही न दिया बल्कि वही उसने महान मुगल साम्राज्य के लिए भी जिसे बाबर से उसके काल तक खून, पसीने और कूटनीति से पाला-पोसा गया था, स्थान सुरक्षित रखा। जैसे ही 1707 मे औरंगजेब की मृत्यु हुई उसका साम्राज्य खंडहर होना प्रारंभ हो गया और उसी से निकला एक चिन किलिचखां जिसने "औरंगजेब के उत्तराधिकारियों से निजामुलमुल्क व आसफगाह की उपाधि प्राप्त की और दक्षिण की सूबेदारी को अपने परिवार के लिए पैतृक बनाने हेतु कदम उठाए।"[2] पर निजामुलमुल्क के जीवन कथा लेखक युसुफ हुसैन ने बेकार ही अपने नायक की प्रशसा करते हुए उसे 'भूतकालीन कूटनीति का गुरु' माना है और यह भी विवरण मे दिया है कि 1739 मे भारत छोडते समय मुगल सम्राट मुहम्मद शाह को नादिर शाह ने राय दी थी "कि इमे मराठों से सतर्क रहना चाहिए और निजामुलमुल्क जैसे योग्य व्यक्ति की राय से काम करना चाहिए।"[3] पर इस दक्षिण के पैतृक शक्ति प्राप्त सूबेदार की योग्यता उपयोगी न सिद्ध हुई। दक्षिण के राजनीतिक जीवन मे औरगजेब के काल में जो घुन लग गया था वह अपना कार्य करता रहा। जहां निजाम मराठों के क्रूर व उग्रतर होती हुई शक्ति को रोक नही सका वही और शक्तियो ने भी अपनी शक्ति को विकसित कर समस्या को और चिन्तनीय बना दिया। हो सकता है उन 'अशुभ शक्तियों' ने जिनकी चर्चा हम ऊपर कर आए है, भी इसमे प्रमुख भूमिका अदा की हो। विवरण सचमुच ही रुचिकर है।

निजामुलमुल्क और उसकी कठिनाइयां

हम यहा पिछले अध्यायो मे वर्णित घटनाओ का पुनरावलोकन कर सकते है। 3 अप्रैल 1680 मे जब शिवाजी का देहान्त हुआ तो सम्भाजी उसका उत्तरा-

1. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 5, पृ० 125।
2. मैलीसन, जी० बी० : रूलर्स आफ इंडिया, लार्ड क्लाइव, 1962, पृ० 8।
3. युसुफ हुसैन : द फ़स्ट निजाम (द लाइफ एण्ड टाइम्स आफ निजामुलमुल्क आसफजाह प्रथम) 1963, पृ० 113, 196

धिकारी हुआ जो वीर तो था पर 'भ्रष्टता का असुरक्षित जीवन' जीता हुआ संगमेश्वर मे पकड़ा गया और कठोर कष्ट प्राप्ति के कारण मार्च 1689 में मर गया। शिवाजी की राजधानी रायगढ भी छिन गई और शाहू सहित सम्भाजी का सपूर्ण परिवार औरंगजेब के हाथ पड गया।

सम्भाजी की मृत्यु और उसके अल्पायु पुत्र शाहू का मुगलो द्वारा पकड़े जाने से मराठों की शक्ति का एक स्रोत ही चला गया। वैसे तो सम्भाजी के छोटे भाई राजाराम को मराठो के राज्य का नेता माना गया पर प्रत्येक मराठा नेता ने स्वतन्त्र रूप से मुगलो को परेशान करना प्रारभ किया। पर उनका यह विरोध किसी स्थान को केन्द्र बनाए विना हवा की तरह आता और चला जाता था और वे मुगलो के स्थल विजय से बच जाते थे। 1700 मे राजाराम की मृत्यु हो गई जिसका उत्तराधिकारी अल्पायु शिवाजी द्वितीय हुआ और जिसका प्रतिशासन उसकी चतुर विधवा मा ताराबाई के हाथ गया।

1707 मे मराठो को घुटने टेकने को बाध्य करने के उद्देश्य से असफलता का कष्ट दिल मे लिये औरंगजेब मर गया। उसके लडको मे उत्तराधिकार का युद्ध प्रारभ हुआ जिसमे आजमशाह ने शाहू को इसलिए मुक्त कर दिया जिससे उसमे और ताराबाई मे सघर्ष हो और मराठे कमजोर हो। इच्छित हुआ, मराठो के नेता विभाजित हो गए, उनमे से बहुतो ने शाहू का पक्ष लेकर सतारा पर विजय प्राप्त की और इसे ही सरकार की राजधानी बना दिया। ताराबाई पन्हाला चली आई और शिवाजी द्वितीय के नाम पर सघर्ष करती रही। 1714 मे मराठा एकता के आदर्श को एक धक्का लगा जब राजाराम की एक अन्य विधवा राजसबाई ने ताराबाई के विरुद्ध विद्रोह किया और उसे हराया और उसके बाद अपने पुत्र सम्भाजी द्वितीय के नाम पर कोल्हापुर में अपने को स्थापित किया। यही मराठो का नया शासक हो गया।

इन्ही परिस्थितियो में सैय्यद भाइयों की सलाह पर मुगल सम्राट फर्रुख-सियर ने दक्षिणी भारत का सूबेदार 1713 मे निजामुलमुल्क को बनाया क्योंकि तूरानियो पर निजाम के प्रभाव ने राजधानी मे उसकी उपस्थिति से सैय्यद भाइयो के उद्देश्यों को खतरा पैदा कर दिया था। निजामुलमुल्क जब दक्षिण आया तो उसे वहां अव्यवस्था के अतिरिक्त कुछ नही मिला। उसके पूर्वाधिकारी जुल्फिकार खां ने एक सन्धि के अतर्गत पूरे दक्षिण के चौथ[1] और सरदेशमुखी[2] का अधिकार शाहू को सौप दिया था। निजामुलमुल्क ने मराठों के भेदभाव का लाभ उठाया और मुगलो के बिखरे अधिकार को पुनः संजोना प्रारभ किया। उसने शाहू के

---

1. राजस्व का एक चौथाई।
2. राजस्व के शेष तीन चौथाई का दस प्रतिशत।

पेशवा[1] बालाजी विश्वनाथ को पुरंधर के क्षेत्र में पराजित किया; पर अभी उसने अपने अधिकार को पूरी तरह संगठित भी नही किया था कि उसे मई 1725 में वापस बुला लिया गया। उसकी जगह पर हुसैनअली खां को दक्षिण का नया सूबेदार बनाया गया[2] पर निजामुलमुल्क सैय्यद भाइयों द्वारा दिल्ली में अधिक दिनो तक नही रहने दिया गया क्योंकि वे उसके जीवन से खेलना चाहते थे। अब उसे मालवा प्रांत मे नियुक्त किया गया जहा कि वह 15 मार्च 1719 को रवाना हुआ।

जैसे ही निजामुलमुल्क ने दक्षिण छोडा, बालाजी विश्वनाथ ने अपने अधिकार को पुन स्थापित किया और मार्च 1718 मे उसने उसके उत्तराधिकारी हुसैनअली खा को संधि करने के लिए बाध्य किया जिसमें उसे कोल्हापुर पर कूटनीतिक विजय मिली और दक्षिणी भारत मे मुगलों का अधिकार बहुत घट गया और साथ ही इसने "पूरे भारत मे मुगल प्रतिष्ठा को मृत्यु जैसा धक्का दिया।"[3]

इस संधि की, जिसे हुसैनअली खा ने मुगल सम्राट से स्वीकृत कराने के लिए भी आश्वस्त किया और जिसका विवेचन हम पीछे कर आए हैं, शर्तें थी, (1) शाहू का उन क्षेत्रों पर अधिकार स्वीकार किया गया जिसे शिवाजी ने मुगलों से व बीजापुर तथा गोलकुडा से प्राप्त किया था और उस समय जहा पर मुगलों का अधिकार था वह उन्हें दे देने का निश्चय हुआ, (2) हैदराबाद, बरार, गोंडवाना और कर्नाटक के जिन क्षेत्रो पर मराठो ने अधिकार किया था उसे भी देना मान्य किया गया, (3) मुगलों के दक्षिण के छः सूबों तथा इसके सहायक मैसूर, तंजौर और त्रिचनापल्ली क्षेत्र मे मराठों को चौथ व सरदेशमुखी वसूलने का अधिकार दिया गया, (4) मराठा परिवार के सभी दिल्ली में रखे गए बंधक सदस्य मुक्त किए जाएगे, (5) इस सबके बदले शाहू दक्षिण मे मुगल सम्राट की शक्ति व व्यवस्था कायम रखने में सहायता देगा और उसे आवश्यकता पड़ने पर 1,500 सैनिकों से सहायता करेगा।

संधि पर हस्ताक्षर के बाद बालाजी विश्वनाथ अपने 1,500 सैनिको सहित हुसैनअली के साथ दिल्ली गया जहां फर्रुखसियर को क्रूरता से अंधा कर दिया गया और दो माह कैद मे रखने के बाद सैय्यद भाइयों द्वारा निर्दयता से मार डाला गया। चौबीस वर्षीय युवा रफी-उद-दरजात को गद्दी प्रदान की गई जिसने संधि को स्वीकृति प्रदान की।

---

1. प्रधानमंत्री।
2. युसुफ हुसैन : पूर्वोद्धृत, पृ० 54-63।
3. वही, पृ० 84।

इधर जैसे ही निजामुलमुल्क मालवा की ओर रवाना हुआ, उसके प्रभाव के प्रति ईर्ष्यालु शत्रुओं ने उसके विरुद्ध सैय्यद भाइयों का कान भरना प्रारंभ कर दिया। निजामुलमुल्क को नष्ट करने के लिए सैय्यद भाइयों ने दिलावर खां को एक सेना सहित उसके विरुद्ध भेजा। इन परिस्थितियों में निजामुलमुल्क ने मालवा छोड़कर सुरक्षा हेतु दक्षिण जाने का निश्चय किया जहा से उसे रानी राजसबाई और तमाम मुस्लिम सामंतो से अपने-अपने काम के लिए सहायता प्राप्त करने हेतु संदेश प्राप्त हो रहे थे। दिलावर खां की पीछा करती सेना ने उसे हुसैनपुर से आगे न जाने दिया जहां वह एक रक्तरंजित युद्ध में पांच हजार सैनिकों सहित मारा गया और दूसरे पक्ष के बहुत कम लोग मारे गये। जब इस दुर्घटनापूर्ण घटना की सूचना सैय्यद भाइयों को मिली तो वे नीले पड़ गये और निजामुलमुल्क के प्रति सुलह की भावना से उन्होंने उसके पास सम्राट के उसके दक्षिण भारत की सूबेदारी के कागज भिजवा दिए।

इसके पूर्व कि निजामुलमुल्क अपने नये पद पर स्थिर हो सके, घटनाओं ने दूसरा मोड़ लिया। दिल्ली में सैय्यद भाइयों की शक्ति और स्थिति अल्पकालिक सिद्ध हुई। शीघ्र ही उनका पतन हुआ और निजामुलमुल्क ने दक्षिण में मुबारिज खां को अपना सहायक नियुक्त कर दिल्ली प्रस्थान किया जहा 1722 के प्रारभ मे एक शानदार दरबार आयोजित किया गया जिसमे उसे प्रधानमंत्री का पद प्रदान किया गया। इससे भी वह शांत न हो सका क्योंकि उसे पता चला कि सम्राट की प्रेमिका कोकी का राज्य कार्य पर बडा प्रभाव है। उसे दक्षिण से यह अशुभ समाचार भी प्राप्त हुआ कि मुबारिज खां के मन मे स्वतंत्रता प्राप्ति का बुरा विचार पैदा हो गया है। दिल्ली की तुलना में दक्षिण को तरजीह देकर वह दक्षिण की ओर चल पड़ा और राजा शाहू से उसने सहायता प्राप्त की जिसने बालाजी के नेतृत्व में एक सेना भेजी। इसके बदले दोनों के बीच भविष्य के संबंध मे एक संधि हुई। इसके बाद औरंगाबाद से 80 मील दूर शकर खेड़ा मे मुबारिज खां के विरुद्ध "भारत की एक निर्णायक लडाई लडी जिसने दक्षिण के नेतृत्व का प्रारंभ किया और हैदराबाद राज्य की स्थापना की। इस युद्ध ने दक्षिण के निजाम के लिए स्वतंत्रता भी ला दी।"[1] मुबारिज खां मारा गया और युद्ध क्षेत्र के निकट ही दफना दिया गया। यह सब 1724 में हुआ।

शाहू और निजामुलमुल्क के बीच होने वाली संधि एक-दूसरे की सुविधा को ध्यान मे रखने के कारण जल्दी ही टूट गई। एक म्यान मे दो तलवारें नही जा सकती थी। इसीलिए जब निजामुलमुल्क ने अपनी शक्ति संगठित करनी प्रारभ की तो शाहू के उद्देश्यों पर इससे आघात हुआ। बेकार ही उसने कोल्हापुर के

1. यूसुफ हुसैन : पूर्वोद्धृत, पृ० 131-132।

सभाजी का समर्थन किया और एक के बाद एक आक्रमण शाहू को कर वसूलने से रोकने के लिए कर्नाटक पर किया। शाहू की आज्ञा से पेशवा बाजी राव ने निजामुलमुल्क के विरुद्ध अगस्त 1727 में प्रस्थान किया। पाल्खेद के पर्वतीय क्षेत्र मुगीशेव गाव मे निजामुलमुल्क को उसने पराजित किया और 6 मार्च 1728 को एक समझौते[1] पर उसे हस्ताक्षर करने को बाध्य किया जिसमें उसने वादा किया, (1) वह सभाजी का साथ छोड देगा, (2) पुराना बकाया देगा और मराठों द्वारा नियुक्त राजस्व कर्मचारियो को, जिसे उसने हटा दिया था फिर से पद प्रदान करेगा, (3) शाहू को मराठा राजा स्वीकार करेगा और दक्षिण के 6 सूबो पर मराठो के चौथ और सरदेशमुखी का अधिकार भी स्वीकार करेगा।

इन सब सफलताओ ने बाजीराव की महत्वाकांक्षा को बहुत बढा दिया। एक समय तो दिल्ली के सम्राट ने उसे अपनी ओर मिलाकर निजामुलमुल्क के विरुद्ध भडकाया, पर उसकी शर्ते केन्द्र के लिए मान्य नही होने योग्य थी। इससे सम्राट आश्वस्त हो गया कि उससे मैत्री करने की जगह उसे निजामुलमुल्क को ही अपने निकट लाना चाहिए जिसे उसने दिल्ली आमंत्रित किया और बाजीराव के विरुद्ध आक्रमणार्थ सेना प्रदान की। बाजीराव अपने 80 हजार सैनिको और निजामुलमुल्क अपने 50,000 व "एक अच्छी तरह से प्रशिक्षित तोपखाना" जो मराठों[2] मे आतक पैदा कर सकता था, के साथ भोपाल के निकट मिले। पर निजाम यहा घबडा गया और अपने विरोधी से उसने पराजय स्वीकार कर ली। उसने 16 जुलाई 1738 मे दुरजसराय मे एक समझौता किया जिसमें पेशवा ने शाहू के लिए, (1) पूरा मालवा और नर्मदा व चम्बल के बीच के क्षेत्रो पर सार्वभौम अधिकार प्राप्त किया, (2) यह आश्वासन भी प्राप्त किया कि इस सधि की स्वीकृति सम्राट से प्राप्त की जाएगी और सम्राट से 50 लाख रुपये क्षतिपूर्ति के रूप मे प्राप्त किये जाएगे।

हम युसुफ हुसैन के इस मत से सहमत हो सकते है कि नादिरशाह का आक्रमण होने ही वाला था जिसके कारण सम्राट के सदेश के अनुसार निजाम को संधि करने और दिल्ली वापस आने के लिए वह करने को बाध्य किया जो उसने किया।[3] पर निजामुलमुल्क की प्रतिष्ठा व स्थिति को नि सदेह गभीर रूप से हानि पहुची।

निजामुलमुल्क के पुत्र नासिरजंग, जिसे दिल्ली रवानगी के पहले उसने वहा

---

1. मुगीशेव गाव के सम्मेलन के नाम से विख्यात।
2. ग्राट डफ : हिस्ट्री आफ द मराठाज, भाग-2, प० 447-448।
3. युसुफ हुसैन : पूर्वोद्धृत, पृ० 181।

अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया था, ने अपने को बेहतर सिद्ध किया। जैसे ही निजामुलमुल्क दिल्ली गया बाजीराव ने अपने 50 हजार सैनिकों सहित दक्षिण मे अभियान प्रारंभ किया। लेकिन नासिरजंग ने मात्र 10 हजार सैनिको से ही मराठों से गोदावरी तट पर ऐसी लडाई की कि उन्हे युद्ध क्षेत्र से पीछे हटना पडा। अतत. दोनों के बीच जो सधि हुई उसमे मराठों ने दक्षिण मे राजस्व के अधिकार का परित्याग कर दिया। बाजीराव जो अभी तक विजय का पख लगाकर ही उड़ा था, इस पराजय ने उसका इतना दिल तोड़ दिया कि उसने विषपान को शाहू के सामने उपस्थित होने से अच्छा समझा। भाग्य से मौत उसके रक्षार्थ आ गई और वह 28 अप्रैल 1740 को मर गया।

निजामुलमुल्क दिल्ली वापस गया। यहां पुन: नादिरशाह के आक्रमण की चर्चा व विवेचन अनावश्यक है जिसके कारण राजधानी बर्बाद हो गई। पर एक चीज जिसका हमें ध्यान रखना है वह यह थी कि नासिरजंग की मराठों पर विजय ने उसका दिमाग बिगाड़ दिया और जब निजामुलमुल्क लौटा तो उसके बेटे ने उसे लिखा कि वही वापस चला जाए जहां से आया है और दक्षिण उसके लिए छोड़ दे। विद्रोही लड़के के पिता-भक्त होने मे कुछ समय लगा।

युद्ध पूर्व कर्नाटक

इस तरह यह स्पष्ट है कि सभी युरोपीय शक्तियो में उस समय फ्रांसीसियो का ही कुछ स्थान था। ईस्ट इडिया कपनी ने दक्षिण की राजनीति के पकड़ के विकास में अभी कदम ही रखा था। भारतीय शासको मे दक्षिण मे मुगलों की केन्द्र शक्ति मृतप्राय थी। दक्षिण का मुगल सबेदार निजामुलमुल्क स्वतत्र अधिकार ग्रहण कर चुका था पर उसे एक शक्तिशाली मराठा शक्ति का मुकाबला करना पड़ रहा था। साथ ही उसे दक्षिण में और कठिनाइया झेलनी थी।

हम दक्षिण के निजाम के विषय में और चर्चा करे, इसके पूर्व यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जब हम दक्षिण की बात करते है तो हमें इसे पूरा दक्षिणी भारत नही समझना चाहिए। वहा मैसूर, ट्रावनकोर और कोचीन भी थे जो इससे अलग थे।

कर्नाटक समुद्र के पूर्व के किनारे संकरे क्षेत्र की एक पट्टी थी और यह मैसूर के पश्चिम पहाड़ी माला द्वारा अलग होती थी। इसके उत्तर की सीमा गुंडलकम्पा नदी थी, दक्षिण में तजौर का क्षेत्र था जो 17वी सदी मे कर्नाटक मे आगे बढ़कर मराठो द्वारा स्थापित जागीर थी। और दक्षिण मे वहा तमाम छोटे-छोटे राज्य थे। इनमे से एक त्रिचनापल्ली था जिसे 16वी सदी के अत मे विजय नगर राज्य की समाप्ति पर बनाया गया था। 1736 मे यह कमजोर राज्य एक हिन्दू विधवा द्वारा शासित था।

कर्नाटक स्वय एक नवाव के अधीन था जो दक्षिण के सूबेदार का सहायक था। पर जिस तरह निजामुलमुल्क ने पैतृक शक्ति प्राप्त कर ली थी, उसी तरह कर्नाटक के नवाव सादुल्ला खा ने, जो संतानहीन था, मुगल सम्राट मुहम्मदशाह से व्यक्तिगत आज्ञा लेकर बिना निजामुलमुल्क से राय किए अपने भतीजे दोस्त अली को अपना उत्तराधिकारी बना दिया।

हमने प्रथम अध्याय मे पहले ही फ्रांसीसी शक्ति के 1740 तक का समुद्र तट पर विकास का परिचय दिया है। पाडिचेरी प्रारभ मे पुदुचेरी नामक एक छोटा-सा गाव था जिसे फ्रासीसियो ने बढाया, सुदर बनाया और अपनी कार्यवाही का केन्द्र बनाया।

17वी सदी के अंत तक मद्रास तीन लाख लोगो की वस्ती का एक नगर था। कर्नाटक युद्ध के पहले इसके तीन भाग थे. "एक दक्षिणी भाग जिसमें लगभग 50 यूरोपीय और मुख्यत अग्रेजी घर थे। इनमे से एक घर फैक्ट्री के प्रधान का था। इनके दो गिर्जाघर थे जिसमे से एक कैथालिक था। "यह सभी फोर्ट सेण्ट जार्ज के घेरे मे थे। इतना उच्च उच्चारित नाम केवल चारों ओर बनी दीवार तक सीमित था जो चारों ओर से घिरी थी। इसके बाहर की सुरक्षा के लिए कुछ नही था।" नगर के उत्तर के भाग मे आर्मीनिया और भारतीय व्यापारियों की वस्ती थी जबकि इसके और उत्तर गरीब भारतीय निवास करते थे।"[1]

इधर कर्नाटक मे नवाब सादुल्लाह के 1732 में मर जाने पर दोस्त अली उसका उत्तराधिकारी हुआ। दोस्त अली गाडी खीचने मे स्वय कंधा न लगाकर सब कुछ अपने लडके सफदरअली और दामाद दीवान चांदा साहब के हाथ मे छोड दिया। महत्त्वाकाक्षी सफदरअली व चांदा साहब ने 1736 मे त्रिचनापल्ली के शासक के मर जाने पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। त्रिचनापल्ली की विधवा रानी चांदा साहब के मोहपाश मे फस गई जिससे वह वही सूबेदार की हैसियत से रुक गया और सफदरअली अर्काट वापस आ गया।

त्रिचनापल्ली पर अधिकार ने विनाशकारी शक्तियों की बाढ ला दी जो कर्नाटक को निगलने का खतरा बन गई। चादा साहब की जगह पर नियुक्त दीवान मीरअसद "अपने पूर्वाधिकारी [illegible] व महत्त्वाकाक्षी होने के दोप

भोसले और फतेहसिंह के नेतृत्व में मराठे कर्नाटक में प्रविष्ट हुए। दोस्त अली दामलचेरु में पराजित हुआ और कत्ल कर दिया गया, मीरअसद कैद कर लिया गया, और सफदरअली जो उनके सहायतार्थ आ रहा था वेलौर की ओर पीछे लौट गया। आगे बढ़ते हुए मराठो ने अर्काट पर अधिकार कर लिया और सफदरअली को संधि करने को बाध्य किया, (1) सफदरअली को 40 लाख रुपये क्षतिपूर्ति के देने पड़े, (2) समय पर चौथ देने का आश्वासन देना पड़ा। साथ ही मराठों ने उसे कर्नाटक का नवाब स्वीकार किया और मराठो ने चांदा साहब से, जिसे वह अपना विरोधी मानने लगा था, त्रिचनापल्ली मुक्त कराने का भी आश्वासन दिया।

मराठों ने अपना अंतिम आश्वासन निभाते हुए 26 मार्च 1741 को चांदा साहब से उसे मुक्त कराया और उसे सतारा कैदी बनाकर ले गये। पर इससे सफदरअली को कुछ प्राप्त न हुआ क्योंकि मराठों ने लौटते समय 14 हजार सैनिकों सहित मुरारीराव घोरपड़े को वहां अपनी ओर से शासन करने के लिए छोड दिया था।

इस समय तक फ्रांसीसी नगर पांडिचेरी को एम० ड्युमा ने पूरी तरह मजबूत बना दिया था। इसकी मजबूती की इतनी चर्चा थी कि मराठो के आक्रमण से पहले ही चांदा साहब और सफदरअली ने अपना परिवार वहा भेज दिया था। *इसका दुष्प्रभाव निश्चित ही भारतीयों की नैतिकता पर पड़ता था। उस समय* तो और जब त्रिचनापल्ली के घेरे के समय मराठों ने एम० ड्युमा से 60 लाख रुपये और चांदा साहब के परिवार की वापसी की मांग की। फ्रांसीसियों ने इस मांग का समुचित और दिलचस्प उत्तर दिया, "हमारे देश फ्रांस में न तो सोना पैदा होता है न चांदी; हम जो भी व्यापारिक माल खरीदने के लिए लाते है वह हमे *विदेशों से ही मिलता है। हमारे देश में तो लोहा और सैनिक ही पैदा होते हैं।* जिन्हें हम अन्यायपूर्ण छेड़छाड़ के विरुद्ध प्रयोग करना जानते हैं।"[1]

सफदरअली असुरक्षित अर्काट में सुरक्षित अनुभव नही कर रहा था। इसलिए उसने अपने परिवार को सुरक्षित स्थान पर पहुचा दिया और स्वयं वेलौर के मजबूत किले में अपने बहनोई मुर्तजाअली के साथ रहने चला गया। पर मुर्तजाअली ने षड्यंत्र से उसे पहले विष देकर और फिर छुरे से घायल कराकर मरवा डाला। मुर्तजाअली नवाब घोषित हुआ पर वह अधिक समय तक ऐसे नही रह पाया। उसके षड्यंत्र के विरुद्ध जनमत जागा और उसे अपने को अर्काट से भाग कर बचने के लिए स्त्री वेश तक धारण करना पड़ा। सफदरअली का पुत्र सैय्यद मुहम्मद खां, जो इस समय मद्रास में था, सेना द्वारा नया नवाब

1. मालिसो : इस्ले. भाग 2, पृ० 22, कोटेड बाई यसफ हसन, पर्वोदत, पृ० 209।

घोषित किया गया।

इन परिस्थितियो से निजामुलमुल्क ने अब 2 लाख पैदल और 80 हजार घुडसवार सेना का नेतृत्व करते हुए अपनी बिखरी शक्ति की पुनः प्राप्ति हेतु कर्नाटक की ओर बढ़ने का निश्चय किया। उसने त्रिचनापल्ली से ही मराठों को हटाने मे सफलता नही प्राप्त की बल्कि उन्हें कर्नाटक से भी भगा दिया। उसने सैय्यद मुहम्मद खा को नवाब न मानते हुए अपने सेनापति ख्वाजा अब्दुल्ला को नवाब बनाया। इसके बाद वह गोलकुण्डा चला गया।

पर ख्वाजा अपने नवीन कार्यभार को कभी प्राप्त नही कर सका। वह निजामुलमुल्क के साथ गोलकुण्डा तक वापस गया था। और जिस प्रातः वह कर्नाटक जाने वाला था उसके बिस्तर पर ही पडी उसकी लाश मिली। कुछ लोगों का कहना है कि यह अति प्रसन्नता के कारण हुई मृत्यु थी लेकिन कुछ का आरोप है कि इसमें निजाम के एक खास सैनिक अनवरुद्दीन का हाथ था जिसे इसके बाद दूसरा नवाब बनाया गया।

अब तक निजाम को यह भनक लग गई थी कि अनवरुद्दीन की नियुक्ति कर्नाटक मे अलोकप्रिय होगी इसलिए उसने घोषणा की कि अनवरुद्दीन तभी तक इस पद पर रहेगा जब तक सैय्यद मुहम्मद वयस्क नही हो जाता। तब तक अनवर उसके संरक्षक की तरह काम करेगा।

पर शीघ्र ही एक और दुर्घटना हो गई। अर्काट में पहुंचने के थोडे दिनों बाद ही सैय्यद मुहम्मद एक विवाह में सम्मिलित होने गया जहा लोगो ने देखा कि उसके सीने मे छुरा घुसा पड़ा है। जिसने भी यह किया उसे पितृहन्ता एवं मुर्तजा अली का सहयोगी माना गया। अनवरुद्दीन पर भी आरोप लगाये गये। निजामुलमुल्क ने भी लापरवाही के लिए उसे डाटा लेकिन फिर भी वह किसी अन्य को उस कार्यालय के लिए नही पा सका। इसी कारण अनवरुद्दीन को ही नवाब के पद पर स्थायी कर दिया गया।

इसी क्षण 1744 में आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध के प्रारम्भ की सूचना भारत पहुची। इस युद्ध में इंगलैंड और फ्रांस एक-दूसरे के विरोधी थे। युरोप में इन देशों के बीच युद्ध ने भारत मे इनसे संबंधित कंपनियो के बीच व्यापार सबंध को भी प्रभावित किया।

यही वह काल था जब दिल्ली में भी अव्यवस्था का राज्य था। मराठों की उभरती शक्ति वैसे आपसी भेदभाव के कारण कमजोर पड रही थी पर अब भी वह दिल्ली की अव्यवस्था को और बढ़ाने के लिए पर्याप्त शक्तिशाली थी। निजामुलमुल्क दक्षिण मे अब दिल्ली की आज्ञा नही मान रहा था पर उसमें इतनी शक्ति न थी कि वह मराठों का मुकाबला कर सके और साथ ही कर्नाटक पर अधिकार जमा सके। और कर्नाटक अपने [illegible] राज् [illegible] मे इतना उलझा

था कि वह यूरोपीय साभों पर अपना नैतिक और अनैतिक अधिकार जताने की स्थिति में नहीं था। इन्हीं परिस्थितियों में आस्ट्रिया के उत्तराधिकार युद्ध की सूचना ने भारत में प्रथम कर्नाटक युद्ध का श्रीगणेश करा दिया।

युद्ध की घटनाएं

प्रथम कर्नाटक युद्ध के प्रारम्भ होने के लगभग 4 वर्ष पहले ला बोर्डोने के नेतृत्व में एक सगठित सैनिक दल अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध होने की स्थिति में, जिसकी सभावनायें बढ़ गई थी, भारतीय जल क्षेत्र में भेजा गया था। पर चूंकि वैसा हुआ नहीं इसलिए इसे मारीशस वापस भेज दिया गया, जहां से यह दल आया था। परिणाम यह हुआ कि जब युद्ध प्रारम्भ हुआ उस समय भारतीय जल क्षेत्र में फ्रांसीसी जहाजें थीं ही नहीं। स्थिति से घबड़ाकर एम० डूप्ले, जो अक्तूबर 1741 में पांडिचेरी का गवर्नर नियुक्त किया गया था, ने मद्रास के गवर्नर मोर्स से अपील की कि वैसे तो उनके देश यूरोप में युद्धरत हैं, भारत में उन्हें तटस्थ रहना चाहिए। मोर्स ने इस प्रस्ताव को मान तो लिया पर साथ ही उसने डूप्ले को सचेत किया कि यदि इंगलैण्ड से युद्ध-पोत आ जाते है तो उसका उन पर नियन्त्रण न रह सकेगा।"[1]

जिस समय डूप्ले को मोर्स ने सचेत किया था उसी समय वह एक शक्तिशाली ब्रिटिश सगठित सेना कमोडोर बार्नेट के नेतृत्व में मद्रास पहुंचने की आशा कर रहा था। बार्नेट जैसे ही भारतीय जल क्षेत्र में पहुंचा उसने फ्रांसीसी व्यापारियों को खदेड़ा और पकड़ लिया।"[2] और साथ ही उनके सामान से लदी नावों को भी पकड़ लिया। डूप्ले ने कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन से भी अनुरोध किया कि वह अंग्रेजों से अपनी कारंवाई रोकने के लिए कहें। नवाब ने तुरन्त अंग्रेजों को लिखा जिसमें उन्होंने फ्रांसीसियों के विरुद्ध कदम उठाना बन्द कर दिया।

पर जल्दी ही परिस्थिति बदल गई। डूप्ले जहां एक ओर भारत में ब्रिटिशों से शांति संबंध स्थापना का प्रयास कर रहा था वहां दूसरी ओर उसने मारीशस से ला बोर्डोने को तुरन्त सहायतार्थ बुला भेजा था। ला बोर्डोने शीघ्र ही 8 युद्ध जहाजें लेकर भारतीय पानी क्षेत्र में उपस्थित हुआ। दूसरी ओर अप्रैल 1746 में बार्नेट की मृत्यु हो गई जिसका उत्तराधिकारी पीटन हुआ जो भारतीय जल सेनापतियों में नहीं माना जाता था। बार्नेट के पास केवल 4 जहाजें थीं जिनमें से सबसे अच्छी 'मेडवे' में पानी छन-छन कर आ रहा था। भारतीय जलवायु ने भी उसके सैनिकों पर कहर ढा दी थी। भारी जहाजों के डाकयार्ड

1. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, 1963, भाग 5, पृ० 120।
2. मैलीसन : लार्ड क्लाइव, पृ० 23।

से लंबी अवधि तक अनुपस्थिति के कारण सामान्यतया उनको और कमजोर बना चुकी थी।

जैसे ही पीटन को पता चला कि ला बोर्डोने भरतीय जल क्षेत्र में प्रवेश किया है उसने उसका पीछा किया और नागापट्टम का चक्कर लगाना प्रारंभ कर दिया। दोनों जल सेनाओं ने 6 जुलाई 1746 के अपराह्न में और 7 जुलाई के प्रातः लड़ाई की। इनमें पीटन कोई प्रभाव नहीं जमा पाया और सुरक्षा की दृष्टि से वह हुगली चला गया और वहां पर और ब्रिटिश सहायता की प्रतीक्षा करने लगा। फ्रांसीसी सेना ने विजय पताका लहराते 8 जुलाई की सायं पांडिचेरी बंदरगाह पर लंगर डाला।

स्थिति से लाभ उठाने के निश्चय से प्रभावित हो फ्रांसीसी बेड़ा अरक्षित मद्रास नगर के निकट 15 सितम्बर को पहुंचा। 11,000 युरोपीय घेरा डाले सैनिकों ने जिनमें से अधिकतर जहाज से बाहर ले आए गए थे तथा कुछ भारतीय व अफ्रीकी नये भरती सैनिकों ने मद्रास के गवर्नर मोर्स को समर्पण करने के लिए बाध्य किया।

जब फ्रांसीसी आक्रमण की तैयारी कर रहे थे, मोर्स ने नवाब अनवरुद्दीन से सहायता की अपील की। पर चूंकि अपील के साथ कोई भेंट न थी इसलिए नवाब ने तब तक कोई उत्तर न दिया जब तक कि फ्रांसीसी मद्रास के पास प्रकट न हो गए। पर उसके बाद उसने डूप्ले को चेतावनी का पत्र भेजा जिसे उसने अनसुना कर दिया। पर जब चेतावनी दुहराई गई, डूप्ले ने शांतिपूर्वक उत्तर देते हुए लिखा कि वह मद्रास को छीनने का प्रयास इसलिए कर रहा है जिससे इसे नवाब को दिया जा सके।

इस बीच मद्रास के विरुद्ध कार्रवाई चलती रही जिसका परिणाम यह हुआ कि दो अंग्रेजों की और चार अन्य की मृत्यु के बाद ब्रिटिशों [illegible] सितम्बर को फ्रांसीसियों से संधि स्वीकार कर ली जिसके अंतर्गत "अं[illegible] की तरह आत्मसमर्पण करना था, नगर तुरंत प्रदान करना [illegible] इसमें रक्षा-शुल्क लेना था।"[1]

फ्रांसीसी हाथों मद्रास-पतन के कई कारण थे। इसमें [illegible] की सुरक्षा की व्यवस्था किसी घेरे को ध्यान में रखकर [illegible] भी अंग्रेज नेताओं ने इस अवसर पर जिस बुद्धिमत्ता [illegible] प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। इस संबंध में [illegible] की जा सकती है। उस समय तो और जब हमें यह [illegible]

1. ओर्मे : हिस्ट्री आफ द मिलिट्री ट्रांजेक्शन्स आफ द [illegible] भाग 1, पृ॰ 68-69।

मद्रास में फ्रांसीसी घेरा डालने वाली अधिकतर सेना उन्ही के जहाजो पर होकर आई। अगर पीटन समुद्र के किनारे बिना लड़े साहसपूर्वक खड़ा ही हो गया होता तो फ्रांसीसियों को उनके जहाजों को लूटने का अवसर न आता।

जैसा भी हो मद्रास की विजय ने फ्रांसीसियों में प्रसन्नता लाने की जगह डूप्ले और ला बोर्डोने के बीच विरोध का प्रारभ कर दिया। ला बोर्डोने सधि की शर्त के अनुसार अंग्रेजों को धन के बदले मद्रास दे देना चाहता था जबकि डूप्ले उस पर अधिकार के पक्ष मे था। इस विरोध मे प्रो० डाडवेल के मतानुसार कोई राष्ट्रीय हित संबद्ध न था। उसके अनुसार "प्रश्न सच मे यह था कि मद्रास से कौन धन अर्जित करता है।"[1] पर डूप्ले के निम्नांकित शब्द, जो उसने ला बोर्डोने को संबोधित किया, निश्चित ही कुछ और भाव प्रस्तुत करते है: "···ईश्वर के नाम पर, आपके बच्चो के नाम पर, आपकी पत्नी के नाम पर··· अपने सम्राट की प्रतिष्ठा की वृद्धि के लिए और अपने राष्ट्र के सामान्य हित के लिए जो आपको भारत मे पुनः स्थापक मानेगा, आइए हम अवसर से लाभ उठाएं।"[2]

दोनों फ्रासीसी नेताओ में विवाद लम्बे अरसे तक चला और जब वे अपने बीच स्वयं समस्या का समाधान न कर सके, प्रकृति ने उनकी सहायता की। एकाएक समुद्र के किनारे एक भयानक तूफान उठ खड़ा हुआ जिसमे फ्रासीसी वेड़ा वर्बाद हो गया और ला वोर्डोने को बाध्य होकर द्वीप की ओर भागना पड़ा। उसने पीछे पर्याप्त सैनिक भी छोड़ दिए जो अब डूप्ले के नियत्रण में आ गए। इस तरह परिस्थिति के नायक डूप्ले ने मद्रास ब्रिटिशों को वापस करने से इन्कार कर दिया।

इसी बीच मद्रास के पतन ने नवाब अनवरुद्दीन को आश्चर्य में डाल दिया जिसने अब यह मांग की कि आश्वासन के अनुकूल यह नगर उसे प्रदान किया जाए। डूप्ले ने उससे टालमटोल किया जिसके फलस्वरूप उसने अपने सबसे बड़े लड़के के नेतृत्व मे 10 हजार की सेना अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए भेजी। इसी समय एक ऐसी घटना घटी जिसने भारत में यूरोपीय कार्यो को एक नयी दिशा दी।

नवाव की सेना ने फोर्ट सेण्ट जार्ज घेर लिया पर शीघ्र ही फ्रासीसियों ने लातूर की अध्यक्षता में धावा बोला और विरोधियों पर भयानक प्रहार किया जिससे बाध्य होकर उन्हे सेण्ट टोम लौटना पडा। पैरेडिस ने और सेना से भी सहायता की। अदयार नदी के तट पर नवाब की संपूर्ण सेना ने उसकी प्रगति

---

1. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 5, पृ० 121।
2. कोटेड बाई मैलीसन : हिस्ट्री आफ द फ्रेन्च इन इंडिया, पृ० 144।

रोकने की चेष्टा की। इस समय पैरेडिस के पास 230 युरोपीय और 7000 भारतीय सैनिक ही थे। पर उसने अपने सैनिकों को सीने तक पानी मे घुसकर आगे बढकर आक्रमण के लिए उत्साहित किया। एक भयानक हत्याकांड महफूज की सेना के विरुद्ध देखा गया और वे फ्रांसीसी पथ से हट गए।

अद्‌यार का युद्ध भारत मे युरोपीय लोगों के राजनीतिक शक्ति के विकास मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रथम, तो इस युद्ध मे फ्रासीसी सफलता के परिणामस्वरूप भारतीय राजाओं का आतंक समाप्त हो गया। दूसरे, युरोपीय सैनिक प्रथा जिसमें तोपखाना समर्थित पैदल सेना पर विश्वास किया जाता था उसने भारतीयों से घुड़सवार सेना के विरुद्ध अपनी श्रेष्ठता का परिचय दिया। तीसरे, "इससे धीरे से पर निश्चित रूप से यह आशा बलवती हुई कि भारत पर कोरोमडल कोस्ट की इस या उस युरोपीय शक्ति की विजय होगी।"[1]

उधर मद्रास की विजय ने डूप्ले को कोरोमंडल कोस्ट में ब्रिटिश शक्ति को दबाने की ओर प्रेरणा दी। लगभग पांडीचेरी के 16 मील दक्षिण फोर्ट सेण्ट डेविड नामक अंग्रेजो का क्षेत्र था। मद्रास के पतन के 18 माह बाद डूप्ले ने इसे जीतने का असफल प्रयास किया। नवाब की सेना ब्रिटिशों की सहायता की तैयारी कर रही थी पर वे डूप्ले द्वारा अपनी ओर मिला लिये गए क्योकि उन्हे उसने यह आश्वासन दिया कि वह फोर्ट सेण्ट जार्ज पर नवाब का झंडा फहराएगा यदि उसके एक सप्ताह बाद आदर से वह नगर फ्रासीसियों को दे दिया जाए। नवाब को फ्रासीसियों से 40,000 रु० की भेट भी मिलनी स्वीकृत हुई। इस सभी के फलस्वरूप *नवाब का ब्रिटिशो को सहायता का प्रस्ताव वापस ले लिया गया।* लेकिन इस पर भी फ्रासीसी फोर्ट सेण्ट डेविड नही प्राप्त कर सके।

ला वोर्डोने की वापसी ने स्थिति मे बडा अंतर कर दिया था। एक ब्रिटिश सेनापति ग्रिफिन के आगमन ने ब्रिटिशों की कमजोरी कुछ दूर की। इस तरह 1747 निकल गया और 1748 की जून मे बूये एक फ्रासीसी सेना लेकर मद्रास मे धन सहित पहुंचा। उसने ग्रिफिन से युद्ध करने से इन्कार किया जिसने फ्रांसीसियो को वहा उतरने से रोकने के लिए घेरा डाल रखा था।

रियर ऐडमिरल बोसकावे के नेतृत्व में भारतीय जल क्षेत्र मे अगस्त मे एक सेना ने अंग्रेजो के अपमान का फ्रासीसियों से बदला लेने के लिए बडा आक्रमण किया। पाडिचेरी घेर लिया गया। पर उनके गलत रणनीति और अकुशल नेतृत्व के कारण अंग्रेज अपने दुर्भाग्य से पीछा छुडाने मे फिर असफल हो गए। बोसकावे ने घेरा उठा लिया और फोर्ट सेण्ट डेविड चला गया और इस तरह युद्ध मे विजय का सेहरा फ्रासीसियो के माथे बंध गया।

---

1. मेलीसन : लार्ड क्लाइव, पृ० 26।

सेण्ट डेविड मे वोसकावें पुन: पाडिचेरी पर घेरा डालने की जब तैयारी ही कर रहा था कि यह सूचना आई कि इंगलैण्ड और फ्रांस ने आपस मे एक्स-ला-शैपेल (1748) की संधि कर ली है। इस संधि की धारा के अंतर्गत फ्रांसीसियों और अंग्रेजों को भारत में भी तुरंत युद्ध समाप्त करना था। यह भी निश्चय हुआ कि मद्रास फांसीसी अंग्रेजों को वापस करेंगे जिसके बदले उत्तरी अमेरिका मे फ्रांसीसियों को लुईबर्ग वापस कर दिया जाएगा। इस तरह वोसकावे का काम पूरा हो गया और वह घर वापस लौट गया।

प्रथम कर्नाटक युद्ध बेकार नही लड़ा गया। 1748 मे स्थापित शांति 1744 की शाति से भिन्न थी। 1744 में कर्नाटक का नवाब स्वामी था एव ब्रिटिश तथा फ्रासीसी उसके स्वामिभक्त थे। पर अब अंग्रेजों को मद्रास के लिए लगान देने की आवश्यकता न थी जिसे उन्होंने 1752 से देना भी बद कर दिया। दूसरे इस क्षेत्र की सैनिक शक्ति का जादू भी पूरी तरह से समाप्त हो गया और भारतीय शासक जो भय युरोपीयों के मन मे ले आने मे समर्थ होते थे वह भी खत्म हुआ। इसके साथ ही युरोपीय सेना का अनुशासन व विधि तथा घुडसवारो की तुलना में पैदल सेना के उनके प्रयोग ने जो योग्यता प्रदर्शित की जिसका परिचय हम दे आए हैं, उसने विदेशियो के मन मे भारत मे राजनैतिक शक्ति की प्राप्ति के लिए उन्हें और प्रेरणा प्रदान की क्योंकि वह मुगलो के हाथ से निकली जा रही थी। चौथे, ला बोर्डोने को परिस्थिति ने बाध्य किया था कि वह भारतीय जल क्षेत्र में भागते समय एक बड़ी सेना पीछे छोड़ जाए। डूप्ले, जिसने यह जानकारी प्राप्त कर ली थी कि किस तरह से भारतीय राजनीति मे निर्णायक की भूमिका की जाए, उसे इन लोगों के द्वारा इस बात का अवसर मिला कि अपने उद्देश्य की पूर्ति करे। पाचवें, इस युद्ध के परिणामस्वरूप फ्रासीसियो ने बहादुर लडने वालो के रूप में प्रतिष्ठा अर्जित की। वैसे उनके द्वारा प्राप्त लाभ पूरी तरह नष्ट हो गया क्योंकि उन्हे मद्रास ब्रिटिशों को देने को बाध्य होना पड़ा और अंतिम रूप से फ्रासीसियो और अंग्रेजों के बीच युद्ध से यह स्पष्ट हो गया कि जो समुद्र में बलशाली होगा वही विजय प्राप्त करेगा।

रोकने की चेष्टा की। इस समय पैरेडिस के पास 230 युरोपीय और 7000 भारतीय सैनिक ही थे। पर उसने अपने सैनिकों को सीने तक पानी में घुसकर आगे बढकर आक्रमण के लिए उत्साहित किया। एक भयानक हत्याकाड महफूज की सेना के विरुद्ध देखा गया और वे फ्रासीसी पथ से हट गए।

अद्यार का युद्ध भारत मे युरोपीय लोगों के राजनीतिक शक्ति के विकास मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रथम, तो इस युद्ध मे फ्रासीसी सफलता के परिणामस्वरूप भारतीय राजाओ का आतंक समाप्त हो गया। दूसरे, युरोपीय सैनिक प्रथा जिसमे तोपखाना समर्थित पैदल सेना पर विश्वास किया जाता था उसने भारतीयो से घुडसवार सेना के विरुद्ध अपनी श्रेष्ठता का परिचय दिया। तीसरे, "इससे धीरे से पर निश्चित रूप से यह आशा बलवती हुई कि भारत पर कोरोमंडल कोस्ट की इस या उस युरोपीय शक्ति की विजय होगी।"[1]

उधर मद्रास की विजय ने डूप्ले को कोरोमंडल कोस्ट में ब्रिटिश शक्ति को दबाने की ओर प्रेरणा दी। लगभग पाडीचेरी के 16 मील दक्षिण फोर्ट सेण्ट डेविड नामक अग्रेजो का क्षेत्र था। मद्रास के पतन के 18 माह बाद डूप्ले ने इसे जीतने का असफल प्रयास किया। नवाब की सेना ब्रिटिशो की सहायता की तैयारी कर रही थी पर वे डूप्ले द्वारा अपनी ओर मिला लिये गए क्योकि उन्हें उसने यह आश्वासन दिया कि वह फोर्ट सेण्ट जार्ज पर नवाब का झंडा फहराएगा यदि उसके एक सप्ताह बाद आदर से वह नगर फ्रांसीसियो को दे दिया जाए। नवाब को फ्रांसीसियों से 40,000 रु० की भेंट भी मिलनी स्वीकृत हुई। इस सभी के फलस्वरूप नवाब का ब्रिटिशो को सहायता का प्रस्ताव वापस ले लिया गया। लेकिन इस पर भी फ्रांसीसी फोर्ट सेण्ट डेविड नही प्राप्त कर सके।

ला बोर्डोने की वापसी ने स्थिति में बड़ा अंतर कर दिया था। एक ब्रिटिश सेनापति ग्रिफिन के आगमन ने ब्रिटिशों की कमजोरी कुछ दूर की। इस तरह 1747 निकल गया और 1748 की जून मे बूये एक फ्रासीसी सेना लेकर मद्रास में धन सहित पहुचा। उसने ग्रिफिन से युद्ध करने से इन्कार किया जिसने फ्रांसीसियों को वहा उतरने से रोकने के लिए घेरा डाल रखा था।

रियर ऐडमिरल बोसकावे के नेतृत्व में भारतीय जल क्षेत्र में अगस्त मे एक सेना ने अंग्रेजो के अपमान का फ्रांसीसियों से बदला लेने के लिए बड़ा आक्रमण किया। पाडिचेरी घेर लिया गया। पर उनके गलत रणनीति और अकुशल नेतृत्व के कारण अंग्रेज अपने दुर्भाग्य से पीछा छुडाने मे फिर असफल हो गए। बोसकावे ने घेरा उठा लिया और फोर्ट सेण्ट डेविड चला गया और इस तरह युद्ध मे विजय का सेहरा फ्रांसीसियों के माथे बंध गया।

---

1. मेलीसन : लार्ड क्लाइव, पृ० 26।

कर लेने पर उपरोक्त स्थान उन्हे प्रदान करेगा। समझौता हो गया और अप्रैल 1749 मे कप्तान कोप के नेतृत्व में देवीकोट्टाई पर ब्रिटिशो ने अभियान भी किया। परं वे अपने उद्देश्य मे सफल न हुए। दूसरा ब्रिटिश अभियान मेजर लारेन्स के अधीन किया गया जिसके फलस्वरूप प्रताब सिंह 23 जून को देवीकोट्टाई सहित कुछ आसपास के क्षेत्र भी देने को तैयार हो गया जिससे वार्षिक राजस्व का लाभ ही 36,000 रुपये था। देवीकोट्टाई मिल जाने के बाद किसी ने शाहजी की चिन्ता न की और उसे छोटी-सी पेन्शन प्रदान कर ब्रिटिशो ने मद्रास मे अपने ही अन्दर रख लिया। देवीकोट्टाई पर ब्रिटिश अधिकार ने एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया जिसे फ्रांसीसियों ने हैदराबाद के दरबार मे प्रारम्भ किया और कर्नाटक मे भी।

प्रथम कर्नाटक युद्ध मे न तो ब्रिटिशों ने और न ही फ्रासीसियों ने निजामुल-मुल्क के दरबार मे क्रमशः अपना प्रभाव बढाने मे कोताही बरती थी। उन्होने उसका समर्थन प्राप्त करने की चेष्टा की थी। फ्रांसीसियो के गुलाम इमाम हुसेन नामक एक दूत को निजाम के पास भेजकर उसमे फ्रासीसियो के पक्ष मे नीति अपनाने मे सफलता प्राप्त की। दूसरी ओर ब्रिटिशो ने अपना दूत मुत्यलु नायक को भेजकर निजामुलमुल्क के पुत्र नासिरजग को अपने पक्ष मे करने मे सफलता प्राप्त की। पर 1746 में निजामुलमुल्क की मृत्यु ने सारा कुछ समाप्त कर दिया। इसी वर्ष संयोग से ब्रिटिशों और फ्रांसीसियो के बीच एक्स-ला-शैपेल की संधि हुई थी।

निजामुलमुल्क का उत्तराधिकारी नासिरजग हुआ जिसके पास 70,000 की एक शक्तिशाली सेना थी। यह सेना नवाब अवध सफदरजग की आखो मे खटकती थी। हैदराबाद में भी उसकी स्थिति बिना विरोध के नही थी। नासिरजग का भतीजा और निजामुलमुल्क का पौत्र मुजफ्फर जग जो बीजापुर और अदोनी का सूबेदार था, अपने चाचा के विरुद्ध षड्यन्त्ररत था। उसने अपने पक्ष हेतु सफदरजग, कुछ अन्य छोटे राज्यो तथा हैदराबाद दरबार के कुछ प्रभावी सामन्तो का गुप्त सहयोग प्राप्त किया। फिर वह संतुष्ट नही था। फ्रांसीसियो के लिए इससे बढ़कर अवसर नही था।

कर्नाटक तक की स्थिति भी फ्रासीसियों को अपनी ओर आकृष्ट कर रही थी। जैसा हमने देखा है, चांदा साहब को मराठे 1741 में पूना बंदी बनाकर लेते गए थे, उसे 1748 मे मुक्त कर दिया। जैसे ही वह मुक्त हुआ उसने मुजफ्फर जंग से गुप्त संघर्ष स्थापित कर हैदराबाद मे नासिरजंग का स्थान दिलवाने को कहा और उसे कर्नाटक में अनवरुद्दीन की जगह दिलवाने को आश्वस्त किया। डूप्ले भी कर्नाटक के नवाब से पांडिचेरी के घेरे के अवसर पर ब्रिटिशो को दी गई सहायता का बदला लेना चाहता था। इन परिस्थितियो मे एक त्रिगुट संधि

9

कर्नाटक का द्वितीय युद्ध (1749-1754)

परिस्थितियां

प्रथम कर्नाटक युद्ध ने फ्रांसीसी और ब्रिटिश दोनो के साधन-स्रोतों को तबाह कर दिया था। इसलिए अब दोनों शांति चाहते थे। पर चाहे शांति हो या युद्ध यह व्यक्ति के ही नियन्त्रण मे नही है कि वह जैसा चाहे हो। सच मे दो शक्तियों के बीच सुलह अभी हो भी न पाई थी कि प्रकृति ने दूसरे युद्ध के लिए ताना-बाना बुनना प्रारम्भ कर दिया।

प्रथम कर्नाटक युद्ध काल मे दोनों युरोपीय शक्तियों ने अपनी सैनिक शक्ति स्थानीय स्तर पर और युरोप के लोगों को बुलाकर बढाई थी। युद्ध समाप्ति के बाद स्थानीय लोगो को मुक्त करना सरल न था क्योंकि प्रशिक्षण और हथियार पर धन व्यय हुआ था तथा युरोपीय सैनिकों को जहाजों के मौसम में भेजा जा सकता था जो अभी आगे था। इसीलिए दोनो शक्तियों ने अपने सैनिकों को धन-व्यय की कटौती हेतु भारतीय राजाओ के यहा रखने का मन्तव्य व्यक्त किया।

दूसरी ओर ऐसा कुछ हो रहा था कि ईर्ष्या और शक्ति प्राप्ति के संघर्ष के कारण भारतीय राजा भी विदेशियो से सहायता की अपीलें कर रहे थे। इस क्षेत्र में शुरुआत तंजौर ने की और कर्नाटक व दक्षिण के नवाब ने भी वैसा ही किया।

तंजौर को शिवाजी के पिता शाहजी ने जीतकर अपने भाई वेन्काजी को सौंप दिया था। वेन्काजी के बाद यहा के शासक उनके पुत्र तुकाजी हुए। तुकाजी 1738 में मर गए। उनके बाबा साहिब तथा शाहजी वैध पुत्र थे तथा प्रताब सिंह उनकी एक रखैल के। बाबा साहिब ही अपने पिता तुकाजी के उत्तराधिकारी हुए। पर जल्दी ही उनकी मृत्यु के कारण उनके भाई शाहजी उत्तराधिकारी हुए। पर शाहजी राज्य करने की कला में असफल रहे इसीलिए प्रताब सिंह ने उन्हें गद्दी से हटाकर 1741 मे स्वय अधिकार कर लिया।

तंजौर क्षेत्र में ही कालरों के मुहाने पर देवीकोट्टाई नामक एक छोटा स्थान था जिस पर अधिकार से विदेशी शक्ति का नदी के उस भाग पर भी अधिकार हो जाता जो नवगम्य था और साथ ही जहा से सभी व्यापार करना भी सम्भव था। देवीकोट्टाई ने ब्रिटिशो को आकृष्ट किया और उन्होंने प्रताब सिंह के विरुद्ध शाहजी को इस शर्त पर सहायता देने को कहा कि वह गद्दी प्राप्त

कर लेने पर उपरोक्त स्थान उन्हें प्रदान करेगा। समझौता हो गया और अप्रैल 1749 मे कप्तान कोप के नेतृत्व मे देवीकोट्टाई पर ब्रिटिशो ने अभियान भी किया। पर वे अपने उद्देश्य में सफल न हुए। दूसरा ब्रिटिश अभियान मेजर लारेन्स के अधीन किया गया जिसके फलस्वरूप प्रताब सिंह 23 जून को देवीकोट्टाई सहित कुछ आसपास के क्षेत्र भी देने को तैयार हो गया जिससे वार्षिक राजस्व का लाभ ही 36,000 रुपये था। देवीकोट्टाई मिल जाने के बाद किसी ने शाहजी की चिन्ता न की और उसे छोटी-सी पेन्शन प्रदान कर ब्रिटिशो ने मद्रास मे अपने ही अन्दर रख लिया। देवीकोट्टाई पर ब्रिटिश अधिकार ने एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया जिसे फ्रांसीसियो ने हैदराबाद के दरबार मे प्रारम्भ किया और कर्नाटक में भी।

प्रथम कर्नाटक युद्ध में न तो ब्रिटिशों ने और न ही फ्रासीसियो ने निजामुल-मुल्क के दरवार मे क्रमश अपना प्रभाव बढाने में कोताही वरती थी। उन्होने उसका समर्थन प्राप्त करने की चेप्टा की थी। फ्रांसीसियों के गुलाम इमाम हुसेन नामक एक दूत को निजाम के पास भेजकर उसमें फ्रासीसियों के पक्ष मे नीति अपनाने में सफलता प्राप्त की। दूसरी ओर ब्रिटिशो ने अपना दूत मुत्यलु नायक को भेजकर निजामुलमुल्क के पुत्र नासिरजंग को अपने पक्ष मे करने में सफलता प्राप्त की। पर 1746 मे निजामुलमुल्क की मृत्यु ने सारा कुछ समाप्त कर दिया। इसी वर्ष संयोग से ब्रिटिशों और फ्रासीसियो के बीच एक्स-ला-शैंपेल की संधि हुई थी।

निजामुलमुल्क का उत्तराधिकारी नासिरजंग हुआ जिसके पास 70,000 की एक शक्तिशाली सेना थी। यह सेना नवाब अवध सफदरजंग की आखों मे खटकती थी। हैदराबाद मे भी उसकी स्थिति बिना विरोध के नही थी। नासिरजंग का भतीजा और निजामुलमुल्क का पौत्र मुजफ्फर जंग जो बीजापुर और अदोनी का सूबेदार था, अपने चाचा के विरुद्ध षड्यन्त्ररत था। उसने अपने पक्ष हेतु सफदरजग, कुछ अन्य छोटे राज्यो तथा हैदराबाद दरबार के कुछ प्रभावी सामन्तों का गुप्त सहयोग प्राप्त किया। फिर वह संतुष्ट नही था। फ्रासीसियो के लिए इससे बढ़कर अवसर नही था।

कर्नाटक तक की स्थिति भी फ्रांसीसियो को अपनी ओर आकृष्ट कर रही थी। जैसा हमने देखा है, चादा साहब को मराठे 1741 मे पूना बंदी बनाकर लेते गए थे, उसे 1748 मे मुक्त कर दिया। जैसे ही वह मुक्त हुआ उसने मुजफ्फर जंग से गुप्त संपर्क स्थापित कर हैदराबाद मे नासिरजंग का स्थान दिलवाने को कहा और उसे कर्नाटक में अनवरुद्दीन की जगह दिलवाने को आश्वस्त किया। डूप्ले भी कर्नाटक के नवाब से पांडिचेरी के घेरे के अवसर पर ब्रिटिशो को दी गई सहायता का बदला लेना चाहता था। इन परिस्थितियों में एक त्रिगुट संधि

स्थापित होने में कठिनाई नहीं हुई। तीनों दलों की मिली-जुली 38,400 सेना ने अनवरुद्दीन से अम्बुर में लड़ाई की। इसमें वह पराजित हुआ और 3 अगस्त 1748 को मार डाला गया।

इस विजय के बाद मुजफ्फर जंग ने अपने को दक्षिण का निजाम घोषित किया और चांदा साहब को कर्नाटक का नवाब घोषित किया। डूप्ले को विल्लियानल्लुर और बहुर के अतिरिक्त उड़ीसा के समुद्र तट पर दीवी द्वीप और मछलीपट्टम का प्रांत पारितोषिक में दिया गया।

अनवरुद्दीन कत्ल किया जा चुका था और उसका लड़का महफूज खां बंदी बना लिया गया था फिर भी उसके परिवार की कथा का अन्त यहीं नहीं हुआ। अनवरुद्दीन का दूसरा लड़का मुहम्मद अली त्रिचनापल्ली चला गया और वहीं से कर्नाटक के सिंहासन को प्राप्त करने का प्रयास करने लगा। ब्रिटिशों को उसे और नासिरजंग के साथ भी उसी तरह की सामान्य बात के लिए सहायता देने का यह अच्छा अवसर था क्योंकि वे निश्चित रूप से जानते थे कि फ्रांसीसी यदि ऐसे ही वि-रोकटोक लाभ अर्जित करते रहे तो भारत में ब्रिटिश शक्ति को समाप्त करने में न चूकेंगे इसीलिए डूप्ले को दिए जाने वाले पारितोषिक के उत्तर में ब्रिटिशों ने मद्रास से 4 मील से कम दूर ही स्थित सेण्ट टोम पर अधिकार कर लिया। यहां का उनका अधिकार महत्त्वपूर्ण था क्योंकि डूप्ले ने चांदा साहब की ओर से इस पर अधिकार की मांग की थी। इसी ने फ्रांसीसियों और ब्रिटिशों के बीच द्वितीय कर्नाटक युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार की जबकि दोनों देशों में युरोप में शांतिमय संबंध चल रहे थे।

युद्ध

जब मुहम्मद अली ने त्रिचनापल्ली के किले में शरण ली तो वह अच्छी तरह साधनसंपन्न और रक्षित न था। कर्नाटक सेना का अवशिष्ट जो उसके पास था और जो अम्बुर से अभी आया था, वह भी बहुत अच्छी हालत में नहीं था। मद्रास से आने वाले सैनिक थोड़े ही थे। इन परिस्थितियों में त्रिचनापल्ली की प्राप्ति डूप्ले के कथनानुसार चांदा साहब द्वारा वहां पर तुरंत आक्रमण करने पर असंभव थी पर चांदा साहब ने पहले तंजौर पर आक्रमण किया और फ्रांसीसियों से भी ऐसा ही करने को कहा। उसे आशा थी कि यहां से अपने व्यय के लिए पर्याप्त धन प्राप्त हो जायगा।

इस तरह फ्रांसीसी और चांदा साहब गलत दिशा की ओर चल पड़े। ब्रिटिशों द्वारा उत्साहित और नासिरजंग से सहायता पाने की आशा में, तंजौर इन दुश्मनों को तीन मास की लम्बी अवधि तक फंसाए रखा और जब अंततः तंजौर के राजा ने इन्हें सत्तर लाख रुपये की राशि देनी स्वीकार करली,

उसी समय समाचार मिला कि नासिरजंग कर्नाटक की सीमा मे घुस आया है। जब तक त्रिचनापल्ली शक्ति-संग्रह करता, तंजौर की सेना भड़क उठी। ब्रटिशों ने भी परिस्थिति का लाभ उठाया और क्यूडालोर के समीप तिरुवेन्दीपुरम को कब्जे मे करके अपने को मजबूत बना लिया। यह सब सन् 1750 के आरम्भ में ही हुआ।

इसलिए परिस्थिति ने एक दूसरा मोड़ लिया। नासिरजग ने अपने अधिकार मे एक विशाल सेना तैयार की, जिसको उन अग्रेजो का भी समर्थन प्राप्त हुआ जो कैप्टन कोप के नेतृत्व मे कार्यरत थे। मार्च 1750 के अंत में दोनो सेनाओ की मुठभेड़ जिजी के तट पर हुई। लेकिन इसके पहले कि युद्ध प्रारभ हो, 4 अप्रैल की रात में ही तेरह[1] फ्रांसीसी अधिकारियों ने पांडिचेरी भाग लिया और मुजफ्फरजग अपने को अपने चाचा नासिरजंग की दया पर छोड़ दिया जिसने उसे कैद कर रखा था। इस लाभ से संतुष्ट होकर नासिरजग अर्कोट की तरफ पीछे हट गया, जहा छः मास की अवधि तक उसने विश्राम और आत्म-तोष का लाभ लिया।

डूप्ले इससे भिन्न प्रकार का था। वह इस तरह की विनीत स्थिति को शांत करने के लिए तैयार नही करता था। उसने अपनी सेना को पुनर्गठित तथा शक्ति-शाली बनाना प्रारंभ किया। उसने तिरुवति और विल्लूपुरम को कब्जे में कर लिया और 12 सितबर 1750 को, बुस्सी के नेतृत्व मे फ्रासीसी टुकडियों ने जिंजी के किले से मुहम्मद अली को खीच लिया, जो अब तक दुर्जेय माना जाता रहा। इस घटना ने सुस्त पड़े निजाम नासिरजंग को हिला दिया और उसने मुहम्मद अली तथा ब्रिटिशों की चेतावनी की ओर ध्यान देने का निश्चय किया जो अभी तक उसे व्यर्थ समझ रहे थे। लेकिन अब तक बहुत देर हो चुकी थी।

कर्नाटक की राजधानी अर्कोट से नासिरजग के हटने से पूर्व ही डूप्ले की राजनीति अपने कोर्ट मे ठीक तरह से काम करने लग गई थी। डूप्ले ने क्यूडापा, कर्नूल और सवानूर के नवाबों सहित अन्य कई निजामो की हार्दिक सहानुभूति, मुजफ्फरजग के लिए अर्जित कर ली थी। इसलिए जैसे ही दोनो पक्षो मे लड़ाई प्रारभ हुई निजाम के कुछ सैनिको ने उसका साथ छोड़ दिया। इसके बाद उपस्थित होने वाली अव्यवस्था का लाभ उठाकर कद्दापाह के नवाब ने गुप्त रूप से नासिरजंग पर आक्रमण करके मार डाला। मुजफ्फरजंग को तुरंत मुक्त करके दिसबर 1750 मे दक्षिण का निजाम घोषित किया गया।

यह सचमुच डूप्ले के लिए महान विजय थी। "मुजफ्फरजंग को पांडिचेरी निमन्त्रित किया गया जहा वह उसी पालकी मे डूप्ले के साथ पहुंचा। दूसरे दिन

---

1. द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 5, पृ० 127।

का दरबार क्या था आवाजो और रगो का तूफान था एवं वहा नक्कारो, हाथियो, झडो, जवाहिरातो और चित्रपटों की धूम थी। डूप्ले को वस्त्रोपाधि के अतिरिक्त, खिताब, एक किला, बहुत से गाव और एक लाख रुपये की जागीर दी गई। उसे किस्ताना और केप कैमोरिन के बीच की भूमि का नवाब बनाया गया और चादा साहब को उसकी ही अध्यक्षता मे अर्कोट का नवाब बना दिया गया। निजामुलमुल्क के लम्बे और लाभपूर्ण जीवन में एकत्रित खजाना मुक्त-हस्त लोगो के बीच बांटा गया। डूप्ले के ही विषय मे कहा जाता है कि मूल्यवान जवाहिरातो के अतिरिक्त उसे दो लाख पौड का धन मिला।"[1]

डूप्ले ने एक बहुचर्चित सफलता प्राप्त की थी और इसकी एक महत्ता यह भी कि ब्रिटिशो को मद्रास मे ही फ्रासीसियो की महत्ता के अधीन रहना होगा। फोर्ट सेण्ट डेविड के ब्रिटिश गवर्नर फ्लवायर फ्रासीसियों के इस स्थायी उत्थान को समझ नही सका। सामान्यतया यह नही विश्वास किया जाता है कि उसने इसके विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया भी नही व्यक्त की बल्कि उसके स्थान पर उसने चादा साहब के अम्बुर के युद्ध के बाद कर्नाटक के नवाब होने पर बधाई सदेश भेजा।

पर शीघ्र ही परिस्थितियो ने दूसरा स्वरूप ग्रहण किया। 28 सितंबर 1750 को सांडर्स नामक एक अधिक योग्य व्यक्ति ने फ्लवायर का स्थान ग्रहण किया और वह अब परिस्थिति का अधिक चेतनता से ध्यान रख रहा था। मुहम्मद अली को तत्कालीन आक्रमण से बचा लिया गया, उसे समय भी प्राप्त हो गया और ब्रिटिशो से और सहायता भी प्राप्त हो गई। दूसरी ओर मुजफ्फरजंग की ओर ब्रिटिशों के लिए एक सौभाग्यपूर्ण घटना तब हुई जब उसने डूप्ले से हैदराबाद आने के समय आत्मरक्षा हेतु कुछ फ्रांसीसी सैनिको की मांग की। फ्रांसीसी सैनिक बुस्सी को इसके लिए नियुक्त किया गया और वह 15 जनवरी 1751 को इसके लिए रवाना हो गया। इस तरह जो फ्रांसीसी सेनाएं मुहम्मद अली के विरुद्ध प्रयुक्त की जा सकती थी वह घट गई। मुजफ्फरजंग नासिरजग का उत्तराधिकारी होने के बाद अधिक दिनों तक जीवित न रह सका क्योंकि उसको भी इन्ही लोगों ने मार डाला जिन्होंने उसके पूर्व अधिकारी को मारा था। बुस्सी ने शीघ्र ही उसकी जगह नासिरजंग के भाई सलाबतजंग को गद्दी दिला दी। नये शासक ने फ्रासीसियो को धन व क्षेत्र का उपयुक्त पारितोषिक ही नही दिया बल्कि उनकी सेना को हैदराबाद मे रहना अनिवार्य कर दिया।

इस सबसे ब्रिटिशो को सहायता मिली क्योंकि जब अंततः डूप्ले ने त्रिचनापल्ली को लेने का निश्चय किया तो वह पहले से कमजोर हाल में था और अंग्रेज शक्तिशाली थे। पर ब्रिटिशों के लिए स्थिति अब भी निराशाजनक

---

1. टामसन, ई० टो० ऐण्ड गैरेट, ओ० टी० : राइज ऐण्ड फुलफिलमेण्ट आफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया, 1962, पृ० 74।

थी। चांदा साहब ने त्रिचनापल्ली लेने के लिए लगभग अपने सभी सैनिकों को एकत्रित किया। उसे 900 फ्रांसीसी सैनिकों की भी सहायता प्राप्त हुई। दूसरी ओर मुहम्मद अली के पास अपने 5,000 सैनिक थे और उसे 600 अंग्रेजों की सहायता प्राप्त थी। त्रिचनापल्ली अधिक समय तक इन परिस्थितियों में आत्म-रक्षा कर सकेगा, इसकी आशा न थी और इसका पतन निःसंदेह विजयी सेना के मद्रास पर आक्रमण की बाढ ला देता, ऐसा तय था। मद्रास उस समय अत्यंत असुरक्षित अवस्था में था। ब्रिटिशों की ओर सभी का मस्तिष्क नैराश्य से भरा था।

पर इसी समय उस समय की सारी परिस्थिति का आकलन करने वाला बुद्धिमान क्लाइव प्रकट हुआ। उसने सांडर्स के समक्ष प्रस्ताव रखा कि त्रिचनापल्ली और मद्रास को बचाने का एक ही उपाय है कि पूर्णरूपेण निरावृत व असुरक्षित स्थान अर्कोट पर आक्रमण कर दिया जाय। इससे शत्रु बाध्य होकर त्रिचनापल्ली का घेरा उठा लेगा या कम से कम इतना तो होगा ही कि वे अर्कोट की रक्षा के लिए ब्रिटिशों के विरुद्ध सेना भेजकर त्रिचनापल्ली पर दबाव कम कर देंगे। प्रस्ताव प्रयास योग्य था और साडर्स ने इसे स्वीकार करते हुए इसकी कार्यवाही का दारोमदार क्लाइव को ही सौंप दिया।

सेण्ट डेविड से क्लाइव 200 अंग्रेज और 300 भारतीय सैनिकों का नेतृत्व करता हुआ 26 अगस्त 1751 को रवाना हुआ। उसके पास तीन बदूकें थी जब कि "उसके आठ अधिकारियों में से चार नागरिक सेवा से आए थे और दो ऐसे थे जिन्हे गोलाबारी का अनुभव ही न था।" "क्लाइव" 31 तारीख को अर्कोट पहुचा, उनको घेरा और नगर को घुटने टेकने को बाध्य किया। उसका एक भी आदमी नहीं मारा गया।"[1]

क्लाइव ने कमाल का शानदार काम किया था और इसकी प्रतिक्रिया तुरन्त हुई। जैसे ही इस घटना की सूचना फैली अवसरवादी मित्र ब्रिटिशों और मुहम्मद अली के चारों ओर मडराने लगे। बहुत से छोटे-छोटे शासक जो त्रिचनापल्ली और पूर्वीतट के बीच शासन करते थे, एक प्रसिद्ध मराठा नेता मुरारी राव मैसूर का राजा, तजौर का शासक सभी मुहम्मद अली की सहायता के लिए आने लगे। दूसरी ओर चादा साहब को अपने पुत्र रजा साहब के नेतृत्व में 3,000 सर्वत्त अच्छे सैनिकों को अर्कोट वापस लेने के लिए भेजना पडा। उसकी सहायता के लिए 150 फ्रांसीसी भी थे। "घेरा 23 सितंबर को प्रारंभ हुआ। क्लाइव और रक्षकों की आश्चर्यजनक दृढता तथा महान साहसपूर्ण शक्ति और स्रोत का परिचय इस अवसर पर दिखाया। भारतीय सिपाहियों ने अंग्रेजों से साहस एवं थकान,

1. मैलीसन : लार्ड क्लाइव (इंडियन रीप्रिंट), पृ० 39-40।

कुछ नयी सेना तैयार करके 400 फ्रांसीसी सैनिकों सहित एकाएक पूणमलाई पर आक्रमण कर जीत लिया। यह स्थान मद्रास से 13 मील दक्षिण-पश्चिम था। यहां से वे आसानी से मद्रास पहुच और जीत सकते थे क्योंकि इसकी रक्षा के लिए 100 व्यक्तियों से अधिक तैनात न थे। पर उन्होंने पुनः उसी तरह की सामरिक भूल की जैसी मुहम्मद अली के अधिकार में रहने पर उन्होंने त्रिचनापल्ली न लेकर की थी और निश्चय किया था कि उत्तरी अर्कोट घेरा जाय तो ब्रिटिश त्रिचनापल्ली अपने आप छोड़ देंगे। इस उद्देश्य हेतु उन्होंने काचीपुरम् जीता और वन्दलुर की ओर चले जहां से मद्रास 25 मील उत्तर पड़ता था।

क्लाइव इस समय फोर्ट सेण्ट डेविड में था जहां पर उसने और सांडर्स ने तैयारी की जिससे क्लाइव त्रिचनापल्ली की रक्षा के लिए जा सके। पर जब उन्हे शत्रुओं की बेचैनी पैदा करने वाली चालों का पता चला तो उन्होंने अपनी योजना बदल दी। बंगाल आवश्यक संदेश भेजकर कुछ सेना मंगाई गई, अर्कोट के रक्षा करने वाले 80 प्रतिशत सैनिक भी बुला लिये गए और तुरंत वन्दलुर की ओर रवाना हो गये। पर शत्रु सेना उसके पहुचने के पूर्व स्थान छोड चुकी थी और अर्कोट की दिशा में जाते हुए उससे 10 मील पूर्व कावेरीपाक में रुकी हुई थी। वन्दलुर पहुचते ही क्लाइव ने शत्रु सेना का तेजी से पीछा करना प्रारंभ किया। वह कावेरीपाक शत्रु सेना के वहा से हटने के पहले ही पहुच गया। पुनः एक रक्तरंजित लड़ाई हुई जिसमे जहा क्लाइव के 70 सैनिकों की हानि हुई वहा उसके विपक्ष के 50 सैनिक मारे गए और 300 घायल या गायब हुए। परिणामस्वरूप उत्तरी अर्कोट शत्रुरहित हो गया और क्लाइव पुनः फोर्ट सेण्ट डेविड वापस चला गया।

इसके बाद क्लाइव के लिए त्रिचनापल्ली की ओर जाना शेष रह गया था। इसी समय क्लाइव का वरिष्ठ स्ट्रिन्जर लारेन्स इंगलैंड से पहुंचा और सेना का नेतृत्व ग्रहण किया। क्लाइव उसके बाद था। वे त्रिचनापल्ली रवाना हुए। फ्रांसीसियों ने उन्हें घेरने की चेष्टा की पर वे लड़ते हुए मुहम्मद अली की सहायता में पहुंचने में सफल हो गए।

ब्रिटिशों की सफलता और मैसूर[1] सहित तमाम छोटे-छोटे राजाओं का मुहम्मद अली से मिल जाना लॉ के लिए हतोत्साहित होने का कारण बन गया जिससे वह सेरिंघम द्वीप चला गया। कालरो के उत्तरी तट पर पैचन्द नामक एक किलेबंद पगोडा के द्वार से होकर ही सेरिंघम का देश से संपर्क था। इस रास्ते को समाप्त करने के लिए क्लाइव पगोडा पर अधिकार करने के लिए आगे बढ़ा। रास्ते मे उसने सेमियावरम्, मुहाचनेल्लुर और लालगुडि पर

1. जैसा पहले विवरण दिया जा चुका है।

अधिकार किया और पैंचन्द पर अधिकार करने ही वाला था कि डूप्ले द्वारा लॉ की सहायता के लिए प्रेषित एम० द० अवतेवे क्लाइव के केन्द्र स्थल सेमियावरम् से 15 मील दूर उततुर पहुच गया। क्लाइव को शीघ्र ही सेमियावरम् वापस जाना पड़ा। क्लाइव अभी यही था जब लॉ ने कुछ लोगों को पैंचन्द की ओर से भेजकर रात में उसपर आक्रमण करके उसे आश्चर्य में डाल दिया। एक निराशा-जनक स्थिति उत्पन्न हो गई पर शान्त और स्थिर क्लाइव ने इस आक्रमण को झेला और आक्रांताओं को आत्म-समर्पण कराने में सफलता प्राप्त की। इसके बाद आसानी से उसने पैंचन्द पर अधिकार प्राप्त कर लिया, उततुर की ओर बढ़ा जहां से द० अवतेवे वोलकोन्डा वापस चला गया। क्लाइव अपनी शत्रु सेना का पीछा वोलकोन्डा तक करता रहा और द० अवतेवे को 29 मई 1752 को समर्पण के लिए बाध्य किया। 1 जून को लॉ ने भी अपने 600 सैनिकों सहित यही किया जिसके बाद घेरा डालने वाली सेना ने चादा साहब सहित हथियार डाल दिए। पर इस सारे नाटक की कष्टकारी बात यह थी कि हथियार डालने के तुरन्त बाद तंजौर के राजा में विश्वास करने वाले चांदा साहब का सिर धड़ से उसी द्वारा उड़वा दिया गया।[1]

क्लाइव 1753 में इंगलैंड गया। डाइरेक्टरों ने उसकी बहादुरी की प्रशंसा की और उसकी सेवा की प्रतिष्ठा में जवाहिरात मढ़ी एक तलवार भेंट की।[2] इधर भारत में द्वितीय कर्नाटक युद्ध को समाप्त होने में कुछ और समय लगा। इस युद्ध का अंतिम गोला अभी दागा जाना बाकी था।

डूप्ले अभी भी अपने भाग्य से संतुष्ट नही था। वैसे उसने फ्रांस से यह निर्देश प्राप्त किया कि वह संघर्ष समाप्त करे। पर वह अभी कुछ समय तक इसके चलते रहने देने के पक्ष में इस आशा से था कि उसे फ्रास की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने का अवसर मिलेगा। इच्छित अवसर ने उसे अवसर प्रदान किया पर भाग्य उसका लाभ प्राप्त हेतु साथ न दे रही थी।

अवसर तब आया जब ब्रिटिशो ने त्रिचनापल्ली पर अपना अधिकार जताया। जबकि मुहम्मद अली ने क्षमाप्रार्थी होते हुए यह कहा कि यह स्थान उसने मैसूर के उपशासक नंगराज को नगर के घेरे के समय ली गई सहायता देने के बदले लेने का वादा किया है। डूप्ले को इसी समय फ्रांस से पहुंचे 500 सैनिकों की

---

1. देखिये, मिल . हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 3, पृ० 123-24। मिल चांदा साहब के प्रति लॉरेन्स की अन्यमनस्कता को दोष देता है जिसे वह चाहता तो अपनी कैद में ले जा सकता था। पर वह यह नहीं स्पष्ट करता कि लॉरेन्स उस आदमी में अविश्वास क्यों करता जिस पर चांदा साहब स्वयं विश्वास करता था।
2. पर क्लाइव ने इसे यह कहकर लेने से इन्कार कर दिया कि इस प्रतिष्ठा का अधिकारी वह नहीं, लॉरेन्स है।

शक्ति से बल मिला था। इधर 6 माह के लगातार प्रयास से उसने ब्रिटिशो से अलग कर मुरारीराव को अपनी ओर मिला लिया था। इस तरह वह अब इस स्थिति मे था कि यदि वह अपना अधिकार चाहे, तो नंगराज की सहायता करे। पर डूप्ले इस स्थिति मे त्रिचनापल्ली के पतन काल तक का फ्रांसीसी सेना का व्यय चाहता था और यह भी चाहता था कि उसे इसके बाद 30 लाख रुपये प्रदान किये जाएं। सधि की शर्तें तय हो जाने के बाद इस तरह सभी सैनिको ने मिलकर त्रिचनापल्ली को पुनः घेर लिया।

पर डूप्ले की सेवा मे वैसे उत्साही सैनिक अधिकारी नही थे जैसे साडर्स की सेवा मे थे। उसने सासे, मैसी, अस्त्रू और मैनविले को फ्रांसीसी सैनिको के नेतृत्व की एक के बाद दूसरी बार असफल परीक्षा की। इनके यहा-वहा सफलता के बावजूद, विशेषकर मैनविले के, सभी पूर्णरूप से असफल सिद्ध हुए न ही डूप्ले इतना भाग्यशाली था कि उसे विश्वस्त मित्र मिल जाते। मैसूर के सेनापति नंगराज ने फ्रांसीसियों का साथ राज्य के प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए उतना नही किया था जितना लूटमार के लिए। और जैसे ही उसने फ्रासीसियो को साथ लिया उसी समय से उसने मैसूर वापस जाने की बात प्रारभ कर दी। जहां तक मुरारीराव का प्रश्न था यदि वह ब्रिटिशो को धोखा दे सकता था तो उससे फ्रांसीसियों के लिए विश्वास की क्या आशा थी? दूसरी ओर लारेंस जो ब्रिटिश सैनिकों का नेता था वह अटल और दृढनिश्चयी था। एक या दो पराजय उसमे घबडाहट नही पैदा कर सकती थी और भाग्य भी उसका साथ दे रहा था क्योंकि उसका विरोधी संघ उसके सामने ही टूटता जा रहा था। इसी समय समाचार आया कि 1 अगस्त 1754 को गोदेहू पांडिचेरी पहुच गया है और 2 अगस्त को उसने डूप्ले का स्थान ले लिया है। डूप्ले की वापसी उसकी युद्धप्रियता के कारण हुई थी और गोदेहू को ब्रिटिशो से संधि के लिए भेजा गया था। अक्टूबर मे दोनों युरोपियन शक्तियों के मध्य शाति स्थापित हुई जिसके बाद दिसंबर 1754 मे एक अस्थायी सधि दोनों के बीच हुई जिसकी स्वीकृति युरोप से संबधित देशो से प्राप्त करनी थी। इस तरह द्वितीय कर्नाटक युद्ध का अंत हुआ।

संधि की धारा के अनुसार दोनो दलों को भविष्य मे सभी मुस्लिम पद और प्रतिष्ठा को अस्वीकार करना था। दूसरे, अब उन्हें स्थानीय शक्तियो के झगड़े में हस्तक्षेप नही करना था। तीसरे, उनके क्षेत्र की सीमाओ का निश्चय हो गया और चौथे, कुछ नदियों के जल क्षेत्र का प्रयोग नियमित कर दिया गया।

पांडिचेरी की इस संधि की शर्तें अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अगर इस बात पर जोर दिया जाता है कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य किसी योजना का परिणाम नहीं था तो इससे अच्छा प्रमाण और कोई नही दिया जा सकता है। फ्रांसीसी दृष्टिकोण से सधि की धाराएं सचमुच अपमानजनक थी और डूप्ले और गोदेहू

के इस विचार से सहमत हुआ जा सकता है कि "इस संधि ने देश की बर्बादी और राष्ट्र के अपमान पर"[1] हस्ताक्षर किए। यह आश्वासन कि फ्रांसीसी ब्रिटिशों सहित भारत में प्राप्त सभी पदों का त्याग करेंगे, इसने कलम के एक नोक से डूप्ले के सारे करे-कराए पर पानी फेर दिया। दूसरी ओर ब्रिटिश जो भी युद्ध द्वारा प्राप्त करना चाहते थे वह उन्हें भाग्य ने मुहैया कर दिया जो इस संधि के माध्यम से उन्हें मिल गया। संधि के अनुसार ही मुहम्मद अली के कार्य में हस्तक्षेप नहीं होना था और मैसूर के अधिकार भी पूरे नहीं हुए जिसका अर्थ था कि कर्नाटक में अभी ब्रिटिश प्रभाव चलते रहना था।

पर पेरिस में फ्रांसीसी सरकार इस संधि को अपमान नहीं समझती थी। संधि के अनुसार जो क्षेत्र फ्रांसीसियों को मिले उनकी आय 8 लाख रुपये थी जब कि ब्रिटिश क्षेत्रों की आय 1 लाख वार्षिक से अधिक नहीं थी। साथ ही गोदेहू के आगमन पर पांडिचेरी में कोष लगभग रिक्त था। उनके मित्र एक के बाद एक साथ छोड़ते जा रहे थे और उनके सैनिक अधिकारी किसी लायक न थे। इन परिस्थितियों में यदि वे त्रिचनापल्ली का घेरा उठा न लेते जैसा उन्होंने किया तो उन्हें अपमान झेलते हुए यह काम करना पड़ता। साथ ही "फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के मध्य झगड़े ओहियो और मिसीसिपी में पहले से प्रारंभ हो गए थे, उन स्थानों की सुरक्षा भारत की काल्पनिक विजय से अधिक आवश्यक थी और यह एक अन्य उद्देश्य था जिसमें एशिया के क्षेत्र के लिए शांति को खतरे में डालना अनावश्यक माना गया। और फिर डूप्ले के चार वर्ष के प्रयास भी उन्हें दबाने में सफल नहीं हुए थे।"[2]

हैदराबाद में फ्रांसीसी

जैसा भी हो इसमें संदेह नहीं कि पांडिचेरी के संधि के फलस्वरूप फ्रांसीसियों ने कर्नाटक में ब्रिटिशों के हाथ कूटनीतिक मात खाई। पर हैदराबाद में बात दूसरी थी। यहां पर मात्र कूटनीति और शांत विचारों के द्वारा फ्रांसीसी सेनापति बुस्सी ने वे लाभ अर्जित किए जिसने ब्रिटिशों में ईर्ष्या और द्वेष का भाव ही नहीं उत्पन्न किया बल्कि उनके समक्ष यह भी प्रमाणित किया कि किस तरह अंततः वे इस देश में अपनी शक्ति की चरम सीमा पर पहुंचे।

14 फरवरी 1751 में बुस्सी ने मुजफ्फर जंग के काल के बाद उसके चाचा सलाबतजंग को शक्ति दिलाई। उसके अधिकार के समर्थन में वह फ्रांसीसी सैनिकों सहित पांडिचेरी से 900 मील दूर सुदूर दक्षिण में औरंगाबाद गया। इस

---

1. मेलीसन : फ्रेंच इन इंडिया, पृ० 423।
2. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 5, पृ० 134।

कार्य के द्वारा उसने स्वयं राजा के निर्माता की खिताब ही नही प्राप्त की बल्कि इतनी दूर बिना एक गोला दागे वह फ्रासीसी झडे को ले गया। यह एक शानदार कार्य था जिसने पूर्ण दक्षिण मे फ्रांसीसी प्रमुखता अल्प काल मे ही ला दी और जिसके कारण बुस्सी का डूप्ले आभारी हुआ।

डूप्ले ने पहली बार एक ऐसा आदमी पाया था जो मात्र साहस के लिए ही नही बल्कि कूटनीतिज्ञता, विश्वासोत्पादकता और दूरदृष्टि मे बहुत आगे था। इसी कारण आश्चर्य नही कि डूप्ले की आशाओ ने आकाश चूमा और जैसे ही बुस्सी औरंगाबाद पहुचा कि उसने बंगाल की ओर अभियान करके वहां का शासन सलावतजंग को देने का निश्चय तक करा लिया क्योंकि उसका दक्षिण पर भी अधिकार था। पर मराठों के एकाएक आक्रमण ने उसका मोह भंग कर दिया। वैसे तो यह आक्रमण अंत तक पीछे ढकेल दिया गया और फ्रांसीसियो ने सफलतापूर्वक 17 जनवरी 1752 को पेशवा बाला जी राव से संधि की। बगाल अभियान की फिर कभी कल्पना नही की जा सकती।

डूप्ले की कल्पना बहुत विस्तृत थी और उसने अब एक परिष्कृत स्थानापन्न योजना बनाई जिसमे सलावतजंग की सेना का प्रयोग त्रिचनापल्ली के विरुद्ध किया जाना था और बुस्सी को मैसूर मे पीछे से आक्रमण करना था। फ्रासीसियो के सहयोग प्राप्त करके आने के कारण सलावतजग का प्रभाव तेजी से घटने लगा। उसके सामत विद्रोही हो गए और दीवान रामदास पडित की हत्या कर दी गई। फ्रासीसी तब आश्चर्यचकित रह गए जब बाद मे उन्हें पता चला कि मृत्यु प्राप्त दीवान भी अंग्रेजों के संपर्क में था जिससे फ्रांसीसियों का दक्षिण से सफाया किया जा सके। इसीलिए यह आश्चर्यजनक नही है कि डूप्ले की महत्वाकांक्षा में हां में हा न मिलाते हुए बुस्सी ने इसे बाइज्जत फ्रांसीसी सेनाओ की दक्षिण से वापसी की सलाह दी क्योंकि उनका काम पूरा हो चुका था। पर डूप्ले ने उसे चलते रहने का मत दिया और बुस्सी ने निजाम के कार्यो को पुनः संगठित करने के बाद उसके त्रिचनापल्ली की योजना मे सहायता देने की तैयारी की।

इसी समय एक नयी आफत आ गई जब दिल्ली के उच्च अधिकारी गाजिउद्दीन ने दक्षिण पर अपने लिए विजय प्राप्त करने के लिए प्रस्थान किया। सच मे गाजिउद्दीन का सलावतजंग की स्थिति प्राप्त करने का अधिकार भी था क्योंकि वह निजामुलमुल्क का सबसे बड़ा लड़का था जो दिल्ली मे व्यस्त रहा था। पर इस कठिनाई का भी उस वक्त खात्मा हो गया, जब उसकी एक सौतेली मां ने उसे जहर दे दिया। अब डूप्ले को त्रिचनापल्ली के विरुद्ध अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने का अवसर था। जब पूरी तैयारी हो गई तो निजाम की सेना को प्रस्थान का आदेश दिया गया। पर दुर्भाग्य डूप्ले के पीछे हाथ धोकर पड़ा था क्योंकि हैदराबाद की सेना ने फ्रांसीसियों की आज्ञा पालन व नेतृत्व मे इनकार

कर दिया। त्रिचनापल्ली की योजना एक बार पुनः खटाई में पड़ गई और बुस्सी ने एक बार पुनः दक्षिण से निकल जाने की राय देते हुए अपनी गंभीर बीमारी की सूचना भिजवा दी। डूप्ले ने पुनः बुस्सी के मत को अस्वीकार कर दिया पर उसे ठीक होने तक मछलीपट्टम चले जाने की आज्ञा प्रदान कर दी। उसने मई 1753 मे पुन' अपना काम सभाला।

हैदराबाद वापसी पर बुस्सी ने उच्च कूटनीतिज्ञता का एक और प्रहार किया। वह औरंगाबाद में निजाम से मिला और उससे चिकाकोल, मुस्तफानगर, राजामन्द्री और इल्लौर की सरकारों को प्राप्त किया। यह दक्षिण में फ्रांसीसी सैनिकों पर होने वाले दो लाख पचपन हजार रुपये वार्षिक व्यय के एवज में था जिसके लिए बुस्सी को निजाम की दया पर निर्भर करना पड़ता था। नये प्राप्त क्षेत्र मे होने वाली आय छ लाख रुपये सभावित थी जो व्यय से अधिक थी। साथ ही उसे फ्रांसीसियों से शत्रुभाव रखने वाले सामंतों को पद से हटवाने और उनके स्थानों पर स्वामिभक्त लोगों को नियुक्त कराने में सफलता मिली।

बुस्सी हैदराबाद में फ्रासीसी स्थिति को मजबूत करने में ही लगा हुआ था जब यह समाचार मिला कि डूप्ले का स्थान गोदेहू ने ले लिया है। इसका दुष्प्रभाव यह हुआ कि लोगों ने फ्रासीसियों के इस देन को, कि उन्हें अपने सरकार का पूर्ण समर्थन प्राप्त है, उस पर संदेह होने लगा। पर बुस्सी अपने साहसपूर्ण नीति में लगा रहा और मैसूर पर आक्रमण कर उसने फ्रासीसियों की गिरती प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि ही नही की बल्कि अपने कोष में वृद्धि भी की। उसने दिल्ली से पत्र व्यवहार किया और मराठों को अपने मन-मुताबिक नचाया। पर सामंतों में पनपती राष्ट्रवादी भावना ने बुस्सी को पद से हटवाने में सफलता प्राप्त कर ली। बुस्सी इस समय लगभग शक्तिहीन था। पर इसी समय लॉ की अध्यक्षता में एक सेना का आगमन हो गया और दूसरी ओर ब्रिटिश कलकत्ता की कठिनाइयों में पड़े होने के कारण विद्रोही सामंतों के सहायतार्थ नही आ सके। इन परिस्थितियों में बुस्सी अपनी स्थिति पुनः ठीक करने में सफल हो गया और अपने प्रभाव का विकास करने लगा। वह लगभग सफलता की कगार पर ही था कि तृतीय कर्नाटक का युद्ध घोषित हो गया। फ्रासीसी सेनापति ने फोर्ट सेंट डेविड पर अधिकार कर लिया और मद्रास के विरुद्ध आक्रमण करने से पूर्व उसने बुस्सी को दक्षिण छोड़ने का निमंत्रण दिया और कर्नाटक मे उससे मिलने को कहा। इसका विस्तृत विवरण अगले पृष्ठों में दिया जाएगा। बुस्सी ने पुकार को सुनकर दक्षिण को छोड दिया और जैसे ही यह हुआ उसके द्वारा किए गए परिश्रम से दक्षिण की सारी प्राप्ति तुरत समाप्त हो गई। यह घटना जून 1758 में घटी।

बुस्सी दूरदृष्टि वाला व्यक्ति था। डूप्ले के नेतृत्व में काम करने वाले सभी फ्रांसीसी अधिकारियों में बुस्सी ने एक छाप छोडी। जिस तरह से शांत ढंग से

उसने दक्षिण में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया और सलाबत जंग को शक्ति प्रदान कराई, उसके शत्रु और मित्र सभी ने उसकी प्रशंसा की। डूप्ले ने तत्काल उसके गुण को पहचाना और उसकी प्रशंसा ही में उसने अपनी लड़की चोचो के विवाह का उससे प्रस्ताव किया जो डूप्ले की वापसी के कारण सम्पन्न नही हो पाया। डूप्ले की प्रशंसा ने कभी बुस्सी को लापरवाह नहीं होने दिया और न ही इससे उसके विचार स्वातंत्र्य पर ही कोई प्रभाव पड़ा। उसने दो बार डूप्ले से हैदराबाद से वापसी का प्रस्ताव किया क्योंकि उसकी दूरदृष्टि ने उसे आगाह किया था कि दक्षिण की जनता मे राष्ट्रीयता की भावना फिर भी मजबूत और अधिक है और अभी ऐसा उचित समय नही आया है कि लोग डूप्ले की इच्छानुसार कार्य करें। बुस्सी आश्वस्त था कि फ्रांसीसी चाहे जितना बलिदान करें पर उन्हें निजाम या उसके सामंतों की संपूर्ण विश्वसनीयता नही प्राप्त होगी। पर उसके इस विचार की कभी परवाह नहीं की गई। बुस्सी जब कर्नाटक में पुनः वापस बुलाया गया उस समय दक्षिण में 9 वर्षों का पूरा किया गया फ्रांसीसियों का काम बर्बाद हो चुका था। यही उसकी धारणा की सत्यता का प्रमाण था।

यदि बुस्सी को अकेला छोड़ दिया जाता और यदि डूप्ले ने उस पर अपनी महत्त्वाकांक्षा न लादी होती तो उसने संभवतः उससे अधिक प्राप्त किया होता जो उसने प्राप्त किया था। यदि बुस्सी की बात मानी गई होती तो वह कर्नाटक में रहता और फ्रांसीसी सैनिकों को विभाजित करके कमजोर न करता। बुस्सी की सही योग्यता का आकलन न डूप्ले और न फ्रांसीसी गृह सरकार ही कर सकी। ब्रिटिशों द्वारा वान्डीवाश[1] के युद्ध मे बुस्सी के बंदी बनाए जाने और उसके घर वापसी पर फ्रांसीसी सरकार को उसकी योग्यता का भान हो सका और इसी कारण उसे भारत में पुनः कार्य करने का एक अवसर प्रदान किया गया। पर अब तक देर हो चुकी थी।

डूप्ले की असफलता के कारण

आंग्ल-फ्रांसीसी संबधो के दूसरे चरण अर्थात् तृतीय कर्नाटक के युद्ध की हम चर्चा करे, उससे पहले यह उपयोगी होगा यदि ड्युमा के उत्तराधिकारी के रूप में 1741 मे आने वाले पांडिचेरी के फ्रांसीसी गवर्नर डूप्ले के विषय मे कुछ शब्द कह लें।

फ्रांसीसियो ने प्रथम दो कर्नाटक युद्ध डूप्ले की गवर्नरी मे ही लड़ा। और इस बीच दक्षिणी भारत की प्रमुख शक्तियो के रूप में एक साधारण व्यापारिक कंपनी से एक राजनीतिक शक्ति के रूप में इस कालावधि में फ्रांसीसी कंपनी का उत्थान डूप्ले की बुद्धि और कूटनीति कुशलता के ही कारण हुआ। डूप्ले अपने गृह सरकार

1. अगले पृष्ठों में देखिये।

से अत्यधिक प्रशंसा का अधिकारी था। ब्रिटिशों से तटस्थता का प्रस्ताव कर और कर्नाटक के नवाब से सहायता प्राप्त कर उसने शक्तिशाली ब्रिटिशों कमोडोर बार्नेट के आक्रमण से फ्रांसीसियों को उस समय बचाया जब आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के प्रारंभ होने के तुरन्त बाद उसके पास लगभग कोई जनसेना नही थी। पर जब ला बोर्दोने के पहुंचने पर उसकी शक्ति बढ़ गई उसने एक शुद्ध राजनीतिज्ञ की तरह कार्यवाही करते हुए नवाब की चेतावनी के बावजूद मद्रास पर अधिकार कर लिया। मद्रास मे और फिर अद्यार नदी तट पर कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन के पुत्र महफूजखां को पराजित कर डूप्ले ने युरोपीयों के भारतीय इतिहास को नयी दिशा दी। भारतीय राजाओं की अपराजेयता पर से पर्दा हट गया और अंततः भारत में युरोपीय महत्ता के उत्थान और शक्ति स्थापना का पथ प्रशस्त हो गया।

प्रथम कर्नाटक युद्ध के बाद डूप्ले एक ऐसी बड़ी सेना के बोझ से दब गया जो तुरन्त न तो वापस की जा सकी और न ही उसका भार वहन उसके वश का रह गया। इस स्थिति में डूप्ले को सबसे ठीक यह लगा कि वह इस सेना को आपस में संघर्षरत राजाओ के साथ लगा दे जिनसे सहायता के बदले उसका व्यय तो मिल ही जाएगा, साथ ही उसे भारतीय राजनीतिक स्थिति के आकलन का अवसर भी मिल जाएगा और इसका भी कि इसे अपने देशवासियों के हित मे कैसे प्रयोग किया जाय। देवीकोट्टाई[1] पर अधिकार कर ब्रिटिशों ने इसकी शुरुआत की। पर इसका पूर्ण और सजग प्रयोग डूप्ले ने उस समय किया जब उसने चांदा साहब और मुजफ्फर जंग के साथ एक त्रिगुट का निर्माण कर ब्रिटिशों को मुहम्मद अली और उसके साथियों का पक्ष लेने को बाध्य किया जिसके लिए वे अभी तैयार नही थे। अनवरुद्दीन के पराजय और कत्ल के बाद डूप्ले ने यह प्रस्तावित किया कि मित्र सदस्य त्रिचनापल्ली की ओर प्रस्थान करें जहा मुहम्मद अली ने शरण ले रखी है और उसे पकडें। यदि उसका प्रस्ताव स्वीकृत हो गया होता तो संभव है सारी घटनाओं का क्रम ही बदल गया होता और ब्रिटिशों को वह अवसर न मिलता जो उन्हें प्राप्त हुआ। तब भी नासिर जंग पर मुजफ्फर जंग की विजय डूप्ले की महत्त्वाकांक्षी योजना का ही परिणाम थी जिसे उसने इतने परिश्रम से परिष्कृत किया था। प्रतिष्ठा, पद और भौतिक लाभ जो भी डूप्ले ने पांडिचेरी में मुजफ्फर जंग से प्राप्त किए वह उसका पूर्ण अधिकारी था। हैदराबाद और औरंगाबाद मे जो सफलता बुस्सी को डूप्ले के भारत निवास काल मे प्राप्त हुई उसमें भी उसकी भूमिका थी।

---

1. जो संभवतः 10 वर्ष पूर्व फ्रांसीसियों के द्वारा कारीकल पर कब्जा करने के—विलंबित उत्तर के रूप में था। यह घटना डूप्ले के जाने के पूर्व ही घटी थी।

पर प्रारंभ से ही लगता है प्रकृति डूप्ले के विरुद्ध खड़ी थी और यह भी लगता है कि जो भी लाभ डूप्ले प्राप्त करने में सफल हुआ वह सब उसी तरह ब्रिटिशों को हस्तांतरित हो जाते थे जिससे कि वे जहां भी जाएं उन्हें नया प्रयास न करना पड़े। ब्रिटिशों पर डूप्ले ने प्रथम कर्नाटक युद्ध काल में जो भी लाभ प्राप्त किए थे सब फ्रांसीसी सरकार की बेवकूफी के कारण एक्स-ला-शैपेल की संधि के अंतर्गत समाप्त हो गये। मुजफ्फर जंग की तात्कालिक हत्या ने डूप्ले की प्रतिष्ठा की पराकाष्ठा काल में समस्याएं पैदा की। त्रिचनापल्ली पर उचित समय पर अधिकार न करने की सामरिक भूल और पुनः अर्काट के पतन के बाद तुरन्त मद्रास पर अधिकार किया जाना दुर्भाग्यवश हुआ न कि बुद्धिमानी या भौतिक अभावों के कारण।

डूप्ले की असफलता का एक अन्य कारण उसके वे कमजोर और कम बुद्धि वाले सहायक भी थे। जिनके बल पर उसे अपनी महत्त्वाकांक्षी योजना चलानी थी। बोर्दने से उसकी अनबन दुर्भाग्यपूर्ण थी क्योंकि बोर्दने ने डूप्ले की बात सही ढंग से समझी ही नही। ला और अबतेवे ने उस साहस और दूरदर्शिता का परिचय नही दिया जैसा डूप्ले ने स्वयं दिया। बिना मतलब ही डूप्ले ने एक के बाद दूसरे फ्रांसीसी अधिकारियों को बदला क्योंकि उनमे से किसी को उसकी रणनीति और योग्यता को समझने की शक्ति ही नही थी जिससे वह उस काम को पूरा कर सके। सभी फ्रांसीसी अफसरों में बुस्सी ही उसे समझने की बुद्धि और उसकी योजनाओ को पूरा करने की शक्ति रखता था। पर यहां भी जब तक डूप्ले की योजनाओं की सफलता का अवसर आए उसे फ्रांस वापस बुला लिया गया और जैसे ही ऐसा हुआ दक्षिण में फ्रांसीसियों की पकड़ धीरे-धीरे धराशायी होने लगी और उस समय तो लड़खड़ा कर गिर ही पड़ी जब बुस्सी को वह स्थान छोड़कर दक्षिण जाना पड़ा।

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के विपरीत फ्रांसीसी कंपनी सरकारी थी और फ्रांसीसी सरकार के हाथ में, अपनी ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों की महत्त्वाकांक्षा को देखने की जगह और बहुत से महत्त्वपूर्ण काम थे। एक्स-ला-शैपेल और पांडिचेरी की संधि को बार-बार, इसे समझने के लिए, पेश करना उचित नही लगता।

पर इसमे डूप्ले भी दोषी था। यह कहा जाता है कि उसने अपनी गृह सरकार को अपनी योजनाओ के संबंध मे कोई सूचना भिजवाने की चेष्टा नही की। डूप्ले अपनी योजनाओं के प्रति बड़ा आश्वस्त था और संभवत. यह सोचा कि उसकी कार्यवाहियो के सम्पन्न होने मे अधिक समय नही लगेगा। इसी कारण उसने कपनी के आर्थिक हित की चिन्ता नही की, कभी गृह सरकार के अधिकारियों को अपनी योजनाएं नही बताई और अपने पास से ही $3\frac{1}{2}$ लाख पौंड इस

आशा में व्यय कर दिया कि वह शीघ्र ही अपना गनतव्य प्राप्त कर लेगा और तभी सब ठीक-ठाक कर लेगा। पर त्रिचनापल्ली ने बहुत समय बर्बाद किया और अन्य स्थानों पर भी सोचने के अनुसार शीघ्र काम न हुआ।

यह भी कहा जाता है कि डूप्ले ने अपना जाल बहुत दूर तक फेंका। उसे बुस्सी को कर्नाटक में स्थिति ठीक करने से पूर्व दक्षिण नही भेजना चाहिए था। हैदराबाद के लिए बुस्सी के प्रस्थान ने फ्रांसीसियों की शक्ति विभाजित कर दी जो कर्नाटक मे उनकी असफलता का कारण हो गया। पर जो यह कहते हैं वे उस परिणाम की कल्पना नही करते जो हैदराबाद में निजाम की सहायता हेतु गए फ्रांसीसियों के अभाव में उत्पन्न होती।

ब्रिटिश नवसेना शक्ति का फ्रांसीसियों से बेहतर होना भी डूप्ले की असफलता का कारण माना जाता है। यह भी कहा जाता है कि क्लाइव, स्ट्रिन्जर लारेन्स और सान्डर्स जैसे कर्मठ नेताओं का विरोध भी उसके पतन का कारण था। पर क्लाइव ने उस तरह से कर्नाटक न प्राप्त कर लिया होता जैसे उसने प्राप्त किया तो सारी स्थिति एकदम से बदलकर कुछ और हो जाती।

पर जब सब कह दिया गया तो हमें डूप्ले की कार्य करने की सीमाओं को भी अनदेखी नही करनी चाहिए। सच मे वे फ्रास के दो महान व्यक्ति डूप्ले और बुस्सी ही थे जिन्होने क्लाइव जैसे व्यक्ति का पथ प्रदर्शन किया और ब्रिटिशों को भारत में साम्राज्य स्थापित करने का अवसर दिलाया। यह इन्हीं फ्रासीसियों से ही ब्रिटिशों ने सीखा कि किस तरह भारतीय राजाओं के भेदभाव में दखल दिया जाए और अपने लाभ प्राप्ति हेतु इसका प्रयोग किया जाए।

10

कर्नाटक का तृतीय युद्ध (1758-1763)

1756 में युरोप में सप्तवर्षीय युद्ध की घोषणा ने पांडिचेरी की संधि के बाद समाप्त करने वाले संघर्ष को पुनः प्रारभ कर दिया। फ्रांसीसी सरकार ने इस समय तक भारत में अपनी शक्ति के विकास की महत्ता समझ ली थी : पर अब तक वहुत देर हो चुकी थी क्योंकि वे भारतीय कार्यों पर विचारणीय प्रभाव डालने के लिए आवश्यकतानुसार अपने दृष्टिकोण में अधिक परिवर्तन नहीं कर सकते थे।

1758 में तृतीय कर्नाटक युद्ध के पहले, अर्काट के नायक क्लाइव ने 1757 में प्लासी का युद्ध जीतकर वंगाल में एक क्रांति कर दी थी। इस विजय के फल-स्वरूप ब्रिटिश क्षणों में एक व्यापारिक संस्था से वंगाल की एक प्रभुसत्ता प्राप्त शक्ति हो गई और उसके हाथ मे पूरे प्रांत के संरल साधन आ गये। यही नहीं, जैसे ही उसे सप्तवर्षीय युद्ध के प्रारंभ होने की सूचना प्राप्त हुई क्लाइव ने वंगाल की फ्रांसीसी उपनिवेश चंद्रनगर पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया। इस उपनिवेश के पतन के वाद वंगाल पर फ्रांसीसी प्रभाव एकाएक समाप्त हो गया।

इसी बीच फ्रांसीसी सरकार ने भारत में फ्रांसीसी सेना का सेनापति वना-कर काउट द लैंली को भेजा। पहले से ही भारत में फ्रांसीसी अधिकारियों की अकार्यक्षमता के पूर्वाग्रह से ग्रस्त 1758 में लैंली इस देश में पहुंचा। वह किसी के मत पर विश्वास भी नहीं करता था। वैसे तो वह एक महान सैनिक था पर भारतीय समस्याओं के प्रति उसमें कोई अनुभव नहीं था।

जब लैंली कर्नाटक पहुंचा ब्रिटिशों की स्थिति अच्छी नहीं थी। "ब्रिटिशों की सेना का मुख्य भाग वंगाल में फंसा था। लैंली ने शीघ्रता कर संक्षिप्त घेरे के बाद फोर्ट सेंपट डेविड पर अधिकार कर लिया। तत्काल मद्रास पर अधिकार करने की आवश्यकता थी और लैंली इसके लिए अत्यधिक जागरूक भी था। पर जैसा कि ... में बदा था, फ्रांसीसी जल सेना अधिकारी ऐडमिरल डे एक लैंली की ... सहयोग करने को तैयार नहीं था। पांडिचेरी के गवर्नर ने भी उसे सूचना ... इस समय वह अधिक आर्थिक सहायता करने की स्थिति में नहीं है।"

स्वाभाविक रूप से लैंली का ध्यान तंजौर की ओर गया।

मे त्रिचनापल्ली के विरुद्ध युद्ध मे इसी तरह की एक गलती के कारण फ्रांसीसी विजय नही प्राप्त कर सके थे। तंजौर के राजा ने वादे के अनुसार फ्रांसीसियो तथा उसके मित्रो को 70 लाख रुपये नही दिया था। राजा के किसी बहाने को नहीं माना गया। तंजौर पर घेरा डाल दिया गया और इसके आस-पास क्षेत्र को बुरी तरह तबाह किया गया। अंततः राजा 5 लाख रुपये तुरंत देने को तैयार हो गया, पर लैली 10 लाख की मांग कर रहा था। यदि लैली 5 लाख रुपये स्वीकार करके लौट गया होता तो वह अधिक अच्छी स्थिति मे रहता। पर वह अपनी मांग पर डटा रहा, देर होती रही और इसी बीच परिस्थिति में विशेष परिवर्तन हो गया जिससे लैली को बिना एक पैसा प्राप्त किये घेरा उठाने को बाध्य किया। मद्रास ने अवसर प्राप्त कर बंगाल से सहायता मांगी और अपनी सुरक्षा को मजबूत किया। शीघ्र ही द यक पराजित हुआ और बूर्बां द्वीप वापस जाने को बाध्य हुआ। पांडिचेरी पर तुरत आक्रमण का खतरा हो गया।

लैली अधिक दुर्बल और हीन अवस्था में तंजौर से वापस लौटा। उसने परिस्थिति पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुचा कि मद्रास पर अधिकार किया जाना चाहिए। पर उसकी सेना इसके योग्य न थी। इसीलिए उसने तुरन्त बुस्सी के पास एक आदेश भेजा कि वह हैदराबाद छोड़कर उससे आ मिले। बुस्सी ने यह तर्क देने का असफल प्रयास किया कि पता नही मद्रास मिले या न मिले पर ऐसा करने से हैदराबाद निश्चित ही हाथ से निकल जायगा। उसने बेकार ही यह इच्छा की कि हैदराबाद को फ्रांसीसी कार्यवाही का केन्द्र बनाया जाय और यह कि उसके अनुभव और ज्ञान को विचार योग्य माना जाय क्योंकि लैली यह तय कर चुका था कि उसे बौद्धिक श्रेष्ठता का प्रदर्शन करना है। बुस्सी को अंततः एक शक्ति व साहस विहीन व्यक्ति कानफ्लॉं के नेतृत्व मे 500 फ्रांसीसी और लगभग 5000 भारतीय सैनिकों को छोड़कर जाना पड़ा।

हैदराबाद से बुस्सी के वापसी के बाद दक्षिण में घटनाचक्र तेजी से घूमा। सभी विद्रोही तत्त्व जो अवसर की तलाश में थे, उन्होने विजागापट्टम पर अधिकार करने वाले और कलकत्ता तथा मद्रास से सहायता की अपील करने वाले राजा आनंदराज के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया। ब्रिटिशो के लिए यह बेहतरीन अवसर था। क्लाइव ने कलकत्ता से कर्नल फोर्ड को मद्रास को शक्तिशाली बनाने हेतु भेजा। फोर्ड को उत्तरी सरकारों से होकर जाना था। उसे पांच हजार अंग्रेज और लगभग दो हजार भारतीय सैनिक दिये गये और निजाम को अपने पक्ष मे लाने का प्रयास करने को कहा गया। कानफ्लॉं के नेतृत्व में बड़ी सेना भी उसमे साहस का संचार न कर सकी और उसने लैली से और सेना भेजने की अपील की। फोर्ड ने अवसर का लाभ उठाते हुए राजा आनंदराज से सहयोग करते हुए शत्रु-पक्ष को कंदौर के निकट युद्ध करने को बाध्य किया। राजा आनंदराज घबड़ा गया और

तब फोर्डे का साथ छोड़ दिया जब उसकी उसे अत्यधिक आवश्यकता थी। फ्रांसीसियों ने यह समझा कि राजा नही ब्रिटिश भाग रहे हैं इसलिए खाइयो से निकलकर उन्होंने शत्रु सेना का पीछा करना प्रारंभ किया। अंग्रेजों को अवसर मिला और वे असगठित समूह पर टूट पड़े। फ्रांसीसी पराजित हो गये और कानफ्लाँ मछलीपट्टम भाग गया। यह सब कुछ 1758 में हुआ। इसके बाद फोर्डे ने राजा महेन्द्री पर अधिकार कर दिया और 1759 मे मछलीपट्टम की ओर रवाना हुआ जहां कानफ्लाँ ने अपने को पुनर्गठित कर लिया था और अंग्रेजों के पहुचने की प्रतीक्षा कर रहा था। फोर्डे ने नगर को घेर लिया, पर उसका इस पर अधिकार हो उसके पहले ही उसे पता चला कि लगभग 40 हजार सेना लेकर सलावतजग आ पहुंचा है। समय गंवाने का समय नही था। उसने साहस करके एकाएक रात मे आक्रमण किया और फ्रांसीसीयों को पराजित किया।

मछलीपट्टम के पतन ने दक्षिण में फ्रांसीसियों की प्रमुखता समाप्त कर दी। निजाम सलाबतजंग इससे प्रभावित हुआ और बिना कोई युद्ध किए उसने ब्रिटिशो से संधि कर ली। इस संधि के अंतर्गत मछलीपट्टम और उत्तरी सरकार फ्रासीसियों से लेकर ब्रिटिशों को दे दिया गया। निजाम ने फ्रांसीसियो से सबध तोड देने का निश्चय किया और ब्रिटिशो को अपना अधिपति स्वीकार कर लिया। पाडिचेरी से आ रही सेना वापस हो गई क्योंकि दक्षिण मे उन्हे अब और कुछ नही करना था।

इसी बीच बुस्सी लैंली के पास पहुंचा पर उस पर विश्वास नही किया गया। तेईस सौ फ्रांसीसी और पांच हजार भारतीय सैनिकों के अतिरिक्त ब्रिगेडियर बुस्सी के पीछे आने के आदेश के साथ लैंली ने मद्रास से 47 मील दूर काजीवरम पर अधिकार कर लिया। इसके बाद वह मद्रास के विरुद्ध आगे बढ़ा जहा पर आठ सौ अग्रेज और पच्चीस सौ से कम भारतीय सैनिक थे। नगर पर 12 दिसंबर 1758 को घेरा डाल दिया गया। पर फरवरी 1759 तक फ्रासीसी ब्रिटिशो पर कोई विशेष प्रभाव नही डाल पाये। समय-समय पर होने वाली मुठभेड़ में दोनों पक्षों को पर्याप्त हानि हुई। लैंली को वस्तु पूर्ति की समस्या का सामना करना पड़ा। इसी समय जनरल पोकाक एक बेड़ा लेकर भारत पहुंचा जिससे मद्रास को कुछ सुविधा हुई। लैंली को घेरा उठाना पड़ा और काजीवरम वापस जाना पड़ा।

कांजीवरम पहुंचने के बाद लैंली ने सेना का नेतृत्व सूपायर के हाथो सौंप दिया और वह पांडिचेरी इसलिए चला गया कि धन की व्यवस्था करके वह अपने सैनिको का शेष वेतन दे सके। इस तरह एक वर्ष इसी सब मे बर्बाद कर दिया गया। द यक पाडिचेरी की सहायतार्थ आ गया पर ब्रिटिशों ने उसे पराजित कर लड़खड़ाते फ्रांस वापस जाने को बाध्य किया। सूपायर स्वयं लड़ने के लिए अर्काट चला गया। ब्रिटिश वाडीवाश की ओर बढ़े, पर सूपायर को धोखे में रखते हुए

कांजीवरम पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया। इसी समय सर आयर कूट के नेतृत्व में एक नया ब्रिटिश सैनिकों का दल आ पहुंचा। फ्रांसीसी सैनिकों का वेतन पर्याप्त समय से नही मिला था और लैली तमाम प्रयासों के बावजूद भी स्थिति को ठीक नही कर सका। इस तरह उनका धैर्य भंग हो गया।

सर आयर कूट और लैली के मध्य अंतिम महत्त्वपूर्ण युद्ध वांडीवाश में हुआ जहां दोनों पक्ष की सेनायें जनवरी 1760 में मिलीं। बुस्सी को पराजित कर बंदी बना लिया गया। लैली का बल्दोरे तक पीछा किया गया और उसे पांडिचेरी भाग कर जाने के लिए बाध्य किया गया। पांडिचेरी पर तुरंत घेरा नही डाला गया। ब्रिटिशों ने जिन्जी पर अधिकार किया और तभी उस नगर पर घेरा डाला। इस समय तक अपनी सुरक्षा को पुनर्संगठित कर उसने ब्रिटिशों के विरुद्ध शानदार विरोध प्रस्तुत किया। घेरा कई महीने तक चलता रहा पर अंततः 4 फरवरी 1761 में पांडिचेरी का पतन हो गया। उसी वर्ष ब्रिटिशों ने माही पर भी अधिकार कर लिया। लैली बंदी था जिसे युरोप वापस भेज दिया गया जहां से उसे फ्रांस को दिया गया। अपने ही देश में उस पर मुकदमा चलाकर उसे फांसी दे दी गई।

इसके बाद भारत में फ्रांसीसी शक्ति पतन की पराकाष्ठा पर पहुंच गई। युरोप में सप्तवर्षीय युद्ध को समाप्त करने वाले पेरिस की संधि (1763) ने इस विरोध का औपचारिक रूप से अंत कर दिया। इस संधि के अंतर्गत पांडिचेरी और चन्द्रनगर इस शर्त पर फ्रांसीसियों को वापस कर दिया गया कि वे इस बस्ती की किलेबंदी नही करेंगे। इस तरह भारत में फ्रांसीसियों की प्रमुखता ब्रिटिशों के हाथ चली गई। उनका व्यापार पूरी तरह तहस-नहस हो गया और डूप्ले का भारत में साम्राज्य स्थापना का स्वप्न भूमि के नीचे धरातल में दफना उठा।

फ्रांसीसियों की असफलता

अब यही शेष है कि देखा जाय कि ब्रिटिश क्यों महत्त्वपूर्ण प्रत्याशी सिद्ध हुए और फ्रांसीसी क्यों असफल हो गये। भारत में फ्रांसीसियों के पतन का एक कारण था फ्रांस के उन लोगों का चरित्र जो शासक के रूप में फ्रांस के भाग्य का निर्माण करते थे। व्यक्तियों के अहम से ग्रस्त एक निरंकुश सरकार विदेशों में अच्छा कुछ करेगी इसकी आशा नही थी। लुई 14वें महान के द्वारा किये जाने वाले अनवरत युद्ध निश्चित रूप से फ्रांस की मुख्य शक्ति को चूसने वाले और उसे फूले हुए गुब्बारे का रूप प्रदान करने वाले थे। फिर भी जब तक वह जीवित रहा उसने भारत की फ्रांसीसी कंपनी में अत्यधिक रुचि ली। पर जब वह मरा तो उसका उत्तराधिकारी लुई 15वां हुआ जो केश सज्जकों और नृत्यकों में अधिक रुचि लेता था और भारत में फ्रांसीसी बस्ती के सक्षम प्रशासन में कम। इसके विलोम

इंगलैण्ड का ह्विग कुलीनतंत्र हर तरह से बेहतर ढंग से अनुशासित था और विशेष आवश्यक चीजो की ओर अधिक ध्यान के लिए योग्य था। अल्फ्रेड लायल का यह निष्कर्ष निकालना गलत नही है कि "लुई 15वें के युरोपीय नीति की दुर्व्यवस्था के कारण जिसका श्रेय उसकी प्रेमिकाओ और असक्षम मंत्रियो को जाता था, फ्रास ने सप्तवर्षीय युद्ध के अंतर्गत भारतीय बस्तिया गंवा दी।"[1]

इसके अतिरिक्त फ्रांसीसी शासकों की समझ मे युरोप में इटली और राइन क्षेत्र में राजनैतिक क्षेत्र का विस्तार उत्तरी अमेरिका या भारत में समृद्धि बस्ती बसाने की तुलना में अधिक प्रतिष्ठा और शक्ति प्रदान करने वाला था। युरोपीय समूह के फलहीन सघर्ष के कीचड़ मे जिसमे औपनिवेशिक विस्तार के लिए शक्ति प्राप्ति की होड़ लगी थी, फ्रास भी फंस गया। दूसरी ओर युरोप मे इंगलैंड के लिए पांव मे बाधा पैदा करने वाली कोई बात नही थी जिससे उसके आर्थिक स्रोत बंट जायं। वह आसानी से औपनिवेशिक विजय प्राप्ति की ओर बढ़ सकता था और इस कारण भारत मे वह बेहतर भूमिका अदा करने में सक्षम था।

इंगलैंड के महानतम युद्ध मंत्रियों मे से एक बड़े विलियम पिट ने फ्रास के नासमझ शासकों के द्वारा उत्पन्न परिस्थिति का पूर्ण लाभ उठाया। उसने प्रशा को उदारता से इसलिए सहायता दी जिससे वह युरोप में फ्रांस को फसाये रखे। इन परिस्थितियो में फ्रांस आवश्यक व्यक्तियो और धन को अमरीका या भारत नही भेज सकता था।

और फिर फ्रासीसी कंपनी को फ्रांसीसी शासको के मौज के अनुसार अपना पथ तय करना पड़ता था न कि भारत मे परिस्थिति को ध्यान मे रखकर। यह स्वाभाविक भी था। भारत में फ्रासीसी कंपनी की 55 लाख लीवर की भागीदार में से 35 लाख सम्राट ने प्रदान किया था और इस तरह यह एक सरकारी विभाग की ही तरह था जहा इसका प्रशासन और कार्य तय होता था। सम्राट द्वारा नियुक्त दो हाई कमिश्नर इसकी नीति तय करते थे जिसका कार्यान्वियन डाइरेक्टर करते थे। ये भागीदारों में से ही राजा द्वारा नामित किये जाते थे। उसने भागीदारो के लाभ की भी गारन्टी कर रखी थी जिससे वे कपनी के हित-अहित में रुचि लें या न लें, अधिक महत्त्वपूर्ण नही रह जाता था। यहां तक कि इन्होंने 1725 से 1765 के बीच एक बैठक तक नही की। सब चीजों का नियंत्रण सरकार करती थी जिसकी प्रमुख रुचि स्वाभाविक रूप से राजनीति में थी, व्यापार मे नही। इसलिए आश्चर्य नही कि इन परिस्थितियो में कंपनी का व्यापारिक लाभ घटता-बढ़ता रहा और अपनी रक्षा के लिए उसे धन उधार लेना पड़ा या सरकार के समस्त अनुदान के लिए घुटने टेकना पड़ा।

---

1. लायल, अल्फ्रेड : राइज ऐन्ड एक्सपैंसन आफ ब्रिटिश डामीनियन इन इण्डिया, पृ०117।

इसके विपरीत अंग्रेज कंपनी राजनीतिक जकडन से मुक्त थी और डाइरेक्टरों के हाथों में पूरी व्यक्तिगत स्वतंत्रता थी। इसने अत्यधिक लाभ प्राप्त किया, ब्रिटिश सरकार को इसने 1767 से दो वर्ष के लिए 4 लाख पौंड दिया और इसे राष्ट्रीय ऋण से मुक्ति दिलाने का भी सुझाव दिया गया। यह सब इसलिए हुआ क्योंकि ब्रिटिश कंपनी की राजनीति उन लोगों और भागीदारों से जुड़ी थी जो सबंधित स्थान से संबद्ध थे जिनके भाग्य सरकार की सुरक्षा से न जुड़े होकर उनके अपने पहल शक्ति व प्रबल प्रतिबद्धता से आबद्ध थे।

फ्रांसीसी कंपनी के अधिकारियों ने क्षेत्रीय महत्त्वाकाक्षा को व्यापारिक लाभ पर हावी हो जाने देने की भूल की। जब उनकी गृह सरकार उनकी क्षतिपूर्ति करने को तैयार नहीं थी जो उन्हें चाहिए था कि वे व्ययसाध्य राजनैतिक साहसिकता के कार्यों की ओर मुड़ने से पूर्व अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ करने का प्रयास करते। पर उन्होंने ऐसा नही किया जिसका परिणाम यह हुआ कि "फ्रांसीसी गवर्नर जो फ्रांसीसी कोष का मुख्य नियन्त्रक था वह युद्धों का भार बर्दाश्त नहीं कर पा रहा था जब उतावले लैली ने अति शीघ्र विचारित और बेकार का आक्रमण तंजौर पर कर दिया जिससे वहा से पुराना ऋण धन के रूप मे प्राप्त हो सके। पर यह योजना सफल नहीं रही और इससे फ्रांसीसी प्रतिष्ठा को आघात पहुंचा।"[1] फ्रांसीसी सैनिकों के पास वस्तुओं का भी अभाव था एवं फ्रासीसी सैनिकों को तथा कर्मचारियों को देने के लिए वेतन नहीं था।

दूसरी ओर ब्रिटिश कंपनी के डाइरेक्टर लगातार व्यापार बढ़ाने पर जोर देते थे और जब तक उन पर थोपा न जाय वे राजनैतिक संघर्ष से प्रत्यक्ष रूप से दूर रहने का प्रयास करते थे। प्लासी के युद्ध के बाद बंगाल में ब्रिटिशों ने अपनी शक्ति महत्त्वपूर्ण ढग से बढा ली और मजबूत कर ली।

फ्रांसीसी भारत में दक्षिण की ओर से प्रविष्ट हुए जो बंगाल की तुलना मे कम उपजाऊ और कम उत्पादनशील था। यह न तो डूप्ले की विस्तृत राजनैतिक महत्त्वाकांक्षा की आर्थिक पूर्ति कर सकता था और न ही अत्याचारी ढंग की काउंट द लैली की सैनिक योजनाओं की। बुसी ने निजाम से जिन सरकारों की प्राप्ति की निःसंदेह 1758 में उससे 50 हजार रुपये मिला, पर वह एक अकेला उदाहरण था। जबकि ब्रिटिश कंपनी के लिए बंगाल स्थायी रूप से साधन सपन्नता व शक्ति का स्रोत था। गंगा व उसकी सहायक नदियां बिना किसी कठिनाई से नावों से उन्हें हर क्षेत्र में पहुंचने की सुविधा प्रदान करती थी और बंगाल से सोना एवं सेना के लिए व्यक्ति एकत्रित कर दक्षिण मद्रास लड़ाई के लिए लगातार तीन वर्षों तक भेजती रही। उन्होंने मीरजाफर से धन प्राप्त किया, पर जब उन्होंने उसका

1. ग्रिफिथ, सर परसीवल : द ब्रिटिश इम्पैक्ट आन इंडिया, लदन, (1952) पृ॰ 68।

खून चूस लिया तब उसकी जगह मीरकासिम को गद्दी दिला दी और बाद मे फिर मीरजाफर को ले आये। जो ही उन्हें सबसे अधिक धन देता उनका मित्र था और इस तरह फ्रांसीसियों से लड़ने के लिए उनके पास पर्याप्त धन था।

1759 में क्लाइव ने हृदयस्पर्शी ढंग से फ्रांसीसियों के विषय में कहा : "मेरा विश्वास है कि इस वर्ष के अन्त तक कर्नाटक पर से उनकी पकड़ जाती रहेगी। कोई बहुत बड़ी अदृश्य बाधा ही इसे रोक सकती है। हमारे सैनिको की उच्चता, हमारा बहुलधन तथा हर वस्तु की पूर्ति…ऐसे लाभ है जिनसे फायदा उठाकर हम उन्हे वहां से ही नही, सारे भारत से उनके प्रभाव को समाप्त कर सकते हैं।"[1] और यह लगभग सच सिद्ध हुआ। अगर नैपोलियन और सिकदर महान भी पांडिचेरी को आधार बनाकर भारत जीतना चाहते तो पराजित हो जाते। मैरियट की वाणी सच ही लगती है। "डूप्ले ने भारत की कुंजी मद्रास मे तलाशकर भयानक भूल की, क्लाइव ने इसे बंगाल में खोजा और पा लिया।"[2]

कलकत्ता, बम्बई और मद्रास समुद्र तट पर स्थापित ब्रिटिश फैक्ट्रियां एक दूसरे से अति दूर थी जिन्हें किसी भी शक्ति द्वारा एक ही बार मे जीतना कठिन था। अगर एकाध का पतन भी हो जाता तो शेष दो उसके सहायतार्थ उपस्थित रहती। दूसरी ओर फ्रांसीसियों को पांडिचेरी मात्र पर ही निर्भर करना था। पश्चिमी तट पर फ्रांसीसियो के पास माही और कारीकल थे पर इनमे से कोई भी ब्रिटिशों का आक्रमण झेलने में समर्थ नही था।

फ्रांसीसी नवसेना भी ब्रिटिशों की तुलना की नही थी। यह उनकी नवसेना की उच्चता ही थी जिसने कोरोमंडल तटपर भूमिक्षेत्र मे 1746 मे उन्हें सफलता प्रदान कराई थी और साथ ही 1748-51 में डूप्ले को विजय दिलाई थी। पर आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध ने उनकी नवसेना को अशक्त कर दिया। फ्रांसीसी बेड़ा भारतीय पानी क्षेत्र से खिसक गया और सप्तवर्षीय युद्ध के काल मे आसानी से नवसेना शक्ति की उच्चता ब्रिटिशो के हाथ मे चली गई। बड़े पिट ने भी अंग्रेजी नवसेना की महत्ता की ओर ध्यान देने में आनाकानी नही की। ब्रिटिशों ने अपनी जलसेना की उच्चता के आधार पर कर्नाटक के बाहर के वस्तुपूर्ति के फ्रांसीसियों के सारे साधन काट दिये जिससे वे न ही व्यक्ति पा सकते थे और न हथियार। दूसरी ओर ब्रिटिश "मद्रास को बंगाल से ही नही इंग्लैण्ड से भी सहायता भिजवा सकते थे और अपने आदमियों को जहाजों मे भेजकर वे एक आदमी से दो आदमी का काम ले सकते थे। लैली ने भूल की थी, उसका पतन बिना सामुद्रिक शक्ति के

1. ग्रिफिथ्स, सर परसीवल : द ब्रिटिश इम्पैक्ट आन इंडिया लंदन, (1952) पृ० 68।
2. मैरियट, जे. ए. आर. : द इगलिश इन इंडिया, पृ० 55।

हो ही नही सकता था।"[1]

अंग्रेजो की जलसेना का केन्द्र बंबई मे था जहा वे आसानी से अपने जहाजों की मरम्मत कर सकते थे, उन्हे वहा सुरक्षित रख सकते थे और जहा से वे अतिशीघ्र युद्ध के लिए कार्य हेतु तैयार होकर निकल सकते थे। फ्रांसीसियों की नवसेना का केन्द्र इसके विलोम अति दूर फ्रांस के एक उपद्वीप मे था जिससे शीघ्र सेना और शीघ्र वस्तु पूर्ति में से किसी की सुविधा नही प्राप्त हो सकती थी।

इन सभी के अतिरिक्त फ्रासीसी सरकार और अधिकारियो ने कुछ भयानक भूल भी भारत मे की थी। फ्रांसीसी सरकार ने गलत ही डूप्ले को देश उस समय बुला लिया जब उसकी यहां सबसे अधिक आवश्यकता थी। इसके बाद उसकी नीति को, उसके लाभ-हानि पर विचार किये बिना ही उलटने का भी प्रयास किया गया। इसी प्रकार लैली का बुस्सी को हैदराबाद से वापस बुलाना और वर्षों के किये पर पानी फेर देना भी उसकी महान भूल थी। बुस्सी की हैदराबाद से वापसी ने ऐसी रिक्तता स्थापित कर दी जिसे आसानी से ब्रिटिशों ने पूरा कर दिया जिन्होंने इससे तमाम क्षेत्रीय लाभ ही नही प्राप्त किये बल्कि असुरक्षित निजाम सलाबत जंग को अपनी छाया में ले लिया। यह फ्रांसीसियो की एक सामरिक भूल थी। जिसने उन्हें भौतिक और मनोवैज्ञानिक हानिया ही सौगात मे दी।

फ्रांसीसी सरकार को उसकी दयालुता के लिए भी याद नही किया जाता। यह अपने कर्मचारियो की सेवा की प्रशंसा भी नही कर पाई और न लड़खड़ाते फ्रांसीसियो के प्रति उदारता और महामनस्कता का परिचय ही दे पायी। डूप्ले ने अपने देश के लिए बहुत कुछ बलिदान किया, पर इस पर भी उस पर मुकदमा चलाया गया और उसे 'दीनता' के दरवाजे पर दम तोड़ना पड़ा। काउन्ट द लैली को तो अपमान सहित फासी के तख्ते पर खड़ा होना पड़ा। गल्तियां ब्रिटिश अधिकारियो ने भी की। लार्ड क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स ने बहुत कुछ ऐसा किया जो ब्रिटिश सरकार की निश्चित नीति के विरुद्ध ही नही गया बल्कि उससे देश की प्रतिष्ठा को भी आंच आई। उन्हें भी अपमानित किया गया और उन पर मुकदमा भी चलाया गया पर साथ ही उन्हें प्रतिष्ठा भी दी गई और प्रशंसा का पात्र भी बनाया गया।

इसके साथ ही फ्रांसीसी अधिकारियो की योग्यता और उनका व्यवहार भी अंग्रेजों की तुलना में बहुत पीछे था। मैलीसन का मत है: "लारेन्स का साहस, सान्डर्स और उसके कौंसिल की दुराग्रहपूर्ण जिद, कालियां, फोर्दे, जोसेफ स्मिथ, डाल्टन और अन्य बहुतो की स्फूर्ति और योग्यता की तुलना में डूप्ले के ऊपर दबाव डालकर नौकरी पाने वाले बहुत से लॉ अवतेवे, ब्रेनियर, मौसिन

1. स्मिथ, वी. ए.: द आक्सफर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, (1961), पृ० 464।

और अन्य लोगों की दुर्बलता, अयोग्यता और अनिर्णयता थी।"[1] यदि डूप्ले एक दिशा में देखता तो ला बोर्डोने दूसरी दिशा में देखता था। यदि लैली भारत स्थित फ्रांसीसी अधिकारियों पर उच्चता दर्शाना चाहता तो बुस्सी उतना ही उसे नीचा दिखाने पर तुला रहता। लैली की "अतिशीघ्रता, उसका हिंसात्मक स्वभाव, उसका अनियंत्रित और व्यंग्यात्मक भाषण, उसका दण्ड न देते हुए डराने धमकाने की नीति आदि उसके रास्ते का रोड़ा थे।"[2] इसीलिए यह आश्चर्यजनक नही लगता कि जब वह हारता था तो अधिकारी खिन्नमन होने की जगह खुशियां मनाते थे। लैली के भारत मे ब्रिटिशों को खदेड़ने को ही नही भेजा गया था बल्कि वह पांडिचेरी का प्रशासन भी शुद्ध करने आया था। पर यह उसकी समझ में नहीं आया कि नम्रता से लाई जाने वाली प्रशासन में शुद्धता उसकी तुलना मे स्थायी होती है जो क्रोध और अपमान के अस्त्र से प्राप्त की जाती है। पर "एक शुद्ध विम्ब और भारत में फ्रांसीसी इतिहास का पिछले 3 वर्षों का विवरण" उस समय सामने आया जब लैली ने आत्मसमर्पण किया। एक फ्रांसीसी डेफर पटदुबोये, जो उसका इन्टेन्डेन्ट था, ने उसे तलवार के घाट उतार दिया। क्योंकि उसके पास से कुछ ऐसे कागजात मिले थे जिसमें पांडिचेरी के कुछ अधिकारी भी फंसते थे। इससे अधिक पतन की पराकाष्ठा और क्या हो सकती थी। इससे यह भी सिद्ध हो गया कि फ्रांसीसी गंवाने के लिए ही सक्षम थे।

डूप्ले दर्पपूर्ण आत्मविश्वास से ग्रस्त था। यहां तक कि उसने कुछ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण और गंभीर सैनिक असफलताएं झेलने के बाद भी फ्रासीसी सरकार को इस आशा में सूचित नही किया कि वह शीघ्र ही परिस्थिति से निबट लेगा और सरकार से प्रशंसा ही प्राप्त करेगा अपयश नही। पर वह स्थिति का आकलन ठीक से नहीं कर सका और सामने पतन का लहराता समुद्र नही देख सका। उसके पास पराजय अन्तहीन भाव से आती गई। पर डूप्ले की अदूरदृष्टि के कारण फ्रांस से उचित समय पर उसे सहायता भी नही प्राप्त हो सकी।

और फिर भाग्य भी तो अकेले फ्रांसीसियों के ही पीछे हाथ धोकर पड़ा था। इस सम्बन्ध मे एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा। मैसूर के हैदरअली ने लैली से ब्रिटिशों के विरुद्ध सहायता प्राप्ति का समझौता किया। पर जैसे ही उसने ऐसा किया उसे दीवान खड़े राव ने उस पद से हटा दिया और मैसूर के निष्क्रिय शासक का समर्थन किया। हैदर ने निश्चित रूप से पुन. शक्ति प्राप्ति मे सफलता प्राप्त की, पर यह पाडिचेरी के पतन के बाद ही हुआ।

---

1. मैलीसन, जी. बी. : हिस्ट्री आफ फ्रेंच इन इंडिया, (1866), पृ० 567।
2. कॅम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, 5, पृ० 165।

11

बंगाल में ब्रिटिश शक्ति का विकास

औरंगजेब के मृत्युपरान्त घटनायें

1705 में औरंगजेब ने मुर्शिद कुली जफर खान को बंगाल का सूबेदार बनाया और बाद में उसे उड़ीसा भी सौंप दिया। मुर्शिद कुली ने अपनी राजधानी ढाका से मुर्शिदाबाद कर ली और औरंगजेब की मृत्यु के बाद व्यवहार में एक स्वतंत्र अधिकारी की तरह कार्य करने लगा और इस तरह इन प्रांतों में एक नवीन वंश की स्थापना की। 1727 में उसकी मृत्यु के बाद उसका दामाद उसका उत्तराधिकारी हुआ जिसका नाम शुजाउद्दौला खान था। उसने बिहार प्रान्त को अपने क्षेत्र में मिलाकर अलीवर्दी खान को यहां अपना सहायक नियुक्त किया। 1739 मे शुजाउद्दौला की मृत्यु के बाद उसका लड़का सर्फराज खान उत्तराधिकारी हुआ। अलीवर्दी खान का "एक पुराना मित्र मुहम्मद इश्हाक खान उर्फ मुतमनुद्दौला दिल्ली मे बादशाह मुहम्मदशाह का सबसे विश्वासपात्र और शक्ति प्राप्त व्यक्ति था।" इसी के माध्यम से उसने सर्फराज से लड़ने के लिए बादशाह से सनद मांगी और प्रांत की सरकार पर स्वयं अधिकार चाहा और इसके बदले में सरकारी खजाने में एक करोड़ रुपये तथा इतना ही वार्षिक कर एवं सर्फराज की जब्त की हुई सारी संपत्ति देने का वादा किया। मार्च 1740 के मध्य दिल्ली से उसे उसकी योजना को स्वीकृति का पत्र मिला[1] और 10 अप्रैल 1740 को उसने सर्फराज को गिरिया के निकट एक भयानक युद्ध मे पराजित करके मार डाला और बंगाल की सूबेदारी पर स्वयं अधिकार कर लिया।

अलीवर्दी खान जिसने बंगाल, बिहार और उड़ीसा पर 1740 से 1756 के बीच शासन किया वह निश्चित ही अच्छा शासक सिद्ध होता यदि उस पर बार-बार मराठों के आक्रमण ने उसे कठिनाईग्रस्त न कर दिया होता। इससे उस क्षेत्र का व्यापार कृषि और उद्योग भी विकसित न हो सका। 1751 में मराठों ने नवाब को संधि करने को बाध्य किया जिसके अन्तर्गत उसने उन्हें 12 लाख रुपये वार्षिक चौथ देना स्वीकार किया। मराठों ने उड़ीसा पर अधिकार किया और

1. दत्ता, के. के.: अलीवर्दी एण्ड हिज टाइम्स, 17-18 पर सियारुल मुतखरीन, लेखक गुलाम हुसैन तबतबाई का संदर्भ।

नवाब के अफगान सेनापतियों और सैनिकों को उसके विरुद्ध भड़काया। पर जब तक अलीवर्दी जीवित रहा वह युरोपीय लोगों पर अधिकार जताने मे सफल रहा। जीन लॉ ने लिखा है : "वह उनके अधिकार के प्रति ईर्ष्यालु था। वह अपने और युरोपीय लोगों के बीच संबंध को लेकर स्वतंत्र रहने का प्रयास करता था। सम्राट प्रदत्त फरमान या विशेषाधिकार की चर्चा से वह क्रुद्ध हो जाता था। वह अच्छी तरह से जानता था कि किस समय यह कहा जाय कि वह राजा भी है और वजीर भी।"[1] युरोपीय उसे अच्छी मनोदशा में रखने का प्रयास करते थे और बार-बार मराठों से रक्षा हेतु देश की आर्थिक सहायता के लिये भी कहे जाते थे क्योंकि वे "उसके हथियारों की रक्षा के लिए भी आबद्ध थे।"[2] दक्षिण में आंग्ल फ्रांसीसी संघर्ष मे नवाब ने बंगाल में उनकी हर चाल पर ध्यान रखा। पर वह स्वयं तटस्थ बना रहा।

अलीवर्दी खान के समय में अंग्रेजी कंपनी को अपनी मांग की पूर्ति के लिए बंगाल के सेठों से ऋण लेना पड़ता था। पर उन्होंने एक सेना तैयार करके और मराठों के आक्रमण के उपरान्त आक्रान्त जनता की सहायता के लिए चन्दा एकत्रित करके भी लाभ कमाया। इससे ब्रिटिशों को जनता की प्रशंसा और सहानुभूति प्राप्त हुई।

सिराजुद्दौला

1756 मे जब अलीवर्दी खान मरा तो उत्तराधिकार प्राप्ति हेतु उसका कोई पुत्र न था। उसकी तीन लड़कियों मे एक की पूर्णिया, दूसरे की ढाका तथा तीसरे की पटना के सूबेदार से शादी हुई थी। पर उसके सभी दामाद उसके पहले ही मर गए जिसके कारण उसने अपनी सबसे छोटी व प्रिय लड़की के पुत्र सिराजुद्दौला को अपना उत्तराधिकारी बनाया। पर सिराजुद्दौला के लिए बंगाल की गद्दी फूलो की सेज नही थी। वह लगभग बीस वर्ष का ही था जब उसे गद्दी मिली। उसके उत्तराधिकार को अलीवर्दी खान की दूसरी लड़की के पुत्र पूर्णिया के शौकत जंग ने चुनौती दी। शौकत जंग ने विद्रोह किया। साथ ही उसे अपनी चाची घसीटी बेगम की ईर्ष्या को भी झेलना पड़ा जिसकी सहायता राजवल्लभ कर रहा था। दक्षिण की घटनाओं की यह शिक्षा थी कि वह बंगाल मे विदेशियों पर भरोसा न करे। साथ ही उसे मुस्लिम शासन के अन्तर्गत हिन्दुओं में व्याप्त असतोष का भी भय था।

"सिराजुद्दौला एक भावुक और ढुलमुल युवा था। उसमे राजकुमारों की बहुत-सी बुराइयां थी और निर्णय की वह क्षमता भी नही थी जो उसकी प्रतिष्ठा को

1. हिल, एस. सी. : बंगाल इन 1756-1757, (तीन भाग), III, पृ॰ 160।
2. वही, पृ॰ 289।

वापस ला सके। उसकी बुराइयों पर औषधि का काम न करने वाले उसके युवावस्था के अनुभवहीनता ने और सुरक्षा की परिस्थितियों ने जो दिशा उसे दी, उसने तमाम विरोधाभासी भावों के आधार पर काम किया जिसने उसका पतन ला उपस्थित किया।"[1]

प्लासी के युद्ध को ला उपस्थित करने वाली घटनाएं और बंगाल में प्रथम क्रान्ति

नवाब ने अपने समक्ष उपस्थित चुनौतियों से निबटने की तैयारी की। घसीटी बेगम से भावनात्मक विनती कर वह उसे अपनी ओर लाने मे सफल हो गया और इसके बाद वह उसको अपने महल में ले आया जहां उसे कठोर नियन्त्रण में रख दिया गया। इसके बाद वह शौकत जंग के विरुद्ध रवाना हुआ। पर इसके पहले कि वह पूर्णिया में अपना काम पूरा करे वह लौट पड़ा और अंग्रेजों के विरुद्ध चल पड़ा।

यह सच नही मालूम पड़ता कि अलीवर्दी ने अपनी मृत्यु-शय्या पर सिराज को बंगाल मे युरोपीय शक्ति के पतन के लिए कहा था। बल्कि इसकी जगह पर उसने उनसे न लड़ने को कहा था। शक्ति प्राप्ति के पूर्व सिराज का अपना भी दृष्टिकोण युरोपीयों के प्रति वह भी विशेपकर अंग्रेजों के प्रति उदारता का था जो 1752 में उसके द्वारा गद्दी प्राप्त करने एवं अंग्रेजी कंपनी के प्रेसीडेन्ट के हुगली आने पर उसके प्रति "अत्यधिक नम्र और विशेप" व्यवहार से स्पष्ट हो चुका था। पर सिंहासन की प्राप्ति पर परिस्थितियां बदल गईं और अन्ततः अंग्रेजो और उसके सम्बन्ध में बिगाड़ हो गया।

संबंध में बिगाड़

इस संबंध में बिगाड़ के रुचिकर कारण हैं। दक्षिण में नासिरजंग की हत्या और फ्रांसीसियों का हैदराबाद को संरक्षित राज्य बनाने तथा अर्काट में क्लाइव के कार्यवाहियों की सूचना सिराजुद्दौला को थी। इस तरह उसके मन में यह भाव कि युरोपीय बंगाल में भी वैसी ही स्थिति पैदा कर सकते हैं आधारहीन नहीं थी। मद्रास में कलकत्ता के लिए 1756 में सेलेक्ट कमेटी ने जो कुछ कहा वह महत्त्वपूर्ण था: "हमें आपको यह नहीं बताना है [illegible] कार्यवाहियों को इससे क्या लाभ होगा और [illegible] के [illegible] प्रभाव होगा। इससे बंगाल

से असंतुष्ट होंगे या जो सूबेदारी की महत्त्वाकांक्षा रखते होंगे।"[1] नवाब का शत्रु शौकत जंग ब्रिटिशों से सहायता-प्राप्ति के लिए पत्र-व्यवहार कर रहा था। घसीटी बेगम और राजवल्लभ भी अंग्रेजो की शक्ति और सहानुभूति की प्रशसा करते थे। ये सब बाते नवाब को विदेशियो के प्रति सतर्क करने के लिए पर्याप्त थी।

नवाब और अंग्रेजों के संबंध मे कटुता तब विकसित हुई जब राजवल्लभ के पुत्र कृष्णवल्लभ ने अंग्रेजो का संरक्षण प्राप्त किया। राजवल्लभ ने नवाब की सहानुभूति इसलिए खो दी थी क्योंकि उसने धन का गबन किया था और उसका लड़का इस तरह से एकत्रित सभी धन लेकर कलकत्ता चला गया था। वहा पर उसने फोर्ट विलियम के दो कर्मचारियों को "पचास हजार रुपये से अधिक" का घूस देकर नवाब के विरुद्ध सरक्षण प्राप्त कर किले में प्रवेश पा लिया था। नवाब की कृष्णवल्लभ को समर्पित करने की माग ब्रिटिशो ने अस्वीकार कर दी। हिल इस संबंध मे कहता है, "जहा सिराजुद्दौला का पद पर रहना संदेहास्पद था वहा वे एक आदमी के विषय मे सहायता देने का जोखिम उठा सकते थे क्योंकि दयालुता के आधार पर यह उचित व उपयुक्त था।"[2]

और फिर 1716-17 के राजकीय फरमान ने ब्रिटिश कंपनी को कुछ व्यापारिक सुविधायें बंगाल क्षेत्र मे चुगी बिना प्रदान की थी। पर कंपनी के कर्मचारी इसका दुरुपयोग कर रहे थे। कंपनी के दस्तक (स्वतन्त्र व्यापार की सुविधा) को वे व्यक्तिगत व्यापार में तो प्रयोग करते ही थे साथ ही इसे वे भारतीय व्यापारियो के हाथ बेच भी देते थे जिससे "नवाब के राजस्व की बहुत हानि होती थी।" इतना ही नही, हिल ने तो यहां तक लिखा है कि "हमने अपने जिलों मे उन्ही वस्तुओ पर कर लगाया और उनसे वसूला जिन्होने हमें चुगी मुक्त व्यापार की सुविधा प्रदान की···"[3] नवाब ने बेकार ही इसकी शिकायत की।

युरोप मे सप्तवर्षीय युद्ध के प्रारभ के साथ ही अंग्रेजो और फ्रांसीसियो का संबंध जो बिगड़ा उसने इस मामले को और तूल दे दिया। इस सदर्भ मे अंग्रेज और फ्रांसीसी दोनों ने क्रमश: कलकत्ता और चन्द्रनगर की किलेबदी प्रारंभ कर दी। दोनों ने अलीवर्दी खान को बगाल में शांति से रहने का वचन दिया था पर अब यह लगा कि दोनो आपस मे द्वन्द की तैयारी मे व्यस्त है। नवाब निश्चित ही इससे उत्तेजित हुआ और अपने क्षेत्र मे शांति भंग का विरोध किया। फ्रांसीसियो ने किलेबदी रोक दी पर ब्रिटिश अपने कार्य में लगे ही रहे। अंग्रेज कम्पनी के प्रेसीडेन्ट

1. हिल, पूर्वोद्धृत, III, 328।
2. वही, I, IV।
3. वही, III, 384।

ड्रेक की ओर से यह असतोषजनक सूचना थी जिसने नवाब को ब्रिटिशों से पहले निवटने को वाध्य किया।

युद्ध

हो सकता है कि यह कहा जाय कि नवाब को थोड़ा और वर्दाश्त करना चाहिए था और यह अतिम निर्णय लेने से पहले शांति का प्रयास करना चाहिए था। पर इस युवा के मन मे बदले के मनोविकार ने उस पर विजय पायी और उसने जन, 1756 मे कासिम बाजार की ब्रिटिश फैक्ट्री पर आक्रमण कर इसके प्रधान वाट्स को वदी बना लिया। 5 तारीख को नवाब की 50 हजार सेना कलकत्ता पहुंच गई। नगर के उत्तरी किनारे पर उसका आक्रमण बेकार कर दिया गया जिसके बाद 15 जून को फोर्ट विलियम घेर लिया गया। इसके चार दिन बाद ड्रेक अपने कौसिल के सदस्यों, महिलाओं और बच्चों सहित किले के पिछले दरवाजे से हुगली नदी होकर बच निकला और फुल्टा पहुंच गया। भागने वालों के बाद घिरे हुए किले के अन्दर ब्रिटिशो का नेतृत्व हाल्वेल के हाथों आया जो दो दिनों से अधिक इसे नही बचा सका और अंततः वे समर्पण के लिए बाध्य हुए।

काल कोठरी

'जिन्होने इस तरह समर्पण किया उन्हे नवाब के अधिकारी किले में ही एक अधेरे कक्ष की ओर ले गये। कक्ष "अठारह फीट लम्बा और चौदह फीट दस इंच चौडा था। दो छेदों से, जो छड़ो से बंटा था, अंधेरे से होकर वहां हवा आती थी। तहखाने के आच्छादित मार्ग मे बाहर के भाग से प्रकाश की किरणें चमक जाती थी। डान्टेस्क्यु के दुःस्वप्न की भांति लड़खड़ाते आश्चर्यचकित व्यक्ति और एक स्त्री एक ही दरवाजे से भीतर एक के बाद एक ढकेल दिये गये जो एक के ऊपर दूसरे होते गये। उन्हें जगह और पैर रखने के स्थान की तलाश थी। कुछ खड़े, कुछ जो अधिक भाग्यशाली थे—मृत्यु प्राप्त, जिन्हे उस लंबी रात के प्रथम क्षणों मे यह मिल गई थी। जब अंत में दरवाजा वद किया गया तो उसमे 145 लोग थे जिनमें 12 घायल अधिकारी व मेरी केरी नामक महिला थी जिन्हे उसमें ठूस दिया गया।"[1] इस तरह जो बंदी वनाये गये उन्हे अत्यधिक कठिनाई भुगतनी पडी। दूसरे दिन "प्रातः छ. बजे ताला वंद होने के दस घटे बाद" दरवाजा खोला गया "बाईस व्यक्ति और एक महिला अपने साथियो के शरीर मे संघर्ष करते बाहर निकले और परेड ग्राउन्ड पर ताजी हवा मे सांस ली। एक सौ तेईस लोग पीछे मरे पाये गये।"[2]

1. बारबर, नोयल : द ब्लैकहोल ऑफ कलकटा, पृ० 206।
2. वही, पृ० 229।

बचने वालों में एक जे०एच० हालवेल भी था जिसने घटना के नौ महीने बाद इग्लैंड वापसी की यात्रा के दौरान इसका विवरण तैयार किया। इसी आधार पर बाद के सभी संदर्भ जोड़े गये हैं। कुछ फ्रांसीसी और आर्मीनियन भी इसकी सूचना देते हैं पर कैद किये गये उन बंदियों की संख्या के संबध मे उनमे भिन्नता है जो इस तरह कष्ट के भागी हुए। पर यह महत्त्वपूर्ण है कि समकालीन मुस्लिम इतिहासकार गुलाम हुसेन की पुस्तक (सियारुल मुतखरीन) में इसका जिक्र नही है। न ही उस समय की कलकत्ता कौंसिल की कार्यवाही मे इसका विवरण है और न तो किसी भारतीय इतिहासकार ने इसकी चर्चा की है। कुछ आधुनिक इतिहासकार इसे बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कहे गये गल्प की संज्ञा देने को तैयार है जब कि अन्य इसे छोटी घटना मानते है। पर तत्कालीन ब्रिटिशों ने नवाब को बदनाम करने के लिए इससे खूब लाभ उठाया और इस आधार पर जनमत को अपनी ओर करने का प्रयास किया क्योंकि अब वे शीघ्र ही आक्रामक युद्ध प्रारंभ करने की तैयारी में थे।

कलकत्ता पर अधिकार के बाद नवाब ने इसे मानिकचद के हाथो मे सौप दिया। "अपने गुस्ताख स्वभाव के कारण सिराज ने विजय के बाद की जाने वाली कार्यवाही नहीं की और फुल्टा में बुरे दिन काटने वाले ड्रेक और अन्य को वैसे ही छोड़ दिया जिन्हें 230 सैनिकों की सहायता जुलाई मे मिल पायी। इसकी जगह वह वंशगत विरोधी शौकतजंग को मिटाने पर जुट गया।"[1]

ब्रिटिशों का आगे बढ़ना और शांति संधि

जब कलकत्ता के दुर्घटना की सूचना मद्रास पहुंची तो वहां के अधिकारियो ने तुरत अपनी बस्ती को उबारने के प्रयास किये। उन्हें यह पता था कि इसमे प्राप्त असलफता उन्हें भारतीयो की दृष्टि में गिरा देगा और फ्रांसीसियों के समक्ष कम-जोर कर देगा। उन्होंने पानी के रास्ते से बंगाल समुद्र से होते हुए ऐडमिरल वाट्सन को भेजा और कर्नल क्लाइव को थल मार्ग से भेजा। 16 अक्टूबर 1756 को नौ सौ युरोपीयों और पन्द्रह सौ भारतीयों के साथ ये यहां पहुंचे। दिसंबर में फुल्टा के शरणागतो को आश्वस्तता मिली और 2 जनवरी 1757 को उन्होने मानिकचंद से कलकत्ता ले लिया। इसे घूस दिया गया जिसके बदले उसने विरोध का दिखावा मात्र करके कलकत्ता का समर्पण कर दिया। इसके बाद ब्रिटिश सैनिको ने नवाब के विरुद्ध बढ़ने का निश्चय किया और उससे पूर्व उन्होंने हुगली और उसके आसपास के क्षेत्रों को लूटा।

इस सबसे नवाब का क्रोध भड़क उठा और वह 40 हजार की सेना एकत्रित कर इस दृढ़ निश्चय के साथ कलकत्ता की ओर रवाना हुआ कि वह ब्रिटिशो को

1. स्मिथ, वी० ए० : पूर्वोद्धृत, पृ० 467।

सदा के लिए यहा से निकाल देगा। पर वह अपने दृढ निश्चय के लिए प्रसिद्ध न था और जैसे ही उसने हुगली पार किया क्लाइव के आकस्मिक आक्रमण ने उसे पूरा तरह से हताश कर दिया। इसके बावजूद कि युद्ध अभी निर्णायक स्थिति में नही पहुचा था। शत्रु की तुलना मे उसकी बड़ी सेना ने भी उसे उस युद्ध में मानसिक रूप से शक्तिशाली नही बनाया और उसने अपने अधिकारियो की यह राय मान ली कि संधि कर ली जाय। सभवतः इस तरह का मत देने वाले अधिकारी स्वय उससे असतुष्ट थे या उन्हें घूस या आश्वासन ने शत्रु के हाथ मे खेलने को बाध्य कर दिया था।[1] पर यदि ऐसा था और यदि वह अपने अधिकारियो की ईमानदारी पर सदेह करता था तो उसे इस समस्या से युद्ध के पूर्व ही निबट लेना चाहिए था।

ब्रिटिशो के इतने शीघ्र वह मित्र हो गये, इसके कारणो मे कुछ और बातें भी कही गई है। इनमे से एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसी समय भारत पर अहमदशाह अब्दाली ने आक्रमण कर 1756 मे दिल्ली पर अधिकार कर लिया था। वह सोच रहा था कि कही अफगान रोहिल्लो और नवाब अवध से मिलकर बगाल की ओर न बढ आयें। इन परिस्थितियो में उसने ब्रिटिशो की सहायता प्राप्त करके शक्तिशाली होने मे चतुराई ही की।

शाति का प्रस्ताव क्लाइव के लिए भी उतना ही स्वागत योग्य था। ऐडमिरल वाट्सन से उसके सबध तनावपूर्ण हो गये थे और कलकत्ता कौंसिल मद्रास अधिकारियों के प्रदत्त उसने इतने स्वतत्र अधिकारों के प्रति ईर्ष्या भाव रख रही थी। यह भी भय था कि 800 प्रशिक्षित फासीसी अपने तोपखाने सहित वहीं नवाब से मिल न जाय। इसकी भी संभावना थी कि उत्तरी सरकारो से आने वाला बुस्सी कही शत्रु से मिल न जाय। साथ ही मद्रास अपने क्षेत्र कर्नाटक मे अशाति देखकर अपनी सेना के वापसी की माग कर रहा था।

इस कारण जब नवाब ने शाति प्रस्ताव प्रेषित किया तो क्लाइव ने उसे स्वीकार कर लिया। 9 फरवरी 1757 को सधि पर हस्ताक्षर हो गये। इसमे था कि (1) ब्रिटिशो को दिल्ली से जो सुविधा प्राप्त थी उसे स्वीकार कर लिया गया, (2) बंगाल, बिहार और उड़ीसा मे ब्रिटिशो को दस्तक अधिकार का प्रयोग करते रहने दिया गया (3) उनकी फैक्ट्रिया उन्हें वापस मिल जायेगी और उनके हानि की क्षतिपूर्ति की जायेगी, (4) कलकत्ता की किलेबंदी वे इच्छानुसार कर सकेंगे, (5) वे अपना सिक्का भी ढाल सकेंगे। इस सबके बदले ब्रिटिशो ने नवाब से आक्रमण और सुरक्षात्मक सधि की।

---

1. राम गोपाल : हाऊ द ब्रिटिश आकूपाइड बगाल, 1963, पृ० 156।

चन्द्रनगर पर अधिकार

नवाब सचमुच कठिन अवस्था मे था और क्लाइव ने परिस्थिति का अत्यधिक लाभ उठाया। शांति संधि के बाद यही आशा थी कि क्लाइव का कार्य पूरा हो गया है और वह अब अपने सैनिकों सहित मद्रास वापस चढ जायेगा जिसकी कि मांग भी हो रही थी। पर क्लाइव ने दूसरे ढंग से सोचा और अपने लाभ को बढाने की योजना बनाई। उसने ऐसा करना उचित समझा क्योंकि वह संधि को कागज का एक टुकड़ा मानता था और जानता था कि नवाब किसी भी क्षण सुविधाजनक होने पर इस संधि की अवहेलना करेगा। इसीलिए संधि के इस माहौल में क्लाइव ने नवाब से फ्रांसीसी बस्ती चद्रनगर पर आक्रमण की आज्ञा मांगी। यह एक अत्यधिक कठिन मांग थी क्योंकि ब्रिटिशों से मित्रता स्थापित करने के बाद वह फ्रांसीसी लोगों का शत्रु होने की तनिक भी इच्छा नहीं रखता था। क्लाइव ने उसे फुसलाया भी और धमकाया भी। नवाब ने इसका असहाय, अर्द्धमन और अनबूझ उत्तर दिया जिसका ब्रिटिशों ने अपने पक्ष मे ही अर्थ लगाया। ब्रिटिश फ्रासीसी बस्ती पर टूट पडे और नवाब सहित सभी यह सुनकर आश्चर्यचकित रह गये कि उन्होंने कुछ ही दिनों मे वहां अधिकार कर लिया है। यह अंग्रेजी नवसेना का कमाल था। पर इससे भी अधिक कमाल था अग्रेजों का नवाब के मुह पर कूटनीतिक पराजय का झापड़। क्लाइव की शीघ्र कार्यवाहियों ने नवाब को फ्रासीसियो से मिलने और अन्य कोई कार्यवाही करने की स्थिति नही पैदा होने दी। अपेक्षा तो यह थी कि नवाब क्लाइव पर इसी तरह का प्रहार करता और आक्रामक और सुरक्षात्मक संधि को क्लाइव की तरह कागज का टुकड़ा ही समझता।

नवाब के विरुद्ध षड्यन्त्र

नवाब इस तरह असहाय अवस्था मे पहुंचा दिया गया। उसके समक्ष इसके अलावा कोई रास्ता नहीं था कि वह ब्रिटिशों को बधाई का संदेश भेजे। पर उसके दुर्भाग्य का अंत ही अभी कहा हुआ था। क्लाइव ने अनुभव किया कि नवाब एक *घायल सांप की तरह है जो उचित अवसर पाते ही ब्रिटिशो के विरुद्ध प्रहार करेगा।* उधर मद्रास का दबाव सेना की वापसी के लिए था जबकि उसका सोचना यह था कि अभी उसका बंगाल का कार्य पूरा नही हुआ था क्योंकि यदि ब्रिटिश फौजे वापस हो जाती तो नवाब को फ्रासीसियों से मिलने का अवसर प्राप्त हो जाता। और यदि बुस्सी दक्षिण से आकर उससे मिल जाता और ब्रिटिश सेनाये दूर हो जाती, तो बुस्सी बंगाल में वही भूमिका निभाता जो हैदराबाद मे फोर्डे ने निभाई और बगाल मे ब्रिटिशों को वही दुर्भाग्य मिलता जो तीसरे कर्नाटक के युद्ध मे दक्षिण में फ्रासीसियो को प्राप्त हुआ। इसलिए उसने मद्रास स्थिति सेलेक्ट कमिटी से राय लेना उचित समझा। 13 अक्टूबर 1756 को उन्होंने उसे राय भेजी और कहा

"कि वह बंगाल मे किसीभी शक्ति से मित्रता कर ले जो नवाब या सरकार की हिंसा नीति से असतुष्ट हो या जो सूबेदारी चाहता हो" और इस तरह सदा के लिए सिराजुद्दौला को रास्ते से हटाये।

नवाब के सामन्तो मे भी भेदभाव था। जगत सेठ जैसे हिन्दू महाजन और नदिया के महाराज कृष्णचद्र जैसे जमीदार नवाब की अहिन्दू नीति से नाराज थे। पहले ही एक बार उसकी सेना के एक सेनापति यार लुत्फ खान को उसका स्थान दिलाने की असफल चेष्टा हुई थी। इसी बीच यह भी षड्यन्त्र प्रारंभ किया गया कि मीर जाफर को नवाब बना दिया जाय। मीर जाफर नवाब की सेना का एक सेनापति था और अलीवर्दी खान की बहन से उसका विवाह हुआ था। एक बार सिराजुद्दौला ने उसे अपमानित[1] किया था जिसका वह बदला लेना चाहता था। इन परिस्थितियो मे उसकी सेना से भी लाभ उठाया जा सकता था जिसमे काम करने वाले फारसी और अफगान सैनिक केवल अपने सेनापति की ही बात मानते थे और सबसे अधिक लाभ प्रदान करने वाले के पास साथ छोड़कर जाने को तैयार रहते थे।

क्लाइव ने परिस्थिति से लाभ उठाने का निश्चय किया क्योंकि वह सेलेक्ट कमिटी के मत से सहमत था जिसमे उसने बताया था कि "सभी तरह के लोग नवाब से घृणा करते है; अधिकारियो द्वारा किये गये दुर्व्यवहार के कारण सेना उससे कट कर रह गई है और वह विद्रोह जो हम सैनिको मे चाहते हैं वह सभवतः अपने आप हो जाय (और सफलतापूर्वक), चाहे हम कोई सहायता करे या न करे।"[2] इसलिए जब उसने मुर्शिदाबाद मे कंपनी के रेजीडेन्ट वाट्स से अप्रैल 1757 मे यह सुना कि षड्यन्त्रकारी ब्रिटिशो की सहायता से नवाब को हटाकर मीर जाफर को नवाब बनाना चाहते हैं तो वह तुरन्त तैयार हो गया।

षड्यन्त्रकारियो ने एक समझौता किया। यह विश्वास किया जाता था कि नवाब के खजाने मे 400 लाख स्टर्लिंग धन है। मीरजाफर ने गद्दी प्राप्ति की स्थिति मे यह स्वीकार किया कि (1) वह अंग्रेजों के माध्यम से उन सभी की क्षतिपूर्ति करेगा जिनकी सिराजुद्दौला के कलकत्ता आक्रमण के समय हानि हुई। इस तरह कपनी को एक करोड रुपये मिलेगा जिसमे से 50 लाख रुपया कलकत्ता मे रहने वाले युरोपीयो मे, 20 लाख हिन्दुओं और मुसलमानो मे और 7 लाख आर्मीनियनो मे बाटा जायगा जिनको हानियां हुई थी। (2) वह कपनी को कुछ क्षेत्र भी प्रदान करेगा। (3) हुगली के निकट वह किलेबदी नही करेगा। (4) वह ब्रिटिशों से एक आक्रामक और सुरक्षात्मक सधि करेगा। (5) वह उन्हे सभी

---

1. और विस्तार के लिए देखें, राम गोपाल : हाउ द ब्रिटिश आकूपाइड बगाल, पृ० 216।
2. ग्रिफिथ, सर परसीवल : द ब्रिटिश इम्पैक्ट आन इण्डिया, पृ० 72।

फ्रांसीसियों तथा उनकी दौलत को जो बंगाल, बिहार और उड़ीसा में है वापस करेगा। साथ ही क्लाइव व उसके अधिकारियों को भेंट देने का आश्वासन मिला। मुख्य षड्यंत्रकारी राय दुर्लभ को मंत्रि पद देने का निश्चय हुआ।

जब उपरोक्त गुप्त समझौता हुआ तो उस समय एक सिख व्यापारी ओमीचंद ने बिचौलिये का काम किया। जब सभी को इनाम देने का वादा किया गया तो "ओमीचंद ने सिराजुदौला के खजाने से प्राप्त होने वाले धन का पांच प्रतिशत और जवाहिरात का एक चौथाई भाग"[1] अपने लिए मांगा और यह भी धमकी दी कि यदि ऐसा नही किया गया तो वह यह गुप्त सूचना नवाब को दे देगा। ओमीचंद की मांग असंगत लगती थी इसीलिए क्लाइव ने उसे धोखा देने के लिए एक ही तरह के दो संधि पत्र तैयार किये। एक लाल कागज वाला जिसमें ओमीचंद को 30 हजार पौंड देने का वादा था और दूसरा सफेद कागज पर जिसमे यह धारा हटा दी गई थी। ऐडमिरल वाट्सन ने इस तिकड़म में भागी होना स्वीकार नही किया, पर क्लाइव ने अपने जाली हस्ताक्षर कराने के आदेश दे दिये।

यह आश्चर्यजनक है कि इस धोखाधड़ी का ज्ञान लंदन के डाइरेक्टरो को पन्द्रह वर्ष तक नही हुआ। इसने क्लाइव की प्रतिष्ठा को बड़ा आघात पहुंचाया।[2] ओमीचंद ने चन्द्रनगर की विजय मे ब्रिटिशों की सहायता की थी और नवाब के कलकत्ता पर आक्रमण के समय सचेत किया था। उसने इस तरह उनकी कई अवसरों पर सहायता की और जब क्लाइव से यह पूछा गया कि उसने उसके साथ धोखा क्यों किया तो उसका उत्तर था कि यों तो ओमीचंद से कंपनी ने बहुत-सी सेवायें ली पर नवाब के कलकत्ता आक्रमण के समय उसने अंग्रेजो से झूठ बोला। मीरजाफर से षड्यंत्र के समय उसे बाहर रखने की चेष्टा हुई पर वह सफल नही हुई। जब संधि मे उसकी मांगों पर उदारतापूर्वक विचार हो रहा था वाट्‌स से एक ऐसा पत्र मिला जिसमें ओमीचंद के विरुद्ध षड्यंत्र के तमाम प्रमाण थे। इन्ही कारणो से क्लाइव ने दो संधि-पत्रों की उपरोक्त योजना बनाई। "क्लाइव और समिति का दृष्टिकोण यह था कि मीरजाफर और मुर्शिदाबाद मे अंग्रेजो को बचाने और साथ ही एक दंड योग्य व्यक्ति को इनाम न देने का यही एक उपाय था।"[3]

जैसा भी हो, युद्ध प्रारंभ होने के पूर्व ही रहस्यो का उद्‌घाटन हो गया जिस पर नवाब ने केवल इतना ही किया कि अपने चार सेनापतियों—मीरजाफर, राय दुर्लभ, मार लुत्फ खान और मीर मुईनुद्दीन खान—को बुलाकर अपने प्रति

---

1. डाडवेल, हेनरी : डूप्ले ऐण्ड क्लाइव—द बिगनिंग आफ इम्पायर, पृ० 143-44।
2. गेंटी, रेजीनाल्ड : राबर्ट क्लाइव एण्ड द फाउन्डिंग आफ ब्रिटिश इण्डिया, 1927, पृ० 167-98।
3. डाडवेल, हेनरी : पूर्वोद्धृत, पृ० 143-44।

स्वामिभक्ति की शपथ दिलाई। इनमें से अंतिम को छोड़कर सभी षड्यंत्र में फंसे हुए थे।

प्लासी का युद्ध

जब सब तैयारी हो गई तो क्लाइव ने नवाब को लिखा कि उसने 1757 की संधि की अवहेलना की है और पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह प्लासी की ओर आगे बढ गया और वहां 15 मील दूर 23 जून को दोपहर को वह पहुंच गया। क्लाइव 800 गज लम्बे और 300 गज चौड़े आम के बाग में रुका हुआ था। सिराजुद्दौला ने यहा से एक मील की दूरी पर अपना खेमा लगाया।[1] क्लाइव के पास एक हजार युरोपीय और इसके दुगुने भारतीय सैनिक थे जबकि नवाब के पास पचास हजार की सेना थी जिसमे से दो हजार उसी के अंदर थे और 48 हजार सैनिक चार भागो मे बंटकर मीरजाफर, यार लुत्फ खान, राय दुर्लभ और मीर मुईनुद्दीन के अधीन रखे गये थे।

अपने विरुद्ध इतने बड़े सैनिकों का मजमा देखकर एक बार तो क्लाइव आतंकित हो गया। यदि मीर जाफर और अन्यों के मस्तिष्क में परिवर्तन आ जाता और वे नवाब की जगह ब्रिटिशों के प्रति गद्दारी करते तो क्या होता? क्लाइव का धैर्य जवाब देने लगा। पर भाग्य उसके साथ था और जब वह युद्ध भूमि से अल्प-काल के लिए अनुपस्थित हो गया था तो किलपेट्रिक ने सेना को आगे बढने का आदेश दे दिया। एक बार दिया हुआ आदेश वापस नही हो सकता था। नवाब की सेना मे षड्यंत्र ने अपनी भूमिका प्रारंभ कर दी थी। एक दिन पूर्व की वर्षा में युद्ध के गोला-बारूद ठीक से बचाए नही जा सके थे। जब ब्रिटिशो ने आक्रमण किया तो उसके चार सेनापतियो मे से तीन अलग हट गए और मीर मुईनुद्दीन मात्र ही मुकाबले के लिए आगे बढा। पर उसके पास तोपखाने के लिए सूखा गोला-बारूद न था जब कि ब्रिटिशो ने अंधाधुध व भयानक ढग से गोलाबारी प्रारंभ कर दी जिसमे सेनापति स्वय घायल होकर मर गया। इस तरह नवाब का एकमात्र स्वामिभक्त सेनापति जाता रहा। पर ब्रिटिशो को भी अपने सैनिकों सहित आम की बाग में वापस जाना पड़ा। यदि इस समय और सेनापतियो ने बढ़कर आक्रमण किया होता तो ब्रिटिशों को नेस्तनाबूद किया जा सकता था। पर ऐसा नही हुआ।

नवाब को मालूम था कि उसके सभी सेनापति षड्यन्त्र कर रहे है पर फिर भी उसने युद्ध सभा बुलाई। षड्यत्रकारी सेनापतियों ने यह राय दी कि वह युद्धभूमि छोडकर चला जाए और बाकी वे सभाल लेंगे। नवाब इस तरह अपने दो हजार सैनिको सहित भागा जबकि उसके सेनापतियो ने ब्रिटिशो से सैनिको के तितर-

---

1. मैलीसन, जी० बी० : लार्ड क्लाइव, 1962, पृ० 76।

वितर कर देने के लिए संपर्क किया। इस तरह यह युद्ध गोलाबारी से थोडा-सा अधिक था और क्लाइव ने बिना कुछ लड़े ही विजय प्राप्त कर ली।[1]

"जब पराजित और अपमानित सेना अपने माल-असबाब, हाथियों, ऊटो के साथ पीछे हट रही थी वहां बहुत से सामान, जानवरो और कैम्प सामग्री के लिए लूट मची हुई थी। इसी समय क्लाइव को मीरजाफर का भेट करने के लिए निवेदन प्राप्त हुआ। क्लाइव ने उसे दूसरे दिन दाउदपुर मे मिलने का समय दिया जो मुर्शिदाबाद से 20 मील दक्षिण में एक गाव था।"[2] 28 जून 1757 को क्लाइव ने मीरजाफर को मुर्शिदाबाद मे मसनद पर बैठाया। अगले माह की दूसरी तारीख को सिराजुद्दौला मीरजाफर के पुत्र मीरान के द्वारा पकड़ा गया और मार डाला गया।

युद्ध का महत्त्व

प्लासी के युद्ध ने बंगाल प्रांत में क्रांति करके एक नवयुग का सूत्रपात किया। साथ ही इसने अंग्रेज कपनी की कार्यशैली मे भी क्रांति ला दी। युद्ध थया रुका कि लूट के सामान का विभाजन प्रारंभ हो गया। नवाब के खजाने का निरीक्षण किया गया पर इसमें आशा के अनुरूप 4 करोड़ स्टर्लिंग का धन नही मिला। इसीलिए ब्रिटिशो ने अक्टूबर के अंत तक निश्चित राशि का आधा लेने का निश्चय किया और शेष राशि अगले तीन वर्षो मे समान छमाही किश्तो मे लेने का निश्चय किया। कंपनी ने अन्य भेटों के अतिरिक्त 24 परगना क्षेत्र भी प्राप्त किया। क्लाइव को स्वयं 16 लाख रुपये का व्यक्तिगत लाभ हुआ।[3] अन्य अधिकारियों को भी इसी तरह इनाम प्राप्त हुआ। यहा तक कि एक साधारण सिपाही को भी

---

1. एक ब्रिटिश लेखक के अनुसार 'भाग्य ने जो भूमिका क्लाइव के पक्ष मे अदा की उसके लिए वह दया का पात्र ही माना जाएगा। अगर वह लड़कर जीता होता तो अपने समकालीनों के क्रूर तानो और ईर्ष्यापूर्ण प्रहार से बच गया होता।' देखें, कुलकर्णी, वी० बी० : ब्रिटिश स्टेट्समैन इन इण्डिया, 1961, पृ० 23।
2. मैलीमन : पूर्वोद्धृत, पृ० 85।
3. मडवर्ड गिलियट के अनुसार क्लाइव ने दो लाख से तीन लाख पौंड के बीच स्वीकार किया। "युद्ध ने···उसे धनी बना दिया, क्लाइव ने दस हजार पौंड अपनी बहनों को भेजा, उदारता से कई मित्रो की सहायता की, अपने सहायक को आठ सौ पौंड प्रतिवर्ष माता-पिता को भेजने का आदेश दिया और पाच सौ पौंड अपने पुराने सेनापति लारेन्स के लिए तय किया।" अपने सहायक को उसने लिखा, "तुम्हें कष्टनो होगा पर 200 कमीजें भिजवा दो जो उच्चकोटि की हो; साठ जोड़े मोजे और एक बक्स पेंन्ट भी भिजवा दो।" देखें, मडवर्ड गिलियट : हीरोज आफ माडर्न इण्डिया, पृ० 30-31।

लाभ हुआ। जब नवाब के कोष से धन कलकत्ता ले जाया गया तो इसे "समारोह-पूर्वक प्राप्त किया गया। बदूकें दागी गई और औरतें नाचते-नाचते थक गई" और "क्लाइव के स्वास्थ्य के प्रति ऐडमिरल से लेकर नीचे तक सभी ने शुभकामनाएं व्यक्त की।"[1]

दूसरे ढग से भी क्लाइव को व्यक्तिगत रूप से लाभ हुआ। पिट ने ब्रिटिश संसद मे कहा : "हमने भारत छोड़कर हर स्थान पर अपना गौरव, प्रतिष्ठा और नेकनामी गंवा दी थी। यहां पर देश का एक ऐसा जन्मजात सेनापति था जिसने कभी युद्ध कला की जानकारी भी नही प्राप्त की और न ही उसका नाम देश के सेनापतियो की सूची में ही था जिन्होंने देश मे वेतन प्राप्त किया। पर फिर भी वह मुट्ठी भर लोगों के साथ बहुत बडी सेना पर आक्रमण करने मे भी नही डरा।"[2] इसके लिए डाइरेक्टरो ने उसे बगाल मे ब्रिटिश क्षेत्र का गवर्नर नियुक्त किया।

इसके अतिरिक्त ब्रिटिशो को नवाब के पूरे क्षेत्र मे व्यापार की पूरी स्वतंत्रता मिल गई। अब प्रान्त के दूर-दराज क्षेत्रों मे सहायक फैक्ट्रिया स्थापित हुई तथा कलकत्ता में स्थापित टकसाल से 19 अगस्त 1757 में पहला ईस्ट इंडिया कपनी का रुपया प्रसारित हुआ। इस पर एक तत्कालीन आत्मकथा मे लिखा गया : "कंपनी ने क्षेत्र के अधिग्रहण के साथ बस्ती के विस्तार का पर्याप्त अवसर प्राप्त किया जिसका उचित प्रबंध उन्ही के लिए नही बल्कि पूरे राष्ट्र के लिए हितकर हुआ; इस भूमि से प्राप्त कर, कलकत्ता का टकसाल, पटना के निकट शोरे का ठेका जो सब मिलाकर वर्ष मे 10 लाख के लगभग पड़ता था, साथ ही उस स्थान पर खतरे से निबटने की भी व्यवस्था थी जिससे व्यय और बढ़ता था।"[3]

प्लासी का युद्ध तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था के दिवालियेपन का भी सूचक था जिसने राज्य के आन्तरिक कलह को सामने ला दिया और यह प्रदर्शित कर दिया कि बंगाल में मुस्लिम शासन के दिन गिने-चुने थे।

इस युद्ध के फलस्वरूप बंगाल के राजनैतिक जीवन में एक नवीन तत्त्व का समावेश हुआ। मीरजाफर जो बंगाल की गद्दी पर अब बैठा वह ब्रिटिश हाथों में कठपुतली बने रहने को बाध्य था। अंग्रेज बंगाल में शासक निर्माता हो गये और इस तरह अब उनके भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना का काल प्रारंभ हो गया। सच तो यह था कि युद्ध के बाद क्लाइव की कल्पना उड़ान भरने लगी और

उसने इंगलैंड मे विलियम पिट को लिखा कि अगर सरकार रुचि ले और कुछ हजार सैनिक भारत भेज दे तो पूरे भारतीय महाद्वीप को अंग्रेजी सम्राट की छत्र-छाया में लाया जा सकता है।

ब्रिटिशों के इस युद्ध में सफलता के कारण बंगाल के राजनैतिक पटल से अन्य युरोपीय शक्तियां ओझल हो गई। फ्रांसीसी हाथ-पैर बाधे अंग्रेजों के सामने झुकने को बाध्य हो गये और अन्य किसी युरोपीय शक्ति की यह ताब नही रह गई कि वह इस क्षेत्र मे ब्रिटिश उच्चता को चुनौती दे सके।

बंगाल भारत का सबसे धनी प्रांत था। इसकी औद्योगिक सामग्रियां देश के हर कोने मे जाती और वहा से धन बटोरती थी। यहां के संपन्न साधनो ने ब्रिटिशो को फ्रांसीसियो के विरुद्ध तृतीय कर्नाटक युद्ध और शेष भारत को जीतने मे ही सहायता नही की बल्कि इगलैण्ड की स्वतंत्रता भी इसने इतनी बढा दी जितनी पहले कभी नही बढ़ी थी। प्रत्येक अंग्रेज कंपनी के कर्मचारी नवाब बन गये और जब वे स्वदेश वापस गये तो उन्होंने वैधानिक या अवैधानिक ढंग से अर्जित धन से इंगलैण्ड में राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने की चेष्टा की।

बगाल के लिए बुरे दिन आ गये। एक ऐसे सक्रमण काल का प्रारभ हुआ जिसके अंतर्गत मुस्लिम राजनैतिक शक्ति का धीरे-धीरे पतन और ब्रिटिश शक्ति का धीरे-धीरे उत्थान प्रारंभ हुआ। इसमे कुछ वर्ष लगे जब ब्रिटिशो ने पूर्ण रूप से प्रशासन अपने हाथ मे लिया। इस बीच किसी ने भी जनहित के उत्तरदायित्व का अनुभव नही किया। न्यायिक संगठन अस्त-व्यस्त हो गया, शाति व व्यवस्था टूट गई और इसका धन देश को गरीब बनाता इंगलैण्ड की ओर बहता गया और यहा के देशवासी भिखारी हो गये।

1772 में दो समितियों ने गवाहो से बात की और इसका विस्तार छपवाया। "उन्होंने पाया कि 1757 और 1766 के बीच कपनी के कर्मचारियो को भेंट के रूप मे 21,69,665 पौंड से कम नही दिया गया, साथ ही क्लाइव को मुगल साम्राज्य के सामंत की हैसियत से तीस हजार पौंड वार्षिक की आय हुई और 37,70,833 पौंड क्षतिपूर्ति के रूप में प्रदान किया गया।" उस मीरजाफर से धन लेकर बुरा उदाहरण क्यों प्रस्तुत किया? इसके उत्तर में प्लासी के युद्ध के बाद मुर्शिदाबाद के खजाने को देखकर उसने जो सोचा उसे प्रस्तुत किया जा सकता है। "मै तहखानो के बीच से होकर गुजरा जो केवल मेरे लिए खोले गये थे, जिसमें दोनों ओर सोने और जवाहिरात रखे हुए थे! सभापति जी," वह चिल्ला पड़ा। "इस क्षण तो मुझे सयम पर स्वय ही आश्चर्य है।"[1] आश्चर्य यही होता है कि फिर मीर जाफर ने ब्रिटिशो को देय धन राशि तुरन्त क्यों नही दी और धन

1. मेंटो, रेजीनाल्ड : पूर्वोद्धृत, पृ० 168।

किश्तों में क्यों दिया गया ? क्लाइव के ऊपर समिति के समक्ष झूठ बोलने का आरोप लगना चाहिए। पर यह भी बंगाल को शोषण से नहीं बचा सकता था।

क्लाइव और मीर जाफर

मीर जाफर नया नवाब हुआ, पर सभी जानते थे कि वह नाम मात्र को ही नवाब है। प्लासी की विजय क्लाइव की सिराजुद्दौला पर विजय थी मीर जाफर की नहीं और क्लाइव ने इसे सभी से बताया कि नवाब की जो शक्ति है वह उसी में निहित है। इसी कारण वह कलकत्ता नहीं गया; बल्कि इसकी जगह वह अपने सैनिकों सहित मुर्शिदाबाद के पड़ोस में पड़ा रहा और वहां से प्रांतों पर अपनी शक्ति का प्रयोग करता रहा। उसने सभी से अपने विजय की शेखी बघारी और उसने मुगल शासक से अपने प्रभाव का प्रयोग कर मीर जाफर को मान्यता दिलाने की चेष्टा की। इसके लिये उसने जगत सेठ के धन का भी प्रयोग किया। मीर जाफर को बादशाह के इस मान्यता की सूचना तब मिली जब क्लाइव ने अपने पत्र सहित इसे उसके पास भिजवाया।

क्लाइव ने विशेष कार्यालयों के कर्मचारियों की नियुक्ति का उत्तरदायित्व अपने हाथों में ले लिया जिसका आधार योग्यता थी। षड्यंत्रकारी राय दुर्लभ मुख्यमन्त्री बनाया गया पर उसने इसे पर्याप्त नहीं समझा। क्लाइव ने मीर जाफर के विरुद्ध अपने को मजबूत करने के लिये राय से इस उद्देश्य का एक गुप्त समझौता किया कि वह उसके अधिकार का समर्थन करे। नवाब जानता था कि दुर्लभ उसके विरुद्ध षडयंत्र कर रहा है और वह उसे पद से हटाना चाहता था। पर राय क्लाइव के समर्थन के सहारे था और नवाब मजबूर था।

क्लाइव ने पटना में नवाब के सहायक राम नारायण को पत्र लिखे और अन्य कर्मचारियों को भी कार्य करने की शैली की सूचनायें भेजी। क्लाइव ने दुर्लभ तक को हिदायतें भेजी और कोई भी महत्त्वपूर्ण नियुक्ति उसके राय के बिना नहीं की जा सकती थी। बहाना यह था कि नवाब के हितों की रक्षा करनी है। क्षेत्रीय अधिकारियों को भी सूचित किया गया कि वे अपने क्षेत्र के फ्रांसीसियों को उसके पास प्रेषित करें। रामनारायण के ऊपर संदेह था कि उसने फ्रांसीसियों को क्षेत्र से निकल जाने में चुपके से सहायता की है। क्लाइव ने राय से इसकी शिकायत की जिसके उत्तर में उसने लिखा : "अगर रामनारायण हमारी आज्ञा नहीं मानता तो हम सभी मिलकर उसे दंडित करेंगे।"[1]

नवाब के दो जमीन्दारों ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। क्लाइव ने नवाब

से उसे दबाने के लिए कहा और उसके सहायतार्थ 500 व्यक्ति भेजे। पर यह सब सेंत-मेंत में नहीं किया गया। उसने नवाब से शोरे के एकाधिकार खरीदने के लिए जिससे बारूद बनता था, निवेदन किया। स्वाभाविक ही था कि नवाब इसके लिए राजी नहीं था पर क्लाइव की इच्छा के विपरीत जाने का उसका साहस भी नहीं था। नवाब चाहता था कि कम से कम शोरे का आधा उसके लिए सुरक्षित रखा जाय। पर क्लाइव अधिक चालाक था क्योंकि अंततः नवाब को 15 प्रतिशत पर ही संतोष करना पड़ा और शेष 85 प्रतिशत ब्रिटिशों के पास चला गया।

'बंगाल का राजकुमार' उपाधि प्राप्त आलमगीर द्वितीय का सबसे बड़ा पुत्र मुगल राजकुमार अलीगोहर (बाद का सम्राट शाह आलम द्वितीय) 3 अप्रैल 1759 को तीन प्रान्तों पर अपना अधिकार जताने के लिए पटना की ओर रवाना हुआ। पर वह स्थानीय शासक रामनारायण के द्वारा पीछे हटा दिया गया। पर क्लाइव ने जो वहां से कुछ ही मील दूर अपने सैनिकों सहित था, इस विजय का सेहरा अपने माथे पर यह कहकर बांधा कि राजकुमार पटना की ओर बढ़ती ब्रिटिश सेना को देखकर भाग खड़ा हुआ है। और इसके लिए उसने इनाम के तौर पर एक जागीर प्राप्त की। 1760 के प्रारंभ में अलीगोहर ने बिहार पर नया आक्रमण किया पर इसे भी अंग्रेजों की सहायता से स्थानीय शासक ने पीछे हटा दिया। इन सभी घटनाओं ने क्लाइव के इस दावे की पुष्टि ही की कि वह मीर जाफर का रक्षक है।

1759 में जब डचों ने बंगाल पर आक्रमण किया तो एक जटिलता पैदा हुई। ब्रिटिशों की भांति डच भी बंगाल में पर्याप्त व्यापारिक सौदे कर रहे थे। उनकी पटना, ढाका, पिपली, चिनसुरा और कासिम बाजार के निकट कालिकापुर में फैक्ट्रियां थी। उनके व्यापारिक संस्थान भीतरी क्षेत्र के कुछ गांवों में भी थे। पर उनका क्षेत्रीय अधिकार केवल बडानगर और चिनसुरा में ही था। चिनसुरा में उनकी कौन्सिल भी थी। यह कौन्सिल बटाविया के डच अधिकारियों के अंतर्गत थी। कलकत्ता के विरुद्ध आक्रमण के समय सिराजुद्दौला ने डचों, फ्रांसीसियों और डेनिशों से सहायता मांगी थी। डचों ने सहायता नहीं की जिसके फलस्वरूप उन पर बड़ा आर्थिक दंड लगाया गया। जब कलकत्ता पर आक्रमण हुआ तो नवाब के विरुद्ध ब्रिटिशों ने भी डचों से सहायता मांगी और इसके पक्ष में यह कहा कि वे इंगलैण्ड और नीदरलैण्ड की सरकार के बीच होने वाली संधि के आधार पर यह करने के अधिकारी हैं। पर डचों ने उत्तर दिया कि यह संधि भारत के उपनिवेश पर प्रभावी नहीं है। पर नवाब के कड़े आदेशों के बावजूद डचों ने फुल्टा के ब्रिटिश शरणार्थियों की सामान और सूचना दोनों से सहायता की जिसके लिए ब्रिटिश आभारी थे।[1]

1. दत्त, के० के० : डच इन बंगाल ऐण्ड बिहार, पृ० 24-28।

जब ब्रिटिशों ने कलकत्ता को पुनः जीता तो डचों ने उन्हें बधाई दी। पर बंगाल पर ब्रिटिशों के बाद के प्रभाव ने उन्हें ईर्ष्यालु बना दिया, विशेषकर उस समय तो और जब बंगाल से फ्रांसीसी प्रभाव तिरोहित हो गया और मीर जाफर के गद्दी पर बैठने के बाद उसके माध्यम से ब्रिटिशों ने वहां अपनी उच्चता प्रदर्शित करनी प्रारंभ कर दी। यह भी अफवाह थी कि मीर जाफर डचों को अंदर ही अंदर ब्रिटिशों के विरुद्ध चुनौती देने के लिए भड़का रहा है जिसे हाल्वेल ने विश्वसनीय भी बनाया। अक्टूबर 1759 में जब बटाविया से छः-सात डच जहाजों पर युरोपीय और मलाया के सैनिक हुगली के मुहाने पर पहुंचे तो इस अफवाह की सत्यता और सिद्ध हुई। मीर जाफर उनके विरुद्ध आगे बढ़ा, पर उन पर "कुछ कृपा" उस समय की जब "वे नदी, उपयुक्त मौसम पर अपनी जहाजों और सैनिकों सहित छोड़ने को तैयार हो गये।" ब्रूम और मैलीसन ने मीर जाफर के ऊपर जहां दुहरे व्यवहार का आरोप लगाया वहां कलकत्ता की कौंसिल ने 22 अक्टूबर 1759 में कहा कि डच सैनिक "नवाब की गैर जानकारी" में आ गये थे। श्री के० के० दत्त ने नवाब के ऊपर लगे आरोप को इस आधार पर गलत बताया है कि कौंसिल जो "बंगाल के विषय में अधिक अच्छे ढंग से परिचित थी" उसने इसे सच नहीं माना।[1]

जैसा भी हो क्लाइव ने नवाब को एक पत्र लिखते हुए उससे कहा कि वह अपने लड़के को डचों को दबाने के लिये भेजे, पर मीर जाफर ने इसे नहीं माना। इस पर अंग्रेजों ने तैयारी की और डचों के विरुद्ध आगे बढ़ते हुए बेदारा के युद्ध क्षेत्र में 25 नवम्बर 1759 को उनसे युद्ध किया। आधे घंटे से कम ही समय में डच पूरी तरह पराजित हो गये और संधि के लिए बातचीत प्रारंभ की। तीन दिन बाद मीरन भी लगभग सात हजार सैनिक लेकर प्रान्त की शान्ति भंग करने वाले डचों के विरुद्ध आ पहुंचा। डचों ने क्लाइव से मध्यस्थता की अपील की जिसने मीरन के क्रोध से उन्हें बचाने हेतु दयालुता दिखाते हुए निम्न शर्तों पर संधि करा दी : "वे कभी युद्ध की ओर ध्यान नहीं देंगे, सैनिक भरती नहीं करेंगे और न देश में किलेबंदी ही करेंगे; वे चिनसुरा, कासिम बाजार और पटना की फैक्ट्रियों में सेवा हेतु सैनिक न रखेंगे, पर उन्हें 125 युरोपीय सैनिक रखने का अलग से अधिकार होगा; वे तुरन्त अपने जहाज और शेष सैनिक देश से बाहर भेज देंगे; इस उपरोक्त शर्तों में से किसी का भी उल्लंघन उन्हें पूरी तरह से देश निकाले को बाध्य करेगा।"[2]

---

1. दत्त, के० के० : डच इन बंगाल ऐंड बिहार पृ०, 38-39।
2. क्लाइव के बैरिंग को उद्धृत करते हुए, दत्त : डच इन बंगाल ऐंड बिहार, 45; [illegible], II, 86।

वेदारा की विजय ने क्लाइव की प्रतिष्ठा और बढा दी । प्लासीके वाद इस विजय ने ब्रिटिशो की प्रतिष्ठा को चार-चांद ही नही लगाया बल्कि उन्हे पूरे बंगाल का असली मालिक बना दिया। फ्रांसीसियो की ही तरह डचो की महत्त्वाकाक्षा को धूल चाटना पड़ा और अब कोई युरोपीय शक्ति गंभीर रूप से अंग्रेजों को पुनः चुनौती देने योग्य नही रह गई।

इधर क्लाइव की प्रतिष्ठा बढ रही थी और उधर मीर जाफर उतावले अधिकार के कटु जुये के नीचे दबा झुझला रहा था। आन्तरिक अशाति और बाह्य खतरे सभी पर धन लग रहा था। अलीवर्दी खान के समय मे प्राप्त परपरागत अधिकार के अंतर्गत मराठे चौथ अब भी वसूलते थे और क्लाइव ने मीर जाफर के समय मे भी इसे स्वीकार कर लिया था। अराजकता अब भी व्याप्त थी जिससे खजाने मे राजस्व आना रुक गया था। मीर जाफर की यह आशा, कि उसने चूकि ब्रिटिशो को इतना अधिक धन दिया है, धीरे-धीरे उनकी मागे कम हो जायेंगी, बेकार साबित हुई। नवाब निश्चित समय पर अनुबंधित किश्ते नही दे पा रहा था, जबकि ब्रिटिशो की और मांगे बढ़ती जा रही थी। अपने को उसका बेटा बताते हुए जो चापलूसी भरी प्रार्थना उसने क्लाइव से की वह भी बेकार गई। उसकी अपनी ही सेना का वेतन बकाया हो गया और सम्राट को भेजे जाने वाले पेशकश (भेंट) का दुष्प्रभाव उसके खजाने पर पड़ने लगा। क्लाइव जब अपनी माग के लिए दबाव डालने लगा तो नवाब को बाध्य होकर संधि की शर्तो के अनुपालन न होने तक ब्रिटिशो को बर्दवान, नंदिया और हुगली का राजस्व प्रदान करना पड़ा। 25 फरवरी 1760 को क्लाइव इंगलैण्ड के लिए रवाना हो गया और कम्पनी के कार्य का भार बंगाल क्षेत्र में हाल्वेल के हाथों में आ गया।

जब ब्रिटिशों ने कलकत्ता को पुनः जीता तो डचों ने उन्हें बधाई दी। पर बंगाल पर ब्रिटिशों के बाद के प्रभाव ने उन्हें ईर्ष्यालु बना दिया, विशेषकर उस समय तो और जब बंगाल से फ्रांसीसी प्रभाव तिरोहित हो गया और मीर जाफर के गद्दी पर बैठने के बाद उसके माध्यम से ब्रिटिशों ने वहां अपनी उच्चता प्रदर्शित करनी प्रारंभ कर दी। यह भी अफवाह थी कि मीर जाफर डचों को अंदर ही अंदर ब्रिटिशों के विरुद्ध चुनौती देने के लिए भड़का रहा है जिसे हाल्वेल ने विश्वसनीय भी बताया। अक्टूबर 1759 में जब बटाविया से छः-सात डच जहाजों पर युरोपीय और मलाया के सैनिक हुगली के मुहाने पर पहुंचे तो इस अफवाह की सत्यता और सिद्ध हुई। मीर जाफर उनके विरुद्ध आगे बढ़ा, पर उन पर "कुछ कृपा" उस समय की जब "वे नदी, उपयुक्त मौसम पर अपनी जहाजों और सैनिकों सहित छोड़ने को तैयार हो गये।" ब्रूम और मैलीसन ने मीर जाफर के ऊपर जहां दुहरे व्यवहार का आरोप लगाया वहां कलकत्ता की कौंसिल ने 22 अक्टूबर 1759 में कहा कि डच सैनिक "नवाब की गैर जानकारी" में आ गये थे। श्री के० के० दत्त ने नवाब के ऊपर लगे आरोप को इस आधार पर गलत बताया है कि कौंसिल जो "बंगाल के विषय में अधिक अच्छे ढंग से परिचित थी" उसने इसे सच नहीं माना।[1]

जैसा भी हो क्लाइव ने नवाब को एक पत्र लिखते हुए उससे कहा कि वह अपने लड़के को डचों को दबाने के लिये भेजे, पर मीर जाफर ने इसे नहीं माना। इस पर अंग्रेजों ने तैयारी की और डचों के विरुद्ध आगे बढ़ते हुए बेदारा के युद्ध क्षेत्र में 25 नवम्बर 1759 को उनसे युद्ध किया। आधे घंटे से कम ही समय में डच पूरी तरह पराजित हो गये और संधि के लिए बातचीत प्रारंभ की। तीन दिन बाद मीरान भी लगभग सात हजार सैनिक लेकर प्रान्त की शान्ति भंग करने वाले डचों के विरुद्ध आ पहुंचा। डचों ने क्लाइव से मध्यस्थता की अपील की जिसने मीरान के क्रोध से उन्हें बचाने हेतु दयालुता दिखाते हुए निम्न शर्तों पर संधि करा दी : "वे कभी युद्ध की ओर ध्यान नहीं देंगे, सैनिक भरती नहीं करेंगे और न देश में किलेबंदी ही करेंगे; वे चिनसुरा, कासिम बाजार और पटना की फैक्ट्रियों में सेवा हेतु सैनिक न रखेंगे, पर उन्हें 125 युरोपीय सैनिक रखने का अलग से अधिकार होगा; वे तुरन्त अपने जहाज और शेष सैनिक देश से बाहर भेज देंगे; इन उपरोक्त शर्तों में से किसी का भी उल्लंघन उन्हें पूरी तरह से देश निकाले को बाध्य करेगा।"[2]

---

1. दत्त, के० के० : डच इन बंगाल ऐण्ड बिहार पृ०, 38-39।
2. क्लाइव के मैसेज को उद्धृत करते हुए, दत्त : डच इन बंगाल ऐण्ड बिहार, 48; मैलकाम : लाइफ आफ क्लाइव, II, 86।

वेदारा की विजय ने क्लाइव की प्रतिष्ठा और बढ़ा दी। प्लासीके बाद इस विजय ने ब्रिटिशो की प्रतिष्ठा को चार-चाद ही नही लगाया बल्कि उन्हे पूरे बंगाल का असली मालिक बना दिया। फ्रांसीसियो की ही तरह डचो की महत्त्वाकांक्षा को धूल चाटना पड़ा और अब कोई युरोपीय शक्ति गंभीर रूप से अंग्रेजो को पुनः चुनौती देने योग्य नही रह गई।

इधर क्लाइव की प्रतिष्ठा बढ़ रही थी और उधर मीर जाफर उतावले अधिकार के कटु जुये के नीचे दवा झुझला रहा था। आन्तरिक अशांति और बाह्य खतरे सभी पर धन लग रहा था। अलीवर्दी खान के समय मे प्राप्त परपरागत अधिकार के अंतर्गत मराठे चौथ अब भी वसूलते थे और क्लाइव ने मीर जाफर के समय मे भी इसे स्वीकार कर लिया था। अराजकता अब भी व्याप्त थी जिससे खजाने में राजस्व आना रुक गया था। मीर जाफर की यह आशा, कि उसने चूकि ब्रिटिशों को इतना अधिक धन दिया है, धीरे-धीरे उनकी मांगे कम हो जायेंगी, बेकार सावित हुई। नवाब निश्चित समय पर अनुबधित किश्तें नही दे पा रहा था, जबकि ब्रिटिशो की और मागें वढ़ती जा रही थी। अपने को उसका बेटा बताते हुए जो चापलूसी भरी प्रार्थना उसने क्लाइव से की वह भी बेकार गई। उसकी अपनी ही सेना का वेतन वकाया हो गया और सम्राट को भेजे जाने वाले पेशकश (भेट) का दुष्प्रभाव उसके खजाने पर पड़ने लगा। क्लाइव जब अपनी माग के लिए दबाव डालने लगा तो नवाब को बाध्य होकर संधि की शर्तों के अनुपालन न होने तक ब्रिटिशों को बर्दवान, नंदिया और हुगली का राजस्व प्रदान करना पड़ा। 25 फरवरी 1760 को क्लाइव इंगलैण्ड के लिए रवाना हो गया और कम्पनी के कार्य का भार बंगाल क्षेत्र में हाल्वेल के हाथों में आ गया।

12

हेनरी वन्सीटार्ट एवं मीर कासिम

"वन्सीटार्ट लोग" कीथ फीलिंग लिखता है, "अत्यधिक संगठित और व्यक्तिवादी लोग थे। सुदूर मे डचों से उत्पन्न एक सदी पूर्व वे डेंजिग के रास्ते इंगलैण्ड पहुंचे और वाल्टिक व्यापार में अत्यधिक धन एकत्रित करके बर्कशायर मे अपने पैर जमा लिये। रैंडली के स्टोनहाउस की उत्तराधिकारिणी उसकी मा ने भी इसमें सहयोग दिया।"[1]

हमे हेनरी के जन्म तिथि की सही सूचना नही है पर यह कहा जाता है कि "वह रीडिंग ग्रामर स्कूल और विनचेस्टर दोनों स्थानों पर पढा था और अच्छा छात्र था और तेरह वर्ष की आयु ही में बहुत समझ लिया था।"[2] इसी के बाद उसके पिता को पता चला कि वह पहले से ही "मेकलेनहेम एवे के हेलफायर क्लब का सदस्य वन चुका है जहां जॉन विकर और फ्रांसिस डैशवूड ईशनिंदा और अश्लीलता प्रदर्शित करते हैं"[3] और वे ही उसे भारत ले गये।

मद्रास पहुंचने पर कनिष्ठ लिपिक वन्सीटार्ट ने कठोर परिश्रम किया, फारसी की पर्याप्त जानकारी प्राप्त की और व्यापार विशेषज्ञ का स्थान पाकर उसने कम्पनी में एक प्रभावपूर्ण जगह बना ली। उसने भूतपूर्व मद्रास गवर्नर की पुत्री इमीलिया मोर्स से विवाह किया। उसकी बहन एन का विवाह राबर्ट पाक से तय हुआ जो 1776 में मद्रास का गवर्नर बनाया गया। पांच वर्ष तक सेवा करने और अत्यधिक धन अर्जित करने के बाद वह इंगलैण्ड वापस लौट गया। पर उसके द्वारा आसानी से एकत्रित धन उतनी ही आसानी से जब व्यय हो गया तब वह मद्रास पुनः लौटा। इस समय उसकी फ्रांसीसियों से संपर्क हेतु कूटनीतिक सेवायें ली गई जहां वह अपनी बुद्धिमानी और परिश्रमके कारण क्लाइव के निकट आ गया जिसने उसे बंगाल की गवर्नरी देने की सिफारिश उस समय की जब वह अपनी गवर्नरी के बाद प्रान्त का कार्यभार हालवेल के हाथों सौंपकर इंगलैंड वापस लौटा।

जुलाई 1760 में वन्सीटार्ट जब फोर्ट विलियम का गवर्नर होकर आया तब वह एक 18 वर्षीय नवयुवक ही था। सोलह सदस्यों की कौसिल में और भी वरिष्ठ

---

1. फीलिंग, कीथ : वारेन हेस्टिंग्स, 1954. पृ० 40।
2. उड्रफ : पूर्वोद्धृत, द फाउन्डर्स, पृ० 114।
3. फीलिंग : पूर्वोद्धृत, पृ० 40।

सदस्य थे जिनकी उसे अध्यक्षता करना था और वे, विशेषकर उनमें से पीटर अम्यास मद्रास से प्रेषित इस व्यक्ति को पसन्द नही करता था। वह भी अध्यक्ष को मत बराबर होने पर मात्र निर्णायक मत प्राप्त था। एक कार्यपालिका के अध्यक्ष के बतौर उसे कौंसिल की नीति को मानना पड़ता था चाहे वह उसे स्वीकार्य हो या नही और साथ ही इसके पालन का उत्तरदायित्व भी उसी का था। इसके साथ ही कौंसिलरों का अपना स्वार्थ भी कम महत्त्वपूर्ण न था। इसका सबसे वरिष्ठ सदस्य आमतौर पर अनुपस्थित रहता था—"क्योंकि पटना, ढाका या कासिम बाजार की फैक्ट्रियों के नेतृत्व से अधिक लाभ था और इसके कारण ही उन्हें कौंसिल की एक सीट प्राप्त थी।"[1] इन सदस्यों मे से जान जानस्टोन और विलियम हे भी थे जिनकी एक बदमाश डच के पुत्र से साझीदारी थी। विलियम बोल्ट्स जो इगलैंड से 14 वर्ष की आयु मे आया था और कपनी में 25 वर्ष की आयु मे नौकरी प्राप्त की थी, वह बंगाल आया और हीरे, कपास और अफीम आदि में व्यक्तिगत व्यापार प्रारभ किया जिसका अधिकार कंपनी के कर्मचारियों को था। वे हर भांति की अनियमिततायें, दबाव और बेइमानी बरतते थे और अपने उद्देश्यानुसार अधिक से अधिक धन अर्जित करते थे चाहे इसका साधन उचित हो या अनुचित। स्पष्ट था कि वन्सीटार्ट को बगाल मे सुविधामय जीवन नही प्राप्त हुआ। इसमे बढोतरी तब और हो गई जब उसके आते ही कौंसिल से उसके तीन समर्थकों को हटा दिया गया और डाइरेक्टरों ने "उसके घोर विरोधी चार्ल्स को पटना का प्रधान नियुक्त कर दिया···चार्ल्स हिंसापूर्ण, जोर से बोलने वाला और रूखा था, वह एक ऐसा व्यक्ति था जो रेल मे अपने साथियो के लिए आक्रामक बन जाते है, एक ऐसा व्यक्ति जिसे भारतीयों ने···विचित्र अंग्रेज की सज्ञा दी।"[2]

यहा क्लाइव द्वारा पदासीन मीर जाफर नवाब था जिसके लिए कंपनी के अध्यक्ष पद में परिवर्तन उसके दुर्भाग्य को और बढा देता था।

राजकुमार गौहर के आक्रमण का भय अभी बना हुआ था। अंग्रेजी जासूसों के अनुसार कुछ स्थानीय नेता जैसे वीरभूमि के असद जमी खान राजकुमार की सहायता को तैयार थे। स्थिति तब और बिगड गई जब दक्षिण से मराठों का भी आक्रमण प्रारंभ हो गया। अंग्रेजों ने इन सभी कठिनाइयों में नवाब की सहायता की पर उनकी शिकायत थी कि उन्हें उससे और मीरान से सहयोग नही मिल रहा है। इसी समय राय दुर्लभ को पद से हटाकर नवाब ने ब्रिटिशों की शत्रुता और अर्जित कर ली। इधर 3 जुलाई को बिजली गिरने से मीरान की मृत्यु हो गई जिससे अंग्रेजों ने आराम की सांस ली। इससे ब्रिटिशों का नवाब के लिए एक

1. फौलिग, पूर्वोद्धृत, 43।
2. उड्रफ, पूर्वोद्धृत, 117।

सहायक की नियुक्ति का रास्ता साफ हो गया जो बिना विरोध के उनके हां मे हां मिलाता ।

नवाब के दामाद मीर कासिम के पास अथाह धन था जबकि नवाब भिखारी हो चुका था । साथ ही मीर कासिम ने ब्रिटिशों को मित्रता के लिए आश्वस्त किया और इस तरह का अनुदान, इनाम और भेंट देने का वादा किया । तीन वर्ष पूर्व जिस तरह के षड्यन्त्र मे मीर जाफर भागीदार रहा था उसी तरह का एक नया षड्यंत्र पुनः रचा गया । मीर जाफर पहले से ही एक कठपुतली बन गया था । उसकी सेना वेतन न पाने के कारण विरोध करने की मनोदशा में थी । पर अपने सहायक के पद पर नियुक्त अपने दामाद के हाथों बिकना उसे स्वीकार न था । इसलिए उसने अपने जीवन-यापन और सुरक्षा के लिए पर्याप्त भत्ते के आश्वासन पर अपना पद अपने दामाद के पक्ष मे त्याग दिया ।

22 अक्टूबर 1760 को मीर जाफर की सभी मागे मान ली गईं और युरोपीय सैनिकों की संरक्षता मे उसे कलकत्ता ले जाया गया । मीर कासिम को नया नवाब घोषित किया गया और कंपनी तथा इसके सेवकों को पुनः उसी तरह से लाभ हुआ । यह बगाल में दूसरी क्रान्ति थी ।

मीर कासिम और बक्सर का युद्ध

मीर कासिम की शक्ति प्राप्ति

इस व्यक्ति के प्रारंभिक जीवन के विषय मे इससे अधिक सूचना नही प्राप्त होती कि मीर जाफर ने उसे अपनी एक पुत्री के विवाह के लिए चुना । सम्भवतः वह किसी सामंत परिवार का था और जब उसका श्वसुर बंगाल की गद्दी पर आरूढ हुआ तब उसने अपने अच्छे चरित्र और पूर्णिया और रंगपुर के फौजदार के रूप मे प्रशासकीय योग्यता का परिचय दिया । वैसे वह युद्ध क्षेत्र मे एक सैनिक के रूप में पूर्ण कुशल न था । मीर जाफर के पुत्र मीरान की असामयिक मृत्यु ने, जिसका वह पहले से ही प्रतिद्वन्द्वी समझा जाता था, उसके राजनैतिक व भौतिक प्रगति का पथ प्रशस्त कर दिया ।

ब्रिटिशों को धन चाहिए था । दक्षिण मे आग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष ने कंपनी के आय स्रोतों पर दबाव डाल रखा था और मद्रास धन की माग कर रहा था । बिहार की अंग्रेज सेना वेतन न पाने के कारण विद्रोही रुख अपना रही थी । आर्थिक कठिनाइयो मे कंपनी की सहायता करने वाले व्यक्ति के रूप मे मीर कासिम से बेहतर कोई व्यक्ति नही था जिसके पास अपार संपत्ति थी, ऐसा कहा जाता था । वन्सीटार्ट लिखता है कि एक बार जब सेना ने वेतन के बकाये के लिए मीर जाफर के महल को घेर रखा था, मीर कासिम ने तुरन्त तीन लाख रुपये देकर उसकी सहायता की और बकाये राशि भी उसने "इस शर्त पर जमानत सी

कि उसे उसके मृत्यु प्राप्त लड़के की जगह दी जायगी और उसका उत्तराधिकारी बनाया जायगा।"[1] इसी कारण कलकत्ता कौंसिल के सदस्य वारेन हेस्टिंग्स और हालवेल उसकी ओर हो गये जब कि मृत मीरान का एक पुत्र जीवित था और मीरजाफर भी उसे अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। वैसे वह लड़का एक रखैल का लड़का था।

27 सितबर 1760 को वन्सीटार्ट ने मीर कासिम से कंपनी के साथ एक सधि पर हस्ताक्षर कराया जिसके अंतर्गत मीर कासिम ने यह स्वीकार किया कि यदि नयावत (सहाय क नवाव) का पद दे दिया जाय और नवाव मीरजाफर का उत्तराधिकारी बना दिया जाय तो वह अंग्रेजी कपनी का पक्का दोस्त बना रहेगा। अंग्रेजी सेना उसको उसके सभी प्रबध मे सहायता करेगी और सेना के व्यय हेतु ब्रिटिशों को बर्दमान, चटगांव और मिदनापुर का क्षेत्र दिया जाएगा। अंग्रेजों को सिलहट में उत्पन्न होने वाली सीमेंट का आधा अगले तीन वर्षो तक खरीदने का अधिकार होगा। कहा जाता है कि मीर कासिम ने अंग्रेजी कपनी के सैनिकों का वकाया वेतन भी देने का वादा किया, कर्नाटक युद्ध के व्यय का कुछ भाग भी देने को उसने कहा और कलकत्ता कौंसिल के सदस्यो को भेंट के रूप मे 20 लाख रुपये देने का वचन दिया। जिन परिस्थितियों मे अततः वह नवाब हुआ उसका परिचय हम पहले ही दे आये हैं।

नवाब मीर कासिम और उसकी असफलता

प्रथम और सबसे गहन समस्या, जिसका नवाब को सामना करना पडा, वह धन की थी। इसे उसे ब्रिटिशो को एक ओर देना था तो दूसरी ओर प्रशासन सुधार के लिए व सेना संगठित करने के लिए भी धन की आवश्यकता थी। इसके लिए उसे कई युक्तियां निकालनी पडी जिसके प्रति वन्सीटार्ट ने भी स्वीकृति का भाव दिखाया। जो भी व्यक्ति धनी पाया गया उसे पदावनत नवाब के प्रति सहानुभूति रखने वाला बताकर उसका धन भी छीन लिया गया। अपने श्वसुर के सभी अधिकारियो पर उसने गबन और घूसखोरी का आरोप लगाया और उनकी सपत्ति जब्त कर ली। लेखा विभाग पुनर्गठित किया गया और विश्वासपात्रों के अधीन किया गया। साथ ही अनेक पदों को समाप्त करने और व्यय कम करने की योजनायें बनाई गईं। इस सबका परिणाम यह हुआ कि आर्थिक स्थिति ठीक होने लगी। वैसे बहुत से सामतों ने कष्ट का अनुभव किया और प्रायः लोग नवाब के ऐसे अधिकारियों के हाथ शोषित अनुभव करने लगे जो उसकी आय बढ़ाने के लिए उतावले हो रहे थे।

1. वन्सीटार्ट : नैरेटिव आफ द ट्रेन्ज़ेक्सन्स इन बंगाल, पृ० 41।

मीर ने सेना क्षेत्र मे भी सुधार करने की आवश्यकता अनुभव की जिससे आन्तरिक और बाह्य खतरो का मुकाबला किया जा सके। आंतरिक क्षेत्र मे वीरभूमि के राजा, रामनारायण, बिहार के सहायक गवर्नर जैसे विद्रोही लोगों को दबाना था। गुप्त रूप से अंग्रेजों के विरुद्ध भी तैयारी करनी थी क्योंकि वे नवाब को कठपुतली बनाना चाहते थे। बाह्य समस्याओ मे शाह आलम के आक्रमण का भय, मराठा हमले और अवध के नवाब वजीर की बंगाल की कुदृष्टि अनवरत कठिनाइयो का स्रोत थे। सेना की संहारक शक्ति को बढ़ाया जाना था, वैसे यह कर सकना खतरे से भरा था क्योंकि ब्रिटिश ऐसे किसी कार्य से ईर्ष्या करते थे। इसलिए इस दिशा में जो पहला काम उसने करने का निश्चय किया वह था अपनी राजधानी बदलकर मुंगेर ले जाना जो पूरे प्रान्त पर शासन करने योग्य केन्द्र में ही नही था बल्कि कलकत्ता से दूर भी था जिससे ब्रिटिशो से उसे स्वतंत्रता भी मिलती थी। मुंगेर में बंदूको और उसके कल पुर्जो को बनाने का कारखाना खोला गया। फ्रासीसी और अमेरिकी अधिकारियों को अपने कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए रखा गया और पूरा सैन्य विभाग युरोपीय ढंग पर संगठित किया गया। मीर के सैनिकों की संख्या 15 हजार घुड़सवारों और 25 हजार पैदल की थी।

वैसे एक अच्छे सैनिक के रूप मे उसकी प्रतिष्ठा नही थी, पर फिर भी मीर कासिम ने वीरभूमि के राजा आजाद जमा खान के विरुद्ध कार्यवाही करके उसे कर देने को बाध्य किया जिसे उसने रोक रखा था। इस कार्य में ब्रिटिशो ने भी आवश्यक सहायता दी।

बिहार का डिप्टी गवर्नर रामनारायण भी ब्रिटिश सहायता के लिए आश्वस्त था क्योंकि कम्पनी उसे बनाये रखने की आवश्यकता अनुभव करती थी। उसे "तीन वर्ष के हिसाब का लेखा-जोखा करना था जिससे बचने के लिए वह तरह-तरह के तर्कों और कुशलता का सहारा ले रहा था। एक कर्नल और मेजर[1] की छाया मे वह प्रभावी ढंग से अपने को बचाये रहा, जिसके फलस्वरूप पूरे चार महीने तक लगातार उससे कोई उत्तर तक नही मिल सका।"[2] साथ ही उस प्रान्त मे राजकुमार गौहर के प्रवेश ने भी एक समस्या पैदा कर दी थी। प्रांत का प्रशासन भी पतनवत था जिसकी ओर उसे ध्यान देना था।

नवाब स्वय पटना की ओर समस्याओं के समाधान करने के लिए रवाना

1. क्रमशः कर्नल कूट और मेजर कार्नक।
2. बंगाल ऐण्ड मद्रास पेपर्स, पृ० 196; राम गोपाल : हाऊ द ब्रिटिश आकूपाइड बंगाल, पृ० 269 द्वारा उद्धृत।

हुआ। ब्रिटिश सेना ने कार्नक के नेतृत्व में नवाब के पटना पहुंचने के पहले ही मुगल राजकुमार को रास्ते पर ला दिया था, पर रामनारायण ब्रिटिश सुरक्षा प्राप्त कर अब भी उद्धत बना हुआ था। उसके ऊपर यह संदेह था कि वह राजकुमार अली गौहर से मिला हुआ है और प्रशासन में ढिलाई और बेईमानी कर रहा है। वन्सीटार्ट ने उसे कोई सुरक्षा नहीं प्रदान की और उसे पद से हटाकर कैद कर लिया गया और उसकी जगह पर राजवल्लभ को नियुक्त कर दिया गया। वन्सीटार्ट ने उसे उस समय भी सहयोग दिया जब उसने अंग्रेज सेनाधिकारी मेजर कार्नक और बाद मे उसके स्थान पर नियुक्त हुए कर्नल कूट के अपने प्रति अनादर के भाव की शिकायत की। दोनो अधिकारियो को एक-एक करके वापस ले लिया गया।

सीमान्त जिलों ने भी नवाब का ध्यान आकृष्ट किया। इन जिलो के नेता प्लासी के युद्ध से ही विद्रोही हो गये थे और कर नहीं दे रहे थे। वे खुलेआम मुगल सम्राट शाह आलम के प्रति दया का भाव रखते थे और पड़ोसी जिलों में कठिनाइयां पैदा करते थे। भोजपुर के जमीदार पहलवान सिंह को पराजित किया गया, अन्य बहुतो को दंडित किया गया और मीर ने अवध के नवाब वजीर से भी समझौता किया जिसके द्वारा सीमा क्षेत्रो मे शान्ति स्थापित की गई।

इस तरह अल्पकाल मे ही मीर कासिम एक अच्छे सगठनकर्ता तथा कुशल व शक्तिशाली प्रशासक की योग्यता का प्रमाण देने में समर्थ हुआ। पर इस योग्यता ने स्थानीय ब्रिटिश अधिकारियों का उसे शत्रु बना दिया, कलकत्ता कौंसिल के बहुत सदस्य भी उसके प्रति ईर्ष्या रखने लगे जिसने उसका पतन ला दिया। वैसे वन्सीटार्ट उसे समझता था और उसके प्रति सद्भाव भी रखता था।

यह प्रारंभ से ही संदेहजनक था कि क्या ब्रिटिश प्रभावी प्रशासन हेतु नवाब को आवश्यक शक्ति प्राप्त करने का अवसर देंगे क्योंकि एक-एक दिन बीतने के साथ ब्रिटिशो की शक्ति बंगाल ही में नही दिल्ली में भी अभिवृद्धि की ओर जा रही थी। मीर कासिम के नवाब होते ही उसी समय राजधानी में अपना शक्तिशाली प्रभाव ब्रिटिशों ने बढा लिया। इस सम्बन्ध में एक आकर्षक विवरण दिया जा सकता है। हम 1760 के अंत में राजकुमार गौहर के पटना की ओर प्रस्थान का विवरण पीछे दे आए है जिसमे इस समस्या के समाधान के लिए मीर कासिम स्वयं गया। मेजर जान कार्नक, जो पटना की ब्रिटिश सेना का नायक था ने राजकुमार से संधि की बातचीत प्रारभ की। पर संधिवार्ता के फलीभूत न होने के कारण मेजर को आक्रमण जारी कर हमला करने का आदेश दिया गया जिसमें उसने 13 जनवरी 1761 में पूर्ण सफलता

प्राप्त की। मीर कासिम इसके बाद ही पटना पहुंचा।

अली गौहर पर ब्रिटिश विजय के बाद राजकुमार ने ब्रिटिशों से उसे सम्राट घोषित करने को कहा और दिल्ली की गद्दी दिलाने में सहायता चाही। कार्नक ने उसका स्वागत एक विजेता की तरह किया। इसी समय दिल्ली में अव्यवस्था व्याप्त हो गई क्योकि वहां प्रधानमंत्री ने राजा को मार डाला और मराठे जिन्होंने प्रधानता प्राप्त कर रखी थी उन्हें अहमदशाह अब्दाली ने प्रभावी ढंग से पराजित किया। इन परिस्थितियों में राजकुमार गौहर दिल्ली की ओर अपना भाग्य आजमाने के लिए लौटने को हुआ। पर ब्रिटिशों ने उसे, इसके बावजूद कि वह उन्हें बगाल प्रान्त की सूबेदारी देने को तैयार था, दिल्ली जाने से रोक दिया। उन्होंने दिल्ली की स्थिति स्पष्ट हो जाने तक उसे रुकने की लालच दी और उसका भत्ता एक लाख रुपये माह कर दिया। यह धन मीर कासिम के खजाने से आता था।

कुछ ही समय बाद कुहरा छंट गया और यह सूचना प्राप्त हुई कि अहमद शाह अब्दाली राजकुमार गौहर को दिल्ली का उत्तराधिकारी नामित कर वापस चला गया है। अली गौहर अब सम्राट शाह आलम द्वितीय हो गया। जून के प्रारंभ में ब्रिटिशो ने सम्राट को बिहार की सीमा तक पहुंचाया जिससे वह दिल्ली जा सके। इसके पहले सम्राट ने मीर कासिम को सरकारी पद व खिल्लत प्रदान किया और कर्नल आयर कूट, जो मेजर कार्नक का अब तक उत्तराधिकारी बन चुका था, को भी प्रतिष्ठा दी। मीर कासिम ने आदर व्यक्त करते हुए नवसम्राट को 12 लाख रुपये प्रदान किये।

"मुगल राजकुमार का नवीन आक्रमण, अंग्रेजों को उसका समर्पण, उसका दिल्ली गद्दी प्राप्ति के लिए उनसे सहायता याचना, राजशाही सरकार के लिए, जब वह अंग्रेजो का मेहमान या प्रतिष्ठित कैदी था, उसका सम्राट पद पर नामकरण, अंग्रेजो द्वारा सुंदर भेंट प्रदान करते हुए उसे सम्राट स्वीकार करना, और उसके नाम (नामकरण की सूचना मिलने पर) पर सिक्के ढालना आदि घटनाओं ने नवाब की मीर कासिम के ऊपर निश्चित निरादरित प्रभाव डाला।"[1]

मेजर कार्नक और कर्नल कूट दोनों ने इन परिस्थितियों में नवाब के प्रति तिरस्कारपूर्ण व्यवहार किया। सच तो यह था कि व्यक्तिगत ब्रिटिश व्यापारी और कंपनी के कर्मचारियों ने उसके प्रति बहुत कम आदर भाव दिखाया क्योंकि वे उसे ब्रिटिशो का पिछलग्गू समझते थे जिसे कंपनी वालों की सहमति काल तक ही पद पर बने रहना था। जब तक नवाब पटना में रहा, नगर दरवाजों की

1. राम गोपाल : पूर्वोद्धृत, पृ॰ 266-67।

पहरेदारी ब्रिटिश सैनिकों के हाथ रही जो ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा अनुमति प्राप्त लोगों को प्रवेश करने और बाहर जाने देते थे। बिहार के सहायक गवर्नर रामनारायण को शक्तिशाली ब्रिटिश सरक्षण प्राप्त था। प्रात में सैनिक बुरे व्यवहार कर रहे थे। नवाब ने वन्सीटार्ट से अग्रेज 'सज्जनों' की शिकायत भी की कि वे लोगो को लूट रहे है और नौकरो को अपमानित व घायल कर रहे हैं पर उसकी किसी ने न सुनी। फोर्ट विलियम के गवर्नर ने भी शिकायतें दूर करनी चाही पर कौन्सिल के सदस्यों ने उसकी परवाह नही की। वे नवाब की शिकायतो को अपने अधिकार पर आघात मानते थे।

इसके साथ ही गुमाश्तो अथवा कपनी के ऐसे नौकर जो उसका सामान खरीदते और वेचते थे, का व्यवहार भी ठीक न था। सर्जेण्ट ब्रैग्स ने वन्सीटार्ट को रिपोर्ट दी : "अग्रेज खरीदने और वेचने के लिए एक गुमाश्ता भेजता है, वह प्रत्येक निवासी को दबाकर उसका सामान खरीदने और अपना वेचने के लिए अपने को पर्याप्त शक्तिशाली समझता है, असमर्थता की स्थिति मे इन्कार करने पर उसे कोड़े से मारा जाता या कैद कर लिया जाता है। वे व्यापार के सभी क्षेत्रों पर अपना अधिकार रखते हैं और वे वस्तु को खरीदते समय बेचने वालो को अन्य व्यापारियो से कम दाम देते हैं और प्रायः नही भी देते है..." रिपोर्ट में आगे कहा गया, "पहले न्याय जनता के कचहरी मे होता था पर अब प्रत्येक गुमाश्ता न्यायाधीश हो गया है और प्रत्येक घर कचहरी, वे कभी-कभी जमीदारों को दंडित करते हैं और चोट खाने के बहाने रुपये मांगते हैं, उदाहरणार्थ अपने चपरासी से झगड़ा होने पर भी।" प्रति दिन "तमाम लोग कस्बे छोड़कर सुरक्षित स्थान की तलाश मे जा रहे है।"[1]

कलकत्ता कौंसिल मे बहुत सदस्य नवाब के प्रति कठोर थे। वन्सीटार्ट द्वारा दिया गया वह आश्वासन कि यदि नवाब समय पर धन देता रहेगा तो उसके प्रशासन मे हस्तक्षेप नही किया जाएगा, अब उस पर ध्यान नही दिया जा रहा था। अकार्यक्षमता और विद्रोह भावना के आधार पर नवाब जिन्हे पद से हटाना चाहता था वे प्रायः ब्रिटिश अधिकारियों से मिल जाते थे जो उनकी ओर से खुला हस्तक्षेप करके उसके कार्य को अत्यधिक कठिन बना देते थे।

फैक्ट्रियों के प्रधानों द्वारा दिये गये पासो के आधार पर कपनी का सामान विना चुगी दिये पूर्वाधिकारियों की तरह मीर कासिम के समय में भी चलता रहा। इस तरह दस्तक का दुष्प्रयोग जारी था। ऐसी घटनायें, जिसके अतर्गत व्यक्तिगत व्यापारी कंपनी ऐसे ही पास प्राप्त कर चुगीमुक्त व्यापार करते थे,

---

1. वन्सीटार्ट : पूर्वोद्धृत, II, पृ० 113-14।

इतनी बढ गई थी कि राज्य का व्यापार तेजी से लड़खड़ा गया। नवाब ने इसकी शिकायत की और फोर्ट विलियम ने इस बुराई के विरुद्ध सचेत रहने के लिए कहा, पर उसका भी कोई प्रभाव नही हुआ। वन्सीटार्ट स्वयं मुंगेर गया और नवाब से इस संबंध में व्यक्तिगत रूप मे वार्ता की और यह तय किया कि अब से कंपनी के माल पर 9 प्रतिशत चुंगी दी जायगी जबकि भारतीय व्यापारी अपने माल पर 25 प्रतिशत से 30 प्रतिशत तक की चुगी देंगे। यह भी समझौता हुआ कि "ब्रिटिश गुमाश्तों से होने वाले झगड़े भारतीय मजिस्ट्रेटों को सौंपे जाएं जो कार्यवाही की प्रतियां कष्टग्रस्त पार्टी को देंगे। अगर आवश्यक हो तो अंतिम निर्णय नवाब और गवर्नर के बीच होने वाली वार्ता पर छोड़ दिया जाय।"[1] पर विरोधी कौन्सिल सदस्यों ने समझौता मानने से इनकार कर दिया और चुंगी-मुक्त व्यापार पर जोर दिया। हां, उन्होंने $2\frac{1}{2}$ प्रतिशत चुगी शोरे पर देना स्वीकार किया। असहाय वन्सीटार्ट ने नवाब से पुनः संबंध स्थापित किया जिससे अत्यधिक निराश होकर चुंगी को ही पूरी तरह समाप्त कर दिया गया। इससे पूरा प्रान्त स्वतन्त्र व्यापार क्षेत्र बन गया और इसके भी विरुद्ध कौंसिल ने इतराज किया। वैसे वन्सीटार्ट और वारेन हेस्टिंग्स ने नवाब के पक्ष मे मत दिया। स्वतन्त्र व्यापार का नवाब का आदेश दो वर्षो तक चला जिससे भारतीय व्यापारी समुदाय प्रसन्न हुआ, पर ब्रिटिश विरोध बढा। कौन्सिल के बहुत सदस्यों की वन्सीटार्ट व नवाब के बीच समझौते के विरुद्ध प्रतिक्रिया के कई कारण थे। कहा जाता है कि कौन्सिल सदस्यों के इसके देखने से पहले ही मीर कासिम ने अपने अफसरो के बीच इसे प्रसारित कर दिया और इस आशय के आदेश भी दे दिये कि यदि कोई ब्रिटिश गुमाश्ता इन नियमो का उल्लघन करे तो उसे क्षेत्र से बाहर कर दिया जाय। उसने वन्सीटार्ट और उसके पक्ष में वारेन हेस्टिंग्स (कौन्सिल का एक सदस्य) के व्यक्तिगत एजेन्टों को इस नियम में छूट देकर भी कौंसिल सदस्यों की शत्रुता मोल ली। मुंगेर में वन्सीटार्ट ने नवाब से 5 लाख रुपये स्वीकार किया था। कौन्सिल की लंबी संघर्षपूर्ण बैठक मे "अम्यात ने वन्सीटार्ट के शक्ति अपहरण को गलत बताया। जानस्टोन ने उसके 'बेईमान सहायकों' की चर्चा की, कार्नक ने पटना के आदेश को बेकार बताया, बैटसन ने प्रेसीडेन्ट और हेस्टिंग्स की चालाकी की खिल्ली उड़ायी।"[2]

जब नवाब की कड़वाहट बढ गई तो असहायता में उसने शिकायत की कि 1760 में जो संधि उसने ब्रिटिशों से की थी वे ही उसका पालन नहीं कर रहे

---

1. फीलिंग : पूर्वोद्धृत, पृ० 47।
2. वही, पृ० 48।

हैं; कि वही सेना जिसके व्यय के लिए उसने तीन जिले दिये थे उसका प्रयोग उसके विरुद्ध किया जा रहा है और इसलिए ब्रिटिशों को उन जिलों को रखने का कोई अधिकार नहीं है। इसलिए उसे पिछले तीन वर्ष के राजस्व सहित वापस कर दिया जाय। पर यह सब भी बेकार था।

अंततः यह संघर्ष खुलकर प्रारंभ होना था। "पटना में सहायक गवर्नर और एलिस के बीच मतभेद हो गया। एलिस अंग्रेजी फैक्ट्री का प्रधान था और सहायक गवर्नर के साथ सहयोग नहीं कर रहा था और जान-बूझकर युद्ध करना चाहता था जिससे उसके और उसके मित्रों के व्यक्तिगत व्यापार पर लगा प्रतिबंध हटाया जा सके।"[1] नवाब ने उसके व्यवहार की शिकायत कलकत्ता अधिकारियों से की और उसे वापस बुलाने का निवेदन किया। पर बहुत से सदस्य यह नहीं चाहते थे। नवाब उत्तेजित हो गया।

कलकत्ता कौंसिल नवाब के विरुद्ध गंभीर रूप से उदासीन होती जा रही थी क्योंकि वह भारतीय माल पर चुंगी लगाने से इन्कार कर रहा था। इसलिए इन्होंने एक शिष्टमंडल भेजने का निश्चय किया जिसमें नवाब के प्रति विरोध भाव रखने के लिए विख्यात हे और अम्यात को नियुक्त किया गया। ऐसे शिष्टमंडल को सफलता कहां मिलनी थी? शिष्टमंडल ने नवाब के सामने मांग रखते हुए चाहा कि भारतीयों पर चुंगी लगा दी जाय और कंपनी को इस कारण होने वाली क्षति की पूर्ति की जाय। उन्होंने 1760 के संधि के अंतर्गत कंपनी को दिये गये तीन जिलों पर स्वामित्व का अधिकार मांगा और ब्रिटिशों के समर्थक बंदी सेठों को छोड़ने को भी कहा। शिष्टमंडल ने उसके समक्ष भविष्य में कंपनी और उसके कर्मचारियों के बीच संबंधों के परिचालन के लिए कुछ मत भी रखा।

नवाब ने उनकी सभी मांगें अस्वीकार ही नहीं कर दी बल्कि हे को यह कहकर रोक लिया कि जब कलकत्ता के अधिकारी उसके एक व्यक्ति को रिहा कर देंगे तो उसे भी छोड़ दिया जायगा। इसने स्थिति को गंभीर बना दिया और इस सूचना को प्राप्त कर जैसे ही नवाब ने कलकत्ता को लिखा, एलिस ने पटना पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार कर "बाजार, व्यापारियों और नागरिकों को लूटा-खसोटा।"[2] नवाब ने तुरत बदले की कार्यवाही करते हुए अपने सैनिकों को भेजकर कलकत्ता जाने वाले अम्यात को रोक लिया। गोलाबारी में अम्यात मारा गया। नवाब ने अपनी सेना पटना भी भेजी जिसने पटना पर पुनः अधिकार करके एलिस और अन्य अंग्रेजों को कैद कर लिया।

---

1. रेम्जे म्योर : मेकिंग आफ ब्रिटिश इंडिया, पृ० 60।
2. वन्सीटार्ट : पूर्वोद्धृत, भाग 3, पृ० 330-31।

इन सभी घटनाओ ने स्थिति को नया मोड़ दे दिया।

कपनी के अधिकारियो के समक्ष पुन एक बार नवाब के पद में परिवर्तन का स्वप्न था और उसके साथ जुड़ा था अनुदान, इनाम और भेंट का लाभ। वन्सीटार्ट ने कौसिल द्वारा नवाब के साथ शांतिपूर्ण समझौता करने का असफल प्रयास किया। नवाब के सेनापति गुर्गिन खान ने युद्ध करने की राय दी और यह आश्वासन भी कि ऐसा करने से प्रतिष्ठा और शक्ति की वापसी होगी।

युद्ध

कलकत्ता कौसिल ने यह निर्णय किया कि मीर कासिम को नवाब के पद से हटाकर मीर जाफर को पुनः बंगाल की गद्दी दी जाय। और मीर जाफर से बातचीत प्रारभ की गई जो अब भी पद से हटाने के बाद वृत्ति पा रहा था, समझौता हो गया। ग्यारह सौ युरोपीयो और चार हजार भारतीय सैनिकों के साथ मेजर एडेम्स मुगेर के विरुद्ध आगे बढ़ा। पन्द्रह हजार शक्तिशाली सेना के साथ नवाब भी आगे बढा। दोनो सेनाओं के बीच 19 जुलाई 1763 को कटवा नामक स्थान पर प्रथम लडाई हुई जिसमे ब्रिटिश विजयी हुए। 5 सितबर को एक के बाद एक गिरिया, सुती और उदयनाला मे तीन लड़ाइयां हुईं जिसमें सभी मे नवाब पराजित हुआ। अब मुगेर मे असुरक्षित अनुभव कर वह पटना की ओर चला। रास्ते में गुर्गिन खा पर गद्दारी का संदेह करते हुए उसने मरवा दिया। उसने यह नही समझा कि इसी अविश्वास ने उसे पराजय के दरवाजे पर खडा कर दिया है।

नवाब की सेना का नेतृत्व एक सेनापति के हाथ में रखने की जगह पर कई हाथों मे सौंप दिया गया। उसके सेनापतियों के आपसी ईर्ष्या और सामंजस्य के अभाव ने नवाब का पतन ला उपस्थित किया। पर उसके सेनापति अंत तक उसके स्वामिभक्त बने रहे। इसलिए उसका उन्हें मृत्यु-दड देना महान भूल थी।

वैसे तो वन्सीटार्ट ने उसकी कार्यवाही को उचित माना, पर लगता है नवाब का संतुलन बिगड़ गया था। पटना पहुचकर उसने यलिस और हे सहित बहुत से अग्रेज कैदियों को अमानवीय ढंग से मरवा डाला। एक जर्मन कर्मचारी रेनहार्ड जो इस तरह के जघन्य कार्य कर रहा था उसे सोमरु (क्रूर) की उपाधि मिल गई थी। राजाराम नारायण और सेठ भाई राजा राजबल्लभ व राय रायान उम्मेदराय, जिनके ऊपर ब्रिटिशों के प्रति उदार होने का आरोप था को गगा में डुबोकर मार डाला गया। पर इस तरह की कार्यवाहियों से वह अपने डूबते भाग्य को बचा नहीं सकता था। इसीलिए उसे अवध के नवाब वजीर से सहायता लेने के लिए भागना पड़ा जिसके पास उसने पहले ही लिखा था।

बक्सर की मार्गदर्शक घटनाएं

नाटक का अंतिम दृश्य अभी खेला जाना था और यह बक्सर के युद्ध भूमि में खेला गया। जो यह कहते हैं कि यह ब्रिटिश शक्ति और हथियारों के प्रशिक्षण मे उनकी उच्चता थी जिसने इस देश मे उन्हे साम्राज्य प्रदान किया, उन्हें बक्सर के युद्ध की परिस्थिति का ज्ञान होना चाहिए। इस समय एक ऐसी दक्ष व शक्तिशाली सेना तैयार थी, जितनी अभी तक कोई भी विरोधी सेना शायद ही रही हो। इसने घटनाओं को अपने ढंग से नियन्त्रित भी किया था और जो कुछ घटा था वह भी उनकी इच्छानुसार ही।

जब मीर कासिम अवध की ओर नवाब वजीर शुजाउद्दौला से सहायता प्राप्त करने जा रहा था, उस समय सम्राट शाहआलम सहित, जो इस समय इलाहाबाद मे रुका हुआ था, नवाब ने 1763 मे ब्रिटिशों को बंगाल में भागते हुए नवाब के विरुद्ध सहायता का प्रस्ताव भेजा। अवध के दरबार मे अंग्रेजों के हितो की देख-भाल सिताबराय के हाथों में अच्छी तरह सुरक्षित था। वह बिहार का भूतपूर्व दीवान था जिसे मीर कासिम ने हटा दिया था और जो शुजाउद्दौला की सेवा में था। 1763 के प्रारंभ मे गुप्त रूप से सिताब राय ने मीर जाफर को सम्राट के पास एक प्रार्थना पत्र भेजने को कहा जिसके आधार पर उसे बगाल के नवाबी के पद पर स्वीकृति दिला देने का उसने आश्वासन दिया था। पाच लाख रुपये नजराना सहित और इस आश्वासन के साथ कि आगे भी कर दिया जायेगा प्रार्थना पत्र आया। शुजाउद्दौला ने सिताबराय की गुप्त कार्यवाही की जानकारी के अभाव में ही इसकी स्वीकृति हेतु प्रयास प्रारंभ कर दिया।

पर इसी बीच मीर कासिम पहुच गया जिसका नवाब वजीर ने प्रेम और उदारता से स्वागत किया। मीर कासिम के पास इस समय 10 करोड़ रुपये से कम के जवाहिरात और रुपये न थे। ब्रिटिशो की ओर जाने से पूर्व उसे इस धनराशि की जानकारी के बाद अपने विचारो पर फिर से विचार करना पड़ा। पर जब मीर कासिम ने ब्रिटिशो के विरुद्ध तुरंत कार्यवाही करने को कहा जिससे वे बंगाल में अपने को सगठित न कर सकें तो नवाब वजीर ने उत्तर दिया कि इससे भी महत्त्वपूर्ण समस्या उसके समक्ष बुदेलखंड के हिन्दूपति को परास्त करने की है जो उसके आज्ञा की अवहेलना कर रहा है। मीर कासिम ने इस पर स्वयं हिन्दूपति के विरुद्ध आक्रमण करने की इच्छा व्यक्ति की जिसे नवाब वजीर ने स्वीकार कर लिया। मीर कासिम का बुदेलखंड के विरुद्ध आक्रमण सफल रहा। पर उसकी अनुपस्थिति में मीर जाफर के पक्ष मे सनद पर सम्राट के हस्ताक्षर करके उसके साथ धोखा किया गया। यह सनद 24 मार्च 1764 को मीर जाफर को पहुंचा दी गई।

युद्ध से वापसी पर जब उसने पाया कि उसे उल्लू बना दिया गया है तो उसने नवाब वजीर के पैर पर अपनी पगड़ी रख दी और सहायता की भीख मांगी। इसके बदले उसने सेना पर होने वाले व्यय के लिए ग्यारह लाख रुपये प्रति माह, बिहार का प्रांत व तीन करोड़ रुपये इनाम के रूप में देने को कहा। पर यह सब सफलतापूर्वक युद्ध की समाप्ति पर ही होना था। अवसरवादी नवाब वजीर जो मीर कासिम के बुंदेलखण्ड विजय यात्रा से प्रभावित हुआ था, उसकी सेना और धन के साथ अपने भी साधन मिलाकर ब्रिटिशों को पराजित करने का स्वप्न देखने लगा। साधन तो नही (जिसका अधिक कुछ उसके पास था भी नहीं) पर सम्राट का नाम और अधिकार सभी उसके हाथ में थे। इसलिए वह मीर कासिम की सहायता को तैयार हो गया और ब्रिटिशो के प्रति दोस्ती का आडम्बर व मीर जाफर को सम्राट से दिलाये गये सनद को भुलाकर उसने सम्राट की ओर से ब्रिटिशो को सभी राजनैतिक कार्यवाहियां रोक देने के लिए लिखा और सूचित किया कि वे अपने को व्यापार तक ही सीमित रखें। यह भी कहा गया कि यदि वे ऐसा नही करेंगे तो उन्हें युद्ध करना पड़ेगा और भयानक पराजय का मुह देखना पड़ेगा।

पर वह बेवकूफ ही था क्योंकि वह यह नही जानता था कि सम्राट उसी तरह अविश्वस्त था क्योंकि जब उसने ब्रिटिशों को लिखा, शाहआलम ने उन्हें अपनी असमर्थता, नवाब वजीर के प्रति अविश्वास और उनसे मैत्री के लिए हाथ बढ़ाने के लिए कहा, मित्रता के बदले वह उन्हे बगाल का प्रान्त देने को तैयार था। वह अपनी कठिनाइयो को दूर करने के लिये उनसे आर्थिक सहायता भी चाहता था। सम्राट ने ब्रिटिशो को यह भी लिखा कि अगर वे उसके व्यय की व्यवस्था करें तो वह अपने प्रधानमन्त्री शुजाउद्दौला को पीछे छोड़कर जिसके प्रति उसे तनिक भी परवाह नही है दिल्ली जाने को तैयार है।

स्थिति स्पष्ट थी और ब्रिटिशो को राजनैनिक प्रभाव विस्तार के लिए निश्चित-प्राय विजय के लिए लड़ना था। ऐलान करने पर उनके बंगाल निवास को ही खतरा पैदा हो जाता। ऐसी स्थिति मे उन्होंने नवाब वजीर की चुनौती को स्वीकार किया।

परिस्थिति ऐसी थी कि ब्रिटिश सम्राट की सहायता नवाब वजीर के विरुद्ध नही कर सकते थे। पर उन्होने उसके उद्देश्यों की जानकारी प्राप्त कर गुप्त रूप से संपर्क स्थापित कर उसे भुलावे मे रखा। एक हजार युरोपीय, छः हजार भारतीय और बारह हजार मीर जाफर के सैनिक यानी कुल 19,000 ब्रिटिश सैनिक आगे बढे। सम्राट के नेतृत्व मे आक्रमणकारियों की संख्या 40,000 थी जो सीमा पार कर बिना विरोध के पटना के निकट पहुंच गये। 3 मई 1764 को पटना के पड़ोस मे पंच पहाड़ी नामक स्थान पर दोनो सेनाए मिली। सम्राट ऊपरी मन से इस

कार्य में लगा था। नवाब के हाथ में सेनापतित्व के चले जाने से मीर कासिम का भी उत्साह ईर्ष्या मे बदल गया था और उसका अपने उपकारक के प्रति विश्वास नहीं रह गया था। प्रकट रूप मे बनारस के राजा बलवन्त सिह, सितावराय और नवाव वजीर के मंत्री बेनी बहादुर सभी ब्रिटिशो के विरुद्ध लड़ रहे थे, पर गुप्त रूप से पत्र व्यवहार मे ये सभी उनकी छत्रछाया के आकाक्षी थे। युद्ध का परिणाम स्पष्ट था। आक्रमणकारी सेना पराजित हो गई और बक्सर वापस आ गई जहां वह वर्षा भर रुकना चाहती थी।

. इसी बीच नवाब वजीर ने एक बार पुन· शाति की इच्छा व्यक्त की। पर वह मीर कासिम, समरु और मुख्यत: ब्रिटिश सेना को छोड़कर अपने मदद करने वालो को वापस करने को तैयार नही था क्योंकि वे सभी उसके विश्वस्त सहायक थे। दूसरी ओर ब्रिटिश यह भी जानते थे कि नवाब वजीर के साथ कोई सधि सम्राट की इच्छा के प्रतिकूल होगी जो उसकी केवल बर्बादी चाहता था। सधि इन परिस्थितियो मे कठिन थी।

बक्सर का युद्ध

23 अक्तूबर 1764 को दोनो में आपस में शक्ति का परीक्षण हो, इसके पूर्व उन्होंने खूब तैयारी की। ब्रिटिश अधिक भाग्यशाली थे। असद खान एवं जैनुल आब्दीन जैसे नवाब वजीर के मुगल अधिकारियो ने ब्रिटिशों का सम्मोहक आश्वासन स्वीकार कर सेना सहित उनका पक्ष ले लिया। यहां तक कि सियारुल मुतखरीन के लेखक व प्रसिद्ध इतिहासकार गुलाम हुसैन खान भी, जो नवाब वजीर की सेवा में थे, अपने पिता सहित ब्रिटिशों की ओर चले गये। इतना ही नही, उन्होंने रोहतास किले के गवर्नर साहूमल को भी ब्रिटिशो के पक्ष में लाने मे उनकी सहायता की। मीर कासिम भी नबाब वजीर के साथ नही बना रह सका क्योकि उसका सारा धन चुक गया था और उसे अब घुमक्कड़ जीवन जीना ही शेष रह गया था। वह 1877 में अंततः दिल्ली मे अत्यधिक गरीबी की स्थिति मे मर गया।

पर इस सबके बावजूद जब युद्ध की घड़ी आई तो नवाब वजीर की सेना ने बार-बार बक्सर मे ब्रिटिश सेना को पीछे ढकेला। पर षड्यन्त्र का चक्र प्रारंभ हो गया था। पर इसे बक्सर में प्लासी की तरह सफलता नही प्राप्त हुई। लेफ्टीनेन्ट हार्पर ने कहा : "मैं कल्पना करता हूं, यदि एक या दो हजार विरोधी घुडसवार और उसी तरह से हमारे तोपखाने के विरुद्ध पिल पडते जैसे कुछ पहले से तो हम हार गये होते···एक बार से भी अधिक स्थिति हमारे विपरीत थी और मेरा अपना विचार है कि सैनिक पांच मिनट से भी अधिक गोलाबारी नही झेल

सकते थे जो उन्होंने झेला।"[1] युद्ध का निर्णय ब्रिटिशों के पक्ष में केवल तीन घंटे में ही तय हो गया जिसमें उनके 32 युरोपियों सहित 300 सैनिक मारे गये जब कि विरोधी पक्ष के 6,000 सैनिक हताहत हुए।

आगे बढ़ते हुए ब्रिटिशो ने बनारस पर अधिकार किया जहा राजा बलवन्त सिंह और सम्राट ने उनका स्वागत किया। पर शुजाउद्दौला का अभी पूरी तरह से दमन नही हुआ था। नन्दकुमार के माध्यम से चन्दा प्राप्त करने का प्रस्ताव अस्वीकार कर वन्सीटार्ट नवम्बर 1764 मे इंगलैण्ड चला गया। पर ब्रिटिश शुजाउद्दौला का पीछा करते रहे। 18 जनवरी 1765 मे बनारस के निकट उसे पुनः पराजित होना पड़ा, उसके बहुत से साथियो ने उसका साथ भी छोड़ दिया। पर वह स्वयं निकल भागने मे सफल हो गया। इसके बाद ब्रिटिशो ने उस चुनार पर अधिकार किया जहा वे एक बार पराजित हो चुके थे। इलाहाबाद के किले पर भी अधिकार कर लिया गया। बचे-खुचे सैनिको के साथ भागते नवाब वजीर ने मल्हार राव होल्कर से सहायता प्राप्त की। पर अप्रैल 1765 मे पीछे पड़ी ब्रिटिश सेना ने दोनों को सम्मिलित रूप से कड़ा मे पराजित किया। मराठा नेता द्वारा अपमानित किये जाने पर नवाब वजीर ने उसका साथ छोड़ दिया और ब्रिटिशो के प्रति विरोध का भी परित्याग कर दिया। मई में काल्पी के निकट मराठे पुन. पराजित हुए। अब नवाब वजीर ने व्यक्तिगत रूप से अपने को ब्रिटिशों की दया पर छोड़ दिया जिसका उन्होंने बाइज्जत स्वागत किया। ब्रिटिशों ने उसे पुनः अवध का नवाब बना दिया जिसका विवरण आगे दिया जायगा।

बक्सर का महत्त्व

बक्सर के युद्ध ने भारतीय इतिहास में एक और मोड़ ला उपस्थित किया। इसने बंगाल में तीसरी क्रांति को संपन्न किया। एक तरह से यह प्लासी के युद्ध से भी महत्त्वपूर्ण था। वैसे तो ये दोनों युद्ध ब्रिटिशो द्वारा लगभग एक ही परिस्थिति मे जीते गये अर्थात् भारतीयों के आपसी संगठनहीनता और परस्पर विद्वेष ही इसके कारण थे, पर परिणाम मे बक्सर के युद्ध ने ब्रिटिशों के लिए प्लासी से भी अधिक गौरव और प्रतिष्ठा दिलाई। प्लासी के युद्ध में ब्रिटिश केवल बंगाल के नवाब के साथ ही लड़ रहे थे जबकि बक्सर के युद्ध में भारत के प्रधानमंत्री और अवध के शासक द्वारा भी चुनौती प्राप्त किये हुए थे और साथ ही प्रत्यक्षतः मुगल सम्राट भी उनके विरुद्ध था। जहा प्लासी ने बंगाल प्रांत का सारा साधन ब्रिटिशों के कदमो पर डाल दिया, वहां बक्सर ने उसमें अवध को भी जोड़ दिया। प्लासी के युद्ध के बाद ब्रिटिश केवल एक नवाब के

1. देखें, राम गोपाल : हाऊ द ब्रिटिश आकूपाइड बंगाल, पृ॰ 325।

भाग्य के निर्णायक हुए थे, पर इस दूसरे युद्ध के बाद प्रधानमंत्री के साथ ही मुगल सम्राट भी ब्रिटिशो की दया का आश्रित हो गया।

बक्सर के युद्ध के बाद ब्रिटिश एक अखिल भारतीय शक्ति हो गये और उनका प्रभाव क्षेत्र बंगाल तक ही सीमित न रहकर दिल्ली तक फैल गया। इतना ही नही प्लासी के युद्ध के बाद बक्सर के युद्ध ने ही उनकी शक्ति को संयोजित किया। एक तरह से बक्सर के बिना प्लासी की विजय अधूरी ही रहती।

कासिम का मूल्यांकन

हम समाप्त करें, उसके पूर्व मीर कासिम व वन्सीटार्ट की सफलताओं और विफलताओं के विषय में कुछ कहना शेष है। मीर कासिम निश्चित रूप से अपने श्वसुर मीर जाफर से अधिक साहसी, बेहतर प्रशासक और बडा सगठनकर्ता था। उसने प्रशासन में अनुशासन के द्वारा स्थिति ठीक करने की आवश्यकता का अनुभव किया और सदियों से प्रगति रोकने वाले रोड़े को हटाने का निश्चय किया। यह कोई छोटी सफलता न थी कि उत्तराधिकार के समय जो खजाना उसे खाली मिला था, कम से कम आधा रुपये से भर गया जिसकी उसके दोस्तो और दुश्मनो, दोनों ने प्रशंसा की। उसकी योग्यता के कारण ही वन्सीटार्ट ने कौन्सिल के विरोध के बावजूद उसका समर्थन किया। मीर कासिम की योग्यता ने ही उसके लिए ब्रिटिश गवर्नर की सहानुभूति अर्जित की।

नागरिक प्रशासन के अतिरिक्त अल्पकाल ही मे सैनिक सगठन के क्षेत्र मे भी उसने विरोधियो के ईर्ष्या योग्य सफलता प्राप्त कर ली। उसने अपने सैनिको को जो बन्दूकें दी वह ब्रिटिशो से भी अच्छी थी। उसने अपने सैनिको को युरोपीयों की ही भाति प्रशिक्षित किया क्योंकि वह जानता था कि भविष्य में सबसे बड़े शत्रु के रूप में युरोपीय ही उसके समक्ष आयेंगे।

मीर कासिम को अविश्वसनीय लोगों को निकालने की भी समझ थी। वह बिहार के सहायक गवर्नर और ब्रिटिश समर्थित राम नारायण जैसों के ऊपर आक्रमण करने और पदमुक्त करने से नही हिचका। थोड़े ही काल मे उसने महत्त्वपूर्ण जगहों पर अपनी पसंद के व्यक्तियों को नियुक्त कर दिया।

पर उसके भी आगे बढ़ने की सीमा थी। ब्रिटिश कंपनी की दस्तक प्रथा और गुमाश्तो का अनाचार दो ऐसी बुराइयां थी जिन्हें हटाये बिना मीर कासिम न तो शांति व व्यवस्था की स्थापना कर सकता था और न आर्थिक स्थिति सुदृढ कर सकता था। पर इन समस्याओं के विषय मे उच्चारण भी कौसिल के बहुत सदस्यो मे उसे बुरा सिद्ध कर सकता था। वैसे वन्सीटार्ट और हैस्टिंग्स ने यह स्वीकार किया, "यह आशा नवाब से नही की जानी चाहिए कि वह क्षेत्र के सभी व्यापारियों

के व्यापार पर आघात करने मे हमारा साथ देगा।"[1] पर उसके विरुद्ध जो शक्तियां थी वह बहुत शक्ति प्राप्त थी और वे उसे उसकी इच्छानुसार कुछ भी न करने देती।

मीर कासिम मे कुछ दोष भी थे। उदाहरण के लिए उसके पास एक बड़ा हरम था और वह शरीर से दुर्व्यसनी था। उसकी सदेहशीलता ने उसके सेनापति के प्रति अविश्वासी बनाकर उसे पराजित करा दिया। अंग्रेज और भारतीय कैदियों के प्रति बर्बरतापूर्ण व्यवहार के साथ उसने जो अत्याचार किया वह अमानवीय और अत्यधिक निर्दयतापूर्ण था। वैसे जो कुछ उसने किया वह ब्रिटिशों के अनुत्तरदायित्वपूर्ण व कठोर स्थिति उत्पन्न करने की प्रतिक्रिया भी माना जा सकता है। वह प्रशासकीय सुधारों और सैनिक संगठन के क्षेत्र मे बहुत आगे नही जा सका। और जैसे ही साधारण कार्य क्षेत्र से उसने आगे बढ़ने की चेष्टा की कि ब्रिटिशों का प्रबल प्रहार प्रारंभ हो गया। ब्रिटिशों को एक कठपुतली की आवश्यकता थी स्वतंत्रमन शासक की नही। अगर उसमें दुर्गुण न भी होते तो भी अंततः वह असफल होता क्योंकि वह अपने श्वसुर से कार्यक्षम्य और आगा-सोची था।

जब यह सब कहा गया तो हमे यह भी न भूलना चाहिए कि जहा तक वन्सीटार्ट का संबध था उसने मीर कासिम की समस्याओं के निदान के लिए कुछ भी उठा न रखा। पर कौसिल में उसकी शक्ति की एक सीमा थी। इतिहास की पुस्तकों में उसे प्राय. एक नेकनीयत कमजोर व्यक्ति कहा गया है। वैसे फिलिप उड्रफ की दृष्टि में "यह अशिष्ट ही नही असत्य भी है,"[2] पर इसमे दो राय नही कि चालबाजी और साहस में वह क्लाइव की तरह शक्तिसपन्न नही था। यह भी सिद्ध करना सरल नही है कि रुपये-पैसे के मामले में वह क्लाइव से अधिक ईमानदार था। वह जब मद्रास मे था तो उसने अपार धन एकत्रित करने में संकोच नही किया। वह आवश्यकता पड़ने पर बुरे साधनों के प्रयोग में भी पीछे नही था, यह इससे सिद्ध है कि किस तरह उसने मीर कासिम से शाति-समझौता कर इनाम के रूप मे धन प्राप्त किया। कौन्सिल ने उसके समझौते को रद्द कर दिया यह और बात थी।

संभवत. वन्सीटार्ट जिस समय भारत में रह रहा था, उस समय से उसने अपने को सबद्ध नही कर रखा था। या तो वह अपने काल से आगे था या आश्चर्यजनक तो लगता है पर वह भूतकाल से संबद्ध था। भारत में भ्रष्टता बहुत आगे बढ़ गई थी। इसमें सन्देह नही कि उस समय जॉन स्टोन, हेज और बोल्ट्स जैसे लालची,

---

1. फीलिंग : पूर्वोद्धृत, पृ० 48।
2. उड्रफ : पूर्वोद्धृत, पृ० 116।

वेईमान और आक्रामक दृष्टि वाले लोग थे, पर यह समझना कठिन है कि किस तरह जाफर और कासिम जैसे लोग देशी शक्तियों की बर्बादी व व्यसन के मध्य बच सकते थे। वैसे यह कहना वड़ा अनादरणीय व वेतुका होगा, पर क्लाइव की धन लोलुपता और मक्कारी अधिक स्वाभाविक व सामयिक लगती थी और वन्सीटार्ट की दंभता और सहिष्णुता उतनी नही।

जो भी हो, वन्सीटार्ट की नीति को असफल कहा गया और इसीलिए क्लाइव को अपमानित करने और नीचा दिखाने के क्रूर खेल के बीच उन्होंने उससे बंगाल जाकर चीजों को ठीक करने के लिए कहा। वन्सीटार्ट जब इगलैण्ड लौटा तो अधिक लोकप्रिय हुआ और क्लाइव तथा अन्य लोगों के शत्रु सलीवान ने इसमे बडी सहायता की। जैसे ही वह वहां पहुंचा तुरंत संसद सदस्य हो गया और 1709 मे वह कंपनी का डाइरेक्टर हो गया। उसी वर्ष उसे बंगाल प्रशासन में सुधार के लिए तीन सुपर वाइजरों मे से एक नियुक्त किया गया। अन्य दो व्यक्ति उसके साथ थे—कर्नल फोर्डे और ल्युक स्क्रैफ्टन। सितंवर में वे भारत की ओर रवाना हुए और 27 दिसंबर 1769 मे यह अंतरीप छोड दिया। इसके वाद लोगो ने उन्हें नही देखा।

सितंबर 1760 में क्लाइव इगलैण्ड पहुंचा। वह राजा की सबसे धनी प्रजा था। सचमुच यह एक ऐसे व्यक्ति के लिए महान सफलता थी जिसने 10 पौंड के हिसाव से लिपिक के रूप में जीवन प्रारंभ किया था। क्लाइव पहले ही प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था और उसके गुणों को पिट और जार्ज द्वितीय दोनो स्वीकार करते थे। उसे एक आयरिश अभिजातीय पद दिया गया जिसके कारण वह उच्च सदन का सदस्य नही वन सका। वह अपने अपार धन का प्रयोग करते हुए 35 वर्ष की आयु मे निम्न सदन का सदस्य होकर इगलैण्ड मे रहने लगा।

पर क्लाइव इंगलैण्ड में अपनी राजनैतिक स्थिति में और वृद्धि नही कर सका। जल्दी ही जार्ज द्वितीय की मृत्यु हो गई और उसके उत्तराधिकारी जार्ज तृतीय ने 1762 में अपने अध्यापक लार्ड बूट को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया। क्लाइव के बूट से अच्छे सवंध थे, पर जब पेरिस संधि (10 फरवरी 1763) पर हस्ताक्षर हुए तो उसने इसके विरुद्ध मत दिया क्योंकि वे इसके भारत से सबद्ध धारा को पसन्द नही करता था। रुष्ट वूट कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के चेयरमैन सलीवान से मिल गया और क्लाइव की वर्वादी का प्रयास करने लगा। मीरजाफर से क्लाइव की जागीर की प्राप्ति, जिसका पहले ही विवरण दिया जा चुका है, अवैधानिक घोपित कर दी गई और उसके ऊपर मुकदमा चलाने का प्रस्ताव हो गया। पर मुकदमा प्रारभ हो उसके पहले ही परिस्थितियों ने एक मोड़ और लिया जब उससे कंपनी के मालिकों ने वंगाल का गवर्नर वनने हेतु पुनः हाथ जोड़े।

1760 में क्लाइव ने जव वंगाल छोड़ा था तव अपने उत्तराधिकारी

वन्सीटार्ट से कहा था कि इस देश मे जिस खतरे से सबसे अधिक सावधान रहना है वह बेईमानी और घूसखोरी है जिसकी सचमुच स्थापना क्लाइव ने ही की थी। वन्सीटार्ट मे "अपने विद्रोही साथी को निलंबित करने के लिए वैसी चरित्र शक्ति, ऐसी विश्वासोत्पादक शक्ति जो दूसरों को अपनी ओर ला सके तथा श्रेष्ठ योग्यता, इच्छाशक्ति नहीं थी जैसी क्लाइव में थी।"[1] शक्ति प्राप्त करते ही, जिसे हम अगले अध्याय में देखेंगे, उसने मीर जाफर की जगह मीर कासिम को गद्दी दिलाई, पर अगले तीन वर्षों में ही वह मीर कासिम से भी ऊब गया और 1763 में उसने उसे पद से हटाकर मीर जाफर को बंगाल की मसनद पुनः प्रदान की। मीर कासिम बंगाल से भागा और भारतीय राजाओं का एक संघ बनाकर 1764 में बक्सर मे ब्रिटिशों के विरुद्ध एक युद्ध किया पर पराजित हुआ। इस घटना ने ब्रिटिशों को और असावधान बना दिया और "कलकत्ता की रिपोर्टों से पता चला कि कंजूसी, लालच, कुप्रबंध और तानाशाही के सम्मिलित रूप से ज नागरिक अधिकारियों ने क्लाइव के समय में छोड़ा था उसने कलकत्ता में एक विद्रोह की स्थिति को जन्म दे दिया था।"[2] क्लाइव को कंपनी मालिकों ने पुनः भारत जाने के लिए निवेदन किया और उसके ऊपर से इसीलिए जागीर वाला मुकदमा उठा लिया गया। पर उसने इस पर जोर दिया कि वह अपने पीछे एक विरोधी न्यायालय को छोड़कर नही जाना चाहता। इसी कारण सलीवान को स्तीफा देना पड़ा और नये चुनाव में कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के चेयरमैन और सहायक चेयरमैन उसके दो पक्षधर चुने गये जिन्होंने उसे बंगाल में सुधार लाने के लिए पर्याप्त शक्ति प्रदान की।

---

1. मैलीसन : पूर्वोद्धृत, 123 (इंडियन रीप्रिन्ट, 1962)।
2. वही।

13

लार्ड क्लाइव एवं बंगाल की उसकी दूसरी गवर्नरी

1725 में श्रापशायर के निकट मार्केट ड्रेटन में पैदा होने वाला राबर्ट क्लाइव "चार विद्यालयों में बारी-बारी से भेजा गया, पर लगता है वह वहां कुछ ठीक से नहीं कर पा रहा था और इसीलिए उसका पिता सोचता था कि वह वहां से असफल होकर ही निकलेगा।" छः वर्षीय क्लाइव दुराग्रही और भावप्रवण था। वह छोटी-छोटी बातों को भी लेकर अत्यधिक क्रुध होकर लड़ता रहता था। वह सदा कुछ-न-कुछ करता रहता था। उसके बहादुरी और अवज्ञा सम्बन्धी तमाम घटनाओं का विवरण प्राप्त होता है। वह "छोटे-छोटे लड़कों का नेता था जो कस्बे में दूकानदारों को धमकी देता फिरता था कि यदि वे उसे पैसा न देंगे तो वे उनके मकान की खिड़कियां तोड़ देंगे। एक दिन एक दूकानदार से झगड़ा कर, बदले की भावना से ग्रस्त हो, इन्होंने गली की नाली को इसलिए बांध दिया जिससे उसका पानी भरकर दूकानदार की दूकान में घुस जाय। बाध टूट गई जिसके बाद राबर्ट पानी में कूद पड़ा और शेष सभी ने बांध की मरम्मत कर दी।'[1]

उसने 1742 ई० में 17 वर्ष की आयु में भारत की ब्रिटिश कंपनी मे एक 'लिपिक' का स्थान प्राप्त किया और मार्च 1743 में इंगलैण्ड छोड़कर वह 1744 के अन्त में मद्रास पहुंच गया। यात्रा लम्बी और थकानभरी रही जिसने उसका रुपया भी खत्म कर दिया और बाध्य होकर उसे जहाज के कप्तान से महंगे व्याज पर धन उधार लेना पड़ा।

भारत में इस लिपिक के सुपुर्द जो कार्य सौंपा गया वह अत्यधिक साधारण था, उस क्लाइव जैसे युवा व्यक्ति के योग्य नहीं जो संघर्ष से जुडा था। आश्चर्य नही, इसीलिए एक दिन निराशा में "अपने मनहूस जीवन से ऊबकर और निर्धनता से खिन्न होकर उसने दो बार अपने माथे पर पिस्तौल दागी, पर पता नहीं दोनों बार वह कैसे बच गया, और किस तरह थोड़ी ही देर बाद क्लाइव के ही कहने पर

---

1. गैरी, रेजीनाल्ड : राबर्ट क्लाइव ऐण्ड फाउन्डिंग आफ ब्रिटिश इंडिया, लंदन, 1927, पृ०99-100।

उसका एक साथी कमरे में आया और पिस्तौल की ट्रिगर दबाकर खिड़की के बाहर फेंक दिया और किस तरह आवाज होने के साथ क्लाइव ने उसका पैर पकड़ लिया और कहा, "मुझे लगता है मैं और बेहतर कार्यों के लिए सुरक्षित हूं।"[1]

हमने विस्तार मे क्लाइव के आंग्ल-फ्रांसीसी युद्ध में भूमिका की परीक्षा की है जिसके अतर्गत दक्षिणी भारत मे उसने अर्काट के नायक की उपाधि अर्जित की। हम यह भी बता आये है कि किस तरह बंगाल आकर मैलीसन के शब्दो मे "तीन ही वर्ष में उसने अत्यधिक महत्त्वपूर्ण, बहुत शानदार और चिरस्थायी सफलताए प्राप्त की जो देश के इतिहास में प्रमुख स्थान पा सकी।"[2] 1756 के अन्त आते-आते वह कलकत्ता के निकट उतरा, सिराजुद्दौला से उस नगर को फिर से जीता, फिर चन्द्रनगर को छीना और प्लासी के युद्ध में देश के इतिहास को उसने एक नया मोड देते हुए सिराजुद्दौला को पराजित होकर मृत्यु द्वार पर भेज दिया और ब्रिटिशों की कठपुतली मीर जाफर को नया नवाब बनाया गया। बंगाल के प्रथम गवर्नरी की सफलताओं का विस्तृत विवरण हम पहले ही कर चुके है।

आन्तरिक सुधार

दूसरी बार बंगाल का गवर्नर नियुक्त होने के बाद क्लाइव ने इंगलैंड 4 जून 1764 को समर और साइकस सहित छोड़ा जो सेलेक्ट समिति के सदस्य थे। जब वह कलकत्ता दूसरे वर्ष 3 मई को पहुंचा, उस समय तक बंगाल में दूसरी बार नवाब बनने वाला मीर जाफर मर चुका था और उसका अवैध पुत्र निजामुद्दौला (25 फरवरी) को 25 लाख रुपये के बदले बंगाल की गद्दी दे दी गई थी। यह धन कौंसिल सदस्यो और अन्य लोगो मे बांट दिया गया था।

क्लाइव के आगमन पर कलकत्ता कौन्सिल में एक प्रेसीडेन्ट और सोलह सदस्य थे पर अधिकतर सदस्य अन्यत्र ऐजेन्सी का कार्य करते थे जो पूरे प्रान्त मे फैला हुआ था जबकि सरकार का काम करने के लिए सात या आठ से अधिक शेष नही बचते थे। इस तरह स्वाभाविक रूप से काम में हर्जा होता था। इस बुराई का परिणाम "जितना दिखता था उससे भी अधिक था। एजेन्सी का कार्य अत्यधिक लाभकारी था क्योंकि इससे व्यक्तिगत व्यापार के अवसर मिलते थे। एक एजेन्ट जो कौंसिल सदस्य भी होता था और जो अपनी कार्यविधि को अपने मत से समर्थन नही दे सकता था, पर अपने साथियों के मत की सहायता ले सकता

1. मैलीसन, जी० बी०: रूलर्स आफ इंडिया, लार्ड क्लाइव, इंडियन रिप्रिन्ट, 1962, पृ०3-5।
2 वही, पृ० 108।

था और उसके विरुद्ध कोई छानबीन नहीं हो सकती थी।"[1]

कंपनी के नीचे कंपनी के साधारण कर्मचारी बेहतर चरित्र नहीं प्रस्तुत करते थे। 1762 में मीर कासिम ने शिकायत की थी कि "प्रत्येक परगना और प्रत्येक गांव में उन्होंने दस से बीस तक नई फैक्ट्रियां लगा रखी हैं और कंपनी के झंडे स्थापित कर व दस्तक दिखाकर वे बड़ी बुरी तरह से प्रान्त की जनता, व्यापारी और लोगों को दबा रहे हैं।"[2]

भ्रष्टाचार की जो पद्धति कंपनी कर्मचारियों ने अपना रखी थी वह भिन्न-भिन्न लोगों के साथ भिन्न-भिन्न तरह की थी।[3] उदाहरण के लिये बर्दमान में कंपनी का रेज़ीडेन्ट और उसकी कौंसिल 80 हजार रुपये वार्षिक राजा से प्राप्त करते थे। इसके अतिरिक्त वे कंपनी से वेतन भी प्राप्त करते थे। साथ ही वे राजा के भूमि कर में जो अतिरिक्त वसूली होती थी वह भी संधि के अनुसार प्राप्त करते थे। इस तरह अंग्रेज जो लाभ प्राप्त करते थे वह अथाह था।

कम्पनी के कर्मचारियों का वेतन कम होने के कारण ऐसे लोगों की कमी थी जो ईमानदार, योग्य व वरिष्ठ हों और विभिन्न विभागों में विभिन्न जगहे प्राप्त करें। कनिष्ठ कर्मचारी ऊंची जगहें प्राप्त करते और अवैध धन कमाते थे। 1766 में क्लाइव ने स्वयं लिखा :

"सेक्रेट्री के विभाग का कार्य आपकी सेवा में एक तीन वर्ष के अनुभव प्राप्त युवा के हाथ में दिया गया है; लेखाकार का काम एक लिपिक को सौंपा गया है जो कर्मचारियों में बहुत कनिष्ठ है; सेना, जल सेना और वर्क्स विभाग के स्टोर कीपर की जगह खाली होने पर लिपिकों को दी गई हैं और एक लिपिक ही सेना के वेतन देने वाले अधिकारी का कार्य भी संभाल रहा है और उसके हाथ में इस हेतु लगभग 20 लाख रुपये महीनों पड़े रहते हैं। कई विभागों में बनिया प्रमुख अधिकारी हो गये हैं; कंपनी का कार्य संचालन नये और अस्वाभाविक ढंग से चल रहा है और आपके बहुत से गुप्त बातों की चर्चा सरेआम बाजारों में होती है।"[4]

कलकत्ता के सम्बन्ध में यहां उतरते ही उसने कहा, यह जगह "ब्रह्मांड में भ्रष्ट स्थानों में से एक प्रमुख जगह है। यहां के नागरिक कर्मचारियों में भ्रष्टाचार,

---

1. मैलीसन, कर्नल, जी० बी० : द फाउन्डर्स आफ द इंडियन इम्पायर, लार्ड क्लाइव, लदन, 1882, पृ० 369-70।
2. वन्सीटार्ट, पूर्वोद्धृत, पृ० 98।
3. अवैधानिक लाभों के आधार पर जिस तरह का विलासितापूर्ण जीवन अंग्रेज जीते थे उसका अत्यधिक उत्तम चित्रण दिया है, परसीवल स्पीयर; द नवाब्स, लदन, 1963, पृ 53-57।
4. फारेस्ट : क्लाइव, II पृ० 308।

लंपटता और सिद्धान्तहीनता का नशा छा गया है। गलत उदाहरण के आधार पर वे पराकाष्ठा के निर्दयी, लोभी और विलासी हो गये हैं।...."[1]

क्लाइव के पहुचने पर कंपनी की प्रशासन मशीनरी पूर्णरूप से ठप पड़ चुकी थी। जब मीर जाफर दुबारा नवाब हुआ तो वह जानता था कि मीर कासिम की ब्रिटिशों से इसीलिए नही पटी क्योंकि वह प्रशासन सुधार और भ्रष्टाचार समाप्ति की बड़ी इच्छा रखता था। इसीलिए वह देश की न्याय, कानून और व्यवस्था की बिगड़ती स्थिति को देखकर भी असहायता की स्थिति में पड़ा रहा। जब उसकी मृत्यु हुई तो नजीमुद्दौला उसका उत्तराधिकारी हुआ जिसकी एक ही योग्यता थी कि वह ब्रिटिशो के हाथ में अविचारित ढंग से खेल सकता था। इस तरह बंगाल के नवाब ने जहां एक ओर प्रशासन के उत्तरदायित्व से अपने को अलग कर लिया था, वहां कम्पनी के कर्मचारियों ने धन संग्रह के अतिरिक्त किसी और दिशा में सोचना ही प्रारम्भ नही किया था।

सैन्य विभाग मे जिस ज्वलंत समस्या का सामना क्लाइव को करना पड़ा, वह भत्ता की थी जो सैनिक अधिकारियों को युद्ध क्षेत्र में अतिरिक्त जीवन-यापन हेतु दिया जाता था। इस प्रथा का प्रारम्भ कर्नाटक के युद्धों में तब हुआ जब चांदा साहब और मुहम्मद अली ने अंग्रेजी और फ्रांसीसी सेना की सेवायें प्राप्त करने के लिए अधा-धुंध धन व्यय किया। बंगाल सेना के प्रारंभिक रचना के समय इसके अधिकारी अतिरिक्त भत्ता तब पाते थे जब वे युद्ध स्थल पर काम करते थे और आधा भत्ता तब पाते थे जब युद्ध भूमि में उन्हें न भेजकर किसी अन्य स्थान पर भेजा जाता था। प्लासी के युद्ध के बाद कम्पनी के प्रति आभार व्यक्त करते हुए मीर जाफर ने अपने सैनिक अधिकारियों को पूर्ण भत्ता के बराबर धन प्रदान किया जिसे वे अभी तक केवल युद्धभूमि में रहने पर ही प्राप्त करते थे। इस तरह अब अफसरो को युद्ध क्षेत्र में 'दुहरा भत्ता' मिल गया और कुछ दूर जाने पर थोड़ा-सा इससे कम मिला।

मीर कासिम के काल मे भी भत्ता की प्रक्रिया चालू रही। अंतर इतना ही आया कि उसने कम्पनी के इस व्यय के लिए मिदनापुर, चटगांव और बर्दमान के जिले प्रदान किये। अब डाइरेक्टरों को क्षेत्र प्राप्त हो गया और उन्होंने उससे प्राप्त होने वाला धन नहीं बांटा और लाभांश के रुपये अपने पास रख लिया। इसके साथ उन्होंने यह सूचना प्रसारित करवा दी कि भत्ता की प्रथा समाप्त की जाती है। स्वाभाविक रूप से सैनिक अधिकारी इस तरह के सुधार को पसंद नहीं कर सकते थे।[2]

---

1. देखें, राइज एण्ड फुलफिलमेन्ट आफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया, 1962, पृ० 106।
2. देखें, फारेस्ट, जी. : लाइफ आफ लार्ड क्लाइव, दो भाग, लंदन, 1918, भाग 2, पृ० 235।

आंतरिक नागरिक और सैनिक समस्याओं के अतिरिक्त सम्राट शाह आलम और अवध के नवाब वजीर की समस्याएं थीं जो बक्सर के युद्ध में पराजित होने के उपरांत क्लाइव के आगमन के साथ एक संधि की आशा में बैठे थे।

बंगाल की ऐसी स्थिति थी जब क्लाइव भारत पहुंचा। उसके सामने रास्ता स्पष्ट था और आते ही जो पहला सुधार उसने किया वह था कौंसिल सदस्यों के हाथ में कार्यालयों के एकत्रीकरण को रोकना। उसने यह नियम बनाया कि जब तक एक व्यक्ति कौंसिल का सदस्य रहे वह वही बना रहे, और अन्य कोई कार्य न करे। कौंसिलर को कौंसिलर और एजेन्ट को एजेन्ट ही बने रहना चाहिए, दोनों कार्य एक ही व्यक्ति नहीं कर सकेगा। नये नियमों के अंतर्गत कौंसिल सदस्यों को केन्द्र स्थान पर रहने को कहा गया और यह भी कहा गया कि वे प्रशासकीय और अन्य समस्याओं पर अधिक ध्यान दें। इसका अपवाद केवल सेनापति को इसलिए रखा गया क्योंकि उसे युद्ध करने के लिए इधर-उधर जाना पड़ता था। कौंसिल सदस्यों की संख्या भी घटाकर 12 कर दी गई।

"यह स्वाभाविक ही था कि उसके सुधार, जो लगता तो साधारणतया ठीक था, का बाहर से विरोध हो। क्लाइव ने इसकी कल्पना नही की थी कि इसका विरोध सेलेक्ट कमेटी मे भी होगा। पर इस विरोध के बावजूद भी वह बाजी मार ले गया।"[1]

लगभग इसी समय उपरोक्त सुधार के साथ ही क्लाइव ने कौंसिल सदस्यो के नजीमुद्दौला से लिये जाने वाले भेंट और अन्य लाभो की भी भर्त्सना की। उसने इसी तरह की कम्पनी के निम्न श्रेणी के कार्यवाहियो की आलोचना की और उनसे प्रतिज्ञा पत्र भरने को कहा। कम्पनी कर्मचारियों ने सोचा कि क्लाइव की आज्ञा के पीछे पर्याप्त दृढ़ निश्चय का सबल नही है और शीघ्र ही गवर्नर शान्त हो जाएगा; इसलिए और कि वह पहले स्वयं इस तरह के कार्य कर चुका है और अब भी इस आदेश के जारी करने के समय वह प्रति वर्ष 30,000 पौण्ड की दर से अपनी जागीर से लाभ अर्जित कर रहा है।

मि० जान स्टोन ने जो कौंसिल के एक सदस्य थे दिलचस्पी दिखाते हुए कहा, "भेंट के सम्बन्ध में सामान्य रूप से हमारे अपने प्रेसीडेन्ट लार्ड क्लाइव का ही उदाहरण हमारे समक्ष है···" जिसके उत्तर मे लार्ड क्लाइव ने कहा कि तब से अब समय बदल गया है, कि उस समय भेंट लेने पर रोक नही थी, कि यह विचार कि बगाल में अपार धन है सही नही साबित हुआ है, कि कम्पनी के वर्तमान कर्मचारी इस प्रथा की सीमा का उल्लंघन कर चुके हैं, कि सिराज का पद से हटाया जाना और मीर जाफर को पद प्रदान किया जाना बंगाल की जनता का खुद का काम

1. मैलीसन : लार्ड क्लाइव, लदन, 1882, पृ० 369-70।

था जिसमे ब्रिटिशों ने सहायक की भूमिका निभाई थी।"

पर इसी अवसर पर मैलीसन लिखता है कि "वह अमीचन्द से किये जाने वाले समझौते को, सेना के सेनापतियों से किये जाने वाले षड्यंत्रों को, अपनी महत्वाकांक्षी योजनाओं को पूरा करने के लिए काम करने वाले नेताओं से प्राप्त धन को, जो जनता ने उसे नही दिया था, भूल गया। इस सभी का परिणाम हुआ जनता पर बढ़ने वाला दबावपूर्ण बोझ।"[1] जैसा भी हो, तत्कालीन बुराइयों के विरुद्ध प्रतिज्ञापन करने के अतिरिक्त, कोई चारा नही था।

कम्पनी के कर्मचारियों का वेतन बेइन्तहा कम था। यहां तक कि कौंसिल के सदस्य को भी 300 पौण्ड वार्षिक से अधिक नही मिलता था। डाइरेक्टर इस ओर ध्यान देने को तैयार नही हुए जिसका फल यह हुआ कि कर्मचारियों के समक्ष इसके सिवा कोई चारा न रहा कि वे अवैध व्यक्तिगत व्यापार के आधार पर अपनी आय बढ़ाये। व्यापार-वस्तुओं के लाने-ले जाने मे कम्पनी के नाम और पास का इतना दुरुपयोग होता था कि कलकत्ता और उसके आसपास के भारतीय अपने नौकरों को सैनिक का वेश धारण कराकर जाली पास या बिना पास के ही अपनी वस्तु को चुगी क्षेत्र से बाहर निकाल देते थे। मीर कासिम ने इसी अनियमितता को समाप्त करने की मांग करके अपना अन्त आमंत्रित किया था। पर क्लाइव ने इस स्थिति को वन्सीटार्ट से अच्छे ढंग से सभाला और सेलेक्ट कमेटी से परामर्श कर उसने आदेश प्रसारित किये जिसके अन्तर्गत पास का बनना कुछ अधिकारियों तक सीमित कर दिया गया और इस तरह भारतीयो द्वारा इसका दुष्प्रयोग समाप्त हो गया।

इन सुधारों का यह प्रभाव हुआ कि कम्पनी कर्मचारियों का अवैध लाभ अधिक मात्रा में लड़खड़ा गया। इससे कटुता का प्रारम्भ हुआ। जब क्लाइव ने बड़ी जगहों पर नियुक्त कनिष्ठ लोगों को हटाकर वहां वरिष्ठ लोगो को नियुक्त करना प्रारम्भ किया जिन्हें मद्रास से यहां बुलाया गया था तो यह कटुता और बढ गई। इससे तहलका मचा और कर्मचारियों ने विरोध संगठित करना प्रारम्भ किया। उनके बीच एक परिषद स्थापित हो गई और उन्होंने क्लाइव के समारोहों को त्यागना प्रारम्भ किया। मांगें तैयार करके क्लाइव के समक्ष प्रस्तुत की गई। पर वह इतना कमजोर तो था नही और "जब असन्तुष्टों को पता चला कि शीघ्रता से उनके लाभपूर्ण पद छीने जा रहे हैं, पास बन्द किये जा रहे हैं और पूछे बिना ही वे कही भी भेजे जा रहे हैं तो उन्होंने समझ लिया कि अब क्लाइव की निरंकुशता के साथ ही गुजारा किया जाय और इस तरह विरोध समाप्त हो

1. मैलीसन : लार्ड क्लाइव, लंदन, 1882, पृ० 363।

गया।"[1]

साथ ही क्लाइव इसमें भी रुचि रखता था कि कम्पनी कर्मचारियों के वेतन में भी वृद्धि की जाय जिससे भ्रष्टाचार के प्रति लालच उनमें न रह जाय। क्लाइव ने इस उद्देश्य के लिए 'सोसाइटी फार ट्रेड' की स्थापना की जिस पर कौंसिल का नियंत्रण होना था। कम्पनी के वरिष्ठ नागरिक और सैनिक कर्मचारियों से इसकी भागीदारी खरीदने को कहा गया जिसके द्वारा नमक के एकाधिकार का प्रबन्ध किया जाना था। यह भी ध्यान में रखा गया कि जहां इससे पर्याप्त लाभ कम्पनी कर्मचारियों को हो वहां साथ ही नमक का दाम भारतीयों के लिए पिछले 20 साल के औसत दाम से दस प्रतिशत कम हो। कम्पनी के वरिष्ठ कर्मचारियों को इस तरह जो अतिरिक्त भत्ता मिलना था और जिसका कम्पनी के राजस्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना था, वह कर्नल के लिए 7,000 पौण्ड वार्षिक होता था जबकि लेफ्टीनेन्ट कर्नल और मेजर के लिए क्रमशः यह 3,000 पौण्ड और 2,000 पौण्ड होता था।

जब डाइरेक्टरों को क्लाइव की इस योजना का पता चला तो उन्होंने क्लाइव को तुरन्त इसे समाप्त करने का आदेश दिया। क्लाइव ने उन्हें यह समझाने की असफल चेष्टा की कि इसमें व्यक्तिगत व्यापार की वह बुराइयां नहीं है जिन्हें वे समाप्त करना चाहते हैं। उसने यह भी कहा कि यह नयी योजना नवाब के साथ सम्बन्धों में भी कोई कठिनाई नहीं पैदा करेगी। क्लाइव ने दो बार डाइरेक्टरों के आदेशों को असफलतापूर्वक इसलिए स्थगित किया कि जब वह इंग्लैण्ड लौटेगा तो उन्हें समझाकर मना लेगा। इस तरह अंततः इसे समाप्त ही करना पड़ा। "इस क्षेत्र में क्लाइव अनावश्यक रूप से आरोपित किया गया है। उसके प्रस्ताव···उन प्रस्तावों व सुधारों से मिलते-जुलते थे जिसके लिए कार्नवालिस की इतनी प्रशंसा की गई।"[2]

सेना विभाग में क्लाइव ने भत्ता की प्रथा का विरोध किया। एक कानून घोषित किया गया जिसके अन्तर्गत उन अधिकारियों को जो बंगाल और बिहार के क्षेत्र के बाहर काम करते थे उन्हें दुहरा भत्ता प्राप्त होना तय हुआ। जो लोग सेना की कार्यवाही में भाग लेने के लिए प्रान्त में ही आगे बढ़ रहे होंगे उन्हें पूरा भत्ता मिलेगा, पर जो लोग मुंगेर और पटना के छावनियों में रह रहे होंगे उन्हें आधा भत्ता ही प्राप्त होगा। पर इसके नीचे प्रेसीडेन्सी और अन्य फैक्ट्रियों में काम करने वाले सैनिकों को कोई भत्ता नहीं मिलेगा, उन्हें इसकी जगह पर मुफ्त के मकान दिये जायेंगे। उदाहरण के लिए एक कप्तान को उपरोक्त तीन

1. द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 5, पृ० 178।
2. वही पृ० 178।

श्रेणियों में प्राप्त होने वाला भत्ता 12 रु०, 6 रु० और 3 रु० था।

अब सैनिक अधिकारियों की विरोध करने की बारी थी। उन्होंने एक साथ कमीशन से स्तीफा देना प्रारम्भ किया। अभी जल्दी ही मुगल सम्राट और नवाब वजीर[1] से संधि हुई थी। साठ हजार शक्तिशाली मराठा सेना का खतरा उपस्थित था और बीस अफसर इस्तीफा देने को तैयार थे। स्थिति सचमुच गंभीर थी। पर क्लाइव ने दृढ़ निश्चय के साथ काम लिया। "प्रत्येक स्तीफा स्वीकृत करने का निश्चय किया गया; मद्रास से अफसर बुलाये गये। जिसपर तनिक भी विद्रोह का संदेह था उसे कलकत्ता भेजा जाना था। क्लाइव ने यह पता लगाने के लिए कि सैनिक नियंत्रण में हैं या नहीं, तीन ब्रिग्रेड केन्द्रों का स्वयं निरीक्षण किया। धीरे-धीरे अफसर स्वयं शान्त हो गये।"[2] जब विद्रोह शान्त हो गया तो क्लाइव ने बदले की भावना से काम नहीं किया। साधारण गल्ती वाले लोगों को अपने पदों पर आने की आज्ञा इस शर्त पर दी गई कि वे 'ईस्ट इंडिया म्युटिनी ऐक्ट' के अन्तर्गत एक त्रिवर्षीय समझौते पर हस्ताक्षर करें जिसके अनुसार यदि वे पुनः विद्रोह करेंगे तो वे मृत्यु सजा तक के भागी होंगे।

सैनिक अधिकारियों का विद्रोह तीन कारणों से असफल हो गया : प्रथम, क्योंकि क्लाइव ने शीघ्र कार्यवाही की; द्वितीय, क्योंकि विद्रोही अपनी सफलता के लिए पूर्ण आश्वस्त थे इस नाते उन्होंने गंभीरता से कार्यवाही नहीं की और उन्होंने अपने साथियों को विद्रोह में अपने साथ नहीं लिया, और तृतीय, क्लाइव का दृष्टिकोण बदले की भावना से ग्रस्त न होकर दयाभाव मिश्रित न्याय का था।[3] अपनी मृत्यु के समय कहा जाता है कि मीर जाफर-क्लाइव के लिए पांच लाख रुपये छोड़ गया था जिसे उसने सेना के अफसरों के लाभ में लगा दिया। जो घायल होने या बीमार होने के कारण स्तीफा देने को बाध्य हुए थे उन्हें ट्रस्ट बनाकर इस धन से कुछ लाभ पहुंचाया गया। इस तरह यह राशि उनकी तब तक सहायता करती रही जब तक कि पेन्शन की योजना लागू नहीं हो गई।

बाह्य नीति

विदेश नीति के क्षेत्र में क्लाइव को मुगल सम्राट शाह आलम और अवध के नवाब वजीर से निबटना था जो बक्सर के युद्ध के बाद ब्रिटिशों की दया पर पूर्ण रूपेण आश्रित हो चुके थे।

अवध वन्सीटार्ट के सामने धराशायी हो चुका था जिसे उसने मुगल सम्राट

---

1. अगले पृष्ठों में देखिये।
2. कैम्ब्रिज, पूर्वोद्धृत, पृ० 179।
3. मैलीसन : लार्ड क्लाइव,

को देने का वादा किया था। पर क्लाइव ने सोचा यह वादा गलत है क्योंकि शाह-आलम आन्तरिक शत्रुओ और बाह्य खतरों के संदर्भ में बड़े क्षेत्र पर अधिकार बनाए रखने योग्य नही है। इसलिए उसने शुजाउद्दौला और नवाब वजीर से समझौता किया जिसके फलस्वरूप अगस्त 1765 में इलाहाबाद की संधि संपन्न हुई।

इस संधि के अंतर्गत शुजाउद्दौला को पुन: अवध पर अधिकार मिला। चुनार का किला ब्रिटिशों को मिला और कड़ा व इलाहाबाद का क्षेत्र भी उससे ले लिया गया। नवाब वजीर को क्षतिपूर्ति हेतु 50 लाख रुपये देना था तथा मीर कासिम या समरु को संरक्षण या सेवा नही प्रदान करनी थी। एक रक्षा संधि के अंतर्गत ब्रिटिशों ने अवध की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया और सेना का व्यय नवाब वजीर ने अपने ऊपर लिया। ब्रिटिशों का मित्र बनारस का राजा नवाब वजीर के नेतृत्व में अपने क्षेत्र पर पुन: अधिकार प्राप्त करने में सफल हुआ।

क्लाइव इस संधि के अंतर्गत अवध क्षेत्र में ब्रिटिशों को फैक्ट्री स्थापित करने और व्यापार करने की अनुमति चाहता था। परनवाब वजीर ने यह कहकर इतराज किया कि उसके समक्ष कलकत्ता का उदाहरण है जहां 9 वर्ष पूर्व उनकी एक छोटी फैक्ट्री थी और अब उन्होंने बंगाल के तीन प्रान्तों को निगल लिया है। क्लाइव ने जोर नही दिया और इस शर्त को संधि में सम्मिलित नही किया गया।

क्लाइव ने इसके साथ ही मुगल सम्राट से आपसी लाभ के संबंध में मौखिक बातचीत की उसके बाद उसने दो प्रार्थना पत्र उसके समक्ष प्रस्तुत किया। एक दीवानी का अधिकार या बंगाल, बिहार व उड़ीसा में ब्रिटिशों को राजा का वसूली का अधिकार और दूसरा नजीमुद्दौला को इन प्रान्तो पर नवाब बनाए जाने की स्वीकृति।

"गृह और साधन विहीन सम्राट जो 1761 से व्यवहार में शुजाउद्दौला का बंदी था, गृह प्रदान किया गया—12 अगस्त 1765 को सम्राट ने क्लाइव के तम्बू में एक कामचलाऊ सिंहासन पर अपना स्थान ग्रहण किया और एक अधिकारिक समारोह में फोर्ट विलियम के प्रार्थना-पत्रों को उसने स्वीकृति प्रदान की।" इसके बदले में क्लाइव ने सम्राट को 28 लाख वार्षिक आय वाली कड़ा और इलाहाबाद की उपजाऊ भूमि प्रदान की। साथ ही शाहआलम को भारत सम्राट स्वीकार करते हुए कंपनी ने 26 लाख रुपये वार्षिक कर देने का निश्चय किया।

"किसी राजदरबार में यह परम हास्यास्पद क्रिया थी। एक ऐसा सम्राट, जिसके पास रत्ती भर भी साम्राज्य क्षेत्र नहीं था, जिसके पास अपने जीवन-यापन के साधन तक न थे और जो एक विदेशी व्यापारी कम्पनी पर आश्रित था, वह एक

हुक्मनामा जारी करता है। ऐसा वह स्वयं को या कम्पनी को ठगने के लिए नही कर रहा है बल्कि उस जनता को ठगने के लिए कर रहा है जो अज्ञानता में अब भी विश्वास करती थी कि राजसत्ता अब भी उसी के हाथ है और इसलिए राजस्व एकत्रित करने का अधिकार या इसे एकत्रित करने के लिए एजेन्ट नियुक्त करने का अधिकार उसी को है।"[1]

शाह आलम और अवध के नवाब वजीर के साथ क्लाइव ने इलाहाबाद का जो समझौता किया उसके संबंध मे अलग-अलग तरह के विचार व्यक्त किये गए हैं। सर आयर कूट का कहना था कि क्लाइव ने एक उपयुक्त अवसर गंवा दिया। असहाय शासको को आश्रय देना उचित नही था। शुजाउद्दौला को पुनर्स्थापित करने की जगह पर उसे अवध स्वयं ले लेना चाहिए था और मुगल शासक के नाम के बहाने उसे दिल्ली पहुंचकर उस पर अधिकार कर लेना चाहिए था।

दूसरे तरह के मत प्रस्तुत करने वालो का कहना है कि सम्राट के प्रति क्लाइव का व्यवहार अत्यधिक कठोर था। वन्सीटार्ट ने अवध उसे देने का आश्वासन दिया था। पर क्लाइव ने शुजाउद्दौला को अवध वापस करके वह समझौता तोड़ दिया।

पर क्लाइव का दृष्टिकोण यह था कि सम्राट के प्रति उसका व्यवहार न ही उदार था और न कठोर। यह कठोर इसलिए नहीं था क्योंकि वन्सीटार्ट ने अवध सम्राट को देने के लिए कोई लिखित समझौता नही किया था। और न ही इसमें उदारता थी क्योंकि सम्राट को उस उत्तरदायित्व का भारवहन कैसे सौंप दिया जाय जिसे पूरा करने की उसमे क्षमता ही न हो। अपने प्रस्थान से पूर्व एक सरकारी पत्र में उसने अपनी भावना व्यक्त करते हुए फिर लिखा था, कि "हमारा अधिकार प्रान्तों से सीमावद्ध होना चाहिए।" "हमें शान्ति स्थापना का भरसक प्रयास करना चाहिए: यही हमारी समृद्धि का आधार है। सम्राट या नवाब वजीर के क्षेत्र, जो संधि में अनुबद्ध है या किसी अन्य शक्ति के विरुद्ध है हमे आक्रामक रुख अपनी रक्षा की स्थिति को छोड़कर नही अपनाना चाहिए और सबसे अलग इसे भी ध्यान में रखना चाहिए कि दिल्ली विजय की योजना बेकार और फ़लहीन होगी और उससे सेना की बर्बादी भी होगी[2] और संभवतः इसे बगाल मे कंपनी के जीवन को हो खतरा पैदा हो जाएगा।"

क्लाइव के पक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत किये जा स[illegible] 1, बिहार, और उड़ीसा के प्रांत अभी [illegible] रूप से [illegible]

कंपनी किसी और बड़े साहसपूर्ण कार्य में लगे उसके पूर्व प्राप्त लाभ को संगठित करना था। दूसरे, कंपनी के आर्थिक और सैनिक साधनों पर पहले से ही बड़ा दबाव था। कंपनी मूल रूप से एक व्यापारिक संगठन था और जैसा कि क्लाइव ने डाइरेक्टरों को लिखा, "मेरी दृष्टि में और आगे बढने की योजना अत्यधिक महात्वाकांक्षी और वेतुकी है जिसे कोई भी गवर्नर और कौन्सिल होशोहवास में स्वीकार नही कर सकते जब तक कि कंपनी की पूरी व्यवस्था व लाभ को नया स्वरूप न प्रदान कर दें।"

तीसरे यदि बंगाल प्रान्त की रक्षा का उत्तरदायित्व सीधे अपने हाथ मे ले लिया जाता तो यह अत्यधिक महत्त्व का था। सैनिक दृष्टि से ब्रिटिश किसी साम्राज्य को संभालने के योग्य न थे। और चौथे, न ही इस तरह की कार्यवाही कंपनी के व्यापार हित के लिए लाभदायक थी जो इस देश में उसका मुख्य उद्देश्य था। पांचवें, भारत एक बड़ा देश था और एक बार यदि ब्रिटशि राजनैतिक शक्ति के विस्तार में लग जाते, तो एक विजय के बाद दूसरी विजय की ओर आगे बढते और इस तरह इससे कंपनी के संसाधनों पर ही प्रभाव न पडता बल्कि डाइ-रेक्टरों के धैर्य पर भी दवाव पड़ता जो उस समय इतना अधिक नही मालूम पडता था।

छठें, कंपनी की शक्ति का विस्तार इस समय भारतीय राजाओ की ईर्ष्या को उभारने में वडी सहायता कर रहा था जिनकी संगठित शक्ति का मुकाबला बड़ा कठिन था, उस समय तो यह काम और कठिन था जब ब्रिटिश यह जानते थे कि उनके द्वारा प्राप्त महानतम सफलता भारतीयों के आन्तरिक विद्वेष के कारण अधिक संभव हुई है, उनके अपने शक्ति और उच्च-सैनिक अनुशासन के कारण कम।

सातवें, मुगल सम्राट और नवाब वजीर के फरमान (आदेश) ब्रिटिश कपनी के लिए महत्त्वहीन हो सकते थे, पर पेरिस और हेग मे जहां यहां की स्थिति की सही जानकारी नही थी इन्हें भय और आदर की दृष्टि से देखा जाता था। एकाएक एक या दोनों शक्तियों की समाप्ति निश्चित रूप से युरोपीय शक्तियों में ईर्ष्या पैदा कर सकता था।

आठवें, यदि ब्रिटिश बंगाल की प्रशासन शक्ति अपने हाथ में ले लेते तो उन्हें पर्याप्त संख्या में प्रशिक्षित नागरिक कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती जो उतने उपलब्ध न थे। अधिक क्षेत्र का अधिग्रहण गम्भीर प्रशासकीय समस्याएं पैदा कर सकता था जिससे निपट पाना अत्यधिक कठिन हो जाता।

और फिर इंग्लैंड के कानून के अनुसार कंपनी एक व्यापारिक संस्था के रूप मे स्वीकृत थी। यदि क्षणों में यह अपना स्वभाव बदलकर क्षेत्रीय अधिकार करने वाली शक्ति हो जाती तो कानून की दृष्टि से वह उसके विरोध मे चली

जाती जिससे कठिन संवैधानिक समस्याओं का जन्म होता।

बंगाल भारत का उर्वरतम प्रान्त था। इसका धन और साधन कंपनी के भौतिक भूख को वर्षों तक शान्त करने के लिए प्रर्याप्त था। इस कारण अभी बाहर झांकने की क्या आवश्यकता थी?

द्वैध सरकार

हम बंगाल मे उन क्रान्तिकारी परिवर्तनों की चर्चा कर आये हैं जिसके कारण कंपनी की राजनैतिक और क्षेत्रीय शक्ति में अत्यधिक वृद्धि हुई जिसे वह न तो चाहती ही थी और न उसे संभालने के योग्य ही थी। इसका परिणाम हुआ द्वैध सरकार जिसने आवश्यक संधिकाल कंपनी को प्रदान कर उसकी योजनाओं को परिपक्व किया और अंततः उन्हें पूरा उत्तरदायित्व संभालने के योग्य बनाया। संक्षेप में उन परिस्थितियों का संक्षिप्त विवेचन समीचीन होगा जिसके कारण द्वैध सरकार की स्थापना हुई। इसके परिणाम क्या हुए, यह भी जानना आवश्यक है।

निजामत का अधिग्रहण

जिस षड्यन्त्र और कूटनीति के सहारे कंपनी ने बंगाल में शक्ति अर्जित की उसका विवेचन हम कर चुके हैं। हम देख चुके हैं कि किन परिस्थितियों में सिराजुद्दौला को पद से हटाकर मीर जाफर को कंपनी ने बंगाल की गद्दी पर पुनः बैठाया और उसके बदले चौबीस परगना का अनुदान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त जो इनाम उन्हें मिला उसमें से ३,३४,००० पौण्ड तो क्लाइव को ही प्राप्त हुआ। मीर जाफर के पास अच्छे प्रशासन करने की बुद्धि न थी और जब ब्रिटिशों द्वारा उत्पन्न कठिनाइयों से वह त्रस्त हो गया जिसके अंतर्गत वे वार्षिक कर के नाम पर चाहे खजाना खाली हो या भरा, वे उसको हर तरह निगलने को तैयार थे तो दोनों के संबन्ध बिगड़ने लगे। इस पर कंपनी ने पुनः षड्यन्त्र करने का निश्चय किया। मीर जाफर को पद से हटाकर उसके दामाद मीर कासिम को गद्दी दिलाई गई। 1760 मे मीर कासिम पर एक सन्धि आरोपित की गई जिसके द्वारा नये नवाब को बर्दमान, मिदनापुर और चटगांव के जिले कंपनी को देना पड़ा। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों के समर्थन के लिए उसे बहुत-सा धन भी देना पड़ा। पर कंपनी जिसने राजा को बनाने-बिगाड़ने की शक्ति का रसास्वादन कर लिया था, कितना भी कुशल शासक क्यों न हो, उसे पद पर शान्ति से बने रहने देने के पक्ष में नहीं थी। जल्दी ही नये नवाब के साथ [illegible] कठिनाइयां प्रारम्भ हो गईं और कंपनी ने यह अनुभव किया कि मीर जाफ[illegible] से अच्छा था और पुनः इस बात का षड्यन्त्र [illegible]।

किया जाय। 1763 में मीर जाफर बंगाल की गद्दी पर वापस आ गया और कंपनी को क्षेत्र और धन देने का नाटक पुनः खेला गया।

अंग्रेजों ने शनैः-शनैः कूटनीतिक षड्यन्त्र का जाल फैला दिया और फरवरी 1765 में जब मीर जाफर की मृत्यु हुई तो उन्हें इस क्षेत्र में पुनः एक अवसर मिला। मीर जाफर के दूसरे लड़के नजीमुद्दौला को गद्दी प्रदान की गई और उसपर भी एक नयी संधि आरोपित की गई जिसके द्वारा अंग्रेजों को वह मूल्य प्राप्त हुआ जिसने नवाब की शक्ति को घटाकर शून्य कर दिया। इसके अंतर्गत ब्रिटिशों को निजामत का अधिकार प्राप्त हुआ जिसके बदले कंपनी को 50 लाख रुपये की वार्षिक धनराशि नवाब को देनी पड़ी। नवाब को आंतरिक शांति की स्थापना, कर वसूलने और आत्म-प्रतिष्ठा हेतु ही सेना रखने का अधिकार प्राप्त हुआ। *नवाब के अधिकारियों की नियुक्ति और नियंत्रण भी* अंग्रेजों के हाथ में ही सौंप दिया गया।

यहां पर यह बताना आवश्यक है कि तथ्य में कंपनी को प्राप्त इस अधिकार की क्या महत्ता थी।

बंगाल के नवाब के पास प्रयोग हेतु दो शक्तियां थी: (1) दीवानी जिसके अंतर्गत राजस्व और नागरिक न्याय सम्बन्धी कार्य आते थे और (2) निजामत जिसके अंतर्गत आपराधिक और सैनिक शक्ति आती थी। जब केन्द्र में मुगल शक्ति का पतन नहीं हुआ था तब भी बंगाल के सूबेदार को निजामत के अधिकार प्राप्त थे; जबकि दीवानी विभाग के लिए सम्राट द्वारा नियुक्त एक दीवान अलग से होता था। जब बंगाल का सूबेदार स्वतंत्रता की घोषणा करता तो वह दोनों अधिकार अपने हाथ में ले लेता। वैसे सिद्धान्ततः दीवानी अधिकार वह सम्राट की ओर से ही ग्रहण करता था। इसलिए स्पष्टतः नवाब का निजामत अधिकार का परित्याग बंगाल में ब्रिटिश प्रभुसत्ता की स्थापना की ओर एक महत्त्वपूर्ण कदम था।

दीवानी का अधिग्रहण

1763 में जब मीर कासिम बंगाल से भागा तो उसने यह निश्चय कर रखा था कि वह अंततः भाग्य भरोसे अपने को छोड़ने से पहले एक बार पुनः अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करेगा। उसने अवध के नवाब वजीर और सम्राट शाह-आलम से संबन्ध स्थापित किया और तीनों शक्तियों ने मिलकर ब्रिटिशों के विरुद्ध प्रस्थान किया। मई 1765 में बक्सर में एक लड़ाई हुई जिसमें मित्र राजाओं की बुरी तरह शिकस्त हुई और ब्रिटिशों की शक्ति व प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि हुई। कुछ ही दिन बाद भगोड़े सम्राट शाह आलम को क्लाइव ने गद्दी-प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित किया। उसके मस्तिष्क में उच्च आकांक्षाएं

उभारने के फलस्वरूप अगस्त 1765 में क्लाइव ने उससे एक समझौता करने में सफलता प्राप्त की जिसके अंतर्गत कंपनी को 26 लाख रुपये वार्षिक पेन्शन और कड़ा व इलाहाबाद सम्राट को देने के बदले बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी का अधिकार मिला। एक भगोड़े शासक द्वारा प्रदत्त यह दीवानी का अधिकार अर्थहीन था और डॉ० ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में इसकी महत्ता इस बात में थी, कि "शाह आलम सैद्धान्तिक और वैधानिक दृष्टि से सम्राट था जिससे कंपनी की इस सन्धि को वैधता की शक्ल प्राप्त हो गई।"[1] यदि कंपनी को प्राप्त दीवानी की शक्ति वैध थी तो कंपनी को इसका नवाब पर प्रयोग करने का अधिकार था जो अब तक स्वय कंपनी के हाथ का कठपुतली बन चुका था।

इस तरह निजामत और दीवानी का संपूर्ण अधिकार बंगाल में अंग्रेजों को प्राप्त हो गया। एक क्रांति हो चुकी थी जिसके लिए अभी भी तैयारी नही थी क्योंकि न तो उसके पास शक्ति थी और न ही इच्छा कि वह सरकारी कर्तव्यों का निर्वाह करे। इन्ही परिस्थितियों में क्लाइव ने जिस तरह की सरकार स्थापित की उसे द्वैध शासन का नाम दिया जाता है। इसके अंतर्गत बंगाल के नवाब को अपराध, नागरिक व पुलिस प्रशासन का कार्य कंपनी की निश्चित धनराशि के बदले में करना पड़ता था। पर इसकी शक्ति अंततः ब्रिटिशो के हाथ में निहित रहती थी जो क्षेत्र की बाह्य रक्षा के लिए भी उत्तरदायी होते थे। राजस्व एकत्र करने के लिए भी तत्कालीन प्रशासकीय मशीनरी को बना रहने दिया गया पर राजस्व क्षेत्र का अंतिम अधिकार कंपनी के पास चला गया। स्पष्टतः दो अधिकारी हो गये—एक देशी और दूसरा विदेशी। विदेशी अधिकारी सर्वशक्तिमान था जबकि देशी उसकी छाया मात्र था। यह ऐसी सरकार थी जिसके अतर्गत उत्तरदायित्व देशी प्रशासकों पर आता था जबकि अधिकार का प्रयोग ब्रिटिश करते थे। दूसरे शब्दों में अधिकार उत्तरदायित्व से एकदम अलग कर दिया गया था। इस तरह की व्यवस्था थी जिसे क्लाइव का द्वैधशासन कहते थे।

द्वैध सरकार की कार्यप्रणाली

नयी शासन प्रणाली में भी बंगाल की सरकार 1756 के पूर्व की ही भांति बनी रही। 1769 में एक नियम के अंतर्गत कौन्सिल के नागरिक अधिकार की महत्ता को स्वीकार ही नही किया गया बल्कि इस पर जोर भी दिया गया। इस अधिकार को कौंसिल अपने किसी कर्मचारी को भी सौप सकती थी। 1770 में कौंसिल का संविधान एक बार पुनः पारिभाषित किया गया। कौंसिल में गवर्नर सहित 9 सदस्य होते थे। गवर्नर, सेनापति और तीन वरिष्ठतम कौंसिल के

1. प्रसाद, डॉ ईश्वरी : ए हिस्ट्री आफ माडर्न इंडिया, पृ० 67।

सदस्यों से 'सेलेक्ट कमेटी' का निर्माण होना था जिसे युद्ध और संधि करने का अधिकार प्राप्त था। पर भारत के किसी शक्ति के साथ व्यापारिक या राजनैतिक संधि के मामले में अंतिम स्वीकृति पूरी सभा से प्राप्त करनी होती थी। सेलेक्ट कमेटी की ओर से पूरा पत्र व्यवहार गवर्नर को करना था पर इसकी जानकारी सेलेक्ट कमेटी को भी होती रहनी थी और इसकी प्रतिलिपियां कंपनी को भी जानी थी।

क्लाइव द्वारा स्थापित द्वैध सरकार के कई लाभ भी थे—

(1) जैसी स्थिति थी कंपनी के कर्मचारियो को भारतीय प्रशासकीय समस्याओं का पर्याप्त ज्ञान और अनुभव नही था। वे भारतीय प्रथाओ और भाषाओ से भी अनभिज्ञ थे और अभी तक व्यापारिक के रूप में रहते आने के कारण उनसे अपेक्षा नही थी कि वे एकाएक कुशल प्रशासक हो जायेंगे। स्पष्ट रूप से इन परिस्थितियों में यह उचित ही था कि कंपनी ने पूर्ण प्रशासकीय उत्तरदायित्व ग्रहण नही किया।

(2) इसके अतिरिक्त कंपनी अपने देश मे अब भी मुख्य रूप से एक व्यापारिक प्रतिष्ठान के रूप में स्वीकार की जाती थी। इसके लिए बंगाल में प्रत्यक्ष क्षेत्रीय प्रभुसत्ता की प्राप्ति निश्चित ही वैधानिक अड़चने ला सकती थी।

(3) एक अन्य कारण से भी इस समय द्वैध शासन स्वागत योग्य था। भारत में कंपनी के युरोपीय विरोधियों की शक्ति पूर्णतया समाप्त नही हुई थी और यदि कंपनी बंगाल मे क्षेत्रीय प्रभुसत्ता प्राप्त करने का प्रयास करती तो इससे निश्चित ही विरोधी शक्तियां ईर्ष्या व विरोध करतीं जिसके लिए कंपनी तैयार नही थी।

(4) इस तरह की क्षेत्रीय शक्ति प्राप्ति की स्थिति में आंग्ल-मराठा संघर्ष की संभावना से भी इन्कार नही किया जा सकता था। संगठित मराठा भारत में अब भी एक प्रमुख शक्ति थे और उनसे संघर्ष अभी जितना दिन संभव हो, बचाया जाना था।

(5) फिर कंपनी के इस शक्ति हस्तान्तरण को छिपाना आवश्यक था जिससे कि बंगाल के लोगो को यह लगे कि वे ऐसे लोगों के दास है जिनके प्रशासन का स्वरूप अभी स्पष्ट ही नही है। इसीलिए द्वैध सरकार नामक शब्दजाल की खोज की गई जिससे भारतीय जनता, युरोपीय शक्तियो और इंग्लैंड के अधिकारियो की आख मे धूल झोंकी जा सके।

(6) इसने कंपनी और नवाब की शक्ति और स्थिति को क्रमशः पारिभाषित किया जिससे भविष्य में पुनः दोनो के बीच संघर्ष की संभावना समाप्त हो गई। इस परिभाषा के अभाव मे बंगाल की राजनीति हिंसावादी क्राति के आश्रित हो गई थी। एक नवाब को हटाकर दूसरे को स्थापनापन्न किया गया और रुधिरमय

युद्ध हुए। इस प्रथा को प्रारम्भ कर सदा के लिए इस तरह के खतरों से मुक्ति मिल गई। इस तरह द्वैध सरकार के ये गुण थे जिसका उद्देश्य बंगाल का पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त करना था'''जहां तक कि औपचारिक प्रभुसत्ता को असुविधा प्रदान किये बिना कंपनी को लाभ प्राप्त होता रहे।"[1]

पर इस प्रथा से कई हानियां भी थी—

(1) इस तरह की स्थापित सरकार मे कंपनी कर्मचारियों के अधिकार और कर्तव्य को पूर्णतया अपरिभाषित रखा गया। नवीन प्रतिज्ञा-पत्र भराकर यह चेष्टा की गई कि वेतन के अतिरिक्त स्थानीय नेताओं से प्राप्त लाभ, व्यापार और भेंट के माध्यम से वे अपनी आय न बदलें। पर चूंकि कंपनी के कर्मचारियो का वेतन बहुत कम था इसलिए इस प्रयास में सफलता नही मिली। क्लाइव ने इस समस्या के समाधान के लिए एक व्यापार सोसाइटी का संगठन किया जिसे नमक का एकाधिकार सौप दिया गया जिससे प्राप्त लाभ सैनिक और असैनिक अधिकारियो के वेतन की कमी को पर्याप्त मात्रा में पूरा कर देते थे। पर डाइरेक्टरो ने इस प्रस्ताव को अमान्य कर दिया और कर्मचारियो की स्थिति पुरानी तरह से ही संदिग्ध बनी रहने दी गई। कंपनी के पास उन्हें नियन्त्रण की ओर ले जाने का कोई साधन नही था इसलिए वे लाभ, व्यापार और अवैध धन द्वारा अपने को संपन्न बनाते रहे। कर्मचारियों की बेहतर छोटी आर्थिक स्थिति उनकी नौकरी को और आकर्षक बना देती और कपनी मे नौकरी प्राप्ति के लिए राज-परिवार तक से एस्तुतियां लेकर उनके संबन्धी आने लगे। कंपनी कर्मचारियो द्वारा भारत से लाया गया धन इंग्लैंड के निम्न सदन मे एक स्थान प्राप्त करने में भी प्रयोग में लाया गया जिससे सामतवादी शक्तियां गंभीर रूप से चोट खा गयी। कपनी के पुराने धनी कर्मचारियों का उद्धत स्वभाव भी सहन करने योग्य न रहा था।

(2) कंपनी के कर्मचारियो की सपन्नता ने स्वाभाविक रूप से कपनी के मालिकों के मन मे यह भावना पैदा की कि उनकी भागीदारी बढ जाय। 1766 में उन्होने इसे छः से बढाकर 10 प्रतिशत करने को कहा और 1767 में इसे बढाकर 12½ प्रतिशत करने को कहा। वैसे तो संसद ने हस्तक्षेप करके 12½ प्रतिशत की मांग को रोक ही नही दिया बल्कि कंपनी मालिकों के इस तरह के अपमानजनक मांगों पर प्रतिबध लगाने हेतु कुछ और कार्यवाहिया की पर फिर भी बंगाल का शोषण इस तरह के आधारहीन मांग के कारण आगे भी होता रहा।

(3) राज्य स्वयं भी इसमे पीछे नही रहा। 1767 में दो वर्षों तक के लिए 4 लाख पौंड वार्षिक की दर से कंपनी को उस अधिकार के बदले देने को कहा गया जिसके अंतर्गत वह तत्कालीन राजस्व और क्षेत्र प्राप्त करने का अधिकार बनाये

---

1. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 5, पृ० 177।

रखे। कंपनी के ऊपर लाभ प्राप्त करने में भागीदार होने के लिए मांग का दबाव इतना अधिक था कि बोल्टस के शब्दों मे "जब राष्ट्र फल के पीछे पड़ा हुआ था, कंपनी और उसके सहयोगी पेड़ ही उखाड़ने में जुटे थे।"[1] कंपनी को 40 हजार कर्मचारियो की सेना का निर्वाह करना पड़ता था, भारतीय राजाओं को वार्षिक इमदाद देनी पडती थी और सम्राट को 10 लाख पौण्ड के अतिरिक्त गृह सरकार को भी शक्ति और अधिकार बनाये रखने के लिए बहुत धन प्रदान करना पड़ता था। पर इनके साधन उतने अधिक न थे जितना सोचा जाता था। यह जल्दी ही 60 लाख पौण्ड का कर्ज हो गया। कंपनी राजस्व वार्षिक बजट से कम हो गया और इसमे *वृद्धि की जगह कमी प्रारम्भ हो गई। भूमि भी जल्दी-जल्दी* अलग-अलग लोगों के हाथों में जाने लगी जिससे खेती मे पतन प्रारम्भ हो गया और फलस्वरूप कंपनी का राजस्व भी घट गया।

(4) राजनैतिक और व्यापारिक लाभो के रुचिकर सामंजस्य ने भी भारतीय जनता को कुशल प्रशासन नही प्रदान किया। उत्तरदायित्व नवाब के कधे पर रख दिया गया और अधिकार कौसिल के गवर्नर के हाथ मे दे दिया गया। केयी ने ठीक ही लिखा है कि इसने "अव्यवस्था को और दुर्व्यवस्थित कर दिया और भ्रष्टाचार को और भ्रष्ट।"[2] कंपनी केवल राजस्व एकत्रित करने से अपने को सम्बद्ध रखती थी जबकि जनता का हित नवाब और अन्य भारतीय अधिकारियों का सिर-दर्द था। इन परिस्थितियों में किसानों का शोषण विस्तार पा गया और मुर्शिदाबाद के प्रेसीडेण्ट ने 1769 में गलत नही लिखा होगा : "*यह क्षेत्र जो अत्यधिक निरंकुश और स्वेच्छाचारी सरकार के अंतर्गत फला-फूला, बर्बादी की ओर आगे बढ रहा है*..."[3]

क्लाइव के उत्तराधिकारी गवर्नर द्वैध सरकार के संस्थापक की भांति बुद्धिमान न थे। वेरल्स्ट ने 1769 मे अंग्रेज सुपरवाइजरो को प्रत्येक जिलों में स्थानीय कर्मचारियों के मार्ग दर्शन व समझाने हेतु नियुक्ति करके स्थिति को सुधारने का प्रयास किया। पर इस विधि को असफल ही होना था क्योंकि प्रथम तो ये नये सुपरवाइजर यह सोचने लगे कि इससे बेहतर जिले के व्यापार का नियन्त्रण और नहीं हो सकता है और दूसरे उनका हस्तक्षेप और स्वार्थ स्थानीय कर्मचारियों द्वारा विरोध का विषय बन गया। इसके अतिरिक्त 1770 मे स्थापित मुर्शिदाबाद और पटना की राजस्व नियन्त्रक कौसिले तथा 1771 में स्थापित कलकत्ता की राजस्व नियन्त्रक समिति तथा लेखा नियन्त्रक समिति भी स्थिति में किसी प्रकार कोई

---

1. बोल्ट्स : कन्सीडरेन्स आन इण्डियन अफेयर्स, पृ० 79।
2. केयी सरजान : ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ द ईस्ट इण्डिया कम्पनी, पृ० 231।
3. रम्जे म्योर : मेकिंग आफ ब्रिटिश इण्डिया, पृ० 93।

सुधार न ला सकी।

सरकार का वह विभाग जिसको सबसे अधिक इस कारण हानि हुई वह न्यायपालिका थी। स्थानीय लोगों की परम्पराओं से अनभिज्ञ कंपनी के अंग्रेज कर्मचारी प्रायः अपना कुटिल हस्तक्षेप करते रहते थे और न्याय के कार्यक्षम्य प्रशासन का कार्य करना ही दूभर कर देते थे। नवाब के कर्मचारी भयाक्रान्त थे और अंग्रेजों के व्यक्तिगत लाभ प्राप्ति के आतंक से भी दुःखी थे।

(5) भारतीय कृषि की ही भांति भारतीय उद्योग की भी हानि हुई। भारतीय सिल्क कारीगर कंपनी के फैक्ट्री में कार्य करने को बाध्य किये गये। कच्चे सिल्क के उत्पादन पर अधिक जोर दिया गया और अच्छे सिल्क पर कम। परिणाम स्वाभाविक था। 1770 मे पूरा बंगाल भयानक दुर्भिक्ष का शिकार हुआ। पूरी जनसंख्या जो डेढ करोड थी, उसका भाग $\frac{1}{3}$ जनसंख्या कालकवलित हो गई।

सहायक नवाब ने कर इसलिए 10 प्रतिशत बढ़ा दिया जिससे मरे हुए व्यक्तियों से जो क्षति होनी थी उसकी पूर्ति हो जाय और कंपनी के लोग आवश्यक वस्तुओं के व्यापार में लाभ प्राप्त करने में जुटे थे।

दुर्भिक्ष की विभीषिका और कष्ट की किसी ने चिन्ता नहीं की जिसका हृदय विदारक विवरण बाद मे जॉन शोर ने निम्न तरह से किया :

वह प्रचण्ड विभीषिका दुर्भिक्ष की, दिग्भ्रमित जन देख मृत, मृतप्राय को,
गीदढ़ो की चीख, गृद्धों की विषमरव, गूंजता था स्वर भयानक कुक्कुरो का,
चिलचिलाती धूप में जो,
अनाक्रान्त शिकार हित संघर्षरत थे।[1]

द्वैध सरकार की समाप्ति

प्रत्येक व्यक्ति कंपनी के मूल्य पर धनवान होता जा रहा था जबकि कंपनी स्वयं ऋणग्रस्त होती जा रही थी। डाइरेक्टरों का विचार था कि घटते हुए लाभ का कारण था स्थानीय एजेण्टों द्वारा भारत में राजस्व की अवरुद्धता। इसीलिए 1769 में जिलों के भारतीय अधिकारियो के ऊपर अंग्रेज सुपरवाइजरो की नियुक्ति की गई। पर जैसा पहले ही बताया जा चुका है यह योजना असफल हो गई और अंततः 1771 मे डाइरेक्टरों ने यह निश्चय किया कि वह दीवान का अधिकार ग्रहण करे और भारतीय राजस्व के प्रबंध और एकत्रित करने का पूर्ण उत्तरदायित्व अपने हाथों में ले ले। वारेन हेटिंग्स इस कार्य के लिए नियुक्त किया गया। लार्ड थिनलो के मतानुसार वह "द्वैध सरकार का सम्पूर्ण ढांचा बर्बाद करने आया था—उसे बंगाल सरकार के लिए एक विधि बनानी थी जिसके लिए

1. उद्धृत फिलिप : द मेन हू रूल्ड इंडिया, द फाउन्डर्स, पृ० 138।

अति सामान्य निर्देश दिये गए थे कि मैं ठीक से कह सकता हूं कि सारी योजना उसी के निर्णय शक्ति व क्षमता पर छोड दी गई थी "।[1]

भारत पहुंचने के तुरन्त बाद हेस्टिंग्स ने नायब दीवान को उसके पद से हटा कर उसकी जगह एक प्रेसीडेन्ट की नियुक्ति कर दी और कौंसिल को 'बोर्ड आफ रेवेन्यू' मे बदल दिया । कोषागार को हटाकर मुर्शिदाबाद से कलकत्ता कर दिया गया और जिलों के सुपरवाइजरों को कलेक्टर बना दिया गया। स्थानीय अधिकारियों का, जिन्हें दीवान कहा गया, घोषित कर्तव्य कलेक्टरों की सहायता करना हो गया । प्रत्येक जिले मे दीवानी अदालत नामक एक नागरिक न्यायालय कलेक्टर के अधीन स्थापित की गई जिसकी सहायता भारतीय जिला अधिकारी करते थे । प्रत्येक जिले में एक फौजदारी न्यायालय भी स्थापित की गई जिसका नेतृत्व कलेक्टर के निरीक्षण में काजी करता था और उसे एक मुफ्ती और दो मौलवियों से सहायता मिलती थी। मुख्य केन्द्र पर दो बड़ी अदालतें स्थापित की गई। सदर दीवानी अदालत का नेतृत्व गवर्नर और उसकी कौंसिल के हाथ मे था, और सदर निजामत अदालत गवर्नर व उसके कौंसिल के नियंत्रण मे दारोगा-ए-अदालत के नेतृत्व में रखी गई जिसे प्रधान काजी, मुफ्ती और तीन प्रमुख मौलवियो से सहायता मिलती थी। सदर दीवानी अदालत जिला दीवानी अदालतों की अपीलें सुनती थी जबकि जिला फौजदारी अदालतो की अपीलें सदर निज़ामत अदालत में पहुचती थी। हेस्टिंग्स द्वारा लाये गये परिवर्तन इस तरह के थे जिसका अर्थ था सरकार द्वारा कंपनी के माध्यम से सारी शक्ति की प्राप्ति। बंगाल में क्रांति इस तरह पूर्णता को पहुंची ।

पिट के शब्दों में "जन्म-जात सेनापति" क्लाइव एक लिपिक से बदलकर होने वाला एक अप्रशिक्षित सैनिक था जिसने अपने सैनिक योजना के भिज्ञता के अभाव मे भी उतावलेपन और उत्साह के आधार पर अपने जोखिमभरे सैनिक कार्यवाहियों मे ब्रिटिशों के लिए इतने आश्चर्यजनक कार्य किये जिससे कि भोचक्के होकर वे साम्राज्य निर्माण की कार्यवाही में जुट गये जिसकी कि उन्होंने पहले कभी कल्पना भी नही की थी । 1751 मे अर्काट का उसका घेरा और सुरक्षा जिसने डूप्ले की दक्षिण में सारी योजना धूल-धूसरित हो गई, 1756 में मराठों को सहयोग देकर उसका समुद्र दस्यु केन्द्र घेरिया को बर्बाद करना और पुनः कलकत्ता पर उसकी पुनर्विजय और प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला की पराजय ने उसके सेनापति के गुणों का प्रदर्शन किया जिससे यह पता लगा कि परिस्थिति की तत्काल समझ उसे युद्ध मे शक्ति के आधार पर ही विजय नहीं दिला सकती थी बल्कि शत्रुपक्ष में षड्यन्त्र के द्वारा या भेद-भाव के बीज बोकर या आग लगा-

1. उद्धृत, फिलिप : द मैन हू रूल्ड इंडिया, द फाउन्डर्स, पृ॰ 96।

कर भी वह विजय प्राप्त कर सकता था।

क्लाइव यदि बंगाल की प्रथम गवर्नरी में भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की आधारशिला रख सका था तो दूसरी गवर्नरी में उसने उसे सावधान पर कर्मठ राजनेता की तरह और अधिक शक्ति प्रदान की थी। भ्रामक लाभों के लोभ में न पड़कर उसने उचित अवसर की प्रतीक्षा कर उसकी परिपक्वता व शक्ति के आधार पर आगे बढा। अवध के नवाब वजीर और सम्राट शाह आलम से जो समझौते उसने किये वे बुद्धिमत्तापूर्ण थे। ब्रिटिशों और मराठों के बीच अवध एक बेहतर मध्यस्थ राज था। बगाल के अधीन इसके एक ब्रिटिश क्षेत्र होने में उतना अच्छा न रहता। वह इस पर अधिकार और दिल्ली की ओर बढने को जोखिमपूर्ण कार्य मानता था, इसीलए उसने इस संबंध में कोई जोखिम भरा कदम नही उठाया।

बगाल के प्रशासन का कार्यभार ग्रहण करने पर भी उसका उत्तरदायित्व से अलग बने रहना उसका एक कुशल राजनेता का कदम था जिसकी प्रशंसा ही की जा सकती थी। इस समय भारतीयो और ईर्ष्यालु योरोपीयों दोनों के लिए एक धक्का बर्दाश्त करने वाली शक्ति की आवश्यकता थी और बंगाल में क्लाइव की द्वैध सरकार ने इसकी पूर्ति की।

बंगाल में उसकी प्रशासकीय सफलताएं भी कम प्रशंसनीय न थी। सर विलियम हटर के शब्दों में वह कंपनी सेवा मे भ्रष्टाचारपूर्ण लाभों को रोककर इसे शुद्ध करना चाहता था और साथ ही उन्हे उचित साधनों से तर्कसम्मत वेतन देना चाहता था।"[1] इस दिशा में उसने कुछ ऐसे साहसपूर्ण कदम उठाये जिसके फलस्वरूप हिंसात्मक विरोधों और विद्रोहों के बावजूद भी वह अपने कदम वापस लेने को तैयार नही हुआ। यदि उसकी नमक व्यापार पर एकाधिकार की नीति इस कारण नही स्वीकार की गई कि इसमें कुछ बुराई थी तो इससे यह तो स्पष्ट होता ही है कि क्लाइव सैनिक और असैनिको मे जहां आज्ञाहीनता और अनियमितताओं को कड़ाई से दबाने के पक्ष में था वही वह उनके हित की भी चिन्ता रखता था। क्लाइव अति शीघ्र कार्य करता था पर उसमें बदले की भावना न थी।

फिर भी क्लाइव की अपनी बुराइयां थी। "उसकी मर्मान्तिक दृष्टि को अत काभी इस तरह भान हो जाता था कि साधन का प्रश्न महत्वहीन हो जाता था। वह मूल रूप से ईमानदार था पर उसका एकतरफा मस्तिष्क एक बार में एक ही समस्या देखता था और उसका अहंभाव उसे तत्कालीन आवश्यकताओं के

---

1 हन्टर, सर डब्लू-डब्लू० : अनाल्स आफ रूरल बगाल।

कारण असंगतिपूर्ण विधि को अपनाने से रोकता था।"[1] सिराजुद्दौला के विरुद्ध उसका षड्यंत्र और जिस निम्न स्तर पर जाकर उसने जाली हस्ताक्षर कराये इस बात का प्रमाण है कि नैतिक दृष्टि से वह अभी बहुत पीछे था।

व्यक्तिगत रूप से क्लाइव बहुत लालची था। इसका प्रमाण यह है कि दूसरी बार बंगाल जब वह भ्रष्टाचार दूर करने के लिए आया और इसके विरुद्ध कदम उठाये तब भी वह व्यक्तिगत लाभ के लिए भ्रष्ट बना रहा। राम गोपाल ने लिखा है कि वह "एक माह तक भी अपनी इस बुराई को नियंत्रण में नहीं [illegible] उसने एक योजना तैयार की जिसके अन्तर्गत उसे महीने-महीने [illegible] मिलना था। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स द्वारा निश्चित वेतन व भत्ता [illegible] था वह अलग से।"[2]

लार्ड क्लाइव बंगाल के विनाश का भी उत्तरदायी था। [illegible] स्वीकार करने की प्रथा का प्रारंभ किया और भ्रष्टाचार को [illegible] उसी के माध्यम से भारत एक विदेशी शासन की [illegible] उठा।

क्लाइव व्यक्तिगत भावुक स्वभाव और [illegible] बीमारी से ग्रस्त होकर एक टूटे दिल व्यक्ति के रूप में 1767 [illegible] इंगलैण्ड पहुंचते ही वह पुनः संसद सदस्य हो गया [illegible] हुई और प्रशंसा भी। संसद में जनरल बुरगोयन [illegible] लाया जिसकी तीन धाराओं में उन्होंने उसके बंगाल [illegible] कार्य का पर्दाफाश करते हुए बताया कि इसमें [illegible] तो अंततः सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पास हो गया कि [illegible] महान और उत्तम सेवाएं भी देश को प्रदान की हैं।" [illegible] आलोचना हुई और कीचड़ उछला उससे [illegible]

संसद में जो व्यवहार उसके साथ हुआ [illegible] शरीर दोनों पर दिखाई पड़ने लगा। "1767 [illegible] लिखने में भी असमर्थ हो गया और [illegible] से बीमार हो गया जिसके दर्द [illegible] करना पड़ा...पर उसका जीवन [illegible] मानने लगा और निराश हो गया [illegible] उसके मस्तिष्क पर प्रभाव [illegible] नवम्बर 17[illegible]

1. स्मिथ, बी० ए० : द [illegible], पृ० 479।
2. राम गोपाल : पूर्वोद्धृत, पृ० [illegible]

49वे जन्म दिवस के बाद उसने बर्कले स्क्वायर भवन की बैठक में अपना गला काट डाला। उसे वैस्टमिन्स्टर अबे में दफना दिया गया।"[1] शेली ने उसके विषय मे लिखा है—

> जग की काली छाया से दूर उड गया वह—
> जिसका संस्पर्श नही कर सकती है अशांति,
> विद्वेष, घृणा, निन्दा, पीड़ा—जनकथित ज्योति—
> पीडित कर सकती नही पुन: यह विश्व-भ्रान्ति।[2]

---

1. मेरसे, विसकाउन्ट : द वायसरायज एण्ड गवर्नर जनरल्स आफ इंडिया, लन्दन, 1949, पृ० 13।
2. एडवर्ड गिलियट : हीरोज आफ माडर्न इंडिया, पृ० 40।

14
हैरी वेरल्स्ट

हैरी वेरल्स्ट 1734 के लगभग एक प्रभावशाली परिवार में पैदा हुआ। उसके पितामह रूसी कम्पनी के डाइरेक्टर थे और उस स्थान पर उसके पिता को भी रखा गया जिसने कुछ समय के लिए ईस्ट इण्डिया कंपनी के डाइरेक्टर के पद पर भी काम किया। पर हैरी स्वयं अपने चाचा, जो एक चित्रकार था और ईस्ट इंडिया कंपनी की सेवा मे था, विलियम वेरल्स्ट द्वारा पाला-पोसा गया। यह चाचा का प्रभाव और संबंध ही था जिसने हैरी के लिए ईस्ट इण्डिया कपनी मे नौकरी दिलाई और वह 1750 में बंगाल पहुंचा।

हुगली नदी के पास सिराजुद्दौला के क्लाइव से पराजय के बाद और 1757 मे दोनों के बीच संधि पर हस्ताक्षरोपरान्त वेरल्स्ट को लखीमपुर की ब्रिटिश फैक्ट्री का नेतृत्व प्रदान किया गया। 1760 मे वन्सीटार्ट की अध्यक्षता मे उसे कौन्सिल का सदस्य बनाया गया। वेरल्स्ट को वन्सीटार्ट का मीर जाफर को पद से हटा कर उसके दामाद मीर कासिम को बंगाल मसनद देना पसन्द नही आया क्योंकि उसमे उसे स्वतन्त्रता का स्वभाव नजर आया जो ब्रिटिशों के हाथ मे कठपुतली की तरह कार्य करेगा संभव नही था। परन्तु जब मीर कासिम नवाब हो गया तो उसे लगातार कठिनाइयों में डाला जाना भी उसे पसन्द नही था। इसी कारण वह जॉन जान-स्टोन और विलियम हे जैसे कौन्सिल सदस्यों के दृष्टिकोण का प्राय: विरोध करता रहा जिनका दर्शन मात्र व्यक्तिगत लाभ था। वह कंपनी के कर्मचारियों की अवैध व्यापारिक कार्यवाहियों को भी पसन्द नही करता था और प्राय: वन्सीटार्ट के परि-स्थिति से निपटने की नीति का समर्थन करता था।

जब मीर कासिम ने चटगांव, बर्दमान और मिदनापुर के तीन जिलों को कपनी को स्थाई रूप से प्रदान कर दिया तो इन सभी जिलों में वेरल्स्ट को बारी-बारी से जिला अधिकारी बनाया गया। 1761 से 1766 के बीच इस तरह वेरल्स्ट ने काफी अनुभव प्राप्त कर लिया। 1765 में जब क्लाइव ने बगाल में द्वैध सरकार की स्थापना की तब वेरल्स्ट ने इसका पूरा समर्थन किया। क्लाइव द्वारा डाइरेक्टरों को भेजे जाने वाले पत्र मे उसने भी हस्ताक्षर किया था जिसमें लिखा था : "हमे ······नवाब के नाम की छाया में छिपा हुआ वसंत माना जाय जो इस विस्तृत सरकार की मशीन को मूल संविधान में हिंसात्मक परिवर्तन बिना गति प्रदान करता

भारतीयों को अपनी योग्यता प्रदर्शित करने का इससे अच्छा अवसर क्या हो सकता था पर परिस्थिति की चुनौती को स्वीकार करने की जगह वे स्वयं लालच और भ्रष्टता के चक्कर में पड़ गये। ग्रान्ट की विचारधारा कंपनी कर्मचारियों की उस विचारधारा का प्रतीक मानी है जो आपद हो अपने भविष्य को सुरक्षित करने के प्रयास में लूट में भाग रहा हो। वे कहते हैं कि हम ने ये पर यह एकदम अंत में करते थे। जब भारत में अंग्रेजी भाषा के प्रचार के विरुद्ध इस आधार पर एतराज किया गया कि इससे लोग अंग्रेजों की तरह ही स्वतंत्रता की माँग कर सकते हैं तो यह नहीं कहा गया कि स्वतंत्रता और प्रजातंत्र इसके योग्य लोगों और देशों को मिलनी चाहिए बल्कि इसकी जगह ग्रान्ट ने यह कहकर संतोष किया कि "अंग्रेजी स्वतंत्रता की भावना लिखित विवरणों से नहीं पाई जा सकती, वह भी दूर के कमजोर एशियाइयों द्वारा"[1] इसी दृष्टि से ग्रान्ट के विचारों को देखा जाना चाहिए और तब जो कुछ थोड़ा-बहुत जनता के लिए बीहड़ दुर्भिक्ष के विरुद्ध किया गया उसकी परीक्षा हो सकती है। इन परिस्थितियों में जिस पहली चीज की अपेक्षा ब्रिटिश कंपनी से थी और जिसने सुपरवाइजर भी घटनास्थल पर होने के कारण भूमिका निभा सकते थे यदि वस्तुतः इस भयानक स्थिति का उनके ऊपर प्रभाव था तो वह चीज थी उन लोगों पर से, जो बच गये थे और अब भी दुर्भिक्ष की बीमारी के शिकार थे, उस माँग की समाप्ति या उसे कम करना जो कंपनी उनसे प्राप्त करती थी। पर इसके विपरीत कंपनी ने उनसे अपना भाग माँगा और नवाब ने तो कर में वृद्धि इसीलिए कर दी क्योंकि लोगों के मर जाने से कर देने वालों की संख्या घट गई थी। दूसरी ओर इस दुर्भिक्ष के दुष्प्रभाव का यह हाल था कि अगले तीस वर्षों तक एक तिहाई भूमि को जोतने-बोने वाला कोई नहीं था।

वस्तुओं को एकत्रित कर और एकाधिकार द्वारा कंपनी कर्मचारियों ने जनता के कष्ट से लाभ उठाया और यहां तक कि 1792 में ग्राण्ट ने भी कंपनी कर्मचारियों के इस कार्य की चर्चा करते हुए कहा कि "यह ब्रिटिश चरित्र पर एक धब्बा है जिसकी कि किसी भी देश के इतिहास में तुलना नहीं है।"[2]

इस दुर्भिक्ष के कारण बहुत से जुलाहे भी मर गये और बंगाल के वस्त्र उद्योग को जो यूरोप में इतना लोकप्रिय हो गया था पतनवत हो गया और इसका ग्रहण कर लिया लंकाशायर के ... सस्ते ...
साथ ही चूंकि मरने वालों में अधिकतर ...
के लिए "जनसंख्या सम्बन्धी ढांचा ...

1. एलो : पूर्वोद्धृत, पृ०
2. वही, पृ० 38।

14
हैरी वेरल्स्ट

हैरी वेरल्स्ट 1734 के लगभग एक प्रभावशाली परिवार में पैदा हुआ। उसके पितामह रूसी कम्पनी के डाइरेक्टर थे और उस स्थान पर उसके पिता को भी रखा गया जिसने कुछ समय के लिए ईस्ट इण्डिया कंपनी के डाइरेक्टर के पद पर भी काम किया। पर हैरी स्वयं अपने चाचा, जो एक चित्रकार था और ईस्ट इंडिया कंपनी की सेवा में था, विलियम वेरल्स्ट द्वारा पाला-पोसा गया। यह चाचा का प्रभाव और संबंध ही था जिसने हैरी के लिए ईस्ट इण्डिया कपनी मे नौकरी दिलाई और वह 1750 मे बंगाल पहुंचा।

हुगली नदी के पास सिराजुद्दौला के क्लाइव से पराजय के बाद और 1757 में दोनों के बीच संधि पर हस्ताक्षरोपरान्त वेरल्स्ट को लखीमपुर की ब्रिटिश फैक्ट्री का नेतृत्व प्रदान किया गया। 1760 में वन्सीटार्ट की अध्यक्षता मे उसे कौन्सिल का सदस्य बनाया गया। वेरल्स्ट को वन्सीटार्ट का मीर जाफर को पद से हटा कर उसके दामाद मीर कासिम को बंगाल मसनद देना पसन्द नही आया क्योंकि उसमें उसे स्वतन्त्रता का स्वभाव नजर आया जो ब्रिटिशो के हाथ मे कठपुतली की तरह कार्य करेगा संभव नही था। परन्तु जब मीर कासिम नवाब हो गया तो उसे लगातार कठिनाइयों में डाला जाना भी उसे पसन्द नही था। इसी कारण वह जॉन जान्‌स्टोन और विलियम हे जैसे कौन्सिल सदस्यो के दृष्टिकोण का प्रायः विरोध करता रहा जिनका दर्शन मात्र व्यक्तिगत लाभ था। वह कंपनी के कर्मचारियों की अवैध व्यापारिक कार्यवाहियों को भी पसन्द नही करता था और प्रायः वन्सीटार्ट के परिस्थिति से निपटने की नीति का समर्थन करता था।

जब मीर कासिम ने चटगांव, बर्दमान और मिदनापुर के तीन जिलों को कंपनी को स्थाई रूप से प्रदान कर दिया तो इन सभी जिलों मे वेरल्स्ट को बारी-बारी से जिला अधिकारी बनाया गया। 1761 से 1766 के बीच इस तरह वेरल्स्ट ने काफी अनुभव प्राप्त कर लिया। 1765 मे जब क्लाइव ने बंगाल में द्वैध सरकार की स्थापना की तब वेरल्स्ट ने इसका पूरा समर्थन किया। क्लाइव द्वारा डाइरेक्टरों को भेजे जाने वाले पत्र मे उसने भी हस्ताक्षर किया था जिसमें लिखा था : "हमें ......नवाब के नाम की छाया में छिपा हुआ वसंत माना जाय जो इस विस्तृत सरकार की मशीन को मूल संविधान में हिंसात्मक परिवर्तन बिना गति प्रदान करता

है······नवाब के हाथ में पहले की ही भांति पूरा असैनिक प्रशासन है।"[1]

सुपरवाइजरों की नियुक्ति

1767 में क्लाइव जब इंग्लैण्ड लौटा, वेरल्स्ट बंगाल के गवर्नर के रूप में उसका उत्तराधिकारी हुआ। कुछ समय तक उसने द्वैध सरकार को चलते रहने दिया। पर ब्रिटिश अधिकारियों में यह समझ पाने वाला वह प्रथम था कि व्यवस्था अधिक दिनों तक नहीं चल पायेगी। क्षेत्र का प्रशासन इसके कारण पर्याप्त पतनवत हो गया था। शांति व व्यवस्था तथा न्याय समाप्त हो गये थे। कंपनी के कर्मचारी अत्यधिक ग़ैर ज़िम्मेदारी से पेश आते थे। लोग बुरी तरह दबे हुए थे। देशी उद्योग पिछड़ने लगे और कृषि को हानि होने लगी। कंपनी ने इन सभी के लिए नवाब को उत्तरदायी माना, पर नवाब सारी शक्ति ब्रिटिशों के हाथ में बने रहने के कारण उन्हें कोसता रहा क्योंकि उसके भाग में तो केवल उत्तरदायित्व ही आया हुआ था। वेरल्स्ट को सीधे जिलों में काम करने के कारण ब्रिटिश नियन्त्रण में प्रशासन का सीधा अनुभव था। इसीलिए वह यह समझता था कि इसी तरह के प्रशासन का पूरे बंगाल में प्रयोग ही समस्या का हल है। उसे यह भी संदेह था कि भारतीय राजस्व अधिकारियों द्वारा एकत्रित किया गया पूरा धन कलकत्ता नहीं भेजा जाता था। कर देने वाला अपने सामर्थ्य को छिपाता था तथा वहां तमाम गबन और अपहार था। वह यह समझता था कि कंपनी द्वारा सीधे उत्तरदायित्व ग्रहण एक ओर जहां प्रशासकीय कार्य क्षमता में वृद्धि करेगा वहां साथ ही इससे कंपनी के राजस्व में वृद्धि भी होगी।

1769 में इसीलिए वेरल्स्ट ने बंगाल के 39 जिलों में से प्रत्येक में अंग्रेज सुपरवाइजरों की नियुक्ति की। इन सुपरवाइजरों का कार्य था, जिले का नक्शा तैयार करना, भिन्न-भिन्न कोटि की भूमि का निश्चय करना, राजस्व का विवरण तैयार करना और लगान का हिसाब तैयार करना। उन्हें न्याय का प्रशासन देखने का उत्तरदायित्व सौंपा गया और व्यापार को नियमित करने को कहा गया। सच में यह द्वैध सरकार को समाप्त करने की दिशा में प्रथम कदम था। इसमें संदेह नहीं कि सुपरवाइजरों को अपने काम में तुरंत सफलता नहीं मिली क्योंकि भूमि का विवरण पैतृक कानूनगो लोगों के पास था जो अपना विवरण देने के पक्ष में नहीं थे। सुपरवाइजर भी अपने कर्तव्य को करें इसकी जगह पर व्यक्तिगत व्यापार में जुट गये जिससे स्थिति और बिगड़ गयी। पर इसमें कोई दो राय नहीं कि सुपरवाइजरों के लिए जो सूचनाएं तैयार की गई थीं वह बहुत विस्तृत थीं जिन्होंने आने वाले

---

1. उद्धृत : पूर्णेन्दु, द कारजन्स, पृ० 120।

दिनों के लिए राजस्व व्यवस्था स्थापना की पृष्ठिभूमि तैयार की।[1]

1770 का महादुर्भिक्ष

जैसे ही सुपरवाइज़रों की नियुक्तिया की गई बंगाल में एक महादुर्भिक्ष पड़ गया। मुर्शिदाबाद मे रहने वाले चार्ल्स ग्राण्ट ने इस भयानक दुर्भिक्ष का अपने क्षेत्र मे प्रभाव बताते हुए लिखा है : "नवम्बर 1769 से ही बंगाल के उत्तरी जिलो में यह दुर्भिक्ष अनुभव किया गया और आने वाले अप्रैल तक मृत्यु और विनाश तीनों प्रान्तों (बंगाल, बिहार और उड़ीसा) में फैल गया। चावल का भाव चार गुना से दस गुना तक बढ़ गया, पर इस मूल्य पर भी इसका मिलना कठिन था। असंख्य लोग पत्तो और पेड़ो की छालो पर गुजर कर रहे थे···खेत सूखे पड़े थे। गलियां व रास्ते मरने वालो या लाशो से रुधे पड़े थे···बाज़ार व क्षेत्रों मे अनाज लाने के लिए हर उपाय किया गया···कंपनी, नवाब, मत्रियो व भारतीयों व यूरोपीयो ने गरीबो के भोजन के लिए सहायता की। मुर्शिदाबाद मे प्रतिदिन कई मास तक 77 हजार लोगों को भोजन दिया गया।···लेकिन ये अच्छे कार्य उस नैराश्य मे कठिनाई से कुछ कर पाते थे। राजधानी में···यह आवश्यक हो गया था कि कुछ लोगो को इसलिए रखा जाय जो लगातार गलियो व सड़कों से लाशें ढोते व निकालते रहें और ये दुर्भाग्यशाली सैकडो बेड़ो मे भर कर नदी में डाल दिये जाते···और कभी-कभी तो कुत्ते, स्यार और चीलें सफाई का काम करते। बाहर बिना दुर्गन्ध झेले व बिना व्यग्र आवाज सुने नही जाया जा सकता था···ऐसे भी लोग थे जो वर्जित व घृणित जानवरों को खा-खाकर जिन्दा थे, इतना ही नही बच्चे अपने मरे बाप-मा को और मां अपने बच्चे को खा रहे थे।"

"दूर-दूर तक नैराश्यपूर्ण शांति का साम्राज्य था। मृत्यु ने तमाम लोगो का कष्ट दूर कर दिया था और जब अगस्त (1770) मे नयी फसल का समय आया तो बहुत से खेतों के कोई मालिक ही नही थे।"[2]

विलियम हंटर के मतानुसार एक करोड़ से अधिक लोग मरे। ब्रिटिश कंपनी के एक महत्वपूर्ण अधिकारी जो बाद में इंग्लैण्ड में कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के चेयरमैन हो गये, चार्ल्स ग्राण्ट के अनुसार इस दुर्भिक्ष का एक प्रभाव यह था कि "सुपरवाइजरों की संस्था की परीक्षा का उपयुक्त अवसर नही मिल सका क्योंकि उनकी नियुक्ति के साथ ही दुर्भिक्ष आ पहुंचा।"[3] पर यह गलत लगता है क्योंकि सुपर-

---

1. वारेन हेस्टिंग्स पर अगला अध्याय देखिए।
2. चार्ल्स ग्राण्ट : आवजरवेशन आन द स्टेट आफ एशिया, पृ० 14; ऐंस्ली इम्बी : चार्ल्स ग्राण्ट ऐण्ड ब्रिटिश रूल इन इंडिया, पृ० 35-36।
3. इम्बी : पूर्वोद्धृत, पृ० 37।

वाइजरों को अपनी योग्यता प्रदर्शित करने का इससे अच्छा अवसर क्या हो सकता था पर परिस्थिति की चुनौती को स्वीकार करने की जगह वे स्वयं लालच और भ्रष्टता के चक्कर मे पड़ गये। ग्राण्ट की विचारधारा कंपनी कर्मचारी की उस विचारधारा का प्रतीक लगती है जो शायद ही अपने भविष्य को सुरक्षित करने के प्रयास में जुट न जाता रहा हो। वे जनहित के भी पक्ष में थे पर यह एकदम अंत मे करते थे। जब भारत में अंग्रेजी भाषा के प्रचार के विरुद्ध इस आधार पर एतराज किया गया कि इससे लोग अंग्रेजों की तरह की स्वतंत्रता की मांग कर सकते है तो यह नही कहा गया कि स्वतंत्रता और प्रजातंत्र इसके योग्य लोगो और देशो को मिलनी चाहिए बल्कि इसकी जगह ग्राण्ट ने यह कहकर संतोष किया कि "अग्रेजी स्वतंत्रता की भावना लिखित विवरणों से नही पाई जा सकती, वह भी दूर के कमजोर एशियाइयों द्वारा।"[1] इसी दृष्टि से ग्राण्ट के विचारो को देखा जाना चाहिए और तब जो कुछ थोड़ा-बहुत जनता के लिए बीहड़ दुर्भिक्ष के विरुद्ध किया गया उसकी परीक्षा हो सकती है। इन परिस्थितियो मे जिस पहली चीज की अपेक्षा ब्रिटिश कंपनी से थी और जिसमें सुपरवाइजर भी घटनास्थल पर होने के कारण भूमिका निभा सकते थे यदि सचमुच इस भयानक स्थिति का उनके ऊपर प्रभाव था तो वह चीज थी उन लोगो पर से, जो बच गये थे और अब भी दुर्भिक्ष की बीमारी के शिकार थे, उस मांग की समाप्ति या उसे कम करना जो कंपनी उनसे प्राप्त करती थी। पर इसके विपरीत कंपनी ने उनसे अपना भाग मागा और नवाब ने तो कर में वृद्धि इसीलिए कर दी क्योंकि लोगों के मर जाने से कर देने वालों की संख्या घट गई थी। दूसरी ओर इस दुर्भिक्ष के दुष्प्रभाव का यह हाल था कि अगले तीस वर्षों तक एक तिहाई भूमि को जोतने-बोने वाला कोई नही था।

वस्तुओ को एकत्रित कर और एकाधिकार द्वारा कपनी कर्मचारियों ने जनता के कष्ट से लाभ उठाया और यहां तक कि 1792 मे ग्राण्ट ने भी कंपनी कर्मचारियों के इस कार्य की चर्चा करते हुए कहा कि "यह ब्रिटिश चरित्र पर एक धब्बा है जिसकी कि किसी भी देश के इतिहास मे तुलना नही है।"[2]

इस दुर्भिक्ष के कारण बहुत से जुलाहे भी मर गये और बंगाल के वस्त्र उद्योग को जो यूरोप मे इतना लोकप्रिय हो गया था पतनवत हो गया और इसका स्थान ग्रहण कर लिया लंकाशायर के उद्योगपतियों के सस्ते मशीन-निर्मित वस्त्रों ने। साथ ही चूंकि मरने वालों मे अधिकतर बच्चे थे इस कारण कम से कम एक पीढ़ी के लिए "जनसंख्या सम्बन्धी ढाचा बिगड़ गया।" जब बंगाल में घटने वाली

---

1. एम्ब्री : पूर्वोद्धृत, पृ० 154।
2. वही, पृ० 38।

अकथनीय कष्ट की गाथा की जानकारी इंग्लैण्ड पहुंची तो इसका चारो ओर बड़ा विरोध हुआ। ऐसा ही एक भाव कूपर ने भी व्यक्त किया—

यह घोर असंगति और अशुभ सवाद परम—
भारत के प्रान्तो का वैभव हरने वाले,
भरने वाले अपनी पर्सें उनके धन से—
निर्द्वन्द्व और संरक्षित प्राणदण्ड से है।
यह निज घर के विधान की घोर अवज्ञा है
जिसके अधीन अनिवार्य चोर को मृत्यु दण्ड।[1]

यह अब अनुभव किया गया कि क्लाइव की द्वैध सरकार असफल हो गई है और डाइरेक्टरों को अब दीवान की भूमिका निभानी चाहिए और प्रशासन का उत्तरदायित्व सीधे ग्रहण करना चाहिए। ब्रिटिश संसद के सदस्यों ने स्वयं कपनी कर्मचारियों के शोषण प्रवृत्ति की निन्दा करते हुए उसे अपराध करार दिया और अशाति व भ्रष्टाचारपूर्ण राज्य में सुव्यवस्था स्थापित करने को कहा।

वेरल्स्ट ने अन्यो की भाति इंग्लैण्ड जाने से पूर्व धन अर्जित किया। पर इस धन का अधिकांश उस मुकदमे मे व्यय हो गया जिसे उसके विरुद्ध बोल्ट्स ने दायर किया। वेरल्स्ट के जीवन का अन्तिम काल बोलोन मे निर्वासन मे बीता जहां उसकी एक गरीब व्यक्ति की तरह मृत्यु हुई।

1. हन्टी ; पूर्वोक्त, पृ० 36-38।

वाइजरों को अपनी योग्यता प्रदर्शित करने का इससे अच्छा अवसर क्या हो सकता था पर परिस्थिति की चुनौती को स्वीकार करने की जगह वे स्वयं लालच और भ्रष्टता के चक्कर मे पड़ गये। ग्राण्ट की विचारधारा कंपनी कर्मचारी की उस विचारधारा का प्रतीक लगती है जो शायद ही अपने भविष्य को सुरक्षित करने के प्रयास मे जुट न जाता रहा हो। वे जनहित के भी पक्ष मे थे पर यह एकदम अंत मे करते थे। जब भारत में अंग्रेजी भाषा के प्रचार के विरुद्ध इस आधार पर एतराज किया गया कि इससे लोग अंग्रेजों की तरह की स्वतंत्रता की मांग कर सकते है तो यह नही कहा गया कि स्वतंत्रता और प्रजातंत्र इसके योग्य लोगों और देशों को मिलनी चाहिए बल्कि इसकी जगह ग्राण्ट ने यह कहकर संतोष किया कि "अंग्रेजी स्वतंत्रता की भावना लिखित विवरणों से नहीं पाई जा सकती, वह भी दूर के कमजोर एशियाइयों द्वारा।"[1] इसी दृष्टि से ग्राण्ट के विचारो को देखा जाना चाहिए और तब जो कुछ थोड़ा-बहुत जनता के लिए बीहड़ दुर्भिक्ष के विरुद्ध किया गया उसकी परीक्षा हो सकती है। इन परिस्थितियों में जिस पहली चीज की अपेक्षा ब्रिटिश कंपनी से थी और जिसमें सुपरवाइजर भी घटनास्थल पर होने के कारण भूमिका निभा सकते थे यदि सचमुच इस भयानक स्थिति का उनके ऊपर प्रभाव था तो वह चीज थी उन लोगो पर से, जो बच गये थे और अब भी दुर्भिक्ष की बीमारी के शिकार थे, उस मांग की समाप्ति या उसे कम करना जो कंपनी उनसे प्राप्त करती थी। पर इसके विपरीत कंपनी ने उनसे अपना भाग मागा और नवाब ने तो कर मे वृद्धि इसीलिए कर दी क्योंकि लोगों के मर जाने से कर देने वालो की सख्या घट गई थी। दूसरी ओर इस दुर्भिक्ष के दुष्प्रभाव का यह हाल था कि अगले तीस वर्षों तक एक तिहाई भूमि को जोतने-बोने वाला कोई नही था।

वस्तुओं को एकत्रित कर और एकाधिकार द्वारा कंपनी कर्मचारियो ने जनता के कष्ट से लाभ उठाया और यहां तक कि 1792 मे ग्राण्ट ने भी कंपनी कर्मचारियो के इस कार्य की चर्चा करते हुए कहा कि "यह ब्रिटिश चरित्र पर एक धब्बा है जिसकी कि किसी भी देश के इतिहास मे तुलना नही है।"[2]

इस दुर्भिक्ष के कारण बहुत से जुलाहे भी मर गये और बंगाल के वस्त्र उद्योग को जो यूरोप में इतना लोकप्रिय हो गया था पतनवस्त हो गया और इसका स्थान ग्रहण कर लिया लकाशायर के उद्योगपतियो के सस्ते मशीन-निर्मित वस्त्रों ने। साथ ही चूंकि मरने वालों मे अधिकतर बच्चे थे इस कारण कम से कम एक पीढ़ी के लिए "जनसंख्या सम्बन्धी ढांचा बिगड़ गया।" जब बंगाल मे घटने वाली

---

1. एम्बी : पूर्वोद्धृत, पृ० 154।
2. वही, पृ० 38।

अकथनीय कष्ट की गाथा की जानकारी इग्लैण्ड पहुची तो इसका चारो ओर बडा विरोध हुआ। ऐसा ही एक भाव कूपर ने भी व्यक्त किया—

यह घोर असगति और अशुभ संवाद परम—
भारत के प्रान्तो का वैभव हरने वाले,
भरने वाले अपनी पर्सें उनके धन से—
निर्द्वन्द्व और संरक्षित प्राणदण्ड से हैं।
यह निज घर के विधान की घोर अवज्ञा है
जिसके अधीन अनिवार्य चोर को मृत्यु दण्ड।[1]

यह अब अनुभव किया गया कि क्लाइव की द्वैध सरकार असफल हो गई है और डाइरेक्टरों को अब दीवान की भूमिका निभानी चाहिए और प्रशासन का उत्तरदायित्व सीधे ग्रहण करना चाहिए। ब्रिटिश संसद के सदस्यो ने स्वयं कंपनी कर्मचारियों के शोषण प्रवृत्ति की निन्दा करते हुए उसे अपराध करार दिया और अशांति व भ्रष्टाचारपूर्ण राज्य में सुव्यवस्था स्थापित करने को कहा।

वेरल्स्ट ने अन्यो की भाति इंग्लैण्ड जाने से पूर्व धन अर्जित किया। पर इस धन का अधिकांश उस मुकदमे मे व्यय हो गया जिसे उसके विरुद्ध बोल्ट्स ने दायर किया। वेरल्स्ट के जीवन का अन्तिम काल बोलोन मे निर्वासन मे बीता जहा उसकी एक गरीब व्यक्ति की तरह मृत्यु हुई।

---

1. इम्री; पूर्वोद्धृत, पृ० 36-38।

15

गवर्नर के रूप में वारेन हेस्टिंग्स (1772—1774)

वारेन हेस्टिंग्स आक्सफर्डशायर में चर्चिल नामक स्थान पर 6 दिसंबर 1732 में पैदा हुआ। वह पिनास्टन का दूसरा पुत्र था जिसने हेस्टर वारेन जो एक सम्मानित व्यक्ति की पुत्री थी और जिसके पास ग्लूकस्टरशायर का एक छोटा राज्य था, से 1730 में 15 वर्ष की आयु में शादी की थी। वारेन जब कुछ ही दिनों का था तभी युवा मां का देहान्त हो गया। उसके जन्म के कुछ सप्ताह न बीते होंगे कि उसका पिता पिनास्टन स्वयं गायब हो गया और बाद में प्रकट हुआ और एक बूचड की लड़की से शादी की। वारेन के विषय में बर्क ने बिगड़ी हुई मुद्रा में एक बार कहा था कि वह एक नीच, अनजान और बेहूदे वंश का व्यक्ति है। उसका पालन-पोषण पहले उसके दादा ने, फिर हावर्ड नामक चाचा ने और उसकी मृत्यु के बाद उसके दूर के एक संबंधी चिसविक ने किया। चिसविक ईस्ट इंडिया कंपनी का डाइरेक्टर था जिसने उसका संरक्षत्व स्वीकार किया।[1]

बालक वारेन ने अपने गांव के स्कूल से शिक्षा पाने के बाद लंदन के निकट निविंगटन वट्स और फिर वेस्टमिन्स्टर में शिक्षा ली। 1747 में उसने किंग्स वजीफे की परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया जिसके दो वर्ष बाद, उसके अध्यापकों की अनिच्छा के बावजूद जो एक अच्छे छात्र को खोना नहीं चाहते थे, उसके संरक्षक चिसविक ने उसे कलकत्ता एक लिपिक के रूप में भेज दिया। युवा वारेन हेस्टिंग्स अपने परिश्रम और चरित्र के बलबूते ऊपर चढ़ता गया और 1757 में वह मुर्शिदाबाद में मीर जाफर के दरबार में रेजीडेन्ट बना दिया गया। जब मीर कासिम 1760 में नया नवाब हुआ, *कंपनी के प्रत्येक अधिकारी को भेंट व* इनाम प्राप्त हुआ जिसे नवाब ने दिया था, पर वारेन ने "इन गलत कार्यों से अपने को स्वच्छ व अलग" रखा।

1761 में वारेन को कलकत्ता कौन्सिल का सदस्य बनाया गया जिससे 1764 में स्तीफा देकर वह 14 वर्ष यहां रहने के बाद इंगलैंड चला गया।

---

1. ट्राटर, एल० जे० : रूलर्स आफ इंडिया, वारेन हेस्टिंग्स (इण्डियन रीप्रिंट, 1962), पृ० 1-4।

"1768 में कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने, जिन्हें एक ऐसे विश्वस्त व्यक्ति की आवश्यकता थी जो मद्रास की आर्थिक स्थिति को ठीक कर सके, हेस्टिंग्स को मद्रास की कौन्सिल में नियुक्त किया। 1771 का वर्ष भी पूरा नही बीता कि "उसने स्वय अपने को फोर्ट विलियम की कौन्सिल का द्वितीय सदस्य ही नही नियुक्त करवा लिया बल्कि उस प्रेसीडेन्सी मे कार्टियर के बाद अपने को उत्तराधिकारी भी नियुक्त करवा लिया।"[1] जहाज पर मद्रास से रवाना होकर हेटिंग्स कलकत्ता 20 फरवरी 1772 को पहुंचा जहां 13 अप्रैल को उसने कार्टियर से गवर्नर कार्यालय की चाभी प्राप्त की।

तत्कालीन परिस्थितियां

हेस्टिंग्स की नियुक्ति के समय बंगाल की कौंसिल सदस्यों की सख्या 12 थी। गवर्नर और इसके दो सदस्य सेलेक्ट कमेटी का निर्माण करते थे। कौंसिल में मतभेद सरकार चलाने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निर्भर करता था और हेस्टिंग्स के लिए बहुमत को अपने साथ बनाये रखना कठिन नही था।

बगाल में कंपनी के क्षेत्र को उस समय तीन भागों मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथम तो वह जो मिदनापुर, वर्दमान और चटगाव क्षेत्र कपनी ने 1760 में प्राप्त किया था। इस पर उसे कोई राजस्व या कर नही देना पडता था। दूसरी श्रेणी मे कलकत्ता और चौबीस परगना आते थे जिस पर कपनी ने क्रमश: 1698 और 1757 मे अधिकार किया था और जहा उसे जमीदारी अधिकार मिले हुए थे और कर देना पड़ता था। तीसरी श्रेणी बगाल, बिहार और उडीसा से सबधित थी जिस पर कंपनी ने 1765 मे दीवानी और निजामत दोनों तरह के अधिकार प्राप्त किये थे। इसके बदले कपनी को 36 लाख रुपये प्रतिवर्ष बगाल के कठपुतली नवाब को देना पड़ता था जो कपनी की ओर से प्रशासन का उत्तरदायी था और 26 लाख रुपये मुगल सम्राट को कर के रूप मे दिया जाता था। कपनी राजस्व प्राप्त करती थी, उसे उपरोक्त भाति बाट देती थी और शेष अपने पास रख लेती थी।

बगाल, बिहार और उड़ीसा का असली प्रशासन अब भी मराठों के हाथ में होने के कारण यहा का शासन उसके दो नायब दीवान ही करते थे जिन्हे हेस्टिंग्स निजाम कहकर पुकारता था। बगाल में इस पद पर रजाखा था और बिहार मे नायब दीवान का पद राजा सितावराय को प्राप्त था।

"कुछ समय से, भू-राजस्व जो भारत का परपरागत आय-स्रोत है, बंगाल के

---

1. ट्राटर, वल० जे०. रूलर्स आफ इंडिया, वारेन होस्टिंग्स (इण्डियन रीप्रिंट, 1962), पृ० 29-41।

शासकों को ज्यादा कुछ नही दे सका है। जिसे भी कुछ प्राप्त होता कंपनी उनसे छीन लेती। इसका अधिकतर भाग तो स्थानीय अधिकारियो, जमींदारो, राजस्व किसानों एवं तमाम लालची लोगो के हाथ कंपनी तथा असहाय किसानो की कीमत पर चला जाता। 1770 के दुर्भिक्ष के बाद इन जिलो मे राजस्व एकत्रित करना वैसे ही था जैसे सूखे स्पंज से पानी निकालना।"[1]

दोनों नायब दीवानों के ऊपर अवैधानिक बेईमानी और गबन का संदेह था और हेस्टिंग्स ने उन्हें पद से हटाने का आदेश दे दिया था और उनके विरुद्ध छानबीन का आदेश भी भेज दिया था।

1772 में कलकत्ता की केन्द्रीय सरकार कमजोर थी। गवर्नर और उसकी कौंसिल के पास सर्वोच्च अधिकार थे, उनके नीचे मुर्शिदाबाद और पटना में बोर्ड आफ रेवेन्यू था और सबसे नीचे 1769 में नियुक्त भारतीय कलेक्टरो को नियंत्रित करने वाले सुपरवाइजर थे। वैध और अवैध लाभ की दृष्टि से सुपरवाइजर का पद सबसे महत्त्वपूर्ण था और कौंसिल सदस्यो का सबसे गौण। हेस्टिंग्स ने स्वय कहा "कार्यक्षम्य सभी व्यक्ति कलेक्टरी और अन्य लाभ वाली जगहों की ओर दौड़ रहे है···प्रेसीडेन्सी मे जहां सुयोग्य लोगों के सहायता की आवश्यकता है अत्यधिक गये-गुजरे लोग ही प्राप्त होते है···"[2]

द्वैध सरकार के अंतर्गत क्लाइव ने उत्तरदायित्व को अधिकार से अलग कर दिया था जिसके फलस्वरूप जनता को न्याय नही मिल रहा था और प्रशासन कही का नही रह गया था। 1770 के भयानक दुर्भिक्ष ने एक तिहाई जनसंख्या का विनाश कर दिया था और एक-तिहाई भूमि को बर्बाद कर दिया था। पूरे क्षेत्र मे अव्यवस्था व्याप्त हो गई थी। द्वैध व्यवस्था के अंतर्गत न तो कंपनी ने यह सोचा कि इन समस्याओं की ओर दृष्टि की जाय और न ही नवाब ने यह अनुभव किया कि इसे ठीक करने का उसका उत्तरदायित्व है। नवाब के अपने घर में ही अव्यवस्था थी और इसके पुनर्गठन के लिये कंपनी के हस्तक्षेप की आवश्कता थी।

विदेश विभाग मे भी समस्याएं थी। मराठा समस्या ज्यो की त्यों उपस्थित थी। शाह आलम जिसे कंपनी वार्षिक कर देती थी और जो ब्रिटिश संरक्षण मे था उसे मराठों ने यह लालच देकर अपनी ओर मिला लिया था कि उसे दिल्ली की शक्ति वापस दिला दी जायेगी। पूरी संभावना थी कि मुगल सम्राट कंपनी के विरुद्ध ही प्रयोग मे लाया जायगा।

---

1. ट्राटर, एल० जे० : रूलर्स आफ इंडिया, वारेन हेस्टिंग्स (इण्डियन रीप्रिंट, 1962) पृ० *46*।
2. ग्लेग : मेमोवायर्स आफ वारेन हेस्टिंग्स, भाग 1, पृ० 300; कैम्ब्रिज, पूर्वोद्धृत, भाग 5, पृ० 208 द्वारा उद्धृत।

इस तरह की समस्याएं थी जिसका सामना हेस्टिंग्स को करना था। डाइरेक्टरों ने उसे गवर्नर नियुक्त करने के बाद कहा : "हम अब तुम्हे पूरी शक्ति प्रदान करते हैं जिससे तुम पूरा सुधार करो।"

सुधार

सबसे प्रथम हेस्टिंग्स ने कुछ व्यापारिक सुधार किये। दस्तकों (मुक्त व्यापार) का दुष्प्रयोग जिसने क्लाइव के मस्तिष्क में भी खलबली मचा रखी थी और जिसने उसे बाध्य करके यह निर्णय कराया कि इसे कौन बनायेगा, अब भी जारी था। अब जबकि कंपनी ने बंगाल के प्रशासन का सीधा उत्तरदायित्व लेने का निश्चय किया, जिसे हेस्टिंग्स के चलते ही उसे बता दिया गया था, अब समय आ गया था कि कंपनी दस्तक की बुराई का हल ढूढ़ती। फलतः आदेश जारी किये गये और इस तरह के पासो को पूरी तरह समाप्त कर दिया गया।

साथ ही हेस्टिंग्स के आने के पूर्व भिन्न-भिन्न जमीदारों की अपनी चौकियां थी जहां से होकर जाने वाले माल पर वे चुंगी लेते थे जिसके फलस्वरूप वस्तु के गन्तव्य पर पहुंचते-पहुंचते इसका दाम पूर्व मूल्य से बढ़ जाता था। हेस्टिंग्स ने ये सभी चौकियां समाप्त कर दी और इनके स्थान पर कलकत्ता, हुगली, ढाका, मुर्शिदाबाद और पटना में अलग-अलग पांच केन्द्रीय चुंगी घर स्थापित किया। साथ ही यह भी घोषणा की गई कि अब आगे सभी मालो पर चाहे वे युरोपीयो के हों या अन्य के, 2½% के हिसाब से चुगी देनी पड़ेगी; पर अपवाद होगा सोपाडी, नमक और तम्बाकू पर एकाधिकार जिसपर विशेष विचार किया जायगा।

इस तरह वही सुधार जिन्होंने मीर कासिम का कपनी से सबध ही खराब कर दिया था और उसे वर्बाद कर दिया था अब ब्रिटिशो के स्वय उत्तरदायित्व समझने पर शासन का एक आवश्यक अग बन गया। इन सुधारो ने व्यापार को बहुत आगे बढ़ाया जिससे सरकार और जनता के साधनो मे वृद्धि हो गई।

हेस्टिंग्स ने दूरगामी प्रभाव डालने वाले कुछ राजनैतिक परिवर्तन भी किये। द्वैध सरकार की उपयोगिता, जिसके लिए यह स्थापित किया गया था, समाप्त हो चुकी थी। 24 अप्रैल 1772 मे हेस्टिंग्स ने डाइरेक्टरों से एक पत्र प्राप्त किया जिसमें उन्होंने अपना मन्तव्य भेजा था कि दीवान की शक्ति कंपनी प्राप्त करे और 'राजस्व का पूर्ण प्रबंध' यह अपने हाथ में लेकर कपनी कर्मचारियों के हाथ मे उसे सौंपे। इसका अर्थ था द्वैध सरकार की समाप्ति, और हेस्टिंग्स को इस दिशा में कदम उठाने थे। उसने रजा खा और सिताब राय नामक दो नायब दीवानों को पद से इसलिए हटा दिया क्योंकि उसे संदेह था कि वे दोनों कंपनी के राजस्व में हेरा-फेरी करते हैं। डाइरेक्टरों ने इन दोनो को दण्डित करने के लिए

भी लिखा था। हेस्टिंग्स के नेतृत्व में ही एक समिति ने इन पर मुकदमा चलाया पर उनके विरुद्ध आरोप सिद्ध नही हो सके और फलस्वरूप दो नायब दीवानों को अततः छोड़ देना पडा। पर अब तक दोनों एक वर्ष से अधिक काल तक के लिए बंदी रहने के कारण पर्याप्त एकान्तवास और अप्रतिष्ठा भुगत चुके थे। हेस्टिंग्स ने विशेष रूप से सिताब राय[1] के प्रति सहानुभूति दिखाई और उसे उसके पूर्व पद राय रायान पर आसीन कर दिया। पर अपने बिगडे स्वास्थ्य के कारण वह नवीन कार्यभार का आनंद कुछ सप्ताहों से अधिक के लिए नही उठा सका। नैराश्य मे वह मर गया।[2] जो भी हो इससे बंगाल में द्वैध सरकार को समाप्त करने में सहायता मिली।

जब कंपनी ने स्वयं प्रशासकीय उत्तरदायित्व संभाल लिया तो प्रशासन संबंधी धन नवाब को देने की आवश्यकता नही रह गई। 1765 में दिये जाने वाले 50 लाख की आश्वस्त राशि को घटाकर 1766 में पहले ही 41 लाख रुपया कर दिया गया था। 1769 मे इसे 36 लाख कर दिया गया। पर वह इसका ध्यान रखता था कि व्यक्तिगत रूप से नवाब पहले से अधिक प्राप्त करे।

नवाब के कुटुम्ब को भी पुनर्गठित किया गया। मुन्नी बेगम, जो मीर जाफर की विधवा थीं, को अपने पिता का उत्तराधिकार प्राप्त करने वाले छोटे नवाब मुबारकुद्दौला का संरक्षक बनाया गया। महाराजा नन्दकुमार के पुत्र राजा गुरुदास को जो हेस्टिंग्स का पुराना शत्रु और आक्रान्ता था, कुटुम्ब का नियंत्रक बनाया गया।

मुन्नी बेगम, जो नवाब के दरबार मे पहले नृतंकी रह चुकी थी, की नियुक्ति की नैतिकता के आधार पर ब्रिटिश संसद में तीखी आलोचना की गई। पर आलोचना संभवतः न्यायसंगत न थी। उसने अपने प्रारंभिक जीवन मे जैसा भी किया हो, वह बंगाल में 40 वर्षो तक प्रथम महिला रह चुकी थी और अब वह बेहतर विचार की अधिकारिणी थी वैसी नही जैसा उसके विरोधियो ने किया।[3]

नायब दीवानों के पद से हटने के बाद और नवाब की शक्ति व अधिकार के कम होने के बाद राजनीति का केन्द्र नवाब की राजधानी मुर्शिदाबाद से हटकर कंपनी के केन्द्र कलकत्ता पहुंच गया। इसी कारण यह भी तय किया गया कि कोषागार भी

---

1. रजाखां के विरुद्ध आरोप तो नही सिद्ध हो सके, पर भ्रष्टाचार का सदेह उस पर अब भी था।
2. बाद मे नद कुमार ने हेस्टिंग्स पर यह आरोप लगाया कि उसने उन्हे मुक्त करने के लिए बहुत-सी धन राशि घूस में ली है।
3. "क्लाइव और वेरल्स्ट की तरह ही उसने भी स्टोन में यह कार्य किया। हेस्टिंग्स ने उससे 15 हजार पौंड 'मनोरंजन धन' के रूप मे लिया।" फौलिग, कीथ: पूर्वोद्धृत, पृ० 93।

स्थानांतरित करके यही कर दिया जाय। भ्रष्टाचार की समाप्ति और गवर्नर व उसकी कौंसिल की, सिद्धांत ही नही, व्यवहार मे, आर्थिक क्षेत्र मे सर्वप्रमुखता सिद्ध करने के लिए भी यह आवश्यक था कि कोषागार कलकत्ता मे लाया जाय। इसी लिए यह भी किया गया।

इसके अतिरिक्त उसकी गवर्नरी के काल में, हेस्टिंग्स ने राजस्व और न्याय के क्षेत्र में भी कुछ प्रमुख परिवर्तन किये जिसका परीक्षण अगले अध्याय मे अलग से किया जायगा जहां हम उस रूप में उसकी वैदेशिक नीति का विवेचन करेंगे। यहां पर हेस्टिंग्स द्वारा नमक और अफीम के उत्पादन पर सरकारी नियंत्रण की चर्चा आवश्यक है जो राजस्व की आय स्रोत का एक आधार बन गया। विवाह पर शुल्क और कर समाप्त कर दिया गया। कलकत्ता मे एक बैंक खोला गया और हेस्टिंग्स ने व्यक्तियों के लिए बोर्डों की स्थापना की। उसने अपनी कौंसिल को सरकार के विभिन्न विभागों को ठीक से चलाने के लिए समितियों में विभाजित किया। हेस्टिंग्स ने "पटना से उत्तर-पश्चिम तक और पूर्व मे ढाका तक के लिए डाक सेवा का सृजन किया। उसने रोनेल के भौगोलिक सर्वेक्षण के पूरा करने का समर्थन किया···उसने जेद्दा और मिस्र से व्यापार का पुनः संबंध प्रारभ कराया। उसने दुर्भिक्ष के विरुद्ध सावधानियों के लिए वार्ता की······ क्योंकि मुद्रा की कठिनाइयां भी थी। विभिन्न टकसालों से विभिन्न सिक्कों की भरमार थी······ (उसने) एक स्तर का रुपया चलाया और सिक्के को ढालने का कार्य केवल कलकत्ता मे निश्चित किया।"[1]

ढाई वर्ष के अल्पकाल में वारेन हेस्टिंग्स की सफलताए जिसमे उसने द्वैध सरकार को समाप्त किया, कंपनी के राजस्व को वढ़ाया और न्यायिक मशीनरी को पुनर्गठित किया—उसे एक महान राजनेता सिद्ध करते है। पर फिर भी हेस्टिंग्स के प्रशासन मे कुछ दोप भी थे।

गवर्नर के सभी सुधारात्मक उत्साह के वावजूद, सेवाओं मे भ्रष्टाचार अब भी चलता रहा। इसके लिए इतना ही कहा जा सकता है कि इसके लिए हेस्टिंग्स से अधिक डाइरेक्टर्स उत्तरदायी थे क्योंकि वे दो दलो मे वंटे हुए थे जिनमें से एक किसी भी तरह के सुधार का विरोध करता था। जो भी लोग अनियमितताएं वरतते थे वे "ईस्ट इंडिया कपनी के डाइरेक्टरों के मित्र या संबंधी थे। हेस्टिंग्स ने कठोर पर सावधानी से इसे दवाया और दड देने संबंधी व्यवस्था की और अधिक ध्यान नही दिया।"[2]

हेस्टिंग्स ने स्वयं कहा : "मैं न तो दूसरों के कार्य के प्रति उत्तरदायित्व लूंगा

1. फोलिंग, कीथ : वारेन हेस्टिंग्स, पृ० 100-101।
2. ट्राटर : पूर्वोद्दृत, पृ० 50।

और न एक सामान्य सुधारक की तरह कार्य करूंगा और प्रत्येक व्यक्ति यहां तक कि अपसे पुराने शत्रु की भी सहायता चाहूंगा जिसका समर्थन मेरे लिए आवश्यक है।"

कंपनी के कर्मचारियों का वेतन खूब बढ़ गया, पर इस संबंध में हेस्टिंग्स का कहना था कि जो भी हो कंपनी के राजस्व मे कमी तो नही आई है। यदि बगाल के लोगो को अधिक कर देना पड़ा तो उसकी ओर उसका ध्यान नही जाता था। सामान्यतया धन के मामले मे वह बहुत शक्तिशाली या चालाक नही था। उसका अपना ही हिसाब गड़बड़ था और उसने अपने को पेचीदगियों मे फंसा रखा था यहां तक कि जब इंगलैंड मे उसपर महाभियोग लगाया गया तो उसका वकील उसे बचा पाने मे अपने को असमर्थ पाने लगा।

हेस्टिंग्स के अपने दोष थे पर "निस्संदेह जो और स्पष्ट है वह है उसकी योग्यता, चालाकी, भद्रता जिसके आधार पर"[1] उसने प्रशासन के हर क्षेत्र में सुधार किया। उसने "तीन वर्ष से कम समय में इतना कुछ कर लिया कि यह कहना सरल है कि उसने सब कर लिया।"[2]

हेस्टिंग्स के न्यायिक सुधार

भारत में ब्रिटिशों के न्यायिक सुधारों का विवेचन करते समय यह पूर्व निश्चय नही कर लेना चाहिए कि इस देश में अपनी शक्ति विकसित करने से पूर्व उन्होंने इगलैण्ड में पहले ही न्यायिक व्यवस्था मे महारथ हासिल कर रखी थी जिसे जिन-जिन राज्यों पर उन्होने अधिकार किया, वे ले गये। सच मे बहुत अर्थो में मुस्लिम न्याय व्यवस्था जो ब्रिटिशों के बंगाल, बिहार और उडीसा मे उनके दीवानी और निजामत अधिकारो के प्राप्ति के पूर्व मौजूद थी, इंगलैण्ड की उसी काल की न्याय व्यवस्था से बेहतर थी। *वहां 1790 तक हत्यारो को जीवित जलाया जाता था* और 1817 तक अर्द्ध नग्न अपराधी महिलाओ को गलियों में बेंत मारा जाता था। मुस्लिम कानून के अपने दोष थे क्योंकि यह व्यक्ति और व्यक्ति में तथा आदमी और औरत में भेद करता था। दो स्त्रियों की गवाही एक पुरुष के बराबर और दो हिन्दुओं की एक मुसलमान के बराबर मानी जाती थी। पर यही कानून आवश्यकतानुसार उदारता का परिचय देता था और सामान्य रूप से "खून-खराबी के प्रति नफरत" की शिक्षा देता था।

हेस्टिंग्स के पूर्व की स्थिति

वारेन हेस्टिंग्स के शक्ति प्राप्ति के समय स्थिति अच्छी नही थी। नवाब जो

1. कैम्ब्रिज, पूर्वोद्धृत, भाग 5, पृ० 214।
2. स्मिथ, वी० ए० : पूर्वोद्धृत, पृ० 501-504।

सर्वोच्च न्यायालय के रूप में था और जिसके स्वीकृति के बिना प्रान्तो मे मृत्यु-दड नही दिया जा सकता था और सहायक नवाब जो उसकी ओर से असली शक्ति का प्रयोग करते थे, दोनों अपने दिन गिन रहे थे और उनमे न्याय करने की न तो दृढ इच्छा थी और न ही असीम अधिकार। जमीदार जो अपने क्षेत्र में न्याय करते थे अब अत्याचारी हो गये थे क्योकि या तो वे अपने भविष्य के प्रति आश्वस्त नही थे या उनके इस अत्याचार पर प्रतिबध लगाने वाली कोई शक्ति नही थी। मुस्लिम कानून की जानकारी रखने वाले काजी भ्रष्ट और चरित्रहीन हो गये थे। यहां तक कि समकालीन मुस्लिम लेखक गुलाम हुसेन खान को अपनी पुस्तक सियार मुतखरीन में लिखना पड़ा: "अब तो बहुत पहले से हर चीज को बेचने की परंपरा हो गई है। काजी के कार्यालय का पट्टा हो गया है। हमें प्रतिदिन देखने को मिलता है कि विश्वासहीन काजी जो मुस्लिम विधि की जानकारी भी नही रखता, काजी के अधिकार का नाम लेकर पट्टा लेता है और फिर दूसरे को उसे ही शिकमी पट्टा कर देता है। वैसे उनका अधिकार इस देश के मुसलमानो को कष्ट देने के लिए एक आविष्कार है और वे उनसे तमाम बहानो से धन वसूलते है।"

हिन्दू कचहरिया और ब्राह्मण जो हिन्दुओं का शास्त्र के आधार पर न्याय करते थे उनमे भी दोष भरा था। भ्रष्टाचार फैला हुआ था और बिचौलियो की सस्था बहुत बदनाम हो चुकी थी। गवर्नर और उसकी कौसिल प्राय. भारतीय कचहरियों में हस्तक्षेप करते और बड़ी निर्लज्जता से निर्णयो को अपने पक्ष मे प्रभावित करते थे।

हेस्टिंग्स के आने से पूर्व ही ब्रिटिशों ने कुछ न्याय सबधी सुधार करने का प्रयास किया था। पर फिर ऐसा करते समय उनकी कुछ सीमाए थी। प्रथम क्लाइव के द्वैध शासन प्रथा में कम से कम उत्तरदायित्व लेने के पक्ष मे थे, द्वितीय, वे इस बात के लिए सदा सचेष्ट रहते थे कि कपनी के व्यापारिक हित की किसी तरह हानि न हो; तीसरे, वे लोगो के धार्मिक विश्वासो में हस्तक्षेप नही करना चाहते थे जिससे असैनिक न्याय भी जुड़ा हुआ था, और चौथे, उनके देश मे भी न्यायिक सिद्धान्त अभी विकासावस्था में थे, इस कारण उनके पास कोई ऐसा न्याय का स्तर भी नही था जो भारत की तुलना में ठीक रहा हो जिसे वह यहा पर प्रयोग कर सकते।

इन्ही सीमाओ मे काम करते हुए 1769 मे उन्होंने प्रत्येक एक या दो जिलो मे अग्रेज सुपरवाइजरों की नियुक्ति की जिन्हें राजस्व वसूली की देख-भाल करना होता था और वहा से भ्रष्टाचार दूर करना पड़ता था। क्षेत्र मे व्याप्त असमान न्याय-प्रणाली की सूचना भी उन्हें प्राप्त होती थी। "बंगाल में कपनी की सरकार को यह पता नही था कि यह असमान न्याय देश की पुरानी

परंपरा पर आधारित था या न्यायाधीशों के व्यक्तिगत भ्रष्टता पर। इसीलिए सुपरवाइजरों को इसके कारणों का पता लगाने को कहा गया और देश के कानून के अनुसार जो उचित हो, करने को कहा गया।"[1]

बाद में 1770 मे मुर्शिदाबाद और पटना में एक-एक राजस्व की कन्ट्रोलिंग कौंसिलों की स्थापना की गई। न्याय करने की शक्ति तो सहायक नवाब के हाथ में बनी रही लेकिन कन्ट्रोलिंग कौंसिलों को "हर महत्त्वपूर्ण मसले पर हस्तक्षेप की शक्ति प्रदान की गई।"[2] इस तरह की शक्ति प्राप्त कर इन कौंसिलों ने कुछ नियम अपनाए जिसके अतर्गत सैनिक और असैनिक अदालतों की देख-रेख का अधिकार इन्हें मिल गया और कुछ तरह के सैनिक मुकदमों के बाद के घोषित दंडों को इनकी स्वीकृति के बिना लागू नही किया जा सकता था।

मृत्यु-दड वाले मुकदमे मुर्शिदाबाद में ब्रिटिश रेजीडेन्ट के पास भेजा जाता था जो नवाब से उस पर स्वीकृति प्राप्त करता था।

पर हेस्टिंग्स के पूर्व किए गए परिवर्तन अधिकतर अन्वेषणात्मक थे जिनसे सूचनाएं प्राप्त करने मे सहायता मिलती थी जिसके आधार पर ही बाद मे प्रमुख सुधार किए गए।

बगाल का गवर्नर बनने के तुरत बाद हेस्टिंग्स ने न्यायिक सुधार की योजना बनाई जिसका उद्देश्य तत्कालीन न्यायिक व्यवस्था को समाप्त करना न होकर उसे ब्रिटिश निरीक्षण के अंतर्गत कुशल और उत्तरदायी बनाना था। भारतीय कानून की भी अधिक से अधिक रक्षा होनी थी उसकी योजना मे दूसरे नियम थे और उसके अंतर्गत निम्न न्यायिक सगठन स्थापित किया गया।

प्रत्येक जिले मे एक दीवानी या असैनिक अदालत स्थापना का निश्चय हुआ जिसका अध्यक्ष कंपनी के प्रतिज्ञाबद्ध कर्मचारी कलेक्टर को होना था। सुपरवाइजर ही कलेक्टर बना दिए गए थे। कलेक्टर को भारतीय न्यायाधीशों और अन्य कचहरी के कर्मचारियो से सहायता प्राप्त होनी थी। वह 500 रु० तक के मुकदमो का अतिम निर्णय करता था। प्रत्येक तहसील में किसानों के 10 रु० तक के मुकदमो का निर्णय होना तय हुआ। ऐसा लोगों को दूर तक की असुविधा से बचाने के लिए किया गया।

यह एक महत्त्वपूर्ण सुधार था क्योंकि जहा पहले न्यायाधीश कचहरी की आय से ही धन प्राप्त करते थे और अवैध धन प्राप्त करते थे वहां अब उन्हे नियमित रूप से वेतन मिलने से भ्रष्टाचार को समाप्त करने में भी सहायता मिली।

---

1. मिश्रा, बी० बी० : द जुडीसियल ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ द ईस्ट इंडिया कंपनी इन बंगाल, 1765-1782, दिल्ली, 1961, पृ० 33।
2. वही, पृ० 45।

साथ ही प्रत्येक जिले मे एक निजामत या फौजदारी न्यायालय स्थापित की गई जिसमे लिपिकों और अर्दलियो के अतिरिक्त एक काजी, एक मुफ्ती, दो मौलवियो और चार सहायक काजियों को काम करना था। जिले के कलेक्टर को इस न्यायालय की देखभाल करना था और यह भी देखना था कि सभी गवाहिया सही हो और निर्णय "ठीक और निष्पक्ष" हों। जो न्यायालय के कर्मचारी अवैध धन लेते थे उन्हे अपमानित कर पद से हटा दिया जाता था।

दीवानी अदालतो की अपीले गवर्नर और कौसिल के दो सदस्यो के अधीन कलकत्ता में स्थित सदर दीवानी अदालत मे होती थी। पहले यह न्यायालय, जो असैनिक मुकदमे देखता था, नवाब की राजधानी मुर्शिदाबाद मे स्थित था। लेकिन हेस्टिंग्स ने सोचा कि चूकि दीवानी अधिकार कपनी के अधिकार में आ गए हैं जिसका केन्द्र कलकत्ता है, इसलिए इस उच्च न्यायालय, जिसकी कार्यक्षमता पर दीवानी कार्य आधारित था, को भी कलकत्ता मे आ जाना चाहिए। इसलिए यह न्यायालय यहा ले आया गया।

दूसरी ओर जिला निजामत अदालतो की अपीले सदर निजामत अदालत मे होती थीं जिसकी अध्यक्षता दारोगा-ए-अदालत करता था। इसकी सहायता के लिए एक मुख्य काजी, एक मुख्य मुफ्ती और तीन मौलवी होते थे। जिस तरह से जिला निजामत अदालतो की देखभाल जिला कलेक्टर करते थे, उसी तरह सदर निजामत अदालत की देखभाल गवर्नर की कौसिल का एक सदस्य करता था। उसका यह कर्त्तव्य था कि वह देखे कि न्यायालय का निर्णय "पक्षपात और भ्रष्टाचार के प्रभाव से आहत या रुका नही है।" यह न्यायालय भी पहले मुर्शिदाबाद में स्थित था जिसे कलकत्ता ले आया गया।

"1772 में सदर निजामत अदालत के मुर्शिदाबाद से कलकत्ता ले जाए जाने के साथ ही हेस्टिंग्स ने अल्पवयस्क नवाब की मा को तैयार किया कि वह उसे उसके पुत्र के एक प्रतिनिधि को नामित करने की आज्ञा दे जो कलकत्ता मे रहे और उसके पास नवाब का अधिकार हो जिससे वह उसकी ओर से निजामत अदालत द्वारा प्रदत्त दंडो पर निजाम की सील लगा सके और उसकी ओर से हस्ताक्षर कर सके। इससे वह अनावश्यक देरी समाप्त हो जाएगी जिसके अतर्गत सदर निजामत का फतवा कलकत्ता से मुर्शिदाबाद भेजने मे देर लगती है जिससे नवाब के उस पर हस्ताक्षर हो सके।"[1]

सदर दीवानी अदालत का कलकत्ता ले जाया जाना नवाब के अधिकार मे उतना हस्तक्षेप न था जितना सदर निजामत का वहा ले जाया जाना। उसके

---

1. पात्र, अतुलचन्द : द ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस अडर द ईस्ट इडिया कपनी इन बगाल, बिहार ऐण्ड उड़ीसा, 1962, पृ० 71।

अधिकार के सहित उसके डिप्टी की नियुक्ति जो कलकत्ता में रहे और नवाब की ओर से सदर निजामत अदालत के निर्णयों पर सील लगाये और हस्ताक्षर करे। यह कोई उसके अधिकार समाप्ति का मुआवजा न था। हेस्टिंग्स का यह तर्क कि नवाब की युवा उम्र और अनुभवहीनता के कारण ने ही विभाग को उसे कलकत्ता ब्रिटिश देख-रेख मे ले जाने को वाध्य किया, समझ से परे है क्योंकि यदि नवाब युवा और अनुभवहीन था, तो उसका सहायक मुर्शिदावाद स्थित रजाखां ऐसा नही था जिसे यह सब काम देखना पड़ता था। यह सारी कार्यवाही किसी अन्य बात को ध्यान में रखे बिना रजाखाँ को अपमानित करने के लिए की गई थी क्योंकि जब उसे पद से हटाया गया तो यह और सिद्ध हो गया जिसे घूसखोर सिद्ध किया गया और मुकदमा चलाया गया, जबकि उसके कट्टर शत्रु सदरुलहकखाँ को सदर निजामत के अध्यक्ष पद पर दारोगा-ए-अदालत नियुक्त किया गया। पाठको को स्मरण होगा कि रजाखाँ के ऊपर आरोप प्रमाणित नही हुए और उसे बाद मे छोड़ दिया गया।

इसके अतिरिक्त कलकत्ता जिसमें भी अन्य जिलो की भाति दीवानी अदालत और निजामत अदालत स्थापित किए गए। अंतर इतना ही था कि इनमे बारी-बारी से कौंसिल का एक-एक सदस्य अध्यक्षता करता था। "इन सभी न्यायालयों में यह तय हो चुका था कि कार्यवाही के कागजात तैयार किये जाएं और उन्हें सुरक्षित रखा जाय। न्यायाधीश के हित के लिए मुकदमा लड़े जाने वाली दौलत का एक चौथाई (चौथ) लेने की परपरा समाप्त कर दी गई। अत्यधिक आर्थिक दंडों पर पाबन्दी लगा दी गई। विवेकाधीन शक्ति जो एक कर्ज लेने वाले पर एक कर्जदाता आरोपित करता था अब असहनीय मान लिया गया।"[1]

डाकू जो पूरे देश मे कठिनाई पैदा करते थे उन्हें उन्ही के गावों मे मारे जाने का निश्चय किया गया। यदि किसी डाकू का पता न चले तो उसके गाव पर अर्थ-दड लगाया जाता था। वे पुलिस अधिकारी जो डाकुओ को पकड़ने का कार्य करते थे उन्हे उचित इनाम भी दिया जाता था।

इस तरह यह हेस्टिंग्स द्वारा प्रमुख न्यायक्षेत्र में प्रथम सुधारो का कार्य था और यह प्रशंसनीय कार्य था। मुस्लिम कानून अपने भेद-भाव पूर्ण विशेषता सहित अब भी फौजदारी न्यायालयों मे चलता रहा। डाकू जो देहात में आतंक मचाए हुए थे उनकी सख्या बढ़ गई। इसका एक कारण यह था कि इस परिवर्तन के कारण देशी प्रथा की पकड और कमजोर पड़ गई और अंग्रेजी व्यवस्था पूरी तरह से लागू नही हो पाई। साथ ही राजस्व व्यवस्था मे कुछ विशेष परिवर्तनों ने जमीदारो को उनकी भूमि से वेदखल कर दिया और उन्हें डाकू बनने

1. मिल : पूर्वोद्धृत, भाग 3, पृ॰ 530।

को बाध्य कर दिया। जो जमीदार बचे भी उन्हें अपने भविष्य की दुश्चिंता घेरे रही। इस तरह पहले की तरह डाकुओं को पकड़ने की जगह अब उन्हें ये भाग जाने मे सहायता करने लगे और कभी-कभी तो उन्हे शरण भी दी।

जेलों में बंदियों की संख्या तेजी से बढ़ गई, भयानक दंडों का भी कोई प्रभाव नही पड़ा। अब यह योजना बनाई जाने लगी कि बंदियों को दास के रूप में बेच दिया जाय।

1774 और 1781 के मध्य परिवर्तन

1773 के रेग्युलेटिंग ऐक्ट ने वारेन हेस्टिंग्स को बंगाल का गवर्नर बना दिया और उसकी सहायता के लिए एक कौंसिल स्थापित कर दी। पर कौंसिल के अधिकतर सदस्यों ने उसके प्रति प्रारंभ से ही विरोधी रुख अपनाया। रजाखां छोड़ दिया गया। हेस्टिंग्स के न्यायिक परिवर्तनों को देश मे अव्यवस्था का कारण करार दिया गया और विरोधभाव वाली कौंसिल ने 1775 में यह प्रस्ताव पारित किया कि सदर निजामत अदालत को मुर्शिदाबाद मे ही वापस कर दिया जाय जिससे "देशी सरकार शक्तिहीनता और निरर्थकता से उबर सके। जिस स्थिति में हेस्टिंग्स उसे पहुचाना चाहता था।"[1]

"रजाखां पर तकदीर पुनः मुस्करा पड़ी। वह पुन नायब नाजिम और अल्पवयस्क नवाब मुबारकुद्दौला का सरक्षक बनाया गया। सदर निजामत अदालत को मुर्शिदाबाद में स्थापित करके उसकी अध्यक्षता मे कर दिया गया।" यह सब हेस्टिंग्स की इच्छा के विपरीत किया गया।

रजाखां की पुरानी प्रतिष्ठा और शक्ति बहाल कर दी गई और उसके तुरन्त बाद उसने पुलिस और फौजदारी न्यायालयों के बेहतर कार्य करने के लिए एक योजना तैयार की जिसे कौंसिल ने स्वीकृति प्रदान कर दी और इसे लागू करने के लिए आदेश दिया। पर उसकी स्थिति सुरक्षित नही थी। वह हेस्टिंग्स के विरोध के बावजूद नियुक्त हुआ था। नवाब भी बड़ा हो रहा था और वह सहायक नवाब के संरक्षण से स्वतंत्र होना चाहता था। 1778 में गवर्नर जनरल ने उसे पुनः पद से हटवा दिया। उसके स्थान पर सदरुलहक को 18 हजार रुपये वार्षिक के स्थान पर 78 हजार रुपये पर सहायक नवाब नियुक्त किया गया।

जब सदरुलहक को सहायक नवाब नियुक्त किया गया तो मुबारकुद्दौला को यह सूचित किया गया कि जहां प्रतिष्ठा नवाब में निहित है वहां शक्ति का

1. देखें मजूमदार, एम० : जस्टिस एण्ड पुलिस इन बंगाल, 1765-1793, कलकत्ता, 1960, पृ० 132, 141।

अधिकार क्षेत्र उसके सहायक का है जिसमे उसे कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए। सदर मे हेस्टिंग्स को एक ऐसा सही व्यक्ति मिल गया जिसके माध्यम से वह जैसा चाहता, करता। पर दुर्भाग्य अब भी उसके पीछे पडा था। सदर 1779 में मर गया और डाइरेक्टरो ने रजाखा को उसकी पुरानी जगह पर नियुक्त होने का आदेश भेज दिया।

इसी समय हेस्टिंग्स के लिए एक-दूसरे क्षेत्र मे कठिनाई पैदा हो रही थी। 1773 के रेग्युलेटिंग ऐक्ट के अनुसार कलकत्ता मे क्राउन द्वारा नियुक्त 4 न्यायाधीशो सहित एक सुप्रीम कोर्ट की स्थापना हुई। इस न्यायालय का कार्य क्षेत्र था "कोई भी व्यक्ति जो कपनी की सेवा मे प्रत्यक्ष *या* अप्रत्यक्ष रूप से हो या ब्रिटिश सम्राट की कोई प्रजा।" इस ऐक्ट ने कोर्ट पर "कार्यपालिका सरकार की कष्टपूर्ण नीति की देख-रेख करने को भी कहा। गवर्नर जनरल और कौन्सिल की एक ओर *तथा* सुप्रीम कोर्ट की दूसरी ओर *की अपनी-अपनी* कार्य करने की प्रकृति व क्षेत्र को स्पष्ट रूप से अलग नही किया गया। 1773 के रेग्युलेटिंग ऐक्ट की अस्पष्ट और अपर्याप्त धाराओं ने तथा 1774 के न्याय की धाराओ ने प्रेसीडेन्सी की कार्यपालिका और न्यायपालिका को आपस मे भिड़ा दिया जो किसी न किसी रूप मे लगभग 7 वर्षों तक चलता रहा जब तक कि दोनो के कार्य क्षेत्रों को परिभाषित नही कर दिया गया।"[1]

सुप्रीम कोर्ट ने *नवाब के न्यायालय पर अपना अधिकार क्षेत्र बताया और* साधिकार कहा: "मुबारक के पास उपाधि के अतिरिक्त कुछ नही है···(वह) अपनी शक्ति और अधिकार को अंग्रेज कपनी के हाथ मे सौप चुका है।" इस कोर्ट ने *दीवानी और निजामत अदालतों के मुकदमों के तबादले को प्रोत्साहन* दिया। इसने भारतीय न्यायालयों के विरुद्ध अपराधियो को शरण दी और सदरुलहक के विरुद्ध बदी प्रत्यक्षीकरण की याचिका दायर कर दी जिसे हेस्टिंग्स के *व्यक्तिगत हस्तक्षेप मात्र से बचाया जा सका। गवर्नर जनरल ने बेकार ही* यह अर्थ लगाने को इन्कार किया कि सुप्रीम कोर्ट ने अपनी शक्ति दी और इसी कारण राज्य की राजस्व मशीनरी रुक गई।

फौजदार संस्था का भी *पतन हुआ। फौजदार वे कर्मचारी होते थे जो* अपराधियों को पकड़कर भारतीय न्यायालयो में उन पर मुकदमा चलवाते थे। पर जब अब भारतीय न्यायालय से सजा पाये हुए व्यक्ति बार-बार सुप्रीम कोर्ट से छोड़े जाने लगे तो फौजदार घबड़ा गये। फौजदार और कारण से भी परेशानी मे पड़े। पहले जमीदार उन्हें अपने राजस्व भाग से ही सहायता देते थे, पर अब जब वे स्वयं असुरक्षितहो गए और उनकी न्यायालयीय शक्ति छीन ली गई तो वे अब

1. पाल, ए० सी० : पूर्वोद्धृत, पृ० 107।

फौजदारो को मित्र बनाने की मनःस्थिति में नही थे और न उनके कार्यो में सहायता करने के ही। कंपनी कर्मचारी भी प्राय: उनके अधिकार की अवहेलना करते थे। जैसे ही फौजदारो की शक्ति और अधिकार मे कमी हुई, शान्ति और व्यवस्था की समस्या खराब हो गई।

1781-1782 के सुधार

1781 के बंगाल जुडीकेचर ऐक्ट के अतर्गत सुप्रीम कोर्ट की शक्ति का विवेचन किया गया और गवर्नर जनरल और कौन्सिल को स्पष्ट रूप से उसके क्षेत्र के बाहर रखा गया। कौन्सिल में कुछ परिवर्तन किये गये जिसके फलस्वरूप हेस्टिंग्स को अब अपना निर्णायक मत प्रयोग करने मे अधिक प्रभावी होने का अवसर मिला।

6 अप्रैल, 1781 के नवीन सुधारो के अंतर्गत प्रथम, तो फौजदारों की सस्था को समाप्त कर दिया गया क्योंकि वे अपने उस उद्देश्य मे सफल नही रहे थे जिसके लिए उनकी नियुक्ति हुई थी। दूसरे, असैनिक न्यायालयों के मुख्य अधिकारियो को अपने क्षेत्र मे अपराधियों को पकडवाने और फौजदारी न्यायालय में मुकदमा चलवाने का अधिकार दिया गया। तीसरे, अपने क्षेत्र में जमीदारों को भी शांति और व्यवस्था स्थापित करने के लिए अपराधियो को पकडवाने का अधिकार मिला। जमीदारों के संबध मे यह घोषणा की गई कि वे "डाका, राहजनी और हत्या के विरुद्ध अपने जिले मे प्रभावी कदम उठायें और अपराधियो को न्याय के कटघरे में खड़ा करने लिये सब कुछ करें···और यह भी घोषित किया गया कि यदि कोई डाका पडे तो जिस जमीदार के क्षेत्र से संबधित हो उस घटना की परिस्थिति के अनुसार वह धन जमीदार को वापस करना होगा। यदि कोई जमीदार हत्या, डाका या अन्य कोई अशांति उपस्थित करेगा या करायेगा और यह उसके विरुद्ध प्रमाणित हो जायगा तो उसे मृत्यु दंड दिया जायगा।"

चौथे, 'रिमेमब्रेन्सर आफ क्रिमिनल कोर्ट' नामक एक नया विभाग कलकत्ता मे स्थापित किया गया जिसका अध्यक्ष कंपनी के एक प्रतिज्ञाबद्ध कर्मचारी को बनाया गया। प्रत्येक असैनिक न्यायालय के अधिकारी एव प्रत्येक जमीदारों को, जो अपराधियों को पकड़वाते और फौजदारी अदालत मे मुकदमा चलवाते, तत्संबंध में एक विवरण उपरोक्त विभाग को रिकार्ड के लिए भेजना पड़ता था। साथ ही फौजदारी न्यायालयों के अधिकारियो को भी इस तरह के चल रहे या समाप्त हो गये मुकदमे का उसी तरह का विवरण भेजना पडता था। इस विभाग के माध्यम से हेस्टिंग्स फौजदारी न्यायालयों पर देखरेख रखना चाहता था और उस सीमा तक सहायक नवाब के अधिकारों मे कटौती हो जाती

थी। यह विभाग फौजदारी न्यायालयों, जमींदारों और असैनिक न्यायाधीशों के बीच के कार्यों को समन्वित करता था जिससे कि उनमें आपस में अनेकरूपता न हो।

सहायक नवाब के अधिकारों में और कटौती की गई जिसके अंतर्गत उसे अब न्यायालय के अधिकारियों की नियुक्ति मात्र का अधिकार रह गया और वह भी गवर्नर जनरल तथा कौन्सिल के स्वीकृति के बाद।'

जुलाई 1782 में कुछ और परिवर्तन किये गये। प्रशासकीय व्यय को घटाने के लिए फौजदारी न्यायालयों की संख्या 23 से घटाकर 18 कर दी गई और इस तरह का प्रत्येक न्यायालय असैनिक न्यायालय के पड़ोस में इसलिए रख दिया गया जिससे कि सुविधापूर्वक कार्य हो सके। साथ ही मजिस्ट्रेटों को उनके पुलिस कार्य में ठीक से सहयोगार्थ अलग से मजिस्ट्रेट के कार्यरूप स्थापित किये गये। इसमें एक नाजिर, एक जेल अधिकारी, कुछ मुहर्रिर और कुछ सुरक्षा और रक्षा हेतु बरकन्दाज नामक कर्मचारी प्रत्येक जिले में शांति व व्यवस्था हेतु नियुक्त किये गये।

1781-82 के सुधार स्थिति को ठीक करने के लिए हेस्टिंग्स के प्रशंसनीय कदम के रूप में स्वीकार किये जा सकते हैं। पर कुछ दोष अब भी शेष थे। प्रथम, संविधान और फौजदारी न्यायालय की कार्यपद्धति पहले जैसी बनी रही जिसमें मुस्लिम विधान की असमानता भी थी जिसे उन्हें लागू करना पड़ता था और पुरानी असामाजिक कार्यप्रणाली भी लागू थी जिसमें सुधार नहीं हुआ था। दूसरे, गैरसरकारी कर्मचारी व जमींदार भी पुलिस कार्य प्राप्त किये हुए थे जबकि वे अपराधियों से भी अपने को जोड़े हुए थे। अपने सहायतार्थ जमींदार अपने नीचे छोटे पुलिस कर्मचारी भी नियुक्त करते थे जिन्हें नियमित रूप से वेतन नहीं मिलता था और अगर मिलता भी था तो बहुत कम, जिसके फलस्वरूप वे जनता को चूसते थे और इस तरह से वे इतना धन अर्जित करते थे कि उनका पद महत्त्वपूर्ण हो जाता था और यह पद अच्छी कीमत पर बिकने लगता था।

तीसरे, सहायक नवाब की शक्ति को इस तरह सीमित कर दिया गया कि वह किसी तरह का सुधार नहीं कर सकता था जबकि कंपनी के अधिकारी अब भी फौजदारी न्याय को अपने कार्य क्षेत्र से बाहर मानते थे। इस गड़बड़ से न्याय के हित की हानि हुई। चौथे, असैनिक न्यायालयों के अधिकारियों को जो शक्ति दी गई थी वह उत्तरदायित्व से संबद्ध नहीं थी और प्रायः इसी कारण अशांति के अवसर पर असहाय ताकते रहना पड़ता था। उन्हें फौजदारी न्यायालयों में हस्तक्षेप का अधिकार नहीं था और क्योंकि वे विदेशी थे, वे स्थानीय भाषा नहीं समझते थे, न ही स्थानीय परम्परा को ही समझते थे जिसका परिणाम मुकदमा चलने में देरी से होता था और न्याय में और बुराइयां भी आ जाती थीं।

पांचवें, सदर निजामत अदालत को मुर्शिदाबाद में वापस भेजकर तथा गवर्नर जनरल व उसकी कौन्सिल के प्रत्यक्ष देख-रेख से उसे दूर हटाकर न्यायिक अधिकार से राजनैतिक शक्ति को अलग करने का प्रयास किया गया। छठे, गवर्नर जनरल की कौन्सिल वाद-विवाद का स्थल अधिक थी और व्यावहारिक समस्याओं से जूझने वाली प्रधान शक्ति कम। सातवें, न्यायालय के कर्मचारियों का वेतन बहुत कम था और लगता था कि कंपनी फौजदारी प्रशासन की आर्थिक आवश्यकता की ओर ध्यान नहीं देना चाहती थी। इस तरह 1776-1781 के बीच कंपनी ने फौजदारी न्याय पर औसतन 5,95, 125 रु० प्रति वर्ष व्यय किया। यह धन जो यों भी पर्याप्त नहीं था 1782 में घटाकर 2,50,488 रु० कर दिया गया।

आठवें, सरकार के प्रधान गवर्नर जनरल के पास उत्तरदायित्व से जुड़ी शक्ति नहीं थी। हेस्टिंग्स ने लार्ड नार्थ को लिखा : "सबसे छोटा काम करने वाला टहलुआ जो प्रतिदिन की मजदूरी पर जीवन यापन करता है मुझसे अधिक प्रसन्नता का जीवन व्यतीत करता है। मुझे उन कार्यवाहियों के इन्कार करने का उत्तरदायित्व झेलना पड़ता है जिसे मैं नहीं चाहता और साथ ही उस विनाश का मूकदर्शक बना रहना पड़ता है जिसे मैं टाल नहीं सकता।"[1]

बाद में लार्ड कार्नवालिस ने फौजदारी न्यायालय पर से भारतीयों का नियंत्रण पूरी तरह से हटाकर सदर निजामत अदालत को पुन. कलकत्ता भेज दिया। जमींदारों को भी पुलिस कार्य से मुक्त कर दिया गया और पूरी व्यवस्था व्यवस्थित आधार पर स्थापित की गई। पर वह आधार जिस पर उसने कार्य किया और प्रतिष्ठा अर्जित की, उसे हेस्टिंग्स ने ही प्रारंभ किया। इस संबंध में *लिलियन एम० पेन्सन लिखता है :* "कार्नवालिस ने *निर्माण पुराने आधारों पर* किया जो उसके पूर्व के लोगों ने और विशेषकर हेस्टिंग्स ने प्रारंभ किया था। सिद्धान्त की जगह जोर देने पर अधिक बल दिया गया और गृह विभाग की शक्ति का इसे कार्य रूप में बदलने में प्रयोग किया गया।"[2]

राजस्व प्रशासन

1765 में ब्रिटिशों ने जब दीवानी का अधिकार प्राप्त किया, उस समय बंगाल के राजस्व के तीन स्रोत थे : प्रथम, माल जिसके अंतर्गत भूराजस्व और नमक की रॉयल्टी आती थी; द्वितीय, सैर जिसमें चुंगी आदि आती थी और तृतीय, बाजीनामा जिसमें अनेक प्रकार के स्रोत जैसे आबकारी और आर्थिक दंड

1. ल्याल, सर अल्फ्रेड : वारेन हेस्टिंग्स *(लंदन, 1889)*, पृ० 336।
2. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग 5, पृ० 436-437; मिश्रा, बी० बी० : पूर्वोद्धृत, पृ० 337-338 भी देखें।

आदि आते थे। इन स्रोतों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भूराजस्व था जो प्रान्त की पूरी आय का 80% के लगभग होता था और इसीलिए इसका विस्तृत विवेचन आवश्यक है। अन्य स्रोतों का भी संक्षिप्त विवेचन किया जायगा।

नमक—मुगलकाल में बंगाल में नमक उत्पादन पर सरकार का एकाधिकार था। जब कंपनी के हाथ मे यह एकाधिकार आया, हम यह देख चुके हैं कि क्लाइव ने नमक व्यापार के लिए व्यापार का एक संगठन बनाया जिसमे कंपनी के लोग भागीदार होते थे और जिसका प्रबंध गवर्नर की कौन्सिल के हाथ मे होता था, जिससे कि कंपनी के कर्मचारी, जिनका वेतन बढ़ नही पाता था, लाभ उठा सकें। डाइरेक्टरों ने इस पूरी योजना को मानने से इन्कार कर दिया। 1772 में हेस्टिंग्स ने नमक पर कंपनी का एकाधिकार स्थापित किया जिसे डाइरेक्टरो ने भी स्वीकार किया। पर यह एकाधिकार लाभदायी सिद्ध नही हुआ और इसे 1777 मे छोड़ दिया गया और इसकी जगह पर नमकके उत्पादन के एवज मे धन लिया गया। 1780 में इस प्रथा को भी समाप्त किया गया और कंपनी के प्रतिज्ञाबद्ध कर्मचारियों को नमक कार्यालय बनाकर उसमे नियुक्त किया गया जो कौन्सिल के गवर्नर जनरल द्वारा तय मूल्य पर आधारित नमक उत्पादन की देख-रेख करते थे।

चुंगी—हेस्टिंग्स के आने से पूर्व अनेक चुंगीघर थे जो प्रान्त मे जमीदारों के अधीन थे जिससे स्वतंत्र व्यापार के होने में बाधा पड़ती थी। हेस्टिंग्स ने गवर्नर का पद ग्रहण करते ही इस बुराई का अंत किया। उसने सभी चौकियों को समाप्त कर उनके स्थान पर कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, पटना, ढाका और हुगली मे अलग-अलग पाच चुंगीघर स्थापित किये। 1773 मे हेस्टिंग्स ने बोर्ड आफ कस्टम्स की स्थापना करके चुंगी एकत्रित करने को और उसके प्रबंध की व्यवस्था कराई। पर 1774 आते-आते इस बोर्ड की महत्ता घट गई, पर इसका सेक्रेटरी 1779 तक इसी संस्था की ओर से कार्यभार देखता रहा जब यह सब कार्य भूराजस्व विभाग को देखने वाले विभाग को सौप दिया।

भू-राजस्व

हेस्टिंग्स के पूर्व की व्यवस्था—भूराजस्व व्यवस्था के संगत अध्ययन के लिए इसे तीन भागों मे बांटा जा सकता है। वे हैं: (1) रिकार्डों की तैयारी और रख-रखाव, (2) कर-निर्धारण और उसकी विधि, एवं (3) कर वसूलने के स्रोत।

मुगलो के काल मे रिकार्डो की तैयारी और रख-रखाव का काम जिसमें भूमि के स्वामी, भूमि की कोटि, इसकी दर और निर्धारण विधि आदि की सूचनाएं होती थी, कानूनगो द्वारा होती थी जिसकी नियुक्ति पहली बार संभवतः अकबर के समय

में हुई । कानूनगो का कार्यालय महत्ता इसलिए प्राप्त कर गया क्योंकि उन्ही के पास राज्य और जमीदारो के बीच होने वाला अनुबंध होता था और वे ही जमीदारो और कर एकत्रित करने वाले आमिलों पर निगाह रखते थे और वे ही बादशाह की ओर से कर प्राप्त करने के उत्तरदायी थे और साथ ही किसानो के हितेच्छु भी थे । मुगलों के पतन के साथ, कानूनगो अपने पद पर पैतृक-शक्ति प्राप्त कर गया और राज्य व जनता तथा कृपक व जमीदार के हित की देखभाल करने के स्थान पर भ्रष्टता और कष्ट का साधन हो गया ।

भू-राजस्व की निर्धारण विधि व कर एकत्रीकरण के संबध में हमें इसी सूचना से संतोष करना पडेगा कि बंगाल मे मुगल काल मे प्रथम राजस्व-निर्धारण अकबर के काल मे और दूसरा 1658 मे हुआ जो 1772 तक चलता रहा । राजस्व की वसूली आमिल करता था । सीमा क्षेत्रों में फौजदार जमीदारो से राज्य का कर प्राप्त करता था ।

कुछ शब्द जमीदारों के विषय मे भी जिन्होने बगाल मे रुचिकर स्थानप्राप्त कर रखा था । जब मुगल सरकार शक्तिशाली थी तो राजस्व वेतनभोगी एकत्रित करते थे । पर मुगल अधिकारी के पतन के साथ सरकारी कर्मचारियों की महत्ता घट गई और अब राजस्व की वसूली उन्ही से संभव रह गई जिनका स्थानीय प्रभाव था जिसका परिणाम यह हुआ कि दूरदराज के प्रान्तो मे किसान अब निश्चित धन राशि सरकार को देकर शेष अपने पास रखने लगे । समय बीतने के साथ ये किसान, जिन्हें तालुकदार या जमीदार भी कहा जाता था, पैतृक-शक्ति प्राप्त करने मे सफल हो गये । जब 1765 मे ब्रिटिशो ने अपनी शक्ति स्थापित की तो उन्होने भूमि पर अधिकार जताना प्रारभ किया । जो खेती करते थे उन्हें छोड़ दिया गया । इस सारे विवरण का आकर्षक पहलू यह है कि ब्रिटिशो ने कॉर्नवालिस के समय मे जमीदारो के अधिकार की स्वीकृति प्रदान की, जिसके विषय मे हम आगे देखेगे । इस तरह मात्र राजस्व एकत्रित करने वाले भूपति हो गये जब कि भूमि के असली मालिक मजदूर हो गये ।

1765 मे जब कंपनी ने दीवानी अधिकार प्राप्त किया तो इसने आडम्बर से अधिक सार पर ध्यान दिया । जहां राजस्व वसूली का कार्य नायब दीवानो के हाथ छोड दिया गया जो एक बगाल मे था तो दूसरा बिहार में, वहां कपनी केवल फलप्राप्ति मे जुटी थी । प्रति वर्ष प्रत्येक जिले मे जमीदारो से देय धन का फैसला हो जाता था और कंपनी को यह पता रहता था कि कितने धन की वसूली हुई है । बंगाल मे मुर्शिदाबाद का नायब दीवान कर वसूलता और नवाब के खजाने (खालसा) मे उसे जमा करता जहां से वह रेजीडेन्ट को भेज दिया जाता । बिहार का धन पटना के नायब दीवान से कपनी के मुख्य

रैय्यत की जमीदारो या बड़े किसानों से रक्षा के लिए उन्हे पट्टा देने की व्यवस्था की गई और कलेक्टरों से कहा गया कि वे उनके हित का अधिक ध्यान रखें।

1772 में जो सुधार हेस्टिंग्स ने किए उसमे बहुत से दोष थे। "बंदोवस्त पचवर्षीय था और भूमि की नीलामी होती थी जिससे कि भूमि की असली कीमत की जानकारी हो। यह अपने मे स्वयं बोर्ड के राजस्व नीति पर छींटाकसी है क्योंकि यह उन्हें पता ही रहा होगा कि सामान्य नीलामी ने लोगो को विशेष *कारणों से आकर्षित किया होगा केवल लाभ की इच्छा से ही नहीं; जुआरी* प्रवृत्ति, शक्ति का मोह, शत्रु पर प्रहार का अवसर या स्थानीय जमींदार को अपमानित करना, ये सभी नीलामी के दर को राजस्व मूल्य से अधिक बढा देते रहे होंगे।"[1]

इसीलिए बहुत बार तो भूमि जमीदारो के हाथ से सट्टेबाजों के हाथ मे *चली जाती थी जिनकी कृषि में न तो रुचि थी और न जानकारी जिससे उसकी* हानि होती थी।

रैय्यतों का दुर्भाग्य यथावत् बना रहा और उस समय तो उसकी दशा बदतर हो गई जब भूमि किसी जमीदार के हाथ से सट्टेबाज के हाथ में चली जाती क्योंकि वह अपनी नीलामी की कीमत से भी अधिक का बोझ उन्हीं पर डाल देता। कलेक्टर सभी निर्देशों के बावजूद चुप रहते, अन्यमनस्क रहते या सभव है उन्हें इसकी जानकारी ही न हो पाती रही हो। कपनी के राजस्व की स्थिति में बेहतरी नही आई और हेस्टिंग्स को इसके लिए किसी अन्य योजना के विषय मे सोचना पडा।

1774 के सुधार

कलेक्टरों की नियुक्ति जिलो मे प्रशासकीय क्षमता मे बेहतरी के लिए नही बल्कि राजस्व स्रोतों मे वृद्धि के लिए की गई थी क्योंकि अग्रेजों की दृष्टि मे नायब दीवानो से लेकर रैय्यतों तक भारतीयों का चरित्र सदेहास्पद था। पर कलेक्टरो ने राजस्व को बढाने की जगह पर उनके ऊपर अधिभार बढा दिया और इसीलिए 1773 मे डाइरेक्टरों ने इसे वापस कर लिया जिससे कोई नयी योजना प्रारंभ की जा सके।

नवम्बर 1773 मे इसीलिए गवर्नर और उसकी कौन्सिल ने एक नयी योजना प्रारंभ की जिसके दो भाग होने थे। प्रथम अस्थायी था और तुरन्त लागू होना था और द्वितीय स्थायी था और भविष्य के लिए था। कलेक्टरो को जिलों से

1. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग 5, पृ० 416-17।

वापस बुलाया जाना था और अस्थायी योजना के अंतर्गत उन्हें मध्य चरण मे रखा जाना था जबकि अस्थायी योजना के अंतर्गत उन्हे केन्द्र पर बुला लिया जाना था।

1774 में अस्थायी भाग की योजना कार्यान्वित की गई जब पूरे बगाल प्रेसीडेन्सी को छः प्रभागों—कलकत्ता, मुर्शिदाबाद, पटना, बर्दमान, दीनाजपुर और ढाका मे बांट दिया गया जिनमे से प्रत्येक मे कई जिले होते थे।

प्रत्येक प्रभाग में एक प्राविन्सियल कौन्सिल होती थी जिसमे कपनी के पांच वरिष्ठ कर्मचारी होते थे जिनमे से एक को चीफ नियुक्त होना था और 3,000 रुपये प्रति मास का ऊचा वेतन मिलना था जिससे वह व्यक्तिगत व्यापार में अपने को न फंसाए। प्रत्येक कौन्सिल में सहायतार्थ एक दीवान होना था; और इसके अतिरिक्त एक सेक्रेट्री, एक फारसी अनुवादक, एक लेखाधिकारी और तीन सहायक भी नियुक्त होने थे। कलकत्ता कौन्सिल का संविधान थोड़ा अलग था। कौन्सिलों के पाच सदस्यो मे से दो गवर्नर की कौन्सिल से होते थे और यह कौन्सिल राय रायान द्वारा सहायता प्राप्त करती थी जो दीवान की शक्ति रखता था।

प्राविन्सियल कौन्सिल को बोर्ड ऑफ रेवन्यु की हैसियत से गवर्नर और कौन्सिल के सदृश होना था, जब कि प्रान्तीय दीवानों को राय रायान के सदृश होना था जिन्हें बोर्ड ऑफ रेवन्यु के कथन के अनुसार काम करना था।

जिलों से कलेक्टरो को प्रान्तीय कौन्सिलो के केन्द्र पर वापस बुला लिया गया जहां उन्हे उनकी सहायता करनी थी और उनके स्थान पर नायब नामक भारतीय राजस्व अधिकारियों की नियुक्ति कर एकत्रित करने और दीवानी अदालतों की अध्यक्षता करने के लिए की गई। ये नायब राजस्व अधिकारी की हैसियत से प्रातीय कौन्सिलो के दीवानों के सदृश होते थे।

कभी-कभी निरीक्षण हेतु बोर्ड ने केन्द्र पर कमिश्नरो की नियुक्ति का निश्चय किया जो सर्वसम्मत ढग से चुने जाते थे और अपनी उदारता तथा फारसी की जानकारी के लिए जाने जाते थे।

1774 में किए गए परिवर्तन पूर्ण रूप से अस्थायी थे, पर इसके प्रारभ होने के साथ 20 अक्तूबर 1774 को रेग्युलेटिंग ऐक्ट के अतर्गत नयी सरकार स्थापित हुई। गवर्नर जनरल कौन्सिल के बहुत से सदस्य प्रारंभ से ही उसके विरुद्ध थे जिन्होने यह निश्चय किया कि 1774 की व्यवस्था तब तक चलती रहेगी जब तक उन्हें उसके विषय मे जानकारी नही प्राप्त हो जाती और उसमें अन्य परिवर्तन नही कर दिए जाते। 1772 में लागू पंचवर्षीय बंदोबस्त सफल नही हुआ था जिसे 1777 मे समाप्त होना था और कोई नयी व्यवस्था की जानी थी। कौन्सिल ने खालसा के रिकार्ड के लिए एक सुपरिन्टेन्डेन्ट की नयी

जगह सृजित की जिसे राय रायान के कुछ कर्त्तव्य दे दिए गए। इसके बाद बदोबस्त की विधि को लेकर एक लबा विवाद चला। हेस्टिंग्स की आन्तरिक और बाह्य नीति भी विवाद का विषय बन गई।

कर-निर्धारण की विधि को लेकर जो विवाद छिड़ा उससे कौन्सिल दो भागों मे वट गई। एक हेस्टिंग्स और वारवेल की जिनका मत था कि जमीदारों का अपने स्थान से हटना हानिप्रद रहा है। उन्हे उनकी पुरानी स्थिति प्रदान की जानी चाहिए। उनके साथ पिछले तीन वर्षो के एकत्र किए गए राजस्व के औसत के आधार पर समझौता किया जाना चाहिए और यदि वह एकत्रित कर वापस न करें तो उतने ही मूल्य की उसकी भूमि बेच दी जानी चाहिए और उसी से बकाया धन काट लेना चाहिए।

दूसरे पक्ष का नेतृत्व करने वाले फ्रांसिस ने भी जमीदारों से समझौते का पक्ष लिया। पर उसका कहना था कि यह अस्थायी होना चाहिए और उसकी दर उतनी होनी चाहिए जिससे सभी व्यय निकालने के बाद सरकार को कुछ लाभ हो जाय।

1777 के संबंध में कोई निर्णय नही हो सका और डाइरेक्टरों ने यह सचना भेजी कि स्थायी निर्णय होने तक वार्षिक बंदोबस्त कर लिये जाएं।

इसी बीच हेस्टिंग्स को दूसरी ओर से कठिनाइयो का सामना करना पड़ा। रेग्युलेटिंग ऐक्ट के अंतर्गत सुप्रीम कोर्ट का अधिकार क्षेत्र प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करने वाले कंपनी के कर्मचारियो पर हो गया। इसका यह अर्थ था कि जिला नायबो को भी इन्ही के अनुसार काम करना था। इसने इस तरह दीवानी अदालतो की अपीलें सुननी प्रारंभ की जिसके निर्णय बहुत देर से होने लगे और प्रायः बदलने लगे जिसका यह परिणाम हुआ कि राजस्व एकत्रित करने वाले लोगों का काम लगभग रुक गया। 1779 मे जाकर, जब हेस्टिंग्स ने मुख्य न्यायाधीश इम्पे को सदर दीवानी अदालतों में मुख्य न्यायाधीश का पद 6,500 पौंड वार्षिक की दर पर सृजित करने को कहा, स्थिति शांतिपूर्ण हुई। 1881 मे बंगाल जुडीकेचर ऐक्ट भी उसकी मदद मे आ गया जब राजस्व प्रशासन न्यायालय क्षेत्र के बाहर कर दिया गया।

1880 के अंत तक हेस्टिंग्स को अपनी कौन्सिल में प्रभावी निर्णायक मत देने की स्थिति पैदा हो गई जब फ्रांसिस इंगलैण्ड चला गया और अन्य विरोधी बीमारी-ग्रस्त हो गए या मर गए। अब उसके समक्ष खुला मैदान था। 1774 के परिवर्तन अस्थायी थे। 1773 में डाइरेक्टरो ने कलेक्टरों को केन्द्र मे बुला लेने का आदेश दिया था और 1776-78 के अमीनी कमीशन ने भारतीयों पर अधिक निर्भर रहने की संस्तुति दी थी। इन परिस्थितियो में हेस्टिंग्स ने 1774 मे अपनी योजना का स्थायी भाग लागू किया।

1781 के परिवर्तन

इस योजना के अंतर्गत प्रांतीय कौंसिलें समाप्त कर दी गई और कलेक्टरो को केन्द्र पर वापस बुला लिया गया; जिला प्रशासन भारतीय नायवो के हाथ में सौंप दिया गया। पर सामरिक दृष्टि को ध्यान में रखकर रगपुर, चित्रा और भागलपुर मे अंग्रेजी कलेक्टर नियुक्त किए गए।

केन्द्र मे कंपनी के प्रतिज्ञावद्ध कर्मचारियो—जान शोर, चार्टर्स क्राफ्टस और ऐण्डरसन सहित रेवन्यू कमेटी की स्थापना की गई जिसकी सहायता के लिए भारतीय दीवान गगा गोविन्द को नियुक्त किया गया। राय रायान बना रहा पर उसे दीवान के कार्य मे हस्तक्षेप का अवसर नही दिया गया। विरोधी बहुल पक्ष द्वारा खाल्सा रिकार्ड के सुपरिन्टेन्डेन्ट का पद समाप्त कर उसका काम कमेटी को ही सौंप दिया गया।

कमेटी के सदस्यों को नियुक्ति के समय यह शपथ लेनी पड़ती थी कि वे अवैध धन नही प्राप्त करेंगे। उन्हे एक निश्चित वेतन के स्थान पर पूरे एकत्रित किए गए कर का 2% लाभांश मिलता था पर इसमें भी प्रेसीडेन्ट को अधिक दिया जाता था।

कमेटी को गवर्नर जनरल और कौंसिल से सूचनाए प्राप्त करने और निरीक्षण हेतु लगातार संबध बनाये रखना होता था। जिलों से हर तरह का लेखा इस कमेटी को भेजा जाता था जो उसे एकाउन्टेन्ट जनरल को भेजती थी।

1781 के बंदोबस्त के अपने दोष थे। प्रथम दोष तो यह था कि यह अत्यधिक केन्द्रित था। 1772 के सुधार के अंतर्गत कलेक्टर जिलों मे नियुक्त किए गए थे जहां यदि वे रहे होते तो कुछ अनुभव और जानकारी प्राप्त करते जो भविष्य के प्रशासकीय सुधारों के लिए लाभदायक होता। पर जैसा स्पष्ट है कि डाइरेक्टर खुद दीवान इसलिए नही बने थे कि देश की जनता अवैध वसूली से बच सके बल्कि इसलिए कि जो अवैध धन कंपनी कर्मचारियों या भारतीय राजस्व विभाग के लोगो को प्राप्त होता था वह इन्हें स्वय मिल जाय। कलेक्टर इसी उद्देश्य से नियुक्त किए गए पर जब वे कपनी की आय बढ़ाने की जगह स्वयं एक व्यय बन गए तो उन्हें वापस बुला लिया गया और यह समझ लिया गया कि रैय्यत से लेकर दीवान तक सभी विवरण छिपाते हैं। और कंपनी पहले की ही भांति भारतीय स्थिति के विषय मे अनभिज्ञ बनी रही।

केन्द्र में कमेटी अपने दीवान पर अधिक आश्रित थी। वह उसी की आख से देखती थी और उसी के कानों सुनती थी।

रैय्यत कष्टग्रस्त थे। जब कंपनी ने अपने को उनके प्रति सभी कर्तव्यो से मुक्त हुआ मान लिया और कलेक्टरो को वापस बुला लिया और मात्र रुपये एकत्रित करने ही मे जुट गए तो उनका दुर्भाग्य उनके पीछे और पड़ गया।

सच में जिला स्तर पर राजस्व के मुकदमों को कार्यक्षमता की दृष्टि से और साथ ही कंपनी के लाभ हेतु, तेजी से निबटाना था। पर अब सभी को केन्द्र की ओर देखना था जहां प्रारंभ और अंत दोनों होने लगा।

जनता की चुंगी और परम्परा परगने परगने में अलग अलग थी और इस संबंध में जानकारी दूर कलकत्ते में बैठकर नहीं प्राप्त की जा सकती थी। और उस जानकारी के अभाव मे कंपनी न तो शासन कर सकती थी और न पूर्ण लाभ पा सकती थी।

हेस्टिंग्स के पूर्ण भू-राजस्व प्रशासन के सामान्य सर्वेक्षण में, 1774 और 1781 की योजनाओं के दोष के साथ ही, यह जोड़ा जा सकता है कि 1772 में जो कर निर्धारण किया गया वह अत्यधिक था। जब भूमि की नीलामी अधिक से अधिक बोली बोलने वाले को की जाने लगी तो इसमें सट्टेबाजों की बन आई जिन्होंने रैय्यतों की कठिनाई को केवल बढ़ाया। केन्द्र में गवर्नर जनरल और कौंसिल विभाजित हो गए जहां जो कुछ होता था वह अर्थशास्त्र के ऊंचे सिद्धान्त पर न होकर व्यक्तिगत आधार पर होता था।

पर फिर भी हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि बंगाल में हेस्टिंग्स का काल संक्रांति का काल था जिसमें कंपनी अपना रास्ता टटोल रही थी। एक के बाद दूसरा प्रयोग किया जा रहा था और "शनैः-शनैः उनकी समझ में आ रहा था कि सिद्धान्तहीन लाभ व स्वार्थ की नीति अंत में हानि ही करती है।"[1]

1. घर, निरंजन : द एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम आफ द ईस्ट इंडिया कम्पनी इन बंगाल, 1714—1786, भाग 1, पृ॰ 181।

16

हेस्टिंग्स के अंतर्गत वाह्य संबंध

सम्राट शाह आलम

जब बंगाल सरकार का कार्यभार हेस्टिंग्स ने ग्रहण किया उस समय कंपनी की आर्थिक स्थिति अच्छी नही थी। कंपनी को एक बड़ी सेना का भार सहन करना पड़ता था। बराबर पुराने सम्राट को शुल्क, वृत्ति और अन्य धन देना पड़ता था। इससे रुपये की कमी पड़ती थी।

बंगाल के बाहर मराठे पानीपत में अहमद शाह अब्दाली से बुरी तरह से पराजित होकर दुबारा शक्ति प्राप्त कर रहे थे। जनवरी 1771 में उन्होंने दोआब पर आक्रमण कर रोहिल्लों से इटावा छीन लिया और फरवरी मे उसी वर्ष दिल्ली पर उन्होंने अधिकार कर लिया और शक्तिहीन शाह आलम के नाम से जो ब्रिटिश सुरक्षा मे रह रहा था, अपना प्रभाव बढाने का निश्चय किया। मराठो ने मुगल सम्राट से दिल्ली मे उसे पुनर्प्रतिष्ठा दिलाने का आश्वासन देकर वापस आने को कहा। ब्रिटिशों ने उससे इस धोखाधडी और खतरनाक प्रस्ताव को न मानने के लिए कहा पर सम्राट शाह आलम 1771 मे इलाहाबाद को छोडकर मराठों की ओर चला गया। "यह एक महत्त्वपूर्ण और विनाशकारी निर्णय सिद्ध हुआ और विभ्रान्त सम्राट ब्रिटिश क्षेत्र मे कभी नहीं लौटा। लगभग 32 वर्षों तक वह व्यवहारत: मराठों और अफगानो के हाथ बंदी बना रहा।"[1]

एक बार सम्राट मराठों के संरक्षण में आया कि वे उससे एक के बाद एक सुविधाएं प्राप्त करने लगे। 1772 मे उन्होने उसे अपने मन का एक मंत्री नियुक्त करने को बाध्य किया। उसी वर्ष उसे उन्हें कड़ा और इलाहाबाद देने को बाध्य होना पड़ा, लेकिन "सम्राट के सहायक ने अनैच्छिक सिद्ध करते हुए इन स्थानो को ब्रिटिश संरक्षण में देते हुए अपने मालिक के लिए उसे बचा लिया···"[2]

इस तरह जब हेस्टिंग्स ने कार्यभार ग्रहण किया तो उसे एक नाजुक समस्या का सामना करना पडा। प्रश्न था क्या वह स्थान जो उन्हें बहुत पसन्द था उन जिलों को ब्रिटिश मराठों के अधिकार मे चले जाने देंगे, या सम्राट के हित में वे इसे अपने ही अधिकार मे रखेंगे, या कंपनी के अधिकार मे इसे लायेंगे या नवाब वजीर

1. कैम्ब्रिज, पूर्वोद्धृत, भाग पृ० 5, 215।
2 मिल, जेम्स : द हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इंडिया, लदन, 1840, भाग 3, पृ० 566।

को वापस कर देंगे। हेस्टिंग्स को इन्ही मे से कोई रास्ता चुनना था। कंपनी के धन की आवश्यकता ने हेस्टिंग्स को इस समस्या को सुलझाने की और प्रेरणा दी। उसने सम्राट का शुल्क तुरन्त रोक देने का आदेश दिया क्योकि उसने ब्रिटिशों का साथ छोड़कर शत्रु का पक्ष धारण कर लिया था। कड़ा और इलाहाबाद के जिले लेकर नवाब वजीर को दे दिये गये जिसके बदले में उसने ब्रिटिशों को 20 लाख रुपये नकद दिया और 30 लाख रुपये दो वार्षिक किश्तो में देने का आश्वासन दिया।

क्या हेस्टिंग्स ने जो कदम उठाया वह उचित था ? मिल लिखता है: "उदारता ...वह भी दयनीय सम्राट के साथ इतनी अतुलनीय शक्ति...उसके पास सिर छिपाने के लिए जगह तक न थी। न्याय भी या कोई चीज जो उससे आसानी से नही अलग की जा सकती थी, वह भी उसी पक्ष में जाती थी..."[1]

पर हेस्टिंग्स ने जो कुछ किया उसको ठीक सिद्ध करने के लिए उसके अपने तर्क थे। सम्राट अब ब्रिटिशो का मित्र नही था। वह मराठो से जा मिला था जो ब्रिटिशों के शत्रु थे और इन परिस्थितियो में सम्राट को दिया जाने वाला शुल्क का हर पैसा उनकी शक्ति बढ़ाता जो ब्रिटिशों को कमजोर करना चाहते। दूसरे वह इस बात से सहमत नही था कि ब्रिटिशो ने बगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी का अधिकार अपने हाथ में बनाये रखते हुए सम्राट का शुल्क देना समाप्त करके उसके साथ धोखा किया है। "उसकी प्रजा मे से एक ने भी उसके अधिकार का आदर नही किया, जबकि हमने झुककर उसकी आराधना की है।"[2] उसने कहा कि कपनी ने "एक धृष्ट तोहफा और वह भी अपनी शक्ति से उन्होंने प्राप्त किया इसके अतिरिक्त और कुछ नही। उसी शक्ति से जिसके लिए बादशाह भी ताज व जीवन प्राप्ति के लिए ऋणी है।"[3]

उपरोक्त जिलों पर सम्राट का नाम मात्र को ही अधिकार था जिसे उन्होंने ले लिया। यह अधिकार वहां उसका वैसे ही था जैसे अवध पर। कम्पनी को धन की भी आवश्यकता थी। 1770 की विनाशलील[illegible] और बिहार को

था। अब उसे रास्ते पर लाना था।

अत मे सम्राट के विरुद्ध कोई कार्यवाही की जाय उसके पूर्व उससे अपने प्रतिनिधि को भेजकर स्थिति स्पष्ट करने को कहा गया। पर उसने इस आज्ञा के पालन को आवश्यकता नही अनुभव की।

यह भी समझ में नही आता कि जब्त किये गये इन जिलो को अपने पास रखने की जगह पर कम्पनी को क्यो दे दिया गया। पर यहा भी हेस्टिंग्स की कार्यवाही के कुछ सम्यक कारण थे। प्रथम, यदि हेस्टिंग्स ने इन स्थानो को अपने पास रख छोडा होता तो बिना मतलब उसके और नवाब वजीर के बीच ईर्ष्या के बीज पड जाते जब कि उसकी विदेश नीति का आधारस्तंभ यह मैत्री थी। दूसरे, डाइरेक्टरों ने भी यह नही चाहा था कि कपनी भारत मे अपने राज्य क्षेत्र का विस्तार करे और कपनी के क्षेत्र से इतने दूर इन जिलों पर अधिकार अनावश्यक प्रशासकीय समस्याएं पैदा कर सकता था।

तीसरे, सम्राट मराठों के हाथ मे था। मराठे रोहिल्लो से पहले भी सन्धि कर चुके थे और अब पुनः सन्धि होने की चर्चा थी और यह भी अफवाह थी कि नवाब वजीर से भी संपर्क किया जा रहा है। अगर इस तरह का कोई संघ बन जाता तो ब्रिटिशों को कठिनाई हो सकती थी। मराठे कड़ा और इलाहाबाद चाहते थे और यह समझते थे कि यदि यह नवाब को मिल जायेगा तो इससे उनमे और नवाब मे मतभेद और ईर्ष्या प्रारम्भ हो जायेगी और नवाब को ब्रिटिश मित्रता और समर्थन पर अधिक निर्भर करना पड़ेगा।

चौथे, ब्रिटिशों को कंपनी को आर्थिक दलदल से निकालने की आवश्यकता थी। इन क्षेत्रों को नवाब को सौपा जाना उनकी इच्छापूर्ति में सहयोगी हुआ।

जैसा भी हो, सम्राट जब इस तरह दंडित कर दिया गया तो यह अफवाह उठी कि वह बदला लेने वाला है। वह, मराठे, रोहिल्ले और सिख सगठित होकर अवध पर आक्रमण करने वाले है यह सूचना मिली। इसी के फलस्वरूप ब्रिटिशो ने नजफखान जैसे साहसिक सैनिक से सधि कर ली। पर नवाब अवध के विरुद्ध प्रस्तावित संघ कभी कार्य रूप में नही बदला और समय बीतने के साथ ही सम्राट ने अपनी हानि के साथ समझौता कर लिया।

1782 में हेस्टिंग्स ने सम्राट के दरबार मे एक दूत भेजकर उससे सपर्क स्थापित करने की आवश्यकता का अनुभव किया। यह ब्रिटिशो को दिल्ली की घटनाओं से जानकारी बनाये रखने के लिए आवश्यक था और इसलिए भी कि वहां पर विदेशी एजेण्टो पर दृष्टि रखी जाय। जब सम्राट का सबसे बडा पुत्र मिर्जा जवाबख्त दिल्ली से भगा तो सम्राट ने भी हेस्टिंग्स से सपर्क स्थापित करने की आवश्यकता का अनुभव किया जिससे वह राजकुमार को समझाकर उसके पिता के पास भेज सके। हेस्टिंग्स ने उसे अनुग्रहीत किया और दिल्ली में ब्रिटिश प्रतिनिधि

के रूप मे मेजर जेम्स ब्राउन को नियुक्त किया गया। इस तरह बिगड़े हुए संबन्धों मे कुछ सुधार हुआ।

रोहिल्ला युद्ध

अवध के उत्तर पश्चिम सीमा पर हिमालय की तलहटी में रोहिलखण्ड 12,000 वर्ग मील मे फैला एक उपजाऊ क्षेत्र था। यहां की जनसख्या में 10 लाख हिन्दू थे जिस पर रोहिल्ला नामक अफगान कबीले के लुटेरों का शासन था। इन्होंने इस क्षेत्र को १८वी सदी के प्रारम्भ मे जीता और जो एक प्रमाण के आधार पर 40,000 की संख्या मे थे। रुहेल खण्ड क्षेत्र का राजस्व प्रतिवर्ष 70-80 लाख रुपये था और इनकी सरकार हाफिज रहमत खां के नेतृत्व में विभिन्न सरदारो का एक ढीला-ढाला सघ था। रहमत खां चूंकि असली शासक अली मोहम्मद के पुत्रों का संरक्षक था इस कारण हाफिज कहलाया। इसने ही गद्दी को स्वयं हड़प लिया।

1772 में मराठों ने रुहेलखण्ड पर आक्रमण किया और इस क्षेत्र की लूट-पाट प्रारम्भ कर दी और रोहिल्ला नेता तराई के जंगलो मे भाग गये। नवाब वजीर ने यह सोचकर कि कही यह आफत उसके क्षेत्र पर भी न आ जाय, वह कुछ अग्रेज बटालियनों के साथ सीमा की ओर आगे बढ़ा। अब उसमें और रोहिल्लों मे यह बातचीत प्रारम्भ हुई कि किस तरह इस कठिनाई का मुकाबला किया जाय।

यह स्मरणीय है कि नवाब वजीर और ब्रिटिशो के बीच इस सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार हुआ था कि रोहिल्लो और मराठों के बीच संघर्ष को प्रोत्साहित किया जाय जिससे लाभ उठाकर नवाब रोहिल्ला क्षेत्र पर अधिकार कर सके क्योंकि यह उसके वैज्ञानिक और सुरक्षात्मक सीमा के लिए आवश्यक था। यह भी असम्भव नही था कि मराठे और रोहिल्ले आपस में मिलकर अवध पर आक्रमण करें और लूट-पाट करें। सभी स्वार्थ मे व्यस्त अवसरवादी थे जो षड्यन्त्र मात्र के लिए विश्वस्त थे।

17 जून 1772 मे नवाब वजीर और हाफिज रहमत खान के बीच अवध के ब्रिटिश सेनापति सर राबर्ट बार्कर की उपस्थिति और गवाही में एक सन्धि हुई जिसके अंतर्गत यह तय हुआ कि वह तब तक नवाब को 40 लाख रुपये देगा जब-जब वह मराठों को रुहेलखण्ड से "शांति या युद्ध के बल पर" हटायेगा। इस तरह इस सन्धि से तुरन्त लाभ न उठाया जा सका क्योंकि सन्धि के पूर्व ही मराठे वापस जा चुके थे।

पर 1773 के प्रारम्भ मे ही म...
आये। सन्धि का आह्वान किया ग...

की सहायता के लिए पहुंचा। मराठे जिनकी मुख्य सेना अभी गंगा के उस पार थी ब्रिटिशों से युद्ध करने का साहस नही किया और नदी पार कर हट गये। पर ये कई महीने तक उस पार धमकी की स्थिति किये रहने के बाद गंगा के उस पार से वापस लौट गई।

इस बीच युद्ध संचालन पर नवाब वजीर काफी धन व्यय कर चुका था और अब उसने रोहिल्लों से संधि के अतर्गत तय धनराशि मांगी। पर हाफिज ने इसे यह कहकर इन्कार कर दिया कि चूंकि मराठो से कोई लड़ाई नही हुई और वे अपने आप ही वापस लौट गये और उनकी सेना चूंकि बर्बाद नही हुई इसलिए वे पुनः अगले वर्ष वापस आ सकते है। हाफिज के तर्क मे दम था पर चूंकि सधि मे विशेष रूप से यह उद्धृत था "शाति से या युद्ध से" और यह नही था कि केवल "युद्ध" से। पर नवाव वजीर ने काफी व्यय किया था और असुविधा भोगी थी इसलिए वह धन की मांग कर रहा था। ब्रिटिशों के भी समझाने का हाफिज ने ध्यान नही दिया और धन देने से उसने इन्कार कर दिया।

1773 के सितम्बर मे नवाव वजीर हेस्टिंग्स से वनारस में मिला और ब्रिटिशों को 40 लाख रुपये देने को इस शर्त पर तैयार हुआ कि ब्रिटिश सेना रोहिल्लों को खदेड़ने और उनके क्षेत्र पर अधिकार करने में उसकी सहायता करे। पर इस संबन्ध मे कोई अंतिम संधि नही हो पाई। पर हेस्टिंग्स ने उसे सहायता की इच्छा व्यक्त की। बाद मे दोनो के मध्य कुछ और पत्र-व्यवहार हुआ और कुछ सोच-विचार के वाद रुहेलखंड पर आक्रमण का अतिम निर्णय ले लिया गया।

वार्कर के स्थान पर आये कर्नल चैम्पियन के नेतृत्व में अवध के सैनिकों के साथ मेना ने 17 अप्रैल 1774 को आक्रमण कर दिया। 23 अप्रैल को मीरनपुर कटरा ने लड़ाई हुई जहां वीरता से लडते हुए रोहिल्ले वुरी तरह पराजित हो गये और हाफिज स्वयं युद्ध भूमि मे मारा गया।

ब्रिटिशों के विजय के फलस्वरूप रुहेलखड के उपजाऊ क्षेत्र पर अवध ने अधिकार कर लिया और संधि के अंतर्गत निश्चित राशि अंग्रेजों को प्रदान की। रोहिल्ला क्षेत्र का रामपुर सहित छोटा-सा भाग अली मुहम्मद के पुत्र फैजुल्लाह खां को प्रदान किया गया। 1 अक्टूबर 1774 में उससे अलग सधि की गई। 20 हजार रोहिल्ले अपने क्षेत्र से खदेड दिये गये।

वारेन हेस्टिंग्स की रुहेला नीति की कठोर आलोचना की गई है। वैसे तो उसके विरुद्ध मुकदमे मे इसको आधार नही बनाया गया पर उसे इस कारण व्यक्तिगत शत्रुओं, लेखकों और दलीय नेताओं के भाषण का शिकार होना पडा जिन्होंने रुहेला आक्रमण को व्यंगात्मक ढंग मे बुरा-भला कहा। "एक पैम्फलेट ने लिखा कि पाच लाख रुहेला परिवार जमुना उस पार ढकेल दिए गए और रुहेल

के रूप में मेजर जेम्स ब्राउन को नियुक्त किया गया। इस तरह बिगड़े हुए संबन्धों में कुछ सुधार हुआ।

रोहिल्ला युद्ध

अवध के उत्तर पश्चिम सीमा पर हिमालय की तलहटी में रोहिलखण्ड 12,000 वर्ग मील में फैला एक उपजाऊ क्षेत्र था। यहां की जनसंख्या में 10 लाख हिन्दू थे जिन पर रोहिल्ला नामक अफगान कबीले के लुटेरों का शासन था। इन्होंने इस क्षेत्र को १८वीं सदी के प्रारम्भ में जीता और जो एक प्रमाण के आधार पर 40,000 की संख्या में थे। रुहेल खण्ड क्षेत्र का राजस्व प्रतिवर्ष 70-80 लाख रुपये था और इनकी सरकार हाफिज रहमत खां के नेतृत्व मे विभिन्न सरदारों का एक ढीला-ढाला संघ था। रहमत खा चूंकि असली शासक अली मोहम्मद के पुत्रों का सरक्षक था इस कारण हाफिज कहलाया। इसने ही गद्दी को स्वयं हड़प लिया।

1772 में मराठों ने रुहेलखण्ड पर आक्रमण किया और इस क्षेत्र की लूट-पाट प्रारम्भ कर दी और रोहिल्ला नेता तराई के जगलों में भाग गये। नवाब वजीर ने यह सोचकर कि कहीं यह आफत उसके क्षेत्र पर भी न आ जाय, वह कुछ अंग्रेज बटालियनों के साथ सीमा की ओर आगे बढ़ा। अब उसमें और रोहिल्लों में यह बातचीत प्रारम्भ हुई कि किस तरह इस कठिनाई का मुकाबला किया जाय।

यह स्मरणीय है कि नवाब वजीर और ब्रिटिशों के बीच इस सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार हुआ था कि रोहिल्लों और मराठों के बीच संघर्ष को प्रोत्साहित किया जाय जिससे लाभ उठाकर नवाब रोहिल्ला क्षेत्र पर अधिकार कर सके क्योंकि यह उसके वैज्ञानिक और सुरक्षात्मक सीमा के लिए आवश्यक था। यह भी असम्भव नहीं था कि मराठे और रोहिल्ले आपस मे मिलकर अवध पर आक्रमण करें और लूट-पाट करें। सभी स्वार्थ में व्यस्त अवसरवादी थे जो षड्यन्त्र मात्र के लिए विश्वस्त थे।

17 जून 1772 में नवाब वजीर और हाफिज रहमत खान के बीच अवध के ब्रिटिश सेनापति सर राबर्ट बार्कर की उपस्थिति और गवाही में एक सन्धि हुई जिसके अंतर्गत यह तय हुआ कि वह तब तक नवाब को 40 लाख रुपये देगा जब-जब वह मराठों को रुहेलखण्ड से "शांति या युद्ध के बल पर" हटायेगा। इस तरह इस सन्धि से तुरन्त लाभ न उठाया जा सका क्योंकि सन्धि के पूर्व ही मराठे वापस जा चुके थे।

पर 1773 के प्रारम्भ में ही मराठे पुनः प्रकट हुए और रामघाट में घुस आये। सन्धि का आह्वान किया गया और नवाब ब्रिटिश सैनिकों सहित रोहिल्लों

की सहायता के लिए पहुंचा। मराठे जिनकी मुख्य सेना अभी गंगा के उस पार थी ब्रिटिशों से युद्ध करने का साहस नही किया और नदी पार कर हट गये। पर ये कई महीने तक उस पार धमकी की स्थिति किये रहने के बाद गंगा के उस पार से वापस लौट गई।

इस बीच युद्ध संचालन पर नवाब वजीर काफी धन व्यय कर चुका था और अब उसने रोहिल्लो से सधि के अतर्गत तय धनराशि मागी। पर हाफिज ने इसे यह कहकर इन्कार कर दिया कि चूकि मराठों से कोई लड़ाई नही हुई और वे अपने आप ही वापस लौट गये और उनकी सेना चूकि बर्बाद नहीं हुई इसलिए वे पुन: अगले वर्ष वापस आ सकते है। हाफिज के तर्क मे दम था पर चूकि सधि मे विशेष रूप से यह उद्धृत था "शांति मे या युद्ध से" और यह नही था कि केवल "युद्ध" से। पर नवाब वजीर ने काफी व्यय किया था और असुविधा भोगी थी इसलिए वह धन की माग कर रहा था। ब्रिटिशों के भी समझाने का हाफिज ने ध्यान नही दिया और धन देने से उसने इन्कार कर दिया।

1773 के सितम्बर मे नवाब वजीर हेस्टिंग्स से बनारस मे मिला और ब्रिटिशों को 40 लाख रुपये देने को इस शर्त पर तैयार हुआ कि ब्रिटिश सेना रोहिल्लों को खदेडने और उनके क्षेत्र पर अधिकार करने मे उसकी सहायता करे। पर इस सबन्ध मे कोई अंतिम सधि नही हो पाई। पर हेस्टिंग्स ने उसे सहायता की इच्छा व्यक्त की। बाद मे दोनो के मध्य कुछ और पत्र-व्यवहार हुआ और कुछ सोच-विचार के बाद रुहेलखंड पर आक्रमण का अंतिम निर्णय ले लिया गया।

बार्कर के स्थान पर आये कर्नल चैम्पियन के नेतृत्व मे अवध के सैनिकों के साथ सेना ने 17 अप्रैल 1774 को आक्रमण कर दिया। 23 अप्रैल को मीरनपुर कटरा मे लडाई हुई जहां वीरता से लडते हुए रोहिल्ले बुरी तरह पराजित हो गये और हाफिज स्वयं युद्ध भूमि मे मारा गया।

ब्रिटिशों के विजय के फलस्वरूप रुहेलखड के उपजाऊ क्षेत्र पर अवध ने अधिकार कर लिया और संधि के अंतर्गत निश्चित राशि अंग्रेजों को प्रदान की। रोहिल्ला क्षेत्र का रामपुर सहित छोटा-सा भाग अली मुहम्मद के पुत्र फैजुल्लाह खां को प्रदान किया गया। 1 अक्टूबर 1774 मे उससे अलग संधि की गई। 20 हजार रोहिल्ले अपने क्षेत्र से खदेड़ दिये गये।

वारेन हेस्टिंग्स की रुहेला नीति की कठोर आलोचना की गई है। वैसे तो उसके विरुद्ध मुकदमे मे इसको आधार नही बनाया गया पर उसे इस कारण व्यक्तिगत शत्रुओं, लेखकों और दलीय नेताओं के भाषण का शिकार होना पडा जिन्होंने रुहेला आक्रमण को व्यंगात्मक ढंग से बुरा-भला कहा। "एक पैम्फलेट ने लिखा कि पाच लाख रुहेला परिवार जमुना उस पार ढकेल दिए गए और रुहेल=

पर जब यह सब हेस्टिंग्स के विरुद्ध कहा जाता है, यह कहना उचित लगता है कि जो कुछ भी उसके विरुद्ध कहा गया है वह सब एकतरफा है और कुछ अंग्रेज राजनयज्ञों का यह पवित्र भाव जिन्होंने उस समय की स्थिति का ध्यान नही दिया। इसीलिए वे हेस्टिंग्स द्वारा की गई कार्रवाई के औचित्य को नही समझ सके।

"हेस्टिंग्स ने आतुर आंखों से पानीपत के रुधिरमय युद्ध मे ही मराठों का पुनर्जीवन प्राप्त करना देखा था। उसके मद्रास की यात्रा ने उसे इस बात का भी अपार अनुभव कराया कि किस तरह मराठों की लालच, मक्कारी और महत्वाकांक्षा उत्तरी भारत के घबड़ाये लोगों मे कहर ढा रही थी। यदि शिवाजी के क्षेत्र के लोग रुहेलखंड पर स्थाई रूप से अधिकार कर लेते तो अवध क्षेत्र भी उनकी दया पर हो जाता और अंग्रेजों को बंगाल मे कठिन संघर्ष करना पड़ता। रोहिल्ला नेताओं की निर्दोषिता ने सिन्धिया और होल्कर लोगों से अवध के शांति के खतरे के विरुद्ध समझौता मे भाग लिवाया था। शुजा को ऋण वापस करने की जगह वे गंगा नदी पार करके कानपुर क्षेत्र में आक्रमण करने को सोच रहे थे।"

यदि रोहिल्लों ने हेस्टिंग्स को सीधे उत्तेजित न किया होता तो "उनका मराठों से मिलकर षड्यन्त्र करना बंगाल और अवध के लिए एक स्थाई खतरा सिद्ध हो सकता था। उसने सोचा यह उचित है कि मिलकर उन्हे दबा दिया जाय नही तो स्वयं दबना पड़ेगा।"[1]

नवाब और हेस्टिंग्स रोहिल्लों की हत्या नही करना चाहते थे। वे विद्रोहियों से क्षेत्र को केवल मुक्त कराना चाहते थे। हेस्टिंग्स ने स्वयं कहा : "उन्मूलन का अर्थ मात्र रोहिल्लों को पद से हटाना था जो क्षेत्र का राजकीय प्रबन्ध करते थे और उन सैनिकों को हटाना भी हमारा उद्देश्य था जिन्होने हमारी विजय मे बाधा डाली थी।"[2] यदि नवाब के व्यक्तियों ने अत्याचार किया और न तो वह और न चैम्पियन उनका नियंत्रण कर सके तो उनकी ही निन्दा की जानी चाहिए। हेस्टिंग्स का चैम्पियन को वह उत्तर जिसमें उसने सेना में कार्यवाही हेतु कुछ लाभ चाहा था, सचमुच रहस्योद्‌घाटन करता है। "पारितोषिक धन का विचार," उसने लिखा, "हमें उस काल की याद दिलाता है जब इसके कारण सेना में अशांति फैल जाती थी···इससे बचना चाहिए। यह विष है।" और अवध के रेजीडेन्ट मिडिल्टन को हेस्टिंग्स ने लिखा, "मेरी इच्छा है कि तुम नवाब सहित ऐसे सभी कार्यवाहियों के विरोध का अवसर तलाश करो जिससे अत्या-

1. ट्राटर : पूर्वोद्‌धृत, पृ० 67, 73।
2. देखें, राम प्रकाश : द फारेन पालिसी आफ वारेन हेस्टिंग्स, 1960, पृ०26।

खण्ड वीरान और जनहीन स्थान हो गया।"[1]

पी०ई० राबर्ट्स ने लिखा है :"हेस्टिंग्स स्वयं स्पष्ट रूप से इसके औचित्य पर सदेह करता था और इसकी कौन्सिल तो और अधिक। सभवतः वह इस मसले में बिना अधिक सोचे-विचारे उलझ गया…एक राजनेता के लिए इस आशा पर[2] कार्यवाही कर देना कि इसकी आवश्यकता नही पड़े गी, न तो सुखद ही है और न ही राजनैतिक दृष्टि से उचित और कार्यक्षमतापूर्ण।"[3]

रोहिल्ला नवाव से बेहतर शासक थे और स्ट्रैची के अनुसार, "हिन्दुओं की पूरी जनता के साथ सद्व्यवहार किया गया और पड़ोसी प्रान्तो की तुलना में वे अधिक सुरक्षित थे। नजीबुद्दौला ही इसमे अपवाद था।"[4]

कुछ लोगों का मत है कि अभी रुहेलो ने 25वर्ष पहले ही यहां अधिकार किया था इसलिए वे उसी तरह विदेशी थे जैसे नैपोलियन के समय में पोलैण्ड मे रूसी। उनका वहा से खदेडा जाना वैसे ही था जैसे किसी अनचाही भीड़ को किसी क्षेत्र से हटा दिया जाय। पर यदि यह तर्क रोहिल्लों के साथ प्रयुक्त हो सकता था तो प्रश्न उठता था कि ब्रिटिशों का बंगाल का शासन ही कितना पुराना था और इस तर्क के सदर्भ मे आखिर ब्रिटिशों को रुहेलखण्ड की आन्तरिक राजनीति मे हस्तक्षेप का क्या अधिकार था?

कर्नल चैम्पियन ने नवाब की स्वय आलोचना की जिसके सैनिक "पूरे क्षेत्र में हाफिज रहमत खां के भाग्य निर्णय के तीन दिन बाद तक पूरे क्षेत्र मे आग लगाते रहे।" नवाब के और उसके आदमियों के अत्याचार का विवरण हो सकता है कि चैम्पियन ने बढा-चढा कर दिया हो क्योकि इस युद्ध में उसे राजनैतिक सम्बन्ध का निमत्रण नही दिया गया और यह काम मिडिल्टन को दे दिया गया इससे वह ईर्ष्यालु था। उसे इस युद्ध मे कोई आर्थिक लाभ भी नहीं हुआ। पर उसके कथन में सत्य का कुछ अंश था क्योकि रामपुर के ब्रिटिश रेजीडेन्ट ने 1781मे इस क्षेत्र की निर्जनता को देखा था और कहा था "रोहिल्लों के नेतृत्व में रुहेलखण्ड की सरकार क्या थी, एक अकृपित बगीचा।"

रोहिल्लो का यह तर्क न्यायोचित है कि मराठे अभी वर्बाद नही किये गये थे और यदि वे प्रतिवर्ष ऐसे ही रुहेला सीमा पर प्रकट होते रहे और कुछ कार्यवाही के लिए बाध्य करते रहे तो प्रति वर्ष रुहेलों को सधि की शर्त के अनुसार नवाब को धन देना पड़ेगा जिसके लिए रुहेलखण्ड का कोष सक्षम न था।

1. ट्राटर : पूर्वोद्धृत, पृ० 71।
2. रावर्ट्स के अनुसार हेस्टिंग्स ने नवाव के साथ बनारस में सहायतार्थ एक गुप्त समझौता किया पर बाद मे वह उससे मुकरना चाहता था।
3 कैम्ब्रिज, पूर्वोद्धृत, भाग 5, पृ० 221-22।
4 स्ट्रैची : हेस्टिंग्स ऐण्ड द रोहिल्ला वार, पृ० 30।

पर जब यह सब हेस्टिंग्स के विरुद्ध कहा जाता है, यह कहना उचित लगता है कि जो कुछ भी उसके विरुद्ध कहा गया है वह सब एकतरफा है और कुछ अंग्रेज राजनयज्ञो का वह पवित्र भाव जिन्होने उस समय की स्थिति का ध्यान नही दिया। इसीलिए वे हेस्टिंग्स द्वारा की गई कार्रवाई के औचित्य को नही समझ सके।

"हेस्टिंग्स ने आतुर आखो से पानीपत के रुधिरमय युद्ध से ही मराठो का पुनर्शक्ति प्राप्त करना देखा था। उसके मद्रास की यात्रा ने उसे इस बात का भी अपार अनुभव कराया कि किस तरह मराठों की लालच, मक्कारी और महत्वाकांक्षा उत्तरी भारत के घबड़ाये लोगों मे कहर ढा रही थी। यदि शिवाजी के क्षेत्र के लोग रुहेलखड पर स्थाई रूप से अधिकार कर लेते तो अवध क्षेत्र भी उनकी दया पर हो जाता और अंग्रेजो को बंगाल में कठिन संघर्ष करना पडता। रोहिल्ला नेताओ की निर्दोपिता ने सिन्धिया और होल्कर लोगों से अवध के शांति के खतरे के विरुद्ध समझौता मे भाग लिवाया था। शुजा को ऋण वापस करने की जगह वे गगा नदी पार करके कानपुर क्षेत्र मे आक्रमण करने को सोच रहे थे।"

यदि रोहिल्लों ने हेस्टिंग्स को सीधे उत्तेजित न किया होता तो "उनका मराठों से मिलकर षड्यन्त्र करना बगाल और अवध के लिए एक स्थाई खतरा सिद्ध हो सकता था। उसने सोचा यह उचित है कि मिलकर उन्हें दबा दिया जाय नही तो स्वयं दबना पड़ेगा।"[1]

नवाब और हेस्टिंग्स रोहिल्लों की हत्या नही करना चाहते थे। वे विद्रोहियों से क्षेत्र को केवल मुक्त कराना चाहते थे। हेस्टिंग्स ने स्वयं कहा: "उन्मूलन का अर्थ मात्र रोहिल्लों को पद से हटाना था जो क्षेत्र का राजकीय प्रबन्ध करते थे और उन सैनिकों को हटाना भी हमारा उद्देश्य था जिन्होने हमारी विजय में बाधा डाली थी।"[2] यदि नवाब के व्यक्तियों ने अत्याचार किया और न तो वह और न चैम्पियन उनका नियंत्रण कर सके तो उनकी ही निन्दा की जानी चाहिए। हेस्टिंग्स का चैम्पियन को वह उत्तर जिसमें उसने सेना मे कार्यवाही हेतु कुछ लाभ चाहा था, सचमुच रहस्योद्घाटन करता है। "पारितोषिक धन का विचार," उसने लिखा, "हमें उस काल की याद दिलाता है जब इसके कारण सेना में अशाति फैल जाती थी···इससे बचना चाहिए। यह विप है।" और अवध के रेजीडेन्ट मिडिल्टन को हेस्टिंग्स ने लिखा, "मेरी इच्छा है कि तुम नवाब सहित ऐसे सभी कार्यवाहियो के विरोध का अवसर तलाश करो जिससे अत्या-

1. ट्राटर : पूर्वोद्धृत, पृ० 67, 73।
2. देखें, राम प्रकाश : द फारेन पालिसी आफ वारेन हेस्टिंग्स, 1960, पृ०26।

चार और भयानक हिंसा की कार्यवाही आगे बढ़ती हो।[1]

उनके लिए जो भी औचित्य रहा हो, पर इसमे सदेह नही कि रुहेलों ने नवाब के साथ होने वाली उस सधि की शर्तो का उल्लघन किया था जो उन्होने बार्कर के समक्ष की थी। दूसरी ओर नवाब ब्रिटिशो का मित्र था और उसके साथ तय शर्तों का अनुपालन किया जाना था जब तक कि वे स्वयं अवध के माध्यम से प्राप्त होने वाले प्रत्येक लाभ की बलि न दे दें।

भौगोलिक और राजनैतिक दृष्टि से अवध के लिए रुहेलखण्ड वैसे ही था जैसा रानी एलिजाबेथ के समय मे इंग्लैण्ड के लिए स्काटलैण्ड। बिना इस पर विजय प्राप्त किये अवध की वैज्ञानिक और सुरक्षात्मक सीमा नहीं बन सकती थी जिसकी रक्षा का उत्तरदायित्व ब्रिटिशों के हाथ में था। अवध और बगाल पर किये जाने वाले आक्रमणो का पथ रुहेलखण्ड से होकर था और रोहिल्ले ऐसे लोग न थे जिनपर नवाब व ब्रिटिश विश्वास कर सकें।

और फिर हेस्टिंग्स को धन की आवश्यकता थी। उसने सलीवान को लिखा: "कंपनी के घर में निराशापूर्ण स्थिति के सम्बन्ध में मेरा ऐसा विचार था कि बाहर की मागें बहुत थी, कि मुझे जब भी अवसर मिले तो अपनी सेना का प्रयोग ऐसे अवसरों का प्रयोग उनके वेतन और अन्य खर्चो से बचने के लिए करना चाहिए।"[2]

बनारस के चेतसिंह

बलवन्त सिंह बनारस के पहले राजा थे जिनके पिता इतने साहसिक थे कि उन्होने यहां की मुगल जमीदारी से अपने ही सरक्षक को हटाकर वहां अधिकार कर लिया था। बलवन्त सिंह नवाब वजीर के सहायक हो गये। 1765 के इलाहाबाद की संधि द्वारा ब्रिटिशो ने भी उसके इस अधिकार को इसलिए स्वीकृति प्रदान की क्योंकि उसने उन्हें उसके शत्रुओ के विरुद्ध बक्सर मे सहायता की थी।

1775 मे फैजाबाद की संधि के अतर्गत आसफुद्दौला ने बनारस की जमीदारी की सार्वभौमिक शक्ति और स्वतंत्रता को कंपनी को सौप दिया। इसके बाद गवर्नर जनरल की कौन्सिल के विरोधी सदस्यो ने कलकत्ता से फ्रांसिस फॉके को चेतसिंह के पास भेजा। वह वहा से उसके लिए सनद लेकर गया था और ब्रिटिश सार्वभौमिकता को शपथ सहित 10 हजार रुपये नजराना के साथ स्वीकार करने को कहा था। राजा नवाब वजीर को जो वार्षिक 22,21,745 रु० कर का देता था वह अब उसे अंग्रेजों को देना था जिसके बदले उसे 2,000 घोड़े सामान व सैनिक सहित यूरोपीय ढंग पर अपने क्षेत्र की रक्षा के लिए रखने की आज्ञा मिली।

1. ग्लेग : मेमायर्स आफ वारेन हेस्टिंग्स; राम प्रकाश : पूर्वोद्धृत, पृ० 27; फीलिंग, कीथ : पूर्वोद्धृत, पृ० 118-19 भी देखें।
2. स्ट्रैची : पूर्वोद्धृत, पृ० 113।

चार और भयानक हिंसा की कार्यवाही आगे बढ़ती हो।[1]

उनके लिए जो भी औचित्य रहा हो, पर इसमे संदेह नही कि रुहेलों ने नवाब के साथ होने वाली उस सधि की शर्तों का उल्लघन किया था जो उन्होंने वार्कर के समक्ष की थी। दूसरी ओर नवाब ब्रिटिशो का मित्र था और उसके साथ तय शर्तों का अनुपालन किया जाना था जब तक कि वे स्वय अवध के माध्यम से प्राप्त होने वाले प्रत्येक लाभ की वलि न दे दें।

भौगोलिक और राजनैतिक दृष्टि से अवध के लिए रुहेलखण्ड वैसे ही था जैसा रानी एलिजाबेथ के समय मे इंग्लैण्ड के लिए स्काटलैण्ड। बिना इस पर विजय प्राप्त किये अवध की वैज्ञानिक और सुरक्षात्मक सीमा नही वन सकती थी जिसकी रक्षा का उत्तरदायित्व ब्रिटिशों के हाथ में था। अवध और बगाल पर किये जाने वाले आक्रमणो का पथ रुहेलखण्ड से होकर था और रोहिल्ले ऐसे लोग न थे जिनपर नवाब व ब्रिटिश विश्वास कर सके।

और फिर हेस्टिंग्स को धन की आवश्यकता थी। उसने सलीवान को लिखा: "कपनी के घर में निराशापूर्ण स्थिति के सम्बन्ध मे मेरा ऐसा विचार था कि बाहर की मागें वहुत थी, कि मुझे जब भी अवसर मिले तो अपनी सेना का प्रयोग ऐसे अवसरों का प्रयोग उनके वेतन और अन्य खर्चो से बचने के लिए करना चाहिए।"[2]

बनारस के चेतसिंह

वलवन्त सिह बनारस के पहले राजा थे जिनके पिता इतने साहसिक थे कि उन्होंने यहा की मुगल जमीदारी से अपने ही सरक्षक को हटाकर वहां अधिकार कर लिया था। बलवन्त सिंह नवाब वजीर के सहायक हो गये। 1765 के इलाहाबाद की सधि द्वारा ब्रिटिशों ने भी उसके इस अधिकार को इसलिए स्वीकृति प्रदान की क्योकि उसने उन्हे उसके शत्रुओ के विरुद्ध बक्सर में सहायता की थी।

1775 मे फैजावाद की सधि के अतर्गत आसफुद्दौला ने बनारस की जमीदारी की सार्वभौमिक शक्ति और स्वतत्रता को कंपनी को सौप दिया। इसके बाद गवर्नर जनरल की कौन्सिल के विरोधी सदस्यों ने कलकत्ता से फ्रांसिस फॉक को चेतसिंह के पास भेजा। वह वहा से उसके लिए सनद लेकर गया था और ब्रिटिश सार्वभौमिकता को शपथ सहित 10 हजार रुपये नजराना के साथ स्वीकार करने को कहा था। राजा नवाब वजीर को जो वार्षिक 22,21,745 रु० कर का देता था वह अब उसे अंग्रेजों को देना था जिसके बदले उसे 2,000 घोड़े सामान व सैनिक सहित यूरोपीय ढंग पर अपने क्षेत्र की रक्षा के लिए रखने की आज्ञा मिली।

1. ग्लेग : मेमायर्स आफ वारेन हेस्टिंग्स; राम प्रकाश : पूर्वोद्धृत, पृ० 27; फौर्निग, कीथ : पूर्वोद्धृत, पृ० 118-19 भी देखें।
2. स्ट्रेची : पूर्वोद्धृत, पृ० 113।

चार और भयानक हिंसा की कार्यवाही आगे बढती हो ।1

उनके लिए जो भी औचित्य रहा हो, पर इसमें संदेह नही कि रुहेलों ने नवाब के साथ होने वाली उस संधि की शर्तों का उल्लंघन किया था जो उन्होंने बार्कर के समक्ष की थी । दूसरी ओर नवाब ब्रिटिशों का मित्र था और उसके साथ तय शर्तों का अनुपालन किया जाना था जब तक कि वे स्वयं अवध के माध्यम से प्राप्त होने वाले प्रत्येक लाभ की बलि न दे दें ।

भौगोलिक और राजनैतिक दृष्टि से अवध के लिए रुहेलखण्ड वैसे ही था जैसा रानी एलिजाबेथ के समय में इंग्लैण्ड के लिए स्काटलैण्ड । बिना इस पर विजय प्राप्त किये अवध की वैज्ञानिक और सुरक्षात्मक सीमा नही बन सकती थी जिसकी रक्षा का उत्तरदायित्व ब्रिटिशों के हाथ में था । अवध और बंगाल पर किये जाने वाले आक्रमणों का पथ रुहेलखण्ड से होकर था और रोहिल्ले ऐसे लोग न थे जिनपर नवाब व ब्रिटिश विश्वास कर सकें ।

और फिर हेस्टिंग्स को धन की आवश्यकता थी । उसने सलीवान को लिखा: "कंपनी के घर में निराशापूर्ण स्थिति के सम्बन्ध में मेरा ऐसा विचार था कि बाहर की मागें बहुत थी, कि मुझे जब भी अवसर मिले तो अपनी सेना का प्रयोग ऐसे अवसरों का प्रयोग उनके वेतन और अन्य खर्चों से बचने के लिए करना चाहिए ।"2

बनारस के चेतसिंह

बलवन्त सिंह बनारस के पहले राजा थे जिनके पिता इतने साहसिक थे कि उन्होंने यहा की मुगल जमीदारी से अपने ही संरक्षक को हटाकर वहा अधिकार कर लिया था । बलवन्त सिंह नवाब वजीर के सहायक हो गये । 1765 के इलाहाबाद की संधि द्वारा ब्रिटिशों ने भी उसके इस अधिकार को इसलिए स्वीकृति प्रदान की क्योंकि उसने उन्हें उसके शत्रुओं के विरुद्ध बक्सर में सहायता की थी ।

1775 में फैजाबाद की संधि के अंतर्गत आसफुद्दौला ने बनारस की जमींदारी की सार्वभौमिक शक्ति और स्वतंत्रता को कंपनी को सौंप दिया । इसके बाद गवर्नर जनरल की कौन्सिल के विरोधी सदस्यों ने कलकत्ता से फ्रांसिस फांके को चेतसिंह के पास भेजा । वह वहां से उसके लिए सनद लेकर गया था और ब्रिटिश सार्वभौमिकता को शपथ सहित 10 हजार रुपये नजराना के साथ स्वीकार करने को कहा था । राजा नवाब वजीर को जो वार्षिक 22,21,745 रु० कर का देता था वह अब उसे अंग्रेजों को देना था जिसके बदले उसे 2,000 घोड़े सामान व सैनिक सहित यूरोपीय ढग पर अपने क्षेत्र की रक्षा के लिए रखने की आज्ञा मिली ।

1. ग्लेग : मेमायर्स आफ वारेन हेस्टिंग्स; राम प्रकाश : पूर्वोद्धृत, पृ० 27; फीलिंग, कीथ : पूर्वोद्धृत, पृ० 118-19 भी देखें ।
2. स्ट्रैची : पूर्वोद्धृत, पृ० 113 ।

चार और भयानक हिंसा की कार्यवाही आगे बढ़ती हो।[1]

उनके लिए जो भी औचित्य रहा हो, पर इसमे संदेह नही कि रुहेलो ने नवाब के साथ होने वाली उस सधि की शर्तों का उल्लघन किया था जो उन्होंने बार्कर के समक्ष की थी। दूसरी ओर नवाब ब्रिटिशों का मित्र था और उसके साथ तय शर्तों का अनुपालन किया जाना था जब तक कि वे स्वय अवध के माध्यम से प्राप्त होने वाले प्रत्येक लाभ की बलि न दे दें।

भौगोलिक और राजनैतिक दृष्टि से अवध के लिए रुहेलखण्ड वैसे ही था जैसा रानी एलिजाबेथ के समय में इग्लैण्ड के लिए स्काटलैण्ड। बिना इस पर विजय प्राप्त किये अवध की वैज्ञानिक और सुरक्षात्मक सीमा नही बन सकती थी जिसकी रक्षा का उत्तरदायित्व ब्रिटिशो के हाथ मे था। अवध और बगाल पर किये जाने वाले आक्रमणो का पथ रुहेलखण्ड से होकर था और रोहिल्ले ऐसे लोग न थे जिनपर नवाब व ब्रिटिश विश्वास कर सके।

और फिर हेस्टिंग्स को धन की आवश्यकता थी। उसने सलीवान को लिखा: "कपनी के घर मे निराशापूर्ण स्थिति के सम्बन्ध में मेरा ऐसा विचार था कि बाहर की मागे बहुत थी, कि मुझे जब भी अवसर मिले तो अपनी सेना का प्रयोग ऐसे अवसरों का प्रयोग उनके वेतन और अन्य खर्चों से बचने के लिए करना चाहिए।"[2]

बनारस के चेतसिंह

बलवन्त सिंह बनारस के पहले राजा थे जिनके पिता इतने साहसिक थे कि उन्होंने यहां की मुगल जमीदारी से अपने ही संरक्षक को हटाकर वहां अधिकार कर लिया था। बलवन्त सिंह नवाब वजीर के सहायक हो गये। 1765 के इलाहाबाद की सधि द्वारा ब्रिटिशो ने भी उसके इस अधिकार को इसलिए स्वीकृति प्रदान की क्योकि उसने उन्हें उसके शत्रुओं के विरुद्ध बक्सर मे सहायता की थी।

1775 मे फैजाबाद की सधि के अतर्गत आसफुद्दौला ने बनारस की जमीदारी की सार्वभौमिक शक्ति और स्वतंत्रता को कंपनी को सौंप दिया। इसके बाद गवर्नर जनरल की कौन्सिल के विरोधी सदस्यों ने कलकत्ता से फ्रासिस फॉके को चेतसिंह के पास भेजा। वह वहां से उसके लिए सनद लेकर गया था और ब्रिटिश सार्वभौमिकता को शपथ सहित 10 हजार रुपये नजराना के साथ स्वीकार करने को कहा था। राजा नवाब वजीर को जो वार्षिक 22,21,745 रु० कर का देता था वह अब उसे अंग्रेजो को देना था जिसके बदले उसे 2,000 घोड़े सामान व सैनिक सहित यूरोपीय ढग पर अपने क्षेत्र की रक्षा के लिए रखने की आज्ञा मिली।

---

1. ग्लेग : मेमायर्स आफ वारेन हेस्टिग्स; राम प्रकाश : पूर्वोद्धृत, पृ० 27; फीलिंग, कीथ : पूर्वोद्धृत, पृ० 118-19 भी देखें।
2. स्ट्रेची : पूर्वोद्धृत, पृ० 113।

चार और भयानक हिंसा की कार्यवाही आगे बढ़ती हो।[1]

उनके लिए जो भी औचित्य रहा हो, पर इसमें संदेह नहीं कि रुहेलों ने नवाब के साथ होने वाली उस सधि की शर्तों का उल्लंघन किया था जो उन्होने बार्कर के समक्ष की थी। दूसरी ओर नवाब ब्रिटिशों का मित्र था और उसके साथ तय शर्तों का अनुपालन किया जाना था जब तक कि वे स्वयं अवध के माध्यम से प्राप्त होने वाले प्रत्येक लाभ की बलि न दे दें।

भौगोलिक और राजनैतिक दृष्टि से अवध के लिए रुहेलखण्ड वैसे ही था जैसा रानी एलिजाबेथ के समय में इंग्लैण्ड के लिए स्काटलैण्ड। बिना इस पर विजय प्राप्त किये अवध की वैज्ञानिक और सुरक्षात्मक सीमा नहीं बन सकती थी जिसकी रक्षा का उत्तरदायित्व ब्रिटिशों के हाथ में था। अवध और बगाल पर किये जाने वाले आक्रमणों का पथ रुहेलखण्ड से होकर था और रोहिल्ले ऐसे लोग न थे जिनपर नवाब व ब्रिटिश विश्वास कर सकें।

और फिर हेस्टिंग्स को धन की आवश्यकता थी। उसने सलीवान को लिखा: "कंपनी के घर मे निराशापूर्ण स्थिति के सम्बन्ध मे मेरा ऐसा विचार था कि बाहर की मांगे बहुत थी, कि मुझे जब भी अवसर मिले तो अपनी सेना का प्रयोग ऐसे अवसरों का प्रयोग उनके वेतन और अन्य खर्चों से बचने के लिए करना चाहिए।"[2]

बनारस के चेतसिंह

बलवन्त सिंह बनारस के पहले राजा थे जिनके पिता इतने साहसिक थे कि उन्होने यहा की मुगल जमीदारी से अपने ही सरक्षक को हटाकर वहां अधिकार कर लिया था। बलवन्त सिंह नवाब वजीर के सहायक हो गये। 1765 के इलाहाबाद की सधि द्वारा ब्रिटिशों ने भी उसके इस अधिकार को इसलिए स्वीकृति प्रदान की क्योकि उसने उन्हें उसके शत्रुओ के विरुद्ध बक्सर मे सहायता की थी।

1775 मे फैजाबाद की संधि के अंतर्गत आसफुद्दौला ने बनारस की जमीदारी की सार्वभौमिक शक्ति और स्वतन्त्रता को कंपनी को सौंप दिया। इसके बाद गवर्नर जनरल की कौन्सिल के विरोधी सदस्यों ने कलकत्ता से फ्रांसिस फॉके को चेतसिंह के पास भेजा। वह वहा से उसके लिए सनद लेकर गया था और ब्रिटिश सार्वभौमिकता को शपथ सहित 10 हजार रुपये नजराना के साथ स्वीकार करने को कहा था। राजा नवाब वजीर को जो वार्षिक 22,21,745 रु० कर का देता था वह अब उसे अग्रेजों को देना था जिसके बदले उसे 2,000 घोड़े सामान व सैनिक सहित यूरोपीय ढंग पर अपने क्षेत्र की रक्षा के लिए रखने की आज्ञा मिली।

1. ग्लेग : मेमायर्स आफ वारेन हेस्टिंग्स; राम प्रकाश : पूर्वोद्धृत, पृ० 27; फौलिंग, कीथ : पूर्वोद्धृत, पृ० 118-19 भी देखें।
2. स्ट्रैची . पूर्वोद्धृत, पृ० 113।

उसे कुल इतने ही घोड़े रखने की आज्ञा है, पर अब वह इन्हें रखने को बाध्य नही है। इसलिए वह इन सैनिको को कपनी को नही दे सकता है जब वह सधि का उल्लघन कर अधिक सैनिक रखे। इस पर हेस्टिंग्स ने यह संख्या घटाकर 1,000 कर दी। राजा ने 500 पैदल और 500 घोड़े देने चाहे। मई 1781 मे हेस्टिंग्स ने कौन्सिल से यह अधिकार प्राप्त किया कि वह जाकर स्वयं मसला तय करे। उसने राजा के ऊपर 50 लाख रुपये का दण्ड घोषित किया और बनारस इसकी वसूली के लिए स्वय रवाना हुआ।

"1781 के वर्ष का प्रारम्भ हेस्टिंग्स के लिए खतरे, नैराश्य और कठिनाइयो का समुद्र लेकर उपस्थित हुआ था। हैदर अली का कर्नाटक पर प्रकोप हो रहा था, गोडार्ड और कैमक मराठों से लड रहे थे, और फ्रांसीसी बेड़े बंगाल की खाड़ी की ओर बढ रहे थे। जब उसने कैमक को सिन्धिया की ओर भेजा, कूटे के सैनिको को मद्रास की ओर भेजा, मियरसे का ब्रिगेड दक्षिण की ओर रवाना हुआ और बरार के राजा को सधि को बाध्य किया, तब तक गवर्नर जनरल ने पाया कि उसके कोष की दशा बडी दयनीय है। रुपये का प्रबन्ध किसी तरह किया जाना था यदि ब्रिटिश भारत को बचाना था।"[1]

जुलाई में हेस्टिंग्स बनारस की ओर बढ़ा। राजा बक्सर में रास्ते मे उससे मिला और दीनता से अपनी पगड़ी उतार कर उसके घुटने पर रख दी और क्षमा मागी। पर उसने बनारस पहुचने से पहले कोई भी उत्तर देने से इकार कर दिया। बनारस पहुचकर उसने राजा से मिले बिना उसके पास एक औपचारिक आरोप-पत्र प्रेषित कर दिया जिसमे उसे आज्ञाहीन बताकर उससे पूरा और निश्चित उत्तर मागा गया। राजा ने उसे एक ऐसा पत्र भेजा जिसे कोई भी निष्पक्ष न्यायाधीश गलतफहमी मे सेवाभाव की पराकाष्ठा इसमें पाता, पर इस पत्र के लिए हेस्टिंग्स ने कहा, "यह विषय वस्तु में असंतोपजनक और आक्रामक शैली" में है। मारखम को राजा को बंदी बनाने की आज्ञा दी गयी। राजा स्वयं अपमानभाव से उपस्थित हुआ और एक सैनिक के पहरे में उसे उसी के महल मे बंदी बना दिया गया। चेतसिह के आदमी इस अपमान के घूट को नही पी सके और रामनगर की सुरक्षित सेना ने भीड़ की सहायता से उस सिपाही पर आक्रमण कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला जो बदी राजा पर पहरा दे रहा था। यह एक सामान्य विद्रोह का चिह्न था और "चेतसिह दुष्परिणाम की कल्पना कर वहा की मुसीबत से भागकर अपनी विद्रोही सेना से जाकर मिल गया।"[2] हेस्टिंग्स तुरन्त हटकर सुरक्षा हेतु चुनार चला गया जहां उसने साभिमान अवध से सहायता करने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और चेतसिह के समर्पण के निवेदन को भी नही स्वीकार किया।

1. ट्राटर ; पूर्वोद्धृत, पृ० 144।
2. कैम्ब्रिज : पूर्वोद्धृत, भाग 5, पृ० 296।

उसे कुल इतने ही घोडे रखने की आज्ञा है, पर अब वह इन्हें रखने को वाध्य नही है। इसलिए वह इन सैनिको को कपनी को नही दे सकता है जब वह सधि का उल्लघन कर अधिक सैनिक रखे। इस पर हेस्टिंग्स ने यह संख्या घटाकर 1,000 कर दी। राजा ने 500 पैदल और 500 घोड़े देने चाहे। मई 1781 मे हेस्टिंग्स ने कौन्सिल से यह अधिकार प्राप्त किया कि वह जाकर स्वयं मसला तय करे। उसने राजा के ऊपर 50 लाख रुपये का दण्ड घोषित किया और बनारस इसकी वसूली के लिए स्वयं रवाना हुआ।

"1781 के वर्ष का प्रारम्भ हेस्टिंग्स के लिए खतरे, नैराश्य और कठिनाइयो का समुद्र लेकर उपस्थित हुआ था। हैदर अली का कर्नाटक पर प्रकोप हो रहा था, गोडार्ड और कैमक मराठो से लड रहे थे, और फ्रांसीसी बेड़े बगाल की खाड़ी की ओर बढ रहे थे। जब उसने कैमक को सिन्धिया की ओर भेजा, कूटे के सैनिको को मद्रास की ओर भेजा, मियरसे का ब्रिगेड दक्षिण की ओर रवाना हुआ और बरार के राजा को सधि को बाध्य किया, तब तक गवर्नर जनरल ने पाया कि उसके कोष की दशा बडी दयनीय है। रुपये का प्रबन्ध किसी तरह किया जाना था यदि ब्रिटिश भारत को बचाना था।"[1]

जुलाई मे हेस्टिंग्स बनारस की ओर बढा। राजा बक्सर मे रास्ते मे उससे मिला और दीनता से अपनी पगड़ी उतार कर उसके घुटने पर रख दी और क्षमा मागी। पर उसने बनारस पहुचने से पहले कोई भी उत्तर देने से इकार कर दिया। बनारस पहुंचकर उसने राजा से मिले बिना उसके पास एक औपचारिक आरोप-पत्र प्रेषित कर दिया जिसमे उसे आज्ञाहीन बताकर उससे पूरा और निश्चित उत्तर मांगा गया। राजा ने उसे एक ऐसा पत्र भेजा जिसे कोई भी निष्पक्ष न्यायाधीश गलतफहमी में सेवाभाव की पराकाष्ठा इसमें पाता, पर इस पत्र के लिए हेस्टिंग्स ने कहा, "यह विषय वस्तु मे असंतोषजनक और आक्रामक शैली" में है। मारखम को राजा को बदी बनाने की आज्ञा दी गयी। राजा स्वयं अपमानभाव से उपस्थित हुआ और एक सैनिक के पहरे में उसे उसी के महल मे वंदी बना दिया गया। चेतसिह के आदमी इस अपमान के घूंट को नही पी सके और रामनगर की सुरक्षित सेना ने भीड़ की सहायता से उस सिपाही पर आक्रमण कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला जो वंदी राजा पर पहरा दे रहा था। यह एक सामान्य विद्रोह का चिह्न था और "चेतसिह दुष्परिणाम की कल्पना कर वहां की मुसीबत से भागकर अपनी विद्रोही सेना से जाकर मिल गया।"[2] हेस्टिंग्स तुरन्त हटकर सुरक्षा हेतु चुनार चला गया जहां उसने साभिमान अवध से सहायता करने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया और चेतसिह के समर्पण के निवेदन को भी नही स्वीकार किया।

1. ट्राटर ; पूर्वोद्धृत, पृ० 144।
2. कैम्ब्रिज : पूर्वोद्धृत, भाग 5, पृ० 296।

सितम्बर मे पोफम ने युद्ध प्रारंभ कर बनारस को पुन: घेर लिया। चेतसिह ग्वालियर भाग गये। उसके पूरे क्षेत्र पर अधिकार कर लिया गया और विजयगढ़ मे प्राप्त सपत्ति आपस में विभाजित कर ली गई। कपनी को इससे तब लाभ हुआ जब चेतसिह के लडकी के लड़के को राजा बनाया गया। वार्षिक कर बढा कर 40 लाख रुपये कर दिया गया जो अब पहले से दोगुना था।

राजा बनारस के विरुद्ध हेस्टिग्स की कार्यवाही की कटु आलोचना हुई है। पर उसके समर्थको का कहना है कि इसके भी कुछ न्यायोचित कारण थे। प्रथम चेतसिह की जमीदारी धनी थी और उसकी आय 50 लाख रुपये वार्षिक से कम न थी। इसके बदले वह कंपनी को 2 लाख रुपये वार्षिक ही देता था। दूसरे चेतसिह केवल एक जमीदार था और जब राज्य की सुरक्षा को ही खतरा पैदा हो गया तो उसे अपनी समृद्धि को भोग करने का कोई अधिकार नही था। राज्य बर्बाद हो चुका था और राज्य की रक्षा भी इसी में थी कि वह ब्रिटिशों की सहायता करे।

हेस्टिग्स ने अपनी सुरक्षा में ठीक ही कहा, "मेरा इसमे इसके अलावा कोई दृष्टिकोण नही था कि मै कंपनी की आवश्यकता की पूर्ति करूं जो कि पूरी तरह न्यायोचित था।"

अपने वार्षिक करो के अतिरिक्त चेतसिह ने अपने पिता से उत्तराधिकार में अत्यधिक धन प्राप्त किया था जो लुत्तीपुर और विजयगढ के किलो मे भरा हुआ था। यह उसकी लालच मात्र थी जिसने कपनी की मांग मे न तो औचित्य देखा और न उसकी कठिनाई का ध्यान किया।

चौथे, राजा 1775 की संधि के अनुसार पूर्णरूप से ब्रिटिशो के प्रति स्वामिभक्त न था। 18 मार्च 1777 मे टामस ग्राहम ने सूचना भेजी की राजा अपने किलों की मरम्मत करा रहा है और हथियार एकत्रित करा रहा है। इसी तरह की सूचना फॉके ने भी दी और सर आयर कूट ने बताया की उसने 33 हजार सैनिक भरती कर लिये थे। उसके आमिल और काश्तकार आदतन ब्रिटिशों के विरुद्ध थे और यह अफवाह फैल गई थी कि अब समय आ गया है जब ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए विद्रोह प्रारभ हो गया है। हेस्टिग्स का जीवनी लेखक ट्राटर कहता है जब हेस्टिग्स चुनार चला गया तो राजा ने उससे 10 मील की ही दूरी पर 40 हजार सेना एकत्रित कर ली और इससे पहले उसके पास आत्म रक्षार्थ ही इतने सैनिक थे जो हेस्टिग्स की आवश्यकता से अधिक थे।[1]

अगर वह कुछ, जो ऊपर लिखा गया है, सच था तो इसका औचित्य था कि हेस्टिग्स राजा को पाठ सिखाये और उसके समर्पण के बावजूद उसे बंदी बनाने का आदेश दे। यह उसकी महानता ही थी कि उसने 2,000 घोड़ों की

1. ट्राटर : पूर्वोद्धृत : पृ० 145, 149।

माग घटाकर 1,000 कर दी और वह अब यह कह सकता था कि उसे इसके बदले 500 घोडे और 500 पैदल सेना देने को कहा गया जबकि "चेतसिंह को निश्चित आदेश ही नही दिये गए थे उसे दुहराया भी गया था। उसे आज्ञा मानना चाहिए था और बहानेबाजी में समय बर्बाद नही करना चाहिए था।"

पर ऐसा ही लगता है कि जहां हेस्टिंग्स के समर्थकों ने चेतसिंह के दोषो को बढ़ा-चढा कर कहा है वहां उनके विरोधियों ने चेतसिंह को एक भयाक्रांत व्यक्ति बताया है।

1775 का समझौता चेतसिंह के साथ हेस्टिंग्स की इच्छा के विपरीत किया गया था। जब राजा का अनुदान 1776 मे दुहराया गया तो हेस्टिंग्स पुराने समझौते को समाप्त करना चाहता था पर राजा के विरोध ने उसे अपना मनतव्य बदलने को बाध्य किया और चेतसिंह उस आश्वासन का लाभ उठाता रहा कि कंपनी उसमे वार्षिक कर के अतिरिक्त और कुछ नही प्राप्त करेगी।

यह कहना भी उचित नही है कि चेतसिंह मात्र एक जमीदार था क्योंकि *उसे राजा की उपाधि प्राप्त थी, आन्तरिक स्वतंत्रता भी उसके पास थी,* और वह कर देता था। कंपनी के अभिलेखों में उसका लगान देना गलत है। पर यदि वह मात्र जमीदार भी रहा हो तो यह जायज प्रश्न उठता है कि क्या उसी तरह की मागें कपनी से और जमीदारो से भी की गई जैसी की चेतसिंह से की गई थी।

जिन्होने हेस्टिंग्स का समर्थन यह कह कर किया है कि राजा गद्दार था वे यह सूचना देकर उसके साथ न्याय नही करते कि राजा ने अपनी सेना बढाकर 30 हजार कर ली थी और विद्रोह की अफवाहे जोर पकड रही थी। ट्राटेर के अनुसार हेस्टिंग्स के चुनार वापसी के बाद उसने 40 हजार की जो सेना भरती की यदि वह सत्य रहा हो तो उसमे भीड़ की संख्या अधिक रही होगी जो राजा के अपमान से उत्तेजित होकर एकत्रित हो गए रहे होंगे। यदि राजा के पास सचमुच पहले से ही 30 हजार प्रशिक्षित सेना रही होती तो हेस्टिंग्स के ऊपर मुकदमा चलते वक्त इतना कीचड़ न उछाला जाता और एक सीधे आदमी को दंडित करने के लिए उसकी इतनी आलोचना न की जाती।

राजा इसमें भी पूरी तरह गलत नही था कि कंपनी की माग की पूर्ति के लिए उसके पास साधन का अभाव है। अगर बनारस से 50 लाख रुपये वार्षिक की आय होती थी तो सबका सब कंपनी को नहीं दिया जा सकता था। अन्य व्यय भी थे जो राजा को व्यक्तिगत ढंग से और प्रशासन पर व्यय करना था। और इसके लिए ब्रिटिशों के पास ही बहुत-सा प्रमाण था जब उन्होने स्वयं अपनी आंखों से देखा कि अधिक कर-भार के कारण जब हेस्टिंग्स ने इसे बढाकर 40 लाख कर दिया तो जनता अपनी भूमि छोड़कर भागने लगी।

पर फिर भी हमे यह न भूलना चाहिए कि कंपनी की आर्थिक दुर्दशा ने हेस्टिंग्स

को राजा के दुर्भाग्य से लाभ उठाने की प्रेरणा दी। 1777 में चेतसिंह ने क्लेवरिंग के पास एक दूत भेजकर उसे गवर्नर जनरल बनने के लिए बधाई दी थी। पी० ई० राबर्ट्स को इसमें सन्देह नही "लगता जैसा कि अल्फ्रेड लायल भी कहता है और हेस्टिंग्स की अपनी भाषा भी जताती है कि इसके लिए कि गवर्नर जनरल ने चेतसिह को कभी क्षमा नही किया।"[1] या दूसरे शब्दो मे, इस लेखक के अनुसार, हेस्टिंग्स कटुभाव और बदले की भावना से राजा के विरुद्ध नीति में प्रेरित था। पर यह आवश्यक नही कि हम भी इस मत का समर्थन करे।

अवध की बेगमें

वैसे तो राजा बनारस का वार्षिक देय कर बढ़ा दिया गया पर हेस्टिंग्स को चेतसिह पर अपने आक्रमण से तुरन्त कोई लाभ नही हुआ। उसका ध्यान अब अवध के नवाब वजीर की ओर गया जो कंपनी के ऋण में अपने क्षेत्र मे ब्रिटिश सेनाएं रखने के कारण उस पर व्यय के कारण डूबा हुआ था। उस समय यह ऋण लगभग 15 लाख स्टर्लिंग था। 17 सितम्बर 1781 मे नवाब वजीर आसफुद्दौला उसे चुनार मे मिला और उससे कहा कि उसके ऋणमुक्ति का एक ही उपाय है कि कंपनी ने अपने कुछ जागीरदारो को गारन्टी दे रही है। वह उसे वापस ले ले जिससे वह उन जागीरो को अपने अधिकारो मे ले सके।

वजीर का इशारा दो बेगमो की ओर था: एक शुजाउद्दौला की मां और वर्तमान नवाब मां की दादी, बड़ी बेगम और दूसरी भूतपूर्व नवाब की पत्नी, और वर्तमान नवाब की मां बहू बेगम। ये बेगमें जिन्होने गत नवाब से लगभग 20 लाख स्टर्लिंग की सम्पति प्राप्त की थी, अब फैजाबाद मे रहती थी, उनकी अपनी सेना थी, अपने बड़ी भूमि पर शासन करती थी। और नवाब से अपने को स्वतंत्र मानती थी और उसे अवज्ञा से देखती थी। आसफुद्दौला बेगमों की पैतृक सम्पति को ईर्ष्या की निगाह से देखता था क्योंकि कानूनी दृष्टि से वह उसी की थी, पर उसकी मां बहू बेगम चूकि क्रुद्ध स्वभाव और कठोर मस्तिष्क की थी, उस कारण वह सीधे अपना अधिकार नही जमा पाता था। 1775 मे उसकी मां ने उसे 3 लाख स्टर्लिंग प्रदान किया था और इसके पहले भी वह लगभग 3 लाख स्टर्लिंग दे चुकी थी। दूसरी बार जब बेगम ने धन दिया तो कंपनी ने इस बात की गारन्टी दी कि भविष्य मे अब इस तरह की मांग पुनः नहीं की जायेगी।

चुनार में नवाब ने जब यह प्रस्ताव रखा तो हेस्टिंग्स ने इसका यह सोचकर स्वागत किया क्योंकि उसे मालूम था कि बेगमों ने चेतसिह के विद्रोह मे सहायता की हैं। फैजाबाद के पास-पडोस का क्षेत्र ब्रिटिशों के विरुद्ध था और जैसा कि बाद में हेस्टिंग्स ने अपने मुकदमे मे बचाव के दौरान कहा: "महोदय, इस राय को स्वीकार

1. कैम्ब्रिज, पूर्वोद्धत, भाग 5, पृ० 298।

करने से पहले जो विश्वस्त सूचनाएं मुझे प्राप्त हुई थी उसके आधार पर बेगमो के सरकार के विरुद्ध होने के प्रति मै आश्वस्त हो चुका था।" इस सम्बन्ध में नवाब से विचार-विमर्श से कुछ ही दिन पहले हेस्टिग्स ने कर्नल हन्नाय से एक सूचना प्राप्त की थी फैजाबाद नगर वजीर की जगह पर चेतसिह का दिखता था, "जो लोग प्रति दिन पैदल और घोड़े से उसके (चेतसिह) पास फैजाबाद और उस विद्रोह केन्द्र से भेजे जाते है जिसका नाम हम पहले ही दे आये हैं।"[1]

इस तरह 1781 में चुनार में नवाब के साथ एक सधि हो गयी जिसके अंतर्गत कंपनी ने उन जागीरों को प्राप्त करने का अधिकार उसे दे दिया जिसे वह लेना चाहे। पर शर्त यह रखी गई कि ऐसे जागीरदार जिन्हे कंपनी ने गारन्टी दे रखी थी, उन्हें मुआवजा देना होगा।

बाद मे जब नवाब लखनऊ लौटा तो उसे बेगमों के विरुद्ध आवश्यक कदम उठाने का पर्याप्त साहस न हुआ। उसे यह भी डर लगा कि कही इसके बाद उसके परिवार मे कपनी का हस्तक्षेप बढ़ न जाय। पर एक बार हेस्टिग्स को आय-स्रोत का पता लग गया तो वह उसमें एक शक्तिहीन व्यक्ति द्वारा टाल-मटोल बर्दास्त नही कर सकता था। उसने अवध से ब्रिटिश सेना और रेजीडेन्ट को वापस लेने की धमकी दी और रेज़ीडेन्ट मिडिल्टन को आदेश दिया कि वह नवाब से कहे कि वह अपने वादे के अनुसार कार्य करे। अततः नवाब ने साहस किया और अपनी मा की इस धमकी के बावजूद कि वह सारे क्षेत्र को बर्बाद कर देगी और यह कि "यदि यह क्षेत्र मेरे हाथ से निकला तो सभी के हाथ से निकल जायेगा" ब्रिटिश रेजीडेन्ट के साथ फैजाबाद पहुंचा और जागीर पर अधिकार कर लिया। बेगम की सेना ने कोई विरोध नही किया और उन्हे शांति से अधिकार विहीन कर दिया गया। हिजडों को कैद कर लिया गया। और जब तक उन्होंने धन रखने के गुप्त स्थान का पता नही बता दिया उन्हें भोजन भी नही दिया गया और कोड़े भी मारे गये। इस तरह रेजीडेन्ट को इतना पर्याप्त धन प्राप्त हो गया कि नवाब के ऊपर कपनी का ऋण समाप्त हो गया और वह वापस हो गया।

हेस्टिग्स ने बेगम को जागीर दिये जाने की स्वीकृति प्रदान की और इसके लिए नवाब को बाध्य भी किया। नवाब ने 10 लाख रुपये देकर हेस्टिग्स से इस संबन्ध में दबाव न डालने को कहा। उसने यह धन स्वीकार किया जिसे बर्क ने "कमबख्ती हेतु अत्याचारी को देय" धन कहा। पर वह बेगमों के विरुद्ध कार्रवाई पर भी आमादा था। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने हेस्टिग्स को पूछ-ताछ करने के लिए कहते हुए यह पता लगाने को कहा कि क्या बेगम विद्रोह की तैयारी में व्यस्त है। पर उसने आदेशों का पालन कभी नही किया। इंग्लैंड वापसी पर हेस्टिग्स के

1. सीक्रेट सेलेक्ट कमेटी प्रोसीडिंग्स, 28 जुलाई, 1783, भाग 3, पृष्ठ 1004, रामप्रकाश : पूर्वोद्धृत, पृ० 65।

विरुद्ध यही आरोप लगाये गये जब कामन्स मे उसके ऊपर मुकदमा चला।

हेस्टिग्स के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि चुनार की संधि ने सामान्य रूप से जागीर प्राप्त करने को कहा न कि बेगम की ही जागीर को ही। इस तरह जागीरों पर इस तरह अधिकार किया गया और बेगमो के साथ कोई भेदभाव नही किया गया। दूसरे, बेगमों के विरुद्ध हिंसा के आरोप को बढ़ा-चढ़ाकर कहा गया था और अगर हिजड़ों पर अत्याचार भी किया गया तो इसके लिए नवाब ही उत्तरदायी था क्योंकि वह राज्य का सार्वभौम राजा था जिसके कार्य मे कोई हस्त-क्षेप नही हो सकता था।

तीसरे, यदि कुछ जागीरदारों की गारन्टी कंपनी ने वापस ले ली तो उसको उचित मुआवजा देने का उत्तरदायित्व उसी का था। इसी के आधार पर बेगमों को उनके राजस्व के अनुपात मे वृत्ति प्रदान की जाती थी।

चौथे, मुस्लिम कानून के अनुसार एक विधवा अपने पति के ऋण के चुकता हो जाने के बाद बचने वाले उत्तराधिकार के $\frac{1}{8}$ का ही अधिकारिणी थी। पर इस मामले में नवाव के व्यक्तिगत और राज्य के धन में कोई भेदभाव नही किया गया था और नवाव ने कोई वसीयतनामा भी नही छोड़ा था और ब्रिटिशो के ऋण के नीचे दब गया था।

और हेस्टिग्स को देश की रक्षा के लिए धन की आवश्यकता थी। नवाबी प्रशासन में अत्यधिक सुधार पैसे के अभाव मे बाकी थे। जब राज्य अत्यधिक कठि-नाइयों से गुजर रहा था तो एक व्यक्ति को आर्थिक दृष्टि से विलासी जीवन नही बिताने दिया जा सकता था।

"यदि हेस्टिग्स उसका आधा भी लालची और भीरु रहा होता जितना उसके विरोधी उसे मानते थे" उसके जीवन लेखक ट्राटर ने लिखा है, "तो वह अपने घर कृपणता की कल्पना से भी अधिक धनी होकर लौटा होता जिसका प्रयोग करके वह कामन्स के सदस्यों को अपने पक्ष में कर सकता।" जब उसे आसफुद्दौला से 10 लाख रुपये की भेंट मिली तो उसने डाइरेक्टरो को आश्वस्त करते हुए कहा कि यह उनकी सेवा में ही व्यय किया जायेगा जब तक कि वे स्वयं उसे ऐसा करने से रोककर उसे रख लेने को न कह देंगे। डाइरेक्टरो ने उसके मत का तनिक भी ख्याल नही किया और हेस्टिग्स ने "धन के एक-एक रुपये का ध्यान रखा" जो बाद मे उसके ऊपर मुकदमे का एक आधार बना।[1]

अंतिम रूप से, बेगमें धृष्ट थी और सेना रखती व नवाब की अवहेलना करती थी। उन्होंने ब्रिटिशों के विरुद्ध चेतसिंह की सहायता ही न की बल्कि स्वयं विद्रोह पर आमादा हो गई। डाइरेक्टरो का यह आदेश कि उनके विरुद्ध आरोपो

1 ट्राटर : पूर्वोद्धृत (इण्डियन रीप्रिन्ट) पृ० 154,।

की छानबीन की जाय वह स्वीकार नही हुआ क्योकि हेस्टिंग्स के मतानुसार "हम लोगो के लिए 1783 मे इसे स्वीकार करना पागलपन होता क्योकि तब तक नवाब और उसकी मा के बीच पूर्णरूप से मधुर संबंध स्थापित हो चुका था।"

यों तो अंतिम रूप से लार्ड्स ने उसे दोषमुक्त कर दिया, पर इतिहास उसके विरुद्ध लगाये गये सारे आरोपो को उसके पक्ष की बातों को ध्यान में रखते हुए, समाप्त नही मान सकता। अपनी जागीरो के अपहरण के पूर्व वे नवाब को दो बार धन दे चुकी थी। 1775 मे जब दूसरी बार उन्होंने उसे धन दिया तो ब्रिटिशो ने भविष्य मे इस तरह का धन न दे सकने का जो वचन दिया वह अन्य जागीरदारों को दिये गये वचन की तरह नही था। बेगमो का विशेष मामला ही था। वे अन्य जागीरदारो के समकक्ष नही मानी जा सकती थी।

हेस्टिंग्स की यह बात भी स्वीकार योग्य नही है कि नवाब सार्वभौम शासक था क्योकि यह स्पष्ट था कि वह एक कठपुतली था और लगातार दबावो एव धमकियो के कारण ही उसे अपनी मा के विरुद्ध कार्रवाई करनी पड रही थी। *शेरिडान की यह उक्ति सच ही है कि वह कटार जिससे नवाब ने अपनी मा के* सीने पर वार किया उसे उसके हाथ मे हेस्टिंग्स ने ही पकड़ाई थी।

बेगमो को जो मुआवजा दिया गया वह केवल उनके मासिक वेतन के बदले मे था उस अथाह खजाने या गंवा दी गई उस स्वतन्त्र शक्ति के बदले नही। नवाब का दुर्भाग्य यह था कि वह ब्रिटिश सहारे के बिना जीवित ही नही रह सकता था। अन्यथा उसे ब्रिटिश सैनिको के बनाये रखने पर होने वाले व्यय के कारण ऋणग्रस्त न होना पड़ता। उसकी समस्या का समाधान जागीरो के जब्त किये जाने से नही होना था बल्कि ब्रिटिश सेना से उसकी मुक्ति ही उसकी औषधि थी।

ट्राटर का अपनी पुस्तक के नायक के प्रति जो दृष्टिकोण उसके 10 लाख रुपये के लेने को लेकर दिया गया है वह बनावटी और अग्राह्य है। हेस्टिंग्स ने इस संबध मे डाइरेक्टरों को सूचना देर में दी और वह भी तब दी जब उनसे उसे छिपाना सरल न रह गया। फिर उसका यह निवेदन कि उसे वह धन रखने की आज्ञा दी जाय यह किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के द्वारा संभव नही थी।

यह निश्चित रूप से कहना सभव नही है कि बेगमे सच मे विद्रोह के योग्य थी। वैसे चेतसिंह के साथ जो व्यवहार किया गया वह उनकी स्थिति में किसी को भी यह प्रेरणा दे सकता था कि ब्रिटिशो का शिकार होने से बचा जाय। विद्रोह होने का प्रमाण सर एलिजा इम्पे के शपथ तथा कर्नल हन्नाय, ह्वीलर और अन्य के गवाहियो पर आधारित था। पी० ई०. राबर्टस इनमें से किसी को भी विश्वस्त नही मानता। उस समय ह्वीलर और हेस्टिंग्स के बीच जो पत्र व्यवहार हुआ उसमे विद्रोह का कोई जिक्र नही है'''ऐसा संभव लगता है कि विद्रोह *का आरोप गढ़ा गया था जिससे कि सभी कार्यवाहियों के औचित्य को सिद्ध किया*

जा सके।"[1]

फिर भी जो तर्क हेस्टिंग्स के विरुद्ध प्रस्तुत किये जाते है उसके आधार पर कोई भी यह राय नही देगा कि उसे अवध की रक्षा के भार से हाथ खीच लेना चाहिए था या यह कि कंपनी को प्लासी और बक्सर के युद्धों के फल का परित्याग कर देना चाहिए था जिसे उन्होने अपनी योग्यता से कम और परिस्थिति-वश अधिक जीता था। किसी को अनुशासनहीन पर भाग्यशाली मराठों से भी लडना था जिससे उस काम की एकमात्र बुराई का बोध होता था और इस सबमें धन की आवश्यकता थी। पर हेस्टिंग्स की प्रशंसा इस बात के लिए की जानी चाहिए कि जब उसके ऊपर बेगमो के प्रति दुर्व्यवहार को लेकर मुकदमा चल रहा था तो उसने बहू-बेगम से जो अब भी जीवित और जीवन्त तथा बहुत धनी थी, मित्रता और सहानुभूति का प्रभावशाली पत्र प्राप्त किया।

अवध

हम देख चुके है कि किस तरह अवध का नबाब वजीर-शुजाउद्दौला बक्सर के युद्ध में पराजित हुआ और किस तरह अपने भाग्य को रास्ते पर लाने के लिए वह ब्रिटिशों के समक्ष नतमस्तक हुआ और फलस्वरूप लार्ड क्लाइव के द्वारा 1765 की इलाहाबाद की संधि के अंतर्गत कुछ परिवर्तन के बाद वह अवध में अपनी पूर्व स्थिति पर कर दिया गया।

एक कुशल राजनीतिज्ञ क्लाइव को यह पता था कि अवध पर कब्जा करना लगता तो आसान है पर यह खलबली मचा देगा। भारत में ब्रिटिशों की उभरती शक्ति में सबसे बड़ी बाधा मराठे थे जिनसे सीधा संघर्ष अधिक से अधिक काल तक बचाया जाना चाहिए था। चूंकि अवध पर कब्जा करना उनके साथ सीधा संघर्ष प्रारंभ करा देता इसलिए इसे तब तक एक मध्यस्थ राज्य बना रहने देना उचित माना गया जब तक कि ब्रिटिश स्वयं परिस्थिति से निबटने मे सक्षम न हो जाय।

पर ऐसा लगता है कि शुजाउद्दौला ने अपने अनुभवो से कुछ नही सीखा था क्योंकि जैसे ही उसे कटौतीपूर्ण पूर्व अधिकार प्राप्त हो गये उसने ब्रिटिश प्रभाव से मुक्ति के लिए प्रयास प्रारभ कर दिये। उसने नयी सेना की भर्ती प्रारभ कर दी और युरोपीय ढंग मे उन्हे प्रशिक्षित करना प्रारंभ कर दिया। पर सावधान ब्रिटिश दृष्टि ने उसे बहुत आगे नही जाने दिया और कोई अनहोनी अशुभ प्रारभ हो उसके पूर्व ही उन्होंने 29 नवम्बर 1768 की एक नवीन सन्धि के द्वारा उन पर अपना शिकंजा कस दिया जिसके अंतर्गत उसके सैनिकों की संख्या अधिक से अधिक 35 हजार तय कर दी गई।

---

1. कैम्ब्रिज, पूर्वोद्धृत, भाग 5, पृ॰ 301-302।

इन्ही परिस्थितियों में हेस्टिंग्स ने कलकत्ता की बागडोर संभाली। उसका विचार था कि भारत के ब्रिटिश क्षेत्र की रक्षा का सबसे अच्छा उपाय यह है कि उनके चारो ओर छोटे-छोटे ब्रिटिश सहायक राज्यों का घेरा बना दिया जाय जो उनकी सहायता से वाह्य आक्रमण से निबट सके। अवध की उत्तर-पश्चिम सीमा वैज्ञानिक न थी। रोहिल्ले जो राज्य के उस ओर के क्षेत्र के शासक थे गंगापार से होकर आने वाले मराठो को रोक सकने में असमर्थ थे। रुहेलखंड में उनके प्रवेश का यही एक मार्ग था जहां से दक्षिण-पूर्व होकर वे अवध और ब्रिटिश क्षेत्र के लिए समस्या हो सकते थे। इसलिए ब्रिटिशों की रक्षा का सबसे उत्तम उपाय रुहेलखंड को अवध में मिला देना था जिसके बाद जैसा कि हेस्टिंग्स ने स्वयं कहा कि शुजाउद्दौला के पास "एक पूरा ऐसा संगठित राज्य हो जायगा जिसको बिहार की सीमा से लेकर तिब्बत के पर्वतों तक गंगा रक्षा करेगी जबकि उसके क्षेत्र के बाहर का स्थान हमारी सेना के पहुच के अंदर होगा···चाहे विद्रोह का अवसर हो या रक्षा का, इससे उसे धन भी प्राप्त होगा जिसमे हम भी भागीदार होंगे और उसे बिना खतरापूर्ण शक्ति बढाये, हम सुरक्षा प्रदान करेंगे। नि सदेह रूप से उसकी सीमा को मराठो के निकट लाकर जिनके विरोध मे वह अकेला बेकार होगा उन्हें हमारे ऊपर अधिक निर्भर कर देगा और हमारे बीच संबंध मजबूत कर देगा।"[1]

जैसा हमने देखा है, हेस्टिंग्स ने नवाब वजीर को यह राय दी थी कि उसे रोहिल्लों और मराठो के बीच दुर्भावना बढ़ाने मे सहायता करनी चाहिए जिससे कि रोहिल्ले कमजोर पड़ जाएं और उस स्थिति से लाभ उठाया जा सके। 1772 में मराठों ने रुहेलखड पर आक्रमण किया और उसी वर्ष 17 जून को नवाब वजीर ने रुहिल्ला नेता हाफिज रहमत खां से संधि कर ली जिसकी गवाही के रूप मे अवध में ब्रिटिश सेना का सेनापति सर राबर्ट बारकर उपस्थित था। जैसा हमने देखा है इस संधि के अंतर्गत रुहेल्ला नेता ने नवाब वजीर को 40 लाख रुपये हर उस अवसर पर देने को कहा जब वह मराठों को रुहेलखंड पर आक्रमण करने पर उसके क्षेत्र से शाति या युद्ध से उसे हटायेगा। पर 1773 के प्रारंभ में जब मराठों ने रोहिल्ला क्षेत्र पर आक्रमण किया तो वे नवाब वजीर की सेना व ब्रिटिश सेना को देखकर गंगा पुनः पार कर उस पार चले गये। पर इस पर नवाब वजीर को रुहेला नेता ने यह कहकर धन देने से इकार कर दिया कि नवाब और मराठो के मध्य कोई लड़ाई ही नही हुई है।

इसी बीच हेस्टिंग्स ने नवाब वजीर से मिलने का निश्चय किया क्योंकि उसने अनुभव किया कि उसके और नवाब के बीच संबंधों की कोई निश्चित

1. सेलेक्ट कमिटी प्रोसीडिंग्स, भाग 1, पृ० 80।

रूपरेखा नही है; दूसरे उसे नवाब से अवध स्थित ब्रिटिश सेना के व्यय के संबंध में भी चर्चा करनी थी क्योंकि उन सैनिकों का नवाब की सहायता मे इधर-उधर चलना-फिरना व्यय से जुड़ा था जिसे नवाब देने के प्रति अनिच्छित था, और तीसरे उसे कडा और इलाहाबाद के सबध मे विचार-विमर्श करना था जिसे उसने मुगल सम्राट से ले लिया था। इसी कारण 24 जून 1773 को हेस्टिंग्स बनारस की ओर चला पर वह जैसे ही कलकत्ता छोड़ने को था उसे नवाब वजीर से एक पत्र मिला जिसमे लिखा था कि रुहिल्लो ने किस तरह धोखा किया है।

बनारस मे नवाब वजीर के साथ जो विस्तृत वार्ता हुई उसके फलस्वरूप 7 सितंबर 1773 को उनके बीच एक नवीन सधि हुई। इस सधि के अंतर्गत (1) नवाब ने यह स्वीकार किया कि एक ब्रिटिश प्रतिनिधि उसके निकट रुका रहेगा; (2) भविष्य मे ब्रिटिश सेना के लिए वह 2,10,000 रु० प्रति माह प्रति ब्रिगेड के हिसाब से देगा; और (3) कडा और इलाहाबाद उसे 50 लाख रुपये के बदले में दे दिया गया जिसमें से 20 लाख रुपये उसे तुरंत देना था और शेष धनराशि उसे दो किश्तो मे देना था।

एक दूसरे समझौते के अनुसार बलवतसिंह के पुत्र चेतसिंह को बनारस की जमीदारी का स्वामी स्वीकार कर लिया गया। पी० ई० राबर्टस लिखता है कि "उसी समय एक गुप्त समझौता किया गया जिसमे यह तय हुआ कि ब्रिटिश एक ब्रिगेड से नवाब की सहायता करेंगे जिससे कि वह रोहिल्लो को उनके टालमटोल के लिए सजा दे सके और उनके लिए क्षेत्र पर अधिकार कर सके। इसके बदले नवाब को सेना का व्यय भार वहन करना था तथा साथ ही 40 लाख रुपये अलग से देना था। पर सधि होते ही नवाब को यह संदेह होने लगा कि क्या वह इस आर्थिक बोझ को बर्दाश्त कर सकता है और चूकि हेस्टिंग्स ने इसके औचित्य पर सोचा-विचार इसलिए दोनों ने स्वाभाविक रूप से आक्रमण को स्थगित कर दिया।"[1]

हेस्टिंग्स इस आशा से कलकत्ता वापस लौट आया कि रुहेल्लो के संबंध में गुप्त समझौता कभी भी नही माना जायगा। पर उसके कलकत्ता पहुंचने के बाद ही उसे नवाब का उपरोक्त संधि के आधार पर सहायता करने हेतु एक पत्र मिला। हेस्टिंग्स ने उत्तर मे नवाब को इस कार्य से विदित होने के लिए लिखा और वह इस सबध मे दब भी गया। पर शीघ्र ही उसने परिवर्तन कर रुहेलो के विरुद्ध कार्रवाई के लिए दबाव डाला। हेस्टिंग्स ने पूरी समस्या को कौंसिल के समक्ष रखा जिसने अंततः इसे स्वीकार किया और 17 अप्रैल 1774 को कर्नल चैम्पियन के नेतृत्व मे ब्रिटिश ब्रिगेड रुहेलखंड मे प्रविष्ट हुआ जिसके फलस्वरूप

1. कैम्ब्रिज, पूर्वोद्धृत, भाग 5, पृ० 218-19।

वह क्षेत्र अवध में मिला लिया गया।[1]

रुहेलों के संबध में किये गये गुप्त समझौते के प्रति हेस्टिंग्स का दृष्टिकोण और फिर उसका इससे हाथ खींचना उसके राजनेता के अवगुण का प्रदर्शन करता है। इस उम्मीद में वादा करना कि इसकी पूर्ति का कभी समय ही नही आयेगा, केवल भावुक चरित्र के लोगों की कार्रवाई मानी जायगी किसी अनुभवी विचारक की नही।

जैसा भी हो पूरी स्थिति मे परिवर्तन हो गया। 1773 के रेग्युलेटिंग ऐक्ट के अतर्गत वगाल का गवर्नर बंगाल के गवर्नर जनरल में बदल गया जिसे 4 सदस्यीय कौंसिल से सहायता मिलनी थी और जहां बहुमत से मसले तय होने थे। गवर्नर जनरल को उनके ऊपर कोई अधिकार नही दिया गया। नयी कौंसिल में क्लेवरिंग, फ्रांसिस और मांसन थे जो लगता था कि इगलैण्ड से इस पूर्व निश्चय के साथ आये है कि उन्हे जो भी हो हेस्टिंग्स का विरोध करना है। रिचर्ड बारलेस नामक सदस्य ही उसका समर्थन करता था जिसका परिणाम था कि हेस्टिंग्स का शासन विरोधपक्ष का शासन हो गया जिनकी नीति चाहे वह माने या न माने उसे चलाना पड़ा।

इस परिस्थिति मे विरोध बहुमत ने गवर्नर जनरल की रुहेला नीति की आलोचना की। अवध में ब्रिटिश रेजीडेण्ट मिडिल्टन को तुरंत वापस कर दिया गया और हेस्टिंग्स की इच्छा के विपरीत 28 दिसंबर 1774 को ब्रिस्टो को अवध को मध्यस्थ राज्य के रूप मे शक्तिशाली बनाने की उसकी नीति के विरोध के लिए नियुक्त किया गया। ब्रिस्टो को तुरत 40 लाख रुपये की नवाव से (रुहेलों की सहायता के बदले) मांग करनी थी जिसके न माने जाने पर तुरत अवध से ब्रिटिश सैनिकों को कभी न आने के लिए वापस होना था। वैसे भी यह सोचा गया कि ब्रिटिश सेना वापस बुला ली जाय और आवश्यकता पर ही अवध भेजी जाय।

हेस्टिंग्स असहाय था और वह अपने सामने ही देख रहा था कि उसकी कंपनी के क्षेत्र की सुरक्षा नीति एक स्वप्न ही बनी रह जा रही है। 1775 के प्रारंभ मे अवध के नवाब वजीर शुजाउद्दौला की मृत्यु हो गई और उसके साथ ही वह आदमी भी पर्दे के पीछे चला गया जिसने स्वतत्र प्रभुसत्ता के विकास के सक्षिप्त दिन देखे थे और अब उस पर ब्रिटिशों को हावी होते भी देखा था। अपने मृत्यु से पूर्व अपने पुत्र मिर्जा अमानी जो आसफुद्दौला के नाम से नवाब हुआ, की हेस्टिंग्स से सिफारिश करते हुए लिखा था : "यदि मेरे जीवन के दिन चुक जायं तो ईश्वर की इच्छा पूरी होगी। अपनी मृत्यु के उपरात भी मैं आपकी दोस्ती पर भरोसा करता हूं। आशा है आप मेरे प्रिय पुत्र आसफुद्दौला को मेरे स्थान के लिए विचार

1. विस्तार के लिए पीछे देखें।

करके उसे सहायता प्रदान करेंगे और प्रत्येक अवसर पर उसके हित और लाभ का काम करेंगे।"

पर सभवतः यह निवेदन मृत नवाब से हेस्टिंग्स के माध्यम से कौसिल के पास पहुंचा इसलिए विरोधी वहुमत ने इस संबध में तटस्थमत अपनाया और जब आसफुद्दौला उत्तराधिकारी हुआ तो उसे सूचना भेजी गई कि कपनी मे उसके पिता से हुए समझौते व्यक्तिगत थे और अब उसके क्षेत्र की रक्षा तभी की जा सकेगी जब डाइरेक्टर इसे स्वीकृति प्रदान करेंगे। 22 मई 1775 से पूर्व डाइरेक्टरों के पास से वह पत्र नही प्राप्त हुआ जिसमें हेस्टिंग्स की नीति का अनुमोदन था। ब्रिस्टो को नवाब के साथ एक नवीन संधि करने की अनुमति दी गई जिसके अतर्गत (1) नवाव के क्षेत्र की सुरक्षा का भार कपनी ने पुनः लिया (2) सैनिकों पर व्यय की दर को 2,10,000 रुपये प्रति ब्रिगेड से बढाकर 2,60,000 रुपये कर दिया गया और (3) राजा बनारस के क्षेत्र पर से उसके सार्वभौम अधिकार को बदलकर कंपनी के हाथ मे कर दिया गया।

जब आसफुद्दौला नवाब हुआ तो उसने देखा कि उसके समक्ष जो कुछ है वह सतोपजनक नही है। उसकी सेना विद्रोही हो गई है जिससे उसे 17 अप्रैल 1775 को बाकायदा लड़ाई करनी पड़ी। उसका कोप खाली हो गया। उसके क्षेत्र मे अधिकतम जमीदार थे जो उसकी सहायता करने के स्थान पर विद्रोह करते दिखते थे और उसकी विधवा मां जिसके पास अथाह धन था वह उससे सहायता करके उसकी कठिनाईयां दूर करने को तैयार नही थी। सबसे अलग कलकत्ता के विरोधी बहुल उसके प्रति असहायता पूर्ण दृष्टिकोण रखते थे। इसी बीच 22 मई को जब उसे उनसे सधि करनी पड़ी तो उसकी आशा कुछ बधी।

पर जल्दी ही पुनः स्थिति मे परिवर्तन हो गया। 1776 मे मान्सन नामक विरोधी सदस्य मर गया जिससे हेस्टिंग्स को एक प्रभावी निर्णायक मत प्राप्त हो गया और विरोध बहुत अल्पमत मे वदल गया। जैसे ही उसे पुनः शक्ति प्राप्त हो गई उसने ब्रिस्टों को वापस बुलाया तथा मिडिल्टन को अवध में ब्रिटिश रेजीडेंट नियुक्त किया। अपने राज्य मे नवाब को शक्तिशाली बनाने हेतु रेजीडेंट को उसके आर्थिक व्यवस्था को पुनर्गठित करना था जिससे क्षेत्र मे आवश्यक सुधार आ सके और कपनी का आर्थिक शेपाश भी प्राप्त हो सके। मिडिल्टन को भी पडोसी राज्यो की कार्यवाहियो पर सूचना देने और अवध को ब्रिटिश एव गगापार अन्य भारतीय राज्यों के बीच एक शक्तिशाली मध्यस्थ राज्य बनाने मे सहायता करने को नियुक्त किया गया।

मिडिल्टन ने शीघ्र ही अपना कार्यभार ग्रहण कर लिया और हेस्टिंग्स की पुरानी अवध नीति को पुनः प्रारंभ किया गया। इस क्षेत्र पर ब्रिटिश दवाव मजबूत करने का कार्य पुनः प्रारभ हो गया और नवाब से यह कहा गया कि वह

अवध में ब्रिटिश ब्रिगेडों के लिए जो धन देता था उतने ही मूल्य का भूराजस्व वाला क्षेत्र प्रदान करे। बाद में इसमें और परिवर्तन किया गया। वह भूराजस्व जो कंपनी को प्रदान किया गया था उसे नवाब के अधिकारियों के निरीक्षण में आमिल ही एकत्रित करते थे। इसे और सरल बनाने के लिए नवाब ने राजस्व वसूलने का कार्य भी मिडिल्टन के हाथ में सौंप दिया और अपनी तीन बटालियन सेना भी उन्हें सौंप दिया जिसके द्वारा आमिल-ब्रिटिशों के कर्तव्य निर्वाह में सहायता करते थे। कंपनी को जो राजस्व क्षेत्र प्रदान किये गये वे थे रोहिलखंड, दोआब तथा कड़ा, इलाहाबाद, जगदीशपुर और शाहराह के जिले। यह वेलजली के सहायक संधि की पृष्ठभूमि भी आगे चलकर सिद्ध हुई जिसने ब्रिटिशों को भारत में एक साम्राज्य निर्माण में सहायता दी।

साथ ही मिडिल्टन ने नवाब के आंतरिक मामले में हस्तक्षेप करना भी प्रारंभ किया। हेस्टिंग्स के अपने मन के मंत्री नियुक्त किये गये और मिडिल्टन की इच्छानुसार क्षेत्र के प्रशासन में प्रशासकीय परिवर्तन किये गये। स्थिति यहां तक पहुंच गई कि मिडिल्टन इस क्षेत्र का बेताज बादशाह हो गया।

इस सबसे क्षेत्र की आर्थिक दशा में सुधार होने के स्थान पर और बिगाड़ ही आया और 1779 के अंत तक नवाब ने हेस्टिंग्स से अवध से सब सैनिकों के वापस होने को कहा। केवल स्थायी ब्रिगेडों को ही रहने को कहा गया। कुछ समय तक तो हेस्टिंग्स को यह विश्वास ही नहीं हुआ कि नवाब आर्थिक कठिनाइयों में है। उसने कहा कि उसका कष्ट उसके खराब मंत्रियों के कारण है। पर उस समय उसकी गलतफहमी दूर हो गई। राजा बनारस के साथ मोहभंग के बाद जब नवाब उससे चुनार में मिला और प्रस्ताव किया कि ब्रिटिश सेना की वापसी के अतिरिक्त उसकी आर्थिक समस्याओं का समाधान तभी हो सकता है जब उसे जागीरें ले लेने दी जाए जो कंपनी की गारंटी में थी। हेस्टिंग्स ने इसे मानते हुए 19 सितंबर 1781 को एक नवीन संधि नवाब के साथ की जिसे चुनार की संधि कहा जाता है।

इस संधि के अंतर्गत यह तय हुआ कि (1) सभी ब्रिटिश सेनाएं (स्थायी ब्रिगेडों को छोड़कर) अवध ... बुला ली (2) नवाब अपना

जिसके साथ उसने रोहिल्ला युद्ध के बाद अलग से संधि की थी और जिस संधि की शर्तों की उसने अवहेलना की थी।

जागीर अपहरण की धाराएं, जिसकी चर्चा हम पीछे कर आये हैं[1], अवध की बेगमों के विरुद्ध थी। पर फैजुल्ला खा के भूमि पर अधिकार के विषय मे यहां कुछ कहना आवश्यक है। अली मुहम्मद का पुत्र फैजुल्ला खान जो असली रुहेला शासक था उसका अधिकार हाफिज रहमत खान ने छीन लिया था और उसने रुहेला युद्ध के बाद नवाब से अलग संधि की थी जिसे ब्रिटिशो ने भी माना था। इस संधि के अंतर्गत कुछ क्षेत्र जो उसके पास बचा था और 5,000 सेना रखने के बदले फैजुल्ला को नवाब के पास युद्ध के समय "अपनी सामर्थ्यानुसार दो-तीन हजार सैनिक" भेजना था। इस संधि के होने के शीघ्र ही बाद फैजुल्ला ने 2,000 घुडसवार कंपनी को भेजे जिसके लिए वह संधि के अंतर्गत बधा नही था और जिसके लिए ब्रिटिशो ने उसे धन्यवाद भी दिया। पर रुहेला सरदार की विश्वास-पात्रता भी उसे हेस्टिंग्स के आधारहीन मागो से नही बचा सकी, ठीक वैसे ही जैसे इसने बनारस के राजा चेतसिंह को नही छोडा।

1780 मे जब कंपनी की सुरक्षा भारत मे खतरे मे पड़ी, हेस्टिंग्स ने नवाब से रुहेल्ला सरदार से 5,000 घुड़सवार सेना मागने को कहा। फैजुल्ला ने विनम्रता से ऐसा करने मे असमर्थता व्यक्त की और उसकी जगह पर 2,000 घुडसवार और 1,000 पैदल सेना देने को कहा जो संधि के अतर्गत भी तय हुआ था। इस पर हेस्टिंग्स ने अपनी मांग घटाकर 3,000 घुड़सवार कर दी जिसे भी रुहेला सरदार ने देने मे असमर्थता व्यक्त की। इसे संधि की अवहेलना बताकर नवाब से उसके क्षेत्र पर अधिकार कर लेने को कहा गया। फैजुल्ला से की गई मागें चेतसिंह की ही तरह थी और उस पर विचार की आवश्यकता नही है।

अपने विवेचन की मुख्य धारा की ओर मुडते हुए हम देखें कि चुनार की संधि के बाद अवध के रेजीडेंट का कर्तव्य और कठोर कर दिया गया। पर मिडिल्टन हेस्टिंग्स की इच्छा के अनुसार कार्य कर पाने में सफल न हुआ। कपनी को देय नवाब का ऋण भी अभी नही चुका था, मिडिल्टन भी विद्रोह की स्थिति का विवरण नही भेज सका था जो उसके क्षेत्र मे व्याप्त था और उसके काम मे राजस्व प्रशासन भी रत्ती भर न सुधरा था। इसीलिए 1782 मे मिडिल्टन को वापस बुलाकर अवध का कार्यभार ब्रिस्टो के हाथ मे सौपा गया।

ब्रिस्टो जिस कार्य का भार लेकर अवध गया वे थे नवाब के प्रशासकीय स्थिति मे सुधार जो उसे नवाब को समझा-बुझाकर केन्द्रीय राजस्व व न्याय विभाग की स्थापना करके करना था, नवाब के व्यक्तिगत और राजकीय लेखे-जोखे

1. पीछे देखें।

को अलग करना तथा ऐसे मंत्रियों की नियुक्ति जो ब्रिटिश देखभाल व निर्देश के प्रति विनम्र हो। उसे कलकत्ता के अधिकारियों को अवध की सेना विभाजन, नवाब के प्रति उसके अमीरों के दृष्टिकोण तथा ब्रिटिशों के प्रति उनके रुख की भी सूचना देनी थी।

ब्रिस्टो अवध मे इस चेतना के साथ आया था कि ब्रटिश इस राज्य के असली शासक हो गये है जबकि नवाब एक नकली पाचवा चक्का है। नवाब से परामर्श किये बिना उसने उसकी 4,000 घुड़सवार और 6,000 पैदल सेना समाप्त कर दी, सरकारी लेखे-जोखे का कार्यभार स्वयं ले लिया और यहा तक कि नवाब के व्यक्तिगत लेखे-जोखे में भी हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया। उसने राज्य के अधिकारियों को पद पर नियुक्त करने और हटाने का कार्य भी अपने हाथ मे लिया, एक अंग्रेजी अधिकारी के अधीन एक अपीलीय न्यायालय स्थापित किया और स्वय नवाब के प्रति अनादरणीय दृष्टिकोण अपनाया।

ब्रिस्टो के व्यवहार की शिकायत जब नवाब ने हेस्टिंग्स से की तो उसने उसे कौन्सिल के समक्ष रखा और स्वय रेजीडेट के व्यवहार के प्रति असतोष व्यक्त किया। यह तय किया गया कि ब्रिस्टो को वहा से वापस बुला लिया जाय क्योंकि वह नवाब से कपनी के ऋण को दिलवा सकने मे समर्थ नही हुआ है।

इसी बीच जैसे-जैसे भारत मे हेस्टिंग्स के पदमुक्ति का समय निकट आया, नवाब ने उससे लखनऊ आने का निवेदन किया। 27 मार्च को वह वहां गया और नवाब को बिना ब्रिटिश हस्तक्षेप के प्रशासकनीय सुधार के लिए उत्तरदायी बताया पर शर्त यह थी कि ब्रिटिश ऋण का वह भुगतान कर दे। नवाब ने अति शालीन वातावरण मे उसका स्वागत किया और वही पर उस क्षेत्र के कुछ जमीदारों ने नवाब का ऋण अपनी ओर से दे दिया। नवाब और हेस्टिंग्स एक मित्र की भांति अलग हुए।

हेस्टिंग्स की एक सफलता जो अवध मे उसे प्राप्त हुई वह यह थी कि नवाब की उस महत्त्वाकाक्षा को जिसके अंतर्गत वह ब्रिटिशो से स्वतंत्र होना चाहता था उसने नकार दिया और अब नवाब ब्रिटिशो पर निर्भर उनका मित्र हो गया। वह एक ऐसा मध्यस्थ भी बना दिया गया जो ब्रिटिश क्षेत्र पर आक्रमण से पूर्व आक्रमण के धक्के को पहले सहता था।

17
प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध

हेस्टिग्स के पूर्व की स्थिति

शिवाजी की मृत्यु के वाद उसके द्वारा स्थापित महत्त्वाकाक्षी शक्ति का पतन प्रारंभ हो गया। एक शक्ति से अनेक की उत्पत्ति प्रारभ हो गई और पूरा मराठा राज्य विभिन्न सघर्षरत नेताओ मे विभाजित हो गया जिन्होने आपसी सघर्ष मे सारी शक्ति गवा दी और ब्रिटिशो को उन्हे निगल जाने का अवसर प्रदान किया। मराठा पतन का विवरण आकर्षक है।

वंगाल मे हेस्टिग्स के गवर्नर जनरल के पद ग्रहण के समय तक राजा का पद लगभग वेकार हो गया था और छत्रपति जिस नाम से वह जाना जाता था वह नाम सतारा का कैदी ही रह गया था। उसकी सारी शक्ति पेशवा के हाथो मे चली गई थी जिसका पद सम्राट की ही भाति पैतृक हो गया था और ऐसा भी उदाहरण था कि एक 40 दिन का शिशु भी लाखो लोगों के ऊपर शासन करने के लिए पेशवा वना दिया गया। पर ऐसा लगा कि इतना ही पर्याप्त नही है क्योकि पैतृकता का पाप राजनीति की सीढ़ी के डडे पर ऐसा पडा कि सेना के सेनापति भी राजा और पेशवा के तरह का अधिकार मागने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि अन्य छोटे-छोटे शक्तियो के अतिरिक्त चार और नेताओं का उदय हुआ जिन्होने अपना अलग-अलग स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। ये राज्य थे . होल्कर, सिन्धिया, भोंसले और गायकवाड। एक समय था जब मराठा शक्ति दिल्ली तक पहुंच गई थी और एक समय तो लगा पंजाव भी उनके अधिकार मे आ गया है। पर 1761 मे अहमदशाह अब्दाली के हाथो पानीपत मे उनकी पराजय ने उनके सारे स्वप्न को चूर कर दिया।

एक क्षण तो यह लगा कि मराठों के भाग्य का सूर्य माधवराव प्रथम के पेशवा होने पर पुनः उठ रहा है और पानीपत की पराजय के थोडे दिनो के भीतर ही मराठे अपनी शक्ति को संगठित कर लेंगे। पर वह 18 नवम्बर 1772 में मर गया और जी० एस० सरदेसाई का यह कहना उचित ही लगता है कि "मराठा प्रभुत्व की पराकाष्ठा का क्षण भारत में 1761 मे पानीपत मे उनके पराजय का पूर्वकाल न होकर जैसा प्रायः माना जाता है उनके सबसे बड़े पेशवा-

माधव राव की। 772 में मौत थी।"[1]

बम्बई में ब्रिटिशों की बस्ती पेशवा के सरकार की राजधानी पूना से बहुत दूर न थी जो मराठा राजनीति का केन्द्र था। 1758 में मराठों ने ब्रिटिशों से एक समझौता किया जिसके अंतर्गत ब्रिटिशों ने मराठों से 100 गांव बिना पैसे के अनुदान में प्राप्त किये तथा मराठा क्षेत्र में कुछ व्यापारिक सुविधाएं भी प्राप्त की। 1759 में प्राइस के नेतृत्व तथा टामस मोतसीन के सहायकत्व में पूना में मित्रतापूर्ण मिशन आया। पर इसका एक गुप्त उद्देश्य भी था। यह मिशन मराठों से किसी और क्षेत्र के बदले साल्सट और बेसीन चाहता था जो उनके लिए सामरिक महत्त्व का था और जिसके लिए बम्बई को सीधे इंगलैंड से सूचना प्राप्त हुई थी। मिशन सफल तो न हुआ पर अंग्रेजों ने हिम्मत नहीं हारी। 1761 में *पानीपत में मराठों की पराजय ने, हो सकता है ब्रिटिशों को प्रसन्न किया* हो पर जब माधवराव प्रथम के नेतृत्व में उन्होंने अपनी स्थिति में सुधार लाना प्रारंभ किया तथा मैसूर के हैदरअली एवं निजाम हैदराबाद से संघ स्थापित करना प्रारंभ किया तो उससे ब्रिटिशों के मित्र कर्नाटक के नवाब की स्थिति को खतरा पैदा हो गया। इस पर 1767 में मोतसीन को पूना भेजा गया जिसका उद्देश्य पेशवा के विचार का पता लगाना था और यह चेष्टा करना था कि उनसे आपसी द्वेष पनप उठे जिससे मराठे हैदरअली और निजाम अली से मिलकर कोई कार्रवाई न कर सकें।"[2] भाग्य से संघ बन नहीं सका क्योंकि पेशवा के पास धन नहीं था। इसके बाद मोतसीन ने पुनः समुद्र क्षेत्र के साल्सट और बेसीन को प्राप्त करने का प्रयास प्रारंभ कर दिया जिसपर उसकी दृष्टि थी।

जब सीधी तरह से मोतसीन को वह नहीं मिला जो वह चाहता था तो उसने रघुनाथ राव से अपना संपर्क बढ़ाना प्रारंभ किया। वह राघोबा के नाम से प्रसिद्ध था और माधवराव का चाचा था और एक बार उसने मराठों की पताका पंजाब तक फहराई थी और अब पेशवा पद का महत्वाकांक्षी था और इस संबंध में उन्हें तब वह उचित अवसर मिला जब 1772 में माधवराव की मृत्यु हो गई और राघोबा की इच्छा के विपरीत माधवराव के छोटे भाई नारायणराव को पेशवा बना दिया गया।

घटनाचक्र तेजी से घूमा जिसने प्रथम आंग्ल मराठा युद्ध को जन्म दिया। 13 अगस्त 1773 को नारायण राव दस अन्य लोगों सहित कत्ल कर दिया गया। राजमहलीय षड्यंत्र ही इसका कारण था जिसमें राघोबा का हाथ था। राघोबा नवीन पेशवा हुआ और अब ब्रिटिशों को उन क्षेत्रों को प्राप्त करने की आशा

---

1. सरदेसाई : द मेन करेन्ट्स आफ मराठा हिस्ट्री, पृ० 132।
2. ग्राण्ट डफ : हिस्ट्री आफ द मराठाज, पृ० 257।

बंधी जिन पर उनका मन लगा हुआ था। मुख्य न्यायाधीश रामशास्त्री की छानबीन में जब यह बात सामने आई कि राघोवा इस हत्याकांड में भागीदार था और जब 18 अप्रैल 1774 को नारायणराव की विधवा गगाबाई ने एक बच्चे को जन्म दिया तो राघोवा के लिए सारा अवसर ही समाप्त हो गया। मराठा सरदारों ने नवजात शिशु को ही अपना पेशवा मानने की घोषणा की और उसका नाम माधवराव द्वितीय रखा तथा उसके लिये 12 बडे भाइयों की एक सभा बनाई और राघोवा को बंदी बनाने का आदेश दिया। इसी समय दिसंबर 1774 में ब्रिटिशो ने थाना के किले पर आक्रमण किया जिसका पूरे साल्सट क्षेत्र पर अधिकार था और उस पर अधिकार कर लिया। इस असहयोग मे जो ब्रिटिशों के बिना कारण विद्रोह के परिणाम के रूप मे सामने आया वह प्रथम मराठा युद्ध का प्रारंभ था। इस स्थिति में राघोवा बचकर भागकर ब्रिटिशों से जा मिला और 6 मार्च 1775 में उनमे एक संधि की जिसे इतिहास में सूरत की सधि के नाम से जाना जाता है।

सूरत की सधि—इस सधि के अंतर्गत (1) ब्रिटिशो ने राघोबा को पेशवा बनाने मे सहयोग देने का आश्वासन दिया, (2) इसके बदले मे उन्हे साल्सट, वेसीन और अन्य कुछ स्थान मिलने को हुआ, (3) रघुनाथ राव को 25 हजार ब्रिटिश सैनिक उसकी रक्षार्थ देने का निश्चय हुआ जिसके व्यय के लिए प्रति वर्ष उसे 1½ लाख रुपये देना था, (4) जो भी सधि वह पूना से करेगा उसमे ब्रिटिश भी सम्मिलित होंगे, (5) जमानत के तौर पर उसने 6 लाख रुपया दिया।

इस तरह मराठों को रघुनाथ राव ने धोखा दिया और ब्रिटिशो को "उनके घर में आग लगाने" में सफलता मिल गई। उनकी रक्षा मे राजकुमार ब्रिटिश सैनिकों सहित पूना ले जाया गया और युद्ध प्रारंभ हो गया।

हेस्टिंग्स के अंतर्गत स्थिति

इसी बीच अक्टूबर 1774 में हेस्टिंग्स ने बंगाल के गवर्नर जनरल का पद संभाला और निर्णय की शक्ति कौन्सिल के विरोधी राभाओ के हाथ मे होने के कारण उन्होंने यह तय किया कि बम्बई अधिकारियों को तुरन्त सूचना दी जाय कि वे संघर्ष की नीति का परित्याग कर दें। एक के बाद एक दो पत्र भेजे गये। जिसमे सूरत की संधि को बुरा-भला कहा गया क्योंकि (1) यह रघुनाथराव से की गई थी जिसे उसकी जनता ने ही अस्वीकार कर दिया था और जो पेशवा नही था, (2) इससे कपनी को एक युद्ध मे फंस जाना पडता जिसके निर्वाह के लिए उसके पास धन नही था, (3) इस संधि ने भारत में अंग्रेजों की अन्य जातियो के हित को ध्यान मे नही रखा था, (4) ब्रिटिशों के विरुद्ध मराठो ने कोई नीति नही अपनाई थी जिससे उन्हें उनके आन्तरिक मामलो में हस्तक्षेप का अवसर मिलता और

(5) यह उस समय ससद मे पारित ऐक्ट के विरुद्ध था। विरोधबहुल ने इस संधि को अमान्य करते हुए बम्बई अधिकारियों को अपनी सेना वापस बुला लेने को कहा। उन्होंने यह भी कहा कि इससे उन्ही की सुरक्षा को खतरा है।

जब ये पत्र बम्बई पहुचे तब तक दोनों पक्ष युद्ध में जूझ रहे थे और उन्होंने युद्ध से हटना उचित नही समझा। हेस्टिंग्स का व्यक्तिगत दृष्टिकोण भी स्पष्ट नही था पर वह विरोधबहुल के मत को मान्य करने को तैयार नही था। इन परिस्थितियों में बम्बई द्वारा प्रारंभ किया गया मराठों के विरुद्ध आक्रमण विनाशकारी सिद्ध हुआ। वैसे तो साल्सट उनके हाथ में बना रहा पर बम्बई अधिकारियो का पूर्ण पराभव उनके अकेले रहने की स्थिति मे बिल्कुल स्पष्ट था। विरोधियों ने इसके लिए हेस्टिंग्स को उत्तरदायी माना और कर्नल अप्टो को सीधे पूना भेजकर मराठों से सधि की वार्त्ता प्रारंभ की।

पूना के अधिकारी अप्टो से आदर से मिले और सभी तरह का विरोध समाप्त करने को कहा। वार्त्ता प्रारभ हुई पर बिगाड प्रारंभ में ही सामने आ गया। (1) अप्टो ने राघोबा को वापस करने मे इंकार किया और साल्सट व बेसीन ब्रिटिशों के लिए मागा। वह यह भी चाहता था कि संधि पर पूना की ओर से सभी सरदारो के हस्ताक्षर हो जिसे पूना के अधिकारी अव्यावहारिक बताते थे क्योंकि इससे सहायक अधिकारियों की महत्ता अनावश्यक रूप से बढ़ जायेगी। (2) पूना ब्रिटिशों से जो सधि करना चाहते थे वह अपने को पूरे देशो की ओर मे मान्यता देकर चाहते थे जबकि अप्टो का कहना था कि बम्बई के अधिकारियो की ओर से ही सधि की जानी श्रेयस्कर है। वार्त्ता असफल हो गई और मराठों ने तुरन्त आक्रामक कार्यवाही प्रारंभ कर दी। हेस्टिंग्स को भी युद्ध प्रारम्भ करने का आदेश देना पड़ा।

अबकी बार भाग्य मराठों के साथ नही था। पूना से अप्टो ने सूचना भेजी कि उसकी सूचना के विपरीत पूना में आपस मे असगठन नही था और "इस समय मैं एक व्यक्ति भी नही देख रहा हू जो उनका भक्त न हो।" पर यह जल्दी ही झूठा सिद्ध हो गया। जैसे ही युद्ध का कार्य प्रारभ हुआ सदाशिव राव नामक एक नकली व्यक्ति प्रकट हुआ और विद्रोह कर दिया। यह व्यक्ति 1775 से ही बंदी था, पर वह रत्नगिरि के किले में रक्षकों को घूस देकर बाहर निकल आया और पूना अधिकारियों को परेशानी मे डाल दिया जबकि वे ब्रिटिशों को पाठ पढाने की तैयारी कर रहे थे। फलस्वरूप मराठो को सधि करने के लिए प्रयास करना पड़ा क्योंकि विद्रोह बड़ा था और पूना दो क्षेत्रो में लड़ाई नही कर सकता था।

पुरन्दर की संधि—1 मार्च 1776 को इस तरह पुरंदर की नयी सधि तय हुई जिसमे मराठों का दुर्भाग्य स्पष्ट हो गया (1) उन्हे ब्रिटिशों को 12 लाख रुपये देने पड़े जिसे उन्होंने राघोबा पर व्यय किया था। (2) सूरत की संधि समाप्त कर दी गई पर राघोबा को पूना दरबार को नही सौंपा गया बल्कि उसके लिए

3,15,000 रु० वार्षिक वृत्ति की व्यवस्था करनी पड़ी। राघोवा को गुजरात मे कोपार गांव में सैनिकों को समाप्त कर रहने की आज्ञा हुई। (3) साल्सट की तरह के जो क्षेत्र ब्रिटिशों के हाथ मे आ गये थे, बने रहे।

पर पुरंदर की संधि जोड़-जाड़ की प्रवृत्ति के कारण स्थायी न सिद्ध हुई (1) ब्रिटिशो की ओर से अप्टो ने संधि पर हस्ताक्षर किया, पर इसकी शर्तें न तो बम्बई और न ही हेस्टिंग्स ने पसन्द की थी। वैसे उमने सधि को मान्य तो कर दिया पर बम्बई को युद्ध के लिए उकसाता रहा। राघोवा सधि के अनुरूप अपने को नही ढाल सका। पूना बम्बई के अधिकारियो की तरफदारी के लिए विरोध करता रहा पर उसका कोई परिणाम नही निकला। (2) बनावटी भाऊ इसी बीच पकड़ लिया गया और मार डाला गया जिससे पूना ब्रिटिशो के प्रति नीति अपनाने के लिए स्वतंत्र हो गया। (3) इसी समय सेण्ट लूबिन जो एक फ्रासीसी साहसिक था, पूना दरबार मे फ्रासीसी सम्राट का एक पत्र और भेटें लेकर आया। मराठों ने जहां उसका अत्यधिक शानदार स्वागत किया वही अप्टो को मुक्त करने के लिए आए मोतसीन का नयाचार के अनुसार ही स्वागत किया। लूबिन का पूना मे एक वर्ष तक बने रहना और लगातार यह अफवाह, कि मराठों ने फ्रांसीसियों के साथ सुरक्षा संधि करने का निश्चय किया है, ने ब्रिटिशो के साथ उनके सम्बन्ध को और खराब कर दिया। यह भी सूचना आई कि मराठों ने "फ्रासीसियों से सहायता ही नही मागी है बल्कि यह भी समझौता किया है कि फ्रासीसियो को जल्दी से जल्दी अंग्रेजों पर आक्रमण करना चाहिए जिस सेवा के लिए···(वे) उन्हे 20 लाख रुपये और सिपाहियो सहित 10 जहाज देने को तैयार हुए; इसके अतिरिक्त 20 लाख रुपये उस समय देने को तैयार हुए जब वे बम्बई पर आक्रमण करेंगे।"[1]

(4) एक और कारण जिसने ब्रिटिशो को विरोध भाव के लिए उकसाया वह भी उपस्थित हो गया। पेशवा का वृद्ध मत्री सुकाराम बापू अपने युवा साथी नाना फड़नवीस के साथ विरोधी हो गया जिसका कि मराठों के बीच अधिक प्रभाव था। बापू जिसकी पुरंदर की सधि मे अहम् भूमिका थी इस तरह मराठो के लिए एक विश्वासघाती व्यक्ति हो गया और बम्बई सरकार से उसने गुप्त रूप से संपर्क करके सहायता का आश्वासन दिया यदि वे राघोवा का समर्थन करे।

बम्बई के अधिकारी इस अवसर का लाभ उठाने को आतुर थे क्योंकि उनका विश्वास था कि पुरंदर सधि का मुख्य मराठा हस्ताक्षरकर्ता ही जब उनसे सपर्क कर रहा है तो उनके द्वारा विरोध का प्रारभ इस सधि की अवहेलना नही माना जायगा। कौन्सिल के विरोधी सदस्य बम्बई सरकार की बात मानने का विरोध कर रहे थे, जबकि हेस्टिंग्स उसका समर्थन कर रहा था। उसका कहना था

1. देखें, देवधर, वाई० ऐन० : नाना फड़नवीस, बम्बई, 1962, पृ० 64।

कि जब ब्रिटिश सेना अमेरिका मे पराजित हो चुकी है तो यहां पर विजय प्राप्त कर उस क्षति की कुछ पूर्ति की जा सकती है। सरदेसाई ने लिखा है कि उसने "पूना मंत्रियों के प्रति मित्रता का भाव ही समाप्त नही कर दिया बल्कि उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। यह उसने गृह विभाग के अधिकारियों के उस सूचना की अवहेलना करके किया जिसमे रघुनाथराव के पक्ष में आक्रमण न करने को कहा गया था।"[1]

पूना सरकार ने हेस्टिंग्स को लिखा कि फ्रांसीसियों से उनके मेल-जोल की अफवाह आधारहीन है, कि लूबिन चला गया है और यह कि यदि ब्रिटिश पुरंदर की सधि की अवहेलना करके झगड़ा प्रारम्भ करेंगे तो उसका उत्तरदायित्व उन्ही पर होगा। पर यह सब वेकार गया। मार्च 1778 मे हेस्टिंग्स ने बम्बई को युद्ध घोषित करने के लिए अधिकार प्रदान किया और राघोबा को पेशवा के पद के लिए समर्थन देने को कहा।

जैसे ही फिर युद्ध प्रारंभ हो गया, हेस्टिंग्स ने भोसले और सिंधिया को नाना फड़नवीस से अलग करने का प्रयास किया जो अब पूना सरकार चला रहा था। पर इसके पहले कि उसे कोई सफलता मिले ब्रिटिशों को 19 जरवरी 1779 को तल गांव में बुरी तरह से पराजित होना पड़ा जिसका परिणाम हुआ बड़गांव की सधि (1) ब्रिटिशो ने विना शर्त राघोवा को मराठो को वापस करना स्वीकार किया, (2) वे थाना और साल्सट वापस करने को तैयार हुए, (3) बंगाल की सेना की वापसी को तैयार हुए और (4) दो बधक रखेंगे जब तक कि सधि की शर्तों का पालन न हो जाय।

बड़गांव के बाद

इस तरह अमेरिका मे ब्रिटिश पराजय को भारत में विजय में बदलने का हेस्टिंग्स का स्वप्न साकार नही हुआ। पूरा ब्रिटिश राष्ट्र यह सुनकर स्तंभित रह गया और हेस्टिंग्स पर यह आरोप लगा कि उसने गृह विभाग के अधिकारियों की अवहेलना कर देश पर एक अपमान और लाद दिया जब कि अमेरिका में अंग्रेजों का भाग्य वैसे ही निम्नता पर था। पर हेस्टिंग्स ने सधि को अमान्य करते हुए सेनापति गोडार्ड को स्थिति को सुधारने के लिए भेजा। राघोबा भी कैद से निकल भागा और सूरत मे सेनापति से आ मिला।

नाना को जब नयी ब्रिटिश चालो की सूचना मिली तो उसने नागपुर के भोंसले, हैदराबाद के "निजाम और मैसूर के हैदरअली के साथ एक चतुर्मुख संघ की स्थापना की। नाना की योजना के अनुसार नागपुर के भोसले को बंगाल में

---

1. सरदेसाई : निव हिस्ट्री ऑफ द मराठाज, पृ० 69।

अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करना था, हैदरअली को मद्रास पर आक्रमण करना था; पेशवा की सेना को गुजरात व कोंकण में उनका विरोध करना था और निजाम को पूर्वी तट पर अंग्रेजों का विरोध करना था।"[1] हेस्टिंग्स की कूटनीति ने निजाम और भोसले को उनसे अलग कर दिया और उसे उसी से संतोष करना पड़ा जो उसके पास शेष था।

चूंकि गोडार्ड को मध्य भारत में बदला लेने और विपथन के लिए भेजा गया था, इसलिए हेस्टिंग्स ने कैप्टेन पोफम को अलग से भेजा जिसने 3 अगस्त, 1780 को रात मे ग्वालियर पर घेरा डालकर सफलता प्राप्त कर ली। "यह किला पूरे भारत में अभेदनीय माना जाता था और इसे उनका छीनना अग्रेजों की प्रतिष्ठा वृद्धि का प्रधान कारण बना।" सिंधिया जो ग्वालियर के पतन के बाद उत्तर की ओर आगे बढ़ा वह 16 फरवरी 1781 को सीपरी मे पराजित हुआ और उसी वर्ष 13 अक्तूबर को उसने अंग्रेजों से एक संधि कर ली। "इस सधि की सबसे प्रमुख धारा यह थी कि महादा जी ने मंत्रियो और अग्रेजों के बीच एक संधि कराई और उस पर उनके बने रहने के लिए उसने स्वयं उत्तरदायित्व लिया।"[2]

इसी बीच जब मुख्य मराठा सेना गुजरात मे गोडार्ड से लड रही थी, नाना ने हैदरअली को कर्नाटक के दर्रों मे अपनी सेना झोक देने को समझाया जहां उन्होंने मद्रास के निकट समुद्र तटीय क्षेत्रों को बर्बाद किया। एक के बाद एक कई स्थानो पर ब्रिटिशों को वह तब तक हराते रहे जब तक कि हतोत्साह होकर उन्होने नाना से संधि करने के लिए संपर्क नही किया। हेस्टिंग्स ने ब्रिटिश एजेन्ट ऐन्डरसन को संधि की शर्तें तय करने के लिए भेजा: "हमे लाभ सहित शांति नही चाहिए और शीघ्र शांति चाहिए, और हम इसे साल्सट व बम्बई के निकट छोटे-छोटे द्वीपो को छोडकर अपनी एक-एक चप्पे जमीन को बलिदान करके भी खरीदने को तैयार है। यदि संभव हो तो बेसीन ले लो, पर यदि यह संधि की शर्त में बाधा बने तो इसे भी छोड दो।" 11 सितंबर 1781 को भेजे गए एक पत्र में नाना से यह कहा गया: "कंपनी से ही नहीं इंगलैण्ड के राजा से भी आज्ञा प्राप्त हो गई है...यह आज्ञा है कि भारत मे उसके कर्मचारी विजय कार्य में न लगें बल्कि भारत की प्रत्येक शक्ति के साथ सुलह-सपाटे से रहे...यह भी आदेश है कि आपकी सरकार से तुरन्त शाति और मित्रता की सधि की जाय जिसे राजा और संसद दोनो स्वीकार करेंगे और उसका कपनी के कर्मचारी उल्लघन नही करेगे।"[3]

---

1 देखें, देवधर: पूर्वोद्धृत, पृ० 82-83।

2. ऐतचिसन को उदद्धृत करते हुए कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग, 5 पृ० 268-70; ट्रीटीज, भाग 4, पृ० 33। इस सबध मे विरोधाभासी विचार दिये गये हैं जिसके लिए लाभपूर्ण परीक्षण हेतु देखें, देवधर-पूर्वोद्धृत, पृ० 808-10।

3. देखें, रामप्रकाश: पूर्वोद्धृत, पृ० 39-40।

ब्रिटिशो को जिस कारण संधि करने के लिए बाध्य होना पड़ा उसमें से एक यह था कि इतने लंबे सघर्ष ने उनका आय साधन संपूर्ण रूप से वर्बाद कर दिया था; दूसरे बंगाल में फिर दुर्भिक्ष पड़ गया था; तीसरे यह मसला कि पूर्वी तट पर फ्रांसीसी वेड़ा पहुंचने वाला है, चौथे, नाना व हैदर का संघ उनकी आशा से भी अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ था; और पांचवें अमेरिका मे उनकी पराजय ने उनके साहस को और ठडा कर दिया।

साल्बाई की संधि : अतत 17 मई 1782 की साल्वाई की सधि के द्वारा शांति की स्थापना हुई जिस पर सिंधिया ने मराठो की ओर से और ऐन्डरसन ने ब्रिटिशों की ओर से हस्ताक्षर किए। इस संधि के अंतर्गत (1) पुरन्दर की सधि के बाद जिन मराठा क्षेत्रों पर ब्रिटिशो ने अधिकार किया था वह उन्हे वापस करना पडा; (2) हैदरअली ने जिन ब्रिटिश क्षेत्रों पर अधिकार किया था वह उसे वापस कर देना पड़ा और यह तय हुआ कि ब्रिटिश उसका तब तक विरोध न करेंगे जब तक वह पेशवा का मित्र बना रहेगा; (3) राघोवा को कही तीन माह के भीतर रहने का स्थान तय करने का आदेश दिया गया और उसे 25 हजार रुपये प्रति माह पेशवा से वृत्ति दिलाने को भी कहा गया यदि वह "अपने आप सिंधिया से संबंध ठीक कर ले।" ब्रिटिशों ने उसे पेशवा बनाने के संकल्प का त्याग कर दिया। (4) मराठे किसी युरोपीय शक्ति से संबंध नही रखेंगे यह भी तय हुआ; और (5) ब्रिटिश मराठों के शत्रुओं को प्रयत्क्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता नही करेंगे।

साल्वाई की संधि को वारेन हेस्टिंग्स की एक महान व्यक्तिगत सफलता माना जाता है। हैदर अली को फ्रांसीसी सहायता की किसी क्षण आशा थी और नाना सधि को इसलिए टाल रहे थे क्योंकि वे मराठों के बलिदान का फल प्राप्त करने पर आमादा थे। पर हेस्टिंग्स ने इन सारी घटनाओ पर हावी हो जाने मे सफलता प्राप्त की। उसने हैदर की सारी योजनाओ को ही मिट्टी मे नही मिलाया बल्कि महत्त्वपूर्ण मराठा सरदारों, नाना और सिंधिया में मतभेद भी पैदा करने में सफलता प्राप्त की।

जब सधि पर हस्ताक्षर हुए तो उस समय भारत मे ब्रिटिशो का सितारा निम्नतर गर्दिश में पहुच गया। मराठो के लिए यही अवसर था जब वे अंततः भारत में अपनी प्रभुता स्थापित कर ले। पर इस अवसर को उन्होंने खो दिया और ब्रिटिशो ने उन्हे फिर अवसर नही प्रदान किया।

साल्बाई की संधि ने सचमुच ब्रिटिशो की पराजय के बाद उन्हे दडित करने के स्थान पर उन्हे यह पारितोषिक दिया कि मराठे किसी अन्य युरोपीय शक्ति से संबंध नही रखेंगे। इस रुधिरपात की जड़ राघोबा के बिना शर्त पकड़े जाने की जगह मराठो को उसे एक वड़ी वृत्ति राशि देनी पड़ी। लेफ्टीनेन्ट कर्नल सी० ई०

लुआई ने लिखा है कि संधि "भारत के अंग्रेजी इतिहास मे एक प्रमुख घटना थी जिसने ब्रिटिशो के लिए मराठो के साथ 20 वर्ष तक की सुलह करा दी। इसने निर्विवाद रूप से यह सिद्ध कर दिया कि भारतीय राजनीति पर ब्रिटिशो की प्रभावी पकड़ है। 1818 मे वे जो महान शक्ति के रूप मे उभरकर आए वह साल्वाई की सधि का ही आवश्यक परिणाम था।"[1]

इसमे संदेह नही कि सरदेसाई के अनुसार यह आग्ल-मराठा युद्ध'''स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है कि मराठों की पुष्टता न तो पानीपत की पराजय और न ही पेशवा माधव राव की मृत्यु के कारण समाप्त हुई थी।"[2] पर साल्वाई की सधि इस बात का प्रमाण है कि किस तरह आपसी अनवन और स्वार्थपूर्ण महत्त्वाकांक्षा मराठों को अब भी उनकी पुष्टता के पारितोषिक से दूर कर सकती थी। इसमे संदेह नही कि बेसीन मराठो को लौटा दिया गया, पर सालसट पर अब भी ब्रिटिशो का अधिकार बना रहा। मराठों मे सचमुच सिंधिया को ही सबसे अधिक लाभ प्राप्त हुआ जिसका प्रभाव मुगल बादशाह पर स्वीकार किया गया और जिसके अधिकारों में ब्रिटिशों ने हस्तक्षेप न करने का वादा किया। सिंधिया को ऐसी स्थिति प्रदान की गई जिसने कि उसे नाना से संघर्ष करके उसे उच्चता की ओर जाने की प्रेरणा प्रदान की। आगे चलकर इसके कारण नाना को इससे बड़ी हानि हुई और यह संघर्ष तब तक समाप्त नही हुआ जब तक कि 1794 मे महारानी सिंधिया की मृत्यु नही हो गई।

सिन्धिया को इस संधि से कितना लाभ हुआ, उसका निर्णय सधि की एक अनुबद्ध शर्त से हो सकता है जिसमे लिखा था कि "ईस्ट इडिया कपनी और पेशवा सिन्धिया से यह निवेदन करते है कि वह इस संधि के अनुसार दोनो पक्ष को काम कराने का उत्तरदायित्व स्वयं ले। यदि इनमें से कोई भी शर्तो का उल्लघन करे तो वह उस आक्रान्ता को दबा दे।"[3]

इसीलिए नाना ने इस संधि को मानने से इन्कार कर दिया और हैदरअली से संपर्क स्थापित करके स्थिति को उलटने का प्रयास किया। पर 7 दिसंबर 1782 मे हैदर अली की मृत्यु ने स्थिति को नैराश्यपूर्ण बना दिया और उसे 1783 के प्रारंभ मे सधि-पत्र पर हस्ताक्षर कर देना पड़ा।

वारेन हेस्टिंग्स के काल में ही ब्रिटिशो ने द्वितीय मैसूर युद्ध किया जिसका विवरण भी बडा रोचक है। हम इसका विवरण आगे 'हैदर अली और प्रथम दो आंग्ल मैसूर युद्ध' नामक अध्याय में देगे।

---

1. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 5, पृ० 271।
2. सरदेसाई : निउ हिस्ट्री आफ द मराठाज, भाग 3, पृ० 123।
3. वही, पृ० 119।

18
हेस्टिंग्स के अन्तर्गत संवैधानिक विकास

1773 का रेग्युलेटिंग ऐक्ट

1773 में ब्रिटिश संसद द्वारा रेग्युलेटिंग ऐक्ट नामक एक ऐक्ट पारित किया गया जो जी० एन० सिंह के मतानुसार, "महान सवैधानिक महत्ता का है क्योंकि इसने निश्चित रूप से कपनी के राजनैतिक कार्यों को स्वीकार किया, क्योंकि इसने पहली बार ससद को यह अधिकार दिया कि वह जिस तरह की चाहे उस तरह की सरकार स्थापित करने का आदेश भारत मे दे जो अधिकार अभी तक कंपनी का व्यक्तिगत अधिकार बना हुआ था, और क्योंकि संसदीय संविधियो की लम्बी परंपराओ मे से प्रथम है जिसने भारत में सरकार का स्वरूप बदल दिया।"[1]

परिस्थितियां—सभवत. सबसे महत्त्वपूर्ण परिस्थिति जिसने इस ऐक्ट को पारित कराया वह ब्रिटिश संसद की इस बात मे रुचि थी कि भारतीय भागों मे से कुछ भाग कैसे प्राप्त किया जाए। 1766 में उस समय से ही लेन-देन की प्रवृत्ति ग्रहण कर चुकी थी जब सरकार ने कपनी को इस शर्त पर शक्ति और अधिकार बनाए रखने को कहा कि वह इसके बदले 40 हजार पौंड वार्षिक देती रहे। सच में संसद के इस तरह भारतीय काम में भागीदार होने का औचित्य नही था और यदि इसने ऐसा किया तो बर्क के मतानुसार इसलिए नही किया कि कपनी की "रुधिरपात, लूटमार, दुष्टता और शोषण" भारत मे चल रही नीति उचित थी। फिर भी संसद की मांग बढ़ती ही गई क्योंकि इसने यह सोचा कि कपनी भारत मे अथाह कमाई कर रही है जब तक कि इसको यह पता नही चल गया कि यह ऋण के बोझ से दब गई है जिसके फलस्वरूप संसद को वह उचित अवसर मिल गया कि वह भारतीय क्षेत्रो पर प्रभुसत्ता शक्ति प्राप्ति का अधिकार जताए।

और फिर "अंग्रेज नवाब" नामक कपनी कर्मचारी भी थे जिन्हे अवैध व्यापार के कारण और भारत की गरीब जनता से धन लूटने के कारण यह नाम प्राप्त हो गया था। सर-विलियम मेरीडिथ ने कहा है कि "व्यापारी प्रभु इसलिए खतरनाक थे क्योंकि उनको फरोख्त की नीति को ही सर्वोपरि स्थान देना था और खरीदकर वे कम से कम मूल्य देते थे।" ये व्यापारी "क्रूर और बेशर्मी के हद तक लालची"

1. सिंह जी० एन० : लैन्डमार्क्स इन इंडियन कान्स्टीच्युशनल एण्ड नेशनल डेवलपमेण्ट, पृ० 14-15।

की अनुत्तरदायित्वपूर्ण और क्रूर नीति ने इंगलैंड के नाम को धब्बा लगा दिया। द्वैध सरकार के अंतर्गत न्याय का कोई समुचित प्रशासन नहीं था; यदि पुलिस कहीं थी भी तो वह रक्षा करने की जगह पर कठिनाई पैदा कर रही थी; राजस्व कर्मचारी निरकुश हो गए थे और इस सबके ऊपर भिन्न-भिन्न तरह के आपस में स्वार्थ संघर्षरत लाभ प्राप्त करने वालों के दल थे जिससे स्थिति और बिगड़ गई थी। ससदीय हस्तक्षेप का जो भी उद्देश्य रहा हो, "पर एक शक्तिशाली भावना जो इंगलैंड में व्याप्त थी वह यह थी···कि राष्ट्र को स्वयं एक नवीन व विस्तृत दूर-दराज के विदेशी लोगों पर शासन की प्रक्रिया ठीक से उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से लागू कराई जाए।"[1]

साथ ही भारत के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त ढीले-ढाले और असंगठित शासन को भी ब्रिटिशों ने अपना लिया था। अलग-अलग प्रेसीडेन्सी तो थी पर कोई केन्द्रीय शक्ति उन पर लगाम लगाने के लिए और रास्ता दिखाने के लिए नहीं थी। प्रेसीडेन्सियां अपने आप युद्ध घोषित करती और सधि कर लेती थी जिससे कंपनी के अधिकार की प्रतिष्ठा गिरती भी थी और कठिनाइयां भी बढ़ जाती थी। एक समुचित प्रशासकीय सगठन द्वारा इससे बचा जा सकता था।

अन्यान्य, पराजयों और कठिनाइयों को जो ब्रिटिशों ने झेला उससे भी उनके राष्ट्र की प्रतिष्ठा को आघात लगा। 1769 में कंपनी की मैसूर के हैदर अली के हाथों पराजय और उसका अपने मन सधि की शर्तें पेश करना ब्रिटिश संसद के महान कष्ट का कारण बना। भारत में ब्रिटिश प्रतिष्ठा सचमुच नीची हो गई।

एक अन्य बात जिसने संसदीय हस्तक्षेप ला उपस्थित कराया वह कंपनी के स्वामियों की भागीदारी के लिए बढ़ती हुई भूख भी मानी जा सकती है। कंपनी के कर्मचारियों की बढ़ती संपन्नता ने उसके स्वामियों को भी भारतीय लाभ में हिस्सा बंटाने के लिए प्रोत्साहित किया। 1766 में उनका लाभांश बढाकर 6 प्रतिशत से 10 प्रतिशत कर दिया गया पर वे अब भी इससे संतुष्ट नहीं थे जिसके फलस्वरूप इसे बढाकर 12½ प्रतिशत करना पड़ा। इंगलैंड में कंपनी की संपन्नता का ऐसा ही चित्र पेश किया जा रहा था जिसके कारण लोगों ने अंधाधुंध तरीके से भागीदारी पर दांव लगा दिए जिसका मूल्य तेजी से बढ़ गया। पर अततः उन्हें यह पता चला कि कंपनी की सपन्नता का सभी शोर-शराबा झूठा है और कपनी दिवालिएपन की ओर तीव्रता से बढ़ रही है।

1765 में परिश्रम से क्लाइव ने कपनी का जो सुन्दर व स्वस्थ आर्थिक चित्र खीचा था वह उसके 60 लाख पौंड ऋण हो जाने से धूमिल होना प्रारंभ हो गया।

---

1. रिपोर्ट आन कान्स्टीच्युशनल रिफार्म्स, 1918, पृ० 17; कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 5, पृ० 186-88।

सैनिक प्रशासन संबधी भारतीय अधिकारियों से किया जाने वाला समस्त पत्र-व्यवहार सेक्रेटरी आफ स्टेट के सामने रखना पड़ता था। भारतीय राजस्व के संबध मे किया गया पत्र-व्यवहार उन्हे नियमित रूप से ट्रेजरी के समक्ष रखना पड़ता था। यह धारा कपनी पर संसदीय नियंत्रण बनाए रखने के लिए की गई थी। (3) कोर्ट आफ प्रोपराइटर्स की मत देने की योग्यता बढा दी गई। अब वे लोग जिनके पास चुनाव तिथि के पूर्व के 12 महीनो तक लगातार 1,000 पौड की पूजी रही थी उन्हें ही मत देने का अधिकार दिया गया। पहले यह अधिकार उन्हे भी प्राप्त था जिनके पास 6 माह तक 500 पौड का धन रहा था। स्पष्ट था कि इस नियम के अतर्गत मत देने वाले स्वामियों की संख्या घट गई। 1246 लोग मत देने के अयोग्य घोषित हो गए। कपनी के संविधान में यह परिवर्तन स्वागत योग्य रहा होगा क्योंकि इसके फलस्वरूप कोर्ट आफ प्रोपराइटर्स मे व्याप्त अव्यवस्था और गदी राजनीति मे कुछ कमी आई होगी। पर इस प्रावधान का एक दुर्भाग्यपूर्ण पहलू यह था कि जिनके पास 3,000 पौड की संपत्ति थी उन्हे दो मत देने का अधिकार था और जिनके पास 1,0000 पौड की संपत्ति थी उन्हे 4 मत देने का अधिकार दिया गया। कीथ लिखता है कि इसके परिणाम स्वरूप "कोर्ट आफ प्रोपराइटर्स के गुण में वृद्धि नही हो पाई और न इस पर ही कोई अंकुश लग सका कि कंपनी के कर्मचारी पूर्व मे अपार धन ले जाकर अपने देश में शक्ति खरीदने मे लग जाएं।"[1]

भारत की केन्द्र सरकार—भारत मे कपनी की केन्द्रीय सरकार के निर्माण के लिए भी कुछ धाराएं बनाई गई। (1) बंगाल के गवर्नर को अब बंगाल का गवर्नर जनरल कहा गया जिसका वार्षिक वेतन 25 हजार पौड वार्षिक रखा गया। (2) उसके कार्य मे 4 सदस्यों की एक कौन्सिल सहायता करने को हुई जिसमे से प्रत्येक को 10 हजार पौड वार्षिक देना तय हुआ। (3) गवर्नर जनरल और उसके कौन्सिल सदस्यो का कार्यकाल 5 वर्ष का हुआ। पर इनमें से कोई भी राजा के द्वारा हटाया जा सकता है यदि कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की संस्तुति ऐसा करने को हो। (4) आकस्मिक रूप से गवर्नर जनरल का पद रिक्त होने पर कौन्सिल का वरिष्ठतम सदस्य यह पद प्राप्त करता था जिसे राजा की स्वीकृति से कपनी नियुक्त करती थी। (5) कौन्सिल की कार्रवाई मे होने वाले निर्णय उपस्थित सदस्यो के बहुमत से होते थे। यदि किसी मसले पर मत विभाजन होने पर मत बराबर-बराबर आएं तो गवर्नर जनरल को निर्णायक मत भी दिया गया। (6) यह संस्था यानी कौन्सिल में गवर्नर जनरल को कंपनी के क्षेत्रीय अधिकार वाले इलाके पर प्रशासन करने, बंगाल, बिहार व उड़ीसा पर शासन करने तथा प्रेसीडेन्सी के नागरिक,

---

1. कीथ : ए कान्स्टीच्युशनल हिस्ट्री आफ इंडिया, 1600-1935, पृ॰ 71।

गैनिक प्रशासन का नियमण सौपा गया। (7) कौन्सिल मे गवर्नर जनरल को नियम और कानून बनाने का अधिकार मिला तथा फोर्ट विलियम एव अन्य फैक्ट्रियों तथा उनके सहायक बस्तियो के लिए अच्छे प्रशासन का उत्तरदायित्व भी इन्ही का था। ये सभी कानून तर्कसगत व ब्रिटिश कानून के अनुरूप होते थे और ये तभी लागू होते थे जब सर्वोच्च न्यायालय मे ये रजिस्टर्ड होते थे। ये कौन्सिल मे राजा के द्वारा भी रोके जा सकते थे। कौन्सिल मे गवर्नर जनरल को मद्रास और बम्बई के लिए कानून बनाने का अधिकार नही था। (8) कौन्सिल के गवर्नर जनरल को बम्बई और मद्रास की प्रेसीडेन्सियों के निरीक्षण और देखभाल का अधिकार युद्ध और शांति के मसलों पर था। ये प्रेसीडेन्सिया कौन्सिल मे गवर्नर जनरल की आज्ञा के बिना न तो क्षेत्रीय शक्तियों से सधि कर सकती थी और न युद्ध कर सकती थी। इस धारा का दुर्भाग्यपूर्ण पहलू यह था कि गभीर आपातकाल मे ये प्रेसीडेन्सिया अपने विचार के आधार पर भी कार्य करने को स्वतत्र थी। वे इस तरह का कार्य तब भी कर सकती थी जब गृह अधिकारियों से उन्हे विशेष आदेश प्राप्त हुए होते थे। (9) गवर्नर जनरल और कौन्सिल को कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को उन सभी कार्यवाहियों की सूचना देते रहनी होती थी जिससे कपनी का हित जुडा होता था। उन्हे कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के आदेशो और सूचनाओं का पालन भी करना होता था। (10) प्रथम गवर्नर जनरल और कौन्सिल सदस्यो का नाम ऐक्ट मे ही जोड़ दिया गया। वारेन हेस्टिंग्स को गवर्नर जनरल बनाया गया और रिचर्ड बारवेल, जनरल क्लेवरिंग, फिलिप फासिस और कर्नल मान्सन कौन्सिल के सदस्य बनाए गए।

प्रेसीडेन्सियों के संबंध में— पहले तीन प्रेसीडेन्सियो मे से प्रत्येक मे एक प्रेसीडेन्ट और वरिष्ठ व्यापारियो की एक कौन्सिल बनी जिनकी संख्या 12 से 16 के बीच होती थी और इनका निर्णय बहुमत से होता था। तीनो प्रेसीडेन्सियां एक दूसरे से स्वतंत्र थी और सीधे कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के प्रति उत्तरदायी थी। अब इन धाराओ मे कुछ परिवर्तन किए गए। (1) जैसे बता आए है स्थानीय शक्तियो के साथ युद्ध और शांति के मसलो पर तथा सधि के मसले को लेकर ये प्रेसीडेन्सी अलग-अलग, कौन्सिल में गवर्नर जनरल के सहायकत्व मे होती थी। कौन्सिल मे गवर्नर जनरल को आज्ञा न मानने पर प्रेसीडेन्सी को निलबित करने का अधिकार था। आपात स्थिति मे और डाइरेक्टरो से सीधे आज्ञा मिलने पर इन प्रेसीडेन्सियों को अपने मन से कार्य करने का अधिकार था। (2) इन प्रेसीडेन्सियो को अपने द्वारा निर्मित नियम और कानून कौन्सिल मे गवर्नर जनरल को भेजना पड़ता था। उसे राजस्व और प्रेसीडेन्सी की सरकार के संबंध मे भी वहा तक सूचना दी जाती थी जितनी कि कंपनी के हित में थी।

सुप्रीम कोर्ट—(1) ऐक्ट के अंतर्गत कलकत्ता में एक सुप्रीम कोर्ट स्थापित

करने का प्रावधान किया गया जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश और तीन सहायक न्यायाधीश रखे गए। मर एलिजिया इम्पे को प्रथम मुख्य न्यायाधीश और सेमैंस्टर, चैम्बर्स और हाइड को सहायक न्यायाधीश नियुक्त किया गया। (2) सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश को 5 वर्ष के लिए इंगलैण्ड व आयरलैण्ड का बैरिस्टर होना आवश्यक था और उसे राजा की इच्छानुसार पद प्राप्त होता था। (3) इन न्यायाधीशों का अधिकार राजा के बेंच के न्यायाधीशों मे समाहित होता था। (4) न्यायालय को यह अधिकार दिया गया था कि वह नियमों के कार्यान्वयन की पद्धति का प्रारंभ करे। इसे अपनी सहायता के लिए कर्मचारी नियुक्ति का अधिकार प्राप्त हुआ पर उनके वेतन के संबंध में कौन्सिल में गवर्नर जनरल से संस्तुति लेनी पड़ती थी। गवर्नर जनरल की राय से ये न्यायाधीश न्यायालय का शुल्क भी तय कर सकते थे। शेरिफ के पद के लिए वे तीन लोगों का नाम भेजते थे जिनमें से एक गवर्नर जनरल और कौन्सिल चुनती थी। ऐडवोकेट और अटॉर्नियों का प्रवेश पूर्णतः उनके हाथ में ही छोड दिया गया।

(5) न्यायालय का क्षेत्र और शक्ति बहुत विस्तृत थी। यह कलकत्ता नगर, फोर्ट विलियम की फैक्ट्री और इसकी अन्य सहायक फैक्ट्रियो के लिए की और टर्मिनर व गोल डिलीवरी न्यायालय का भी काम करती थी। यह न्यायालय कलेक्टर, सेसन और कोर्ट आफ रिक्वेस्टस की भी देखभाल करता था और इसे सेरटियोरैंडी, मैन्डमस, यरर या प्रोसीडेन्डो हिटें को भी इन न्यायालयों के हेतु काम जारी करने का अधिकार था। इसे बंगाल, बिहार और उड़ीसा तथा उन सभी लोगों पर, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कंपनी की सेवा में थे, धार्मिक, नागरिक और फौजदारी न्याय का अधिकार था। साथ ही इसे कोर्ट आफ इक्विटी तथा कोर्ट आफ ऐडमिरेल्टी के अधिकार बंगाल, बिहार व उड़ीसा के ऊपर तथा पास-पड़ोस के क्षेत्रों व द्वीपो पर जिस पर कंपनी का अधिकार था, भी प्रदान किए गए। इस न्यायालय को कत्ल, लूटपाट और धोखाधड़ी के वे मुकदमे भी देखने का अधिकार हुआ जो समुद्र क्षेत्र में होते थे। इसे वे मुकदमे भी देखने का अधिकार हुआ जो ब्रिटेन के नागरिक और एक भारतवासी के बीच होता था और जहां कंपनी का क्षेत्र था पर इनकी शर्त यह थी कि वादी व प्रतिवादी के बीच यह अनुबंध हो जाता था कि झगड़ा और आगे बढ़ने पर सुप्रीम कोर्ट के अधिकार को वे स्वीकार करेंगे। इस तरह के मुकदमे 500 रुपये तक के अवश्य होने चाहिए थे। इन मुकदमो को सीधे सुप्रीम कोर्ट से प्रारंभ भी किया जा सकता था और किसी मुफस्सिल कोर्ट से यहां अपील भी की जा सकती थी।

(6) एक हजार पगोडो के मूल्य के असैनिक मुकदमों की अपील 6 माह के भीतर कौन्सिल मे सम्राट को भेजी जा सकती थी। फौजदारी मुकदमों में अपील के लिए न्यायालय की अनुमति आवश्यक थी। वे सभी अपराध जिस पर सुप्रीम

कोर्ट का विचाराधिकार था उसे ब्रिटिश प्रजा के जूरी द्वारा कलकत्ता मे देखा जाता था। (7) न्यायालय गवर्नर जनरल या कौन्सिल के किसी सदस्य के विरुद्ध कोई मुकदमा सुनने, दंड निश्चित करने या सूचना प्राप्त करने के लिए जो किसी भी उस अपराध (धोखाधडी और महापराध को छोडकर) के लिए आरोपित हो जो उसने उस क्षेत्र मे किया हो जो उस न्यायालय मे पडता हो, का अधिकार नही था। (8) इस ऐक्ट ने यह भी घोषित किया कि गवर्नर जनरल, कौन्सिल के सदस्य या न्यायाधीश को किसी भी कारण सुप्रीम कोर्ट में असैनिक मुकदमे के चलते समय कैद नही किया जा सकता था। (9) गवर्नर जनरल और कौन्सिल शांति के न्यायाधीश की हैसियत से भी कार्य कर सकते थे और इस उद्देश्य से चतुष्पदीय सत्र की व्यवस्था कर सकते थे। (10) गवर्नर जनरल, कौन्सिल के सदस्य, या सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश यदि कोई अपराध कर दें तो उस पर इंगलैंड में मुकदमा चल सकता था।

भूतकालीन जघन्य भूलों के सबंध में—कुछ तत्कालीन बुराइयों को दूर करने के उद्देश्य से ऐक्ट मे कुछ प्रावधान किए गए जैसे अब (1) यदि किसी सैनिक या असैनिक कर्मचारी ने यहां के किसी शासक या शक्ति से भेंट स्वीकार की तो उससे उसका दोगुना धन ले लिया जाएगा और भारत छोडने के लिए भी उससे कहा जा सकता है। (2) राजस्व एकत्रित करने वाला कोई व्यक्ति राज्य का एकाधिकार प्राप्त या व्यापार नही कर सकता था। (3) राजा की कोई भी प्रजा अपने द्वारा दिए गए धन पर 12 प्रतिशत से अधिक व्याज नही ले सकती थी। 4) गवर्नर जनरल, कौन्सिल के सदस्यो और न्यायाधीशों को व्यापार मे लगने से तथा भेंट लेने से रोका गया। पर कपनी के लिए वे यह कार्य कर सकते थे। (5) कपनी की सेवा में जो व्यक्ति विश्वासपात्रता खो देता या उसे दंडस्वरूप इंगलैंड भेज दिया जाता था और उसे सेवा में पुनः तभी लिया जा सकता था जब डाइरेक्टरो और स्वामियो के तीन चौथाई इस तरह की संस्तुति कर देते थे। (6) कंपनी के कर्मचारियों के व्यापार मे लगे न रहने वाली हानि की क्षति पूर्ति के लिए उनका वेतन तथा गवर्नर जनरल व कौंसिल सदस्यो का वेतन बढा दिया गया। (7) और अंततः ऐक्ट ने इंगलैंड के राजा के न्यायालय को अपनी प्रजा के विरुद्ध किसी अपराध को दडित करने का अधिकार दिया तथा ऐक्ट के विरुद्ध ही कोई अपराध हो तो उसे भी दंडित करने का अधिकार दिया।

रैग्युलेटिंग ऐक्ट का एक सिंहावलोकन

इस ऐक्ट के महत्त्व व गुणों पर विचार करते हुए लार्ड नार्थ ने कहा था "इसकी प्रत्येक धारा की रचना इस तरह की हुई है जिसमे कि कंपनी के कार्य का आधार ठोस, स्पष्ट और निर्भयत्रान हो जाए।" यह पहली बार था कि एक

लिखित संविधान की रचना कर भारत में ब्रिटिश अधिकार वाली कंपनी के मन-माने कानून को समाप्त किया गया। और संभवतः इस ऐक्ट की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इसने भविष्य के बननेवाले सभी संविधान रचना को संबल प्रदान किया।

इस ऐक्ट की एक अन्य महत्ता यह थी कि इस गृह सरकार में कुछ परिवर्तन प्रारंभ कर कोर्ट ऑफ प्रोपराइटर्स में व्याप्त गड़बड़ियों को समाप्त किया। मत-दाताओं की योग्यता का मापदंड बढ़ाकर उनकी संख्या काफी कम कर दी गई जिसके कारण कपनी की बिखरी शक्ति अधिक रुचि रखने वालों और अधिक अनुभवी लोगों के हाथ में आ गई। और साथ ही "ऐक्ट के द्वारा डाइरेक्टरों के लिए प्रदान लंबी अवधि और अंशकालिक नवीनीकरण ने उनमें सुरक्षा की भावना तथा नीति मे निरन्तरता उत्पन्न की।"[1] कहा जाता है कि जब डाइरेक्टर एक वर्ष के लिए ही चुने जाते थे तो वे आधार वर्ष अपने समर्थकों को एहसान जताने की कार्यवाही मे ही लगा देते थे और शेष आधा वर्ष अगले वर्ष के चुनाव के प्रचार मे लगा देते थे। डाइरेक्टरों का काम एक वर्ष से 4 वर्ष हो जाने से यह बुराई दूर हो गई।

कंपनी के ऊपर संसदीय नियंत्रण की स्थापना भी कम महत्त्वपूर्ण न थी। ऐक्ट के अंतर्गत कपनी के लिए बराबर भारतीय राजस्व संबंधी रिपोर्ट ब्रिटिश ट्रेजरी को भेजना आवश्यक हो गया। असैनिक और सैनिक कार्य संबंधी रिपोर्ट बराबर सेक्रेटरी आफ स्टेट को भेजी जाने लगी। सचमुच इसके द्वारा भारत के राजनैतिक हित के अधीन कपनी के व्यापारिक हित को रखने की दिशा में यह पहला कदम था जिसके कारण एक दिन कंपनी ही समाप्त हो गई और सारा कार्य क्राउन के हाथों चल गया।

और फिर कपनी ने अपना कार्य पूर्णरूप से व्यापारिक परिधि से प्रारंभ किया था, पर क्षेत्रों की प्राप्ति दीवानी आदि के आफिसरो को प्राप्त कर इसने अपना स्वभाव बदल लिया था। इसने राजनैतिक शक्ति प्राप्त करना प्रारंभ कर दिया जिसके लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदान चार्टर मे कोई स्थान न था। रेग्युलेटिंग ऐक्ट ने इस उलझी स्थिति को सुलझाया और कंपनी के बदले हुए स्वरूप को स्वीकार किया।

इस ऐक्ट ने कंपनी के संरक्षत्व शक्ति पर जो इसने अभी तक प्राप्त कर लिया था, बुरी तरह से बंदिश लगाई। प्रथम गवर्नर जनरल, कौंसिल के सदस्य, प्रथम मुख्य न्यायाधीश और उसके साथी इस ऐक्ट मे ही नियुक्त किये गए। भविष्य की नियुक्तियों के संबध मे कपनी को क्राउन से स्वीकृति लेनी आवश्यक कर दी गई।

---

1. पुन्निया, के० वी० : कान्स्टीच्युशनल हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० 23।

इसके बाद क्राउन ने धीरे-धीरे सहायक स्थान पर कार्य करने वाले अधिकारियो की नियुक्ति पर भी नियत्रण स्थापित करना प्रारंभ किया। अतत. भारत मे सिविल सर्विस की परपरा, जिसमें खुले तौर पर प्रतियोगिता को आधार बनाया गया, प्रारभ हुई।

गवर्नर जनरल के हाथ मे तानाशाहीपूर्ण शक्ति न एकत्रित हो जाए इसलिए इस ऐक्ट ने कालीजिएट प्रथा का प्रारभ किया। यह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण था क्योंकि यहा के युरोपीय सरकार का प्रथम प्रयास था जिसके द्वारा उसने युरोप के बाहर एव एक सभ्य देशवासियों के ऊपर शासन का उत्तरदायित्व अपने हाथ में लिया।" और आगे जो अभी तक कपनी के क्षेत्रीय अधिकार को वैयक्तिक स्वीकार किया जाता था अव इस ऐक्ट के अंतर्गत कपनी के प्रशासकीय कार्यों पर ब्रिटिश ससद का अकुश लगा दिया गया। ऐक्ट सच में "कंपनी के भारतीय क्षेत्र मे बिना क्राउन के उत्तरदायित्व सभाले अच्छी सरकार लाने का एक अच्छा प्रयास था।"[1]

ब्रिटिश संसद का इस ऐक्ट के माध्यम से भ्रष्टाचार व्यक्तिगत व्यापार की बुराइया और कपनी के कर्मचारियों द्वारा भेट लेने के प्रयास को समाप्त करने का प्रयास कम महत्त्वपूर्ण न था। गवर्नर जनरल और कौसिल जैसे उच्चाधिकारियों को भारत मे व्यक्तिगत व्यापार न करने देने को कहने तथा युरोपीय लोगों को यह निर्देश देने कि वे अपना धन 12 प्रतिशत ब्याज से अधिक पर भारतीयों को नही देंगे, निश्चित ही कंपनी कर्मचारियो से भारतीयो को शोपण से बचाने का एक प्रयास था।

ऐक्ट इसलिए भी महत्त्वपूर्ण था क्योकि इसने भारत मे प्रशासकीय मशीनरी को केन्द्रीकृत करने का प्रथम प्रयास किया जो सही दिशा में एक कदम था। कपनी ने जो विस्तृत क्षेत्र अधिकार मे लिये थे उसे सगठित करने की आवश्यकता थी। तीनों प्रेसीडेन्सियो के विरोधाभासी लाभो मे एकता भी कम महत्त्वपूर्ण न थी। ऐक्ट ने स्पष्ट रूप से कहा कि गवर्नर जनरल और उसकी कौसिल को तीनो प्रेसीडेन्सियो की भारतीय शक्ति के उनके संबध के विपय मे नियंत्रित व निर्देशित करना था। वैसे तो ऐक्ट के अतर्गत प्रेसीडेन्सियों का आयात काल मे अपने बुद्धि का प्रयोग दुर्भाग्यपूर्ण था, पर एक भोंदा प्रयास इस बात के लिए किया गया कि भारत की कंपनी के क्षेत्रों पर अधिकार प्रमुखता का प्रयास किया जाए।

पर इस ऐक्ट मे कुछ दोप भी थे जिन्होने गृह सरकार और भारत के प्रशासकीय मशीनरी दोनों मे गड़बड़ पैदा की। कंपनी के संविधान मे यह चेप्टा की गई थी कि डाइरेक्टरों के अधिकार को अधिक प्रभावी और कार्यक्षम्य बनाया जाए, परन्तु

1. शर्मा, एम० आर० : ए कान्स्टीच्युशनल हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० 25।

"जनरल कोर्ट की मतदाता की योग्यता मे परिवर्तन ने तत्कालीन स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नही किया क्योकि पदमुक्त कंपनी कर्मचारियो के कौंसिल मे अत्यधिक प्रभाव बढ जाने को रोकने के प्रशंसनीय उद्देश्य में सफलता नहीं प्राप्त हुई। दूसरी ओर कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स कमोबेश स्थायी कुलीनतंत्र मे परिवर्तित हो गया।"[1] 1246 स्टाक धारको के मत का अधिकार छीनकर ऐक्ट ने दो सिद्धान्त प्रतिपादित किए थे, प्रथम यह कि अधिक धन वाले लोग ईमानदार होते है एवं द्वितीय, यह कि कम संख्या के सदस्यों से अव्यवस्था से सुरक्षा होगी। पर व्यवहार में ये दोनो बातें गलत सिद्ध हुईं।

कंपनी के कार्यो पर संसदीय नियंत्रण भी पर्याप्त नही था। कंपनी को भारत में अपने राजस्व, नागरिक एवं सैनिक कार्यवाहियों के संबंध में रिपोर्ट देनी पडती थी। पर इगलैंड में इन रिपोर्टों की छानबीन के लिए कोई मशीनरी नही बनाई गई जिससे कंपनी के कर्मचारियो की कार्रवाई पर दृष्टि रखी जा सके।

गवर्नर जनरल को जो अधिकार सौंपे गए थे वह भी पर्याप्त नही थे। वारेन हेस्टिंग्स ने स्वयं अपनी स्थिति का विवरण देते हुए लिखा, "मेरी स्थिति सचमुच कष्टदायी और अपमानजनक है, मेरे पास ऐक्ट के कानून के अंतर्गत कोई अधिकार नही है, मेरी जगह पर काम करने वाले मेरे जैसे चरित्र वाले व्यक्ति को कोई आदर नही प्राप्त है और मुझे उस उत्तरदायित्व के लिए भी जिम्मेदारी लेनी पड़ती है जिसको मैं स्वयं नही चाहता हूं।"[2] ऐक्ट के अंतर्गत गवर्नर जनरल की कौंसिल में निर्णय बहुमत से देना था। गवर्नर जनरल को निर्णायक मत देने का अधिकार अवश्य था पर उसका प्रयोग तभी होता था जब दोनों पक्षों के मत बराबर हों। इसके कारण उसकी शक्ति और स्थिति को शून्य ही हो जाना था। वह बराबर अस्वीकृत की गई, उसकी नीतियां अस्वीकार की गईं और उसे उन नीतियो के आधार पर कार्य करना पड़ा जिसका उसने स्वयं विरोध किया। उस समय स्थिति और गंभीर हो गई जब फ्रासिस जैसे व्यक्ति इसी उद्देश्य के लिए भारत भेजे गए कि वे वहा जाकर वारेन हेस्टिंग्स की नीति का विरोध करे और अंततः उसके उत्तराधिकारी हो जाएं। बारवेल लिखता है कि "तीनो कौंसिलो ने प्रारभ से ही पूर्व निश्चित तथा पूर्व नियोजित ढंग से विरोध प्रारंभ किया।"[3] फ्रासिस व क्लेवरिंग जैसे कौंसिल सदस्यो को भारत में कंपनी कार्य का अनुभव भी नही था। पर जहां उनमें ज्ञान का अभाव था वे विचार-भेद की नीति के कारण प्रशासन के हर मसले पर हस्तक्षेप करते थे। इतना ही नही वे अपनी स्थिति का भान कराते

1. सिंह, जी॰ एन॰ : पूर्वोद्धृत, पृ॰ 21।
2. देखें, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग 5, पृ॰ 227।
3. वही, पृ॰ 225; ट्राटर, एम॰ जे॰ : वारेन हेस्टिंग्स, 1962, पृ॰ 89-117।

और प्रबल होने का प्रयास करके गवर्नर जनरल की शक्ति को कमजोर करना चाहते थे। उनके सतत विरोध के कारण वारेन हेस्टिंग्स की गवर्नर जनरल की हैसियत से स्थिति इतनी खराब हो गई कि 1776 से उसने गभीरतापूर्वक अपने पद से त्याग-पत्र देने के विषय में सोचना प्रारंभ कर दिया। उसके भाग्य ही से शीघ्र ही मान्सन और क्लेवरिंग मर गए और विरोध समाप्त हो जाने पर वारेन हेस्टिंग्स ने आराम की सांस ली।

गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल को अन्य दो प्रेसीडेन्सियों पर पूर्ण नियंत्रण भी नही दिया गया। यह प्रावधान कि आपातकाल में ये प्रेसीडेन्सियां अपने मन की कर सकती थी गवर्नर जनरल की दी हुई शक्ति को बेकार सिद्ध कर रहा था। बगाल की प्रधान सरकार को विश्वास में लिये बिना ही युद्ध की घोषणा भी हो जाती और संधि भी हो जाती थी। प्रेसीडेन्सियो द्वारा मैसूर के हैदरअली और उत्थान की ओर आगे बढ़ते मराठों से की गई शत्रुता ने प्रधान सरकार को असहायता और निराशा की स्थिति मे छोड़ दिया था। जहां मुख्य सरकार को इसके कारण आर्थिक और मानवीय हानि उठानी पडी, उसका युद्ध प्रारंभ करने वाली नीति पर कोई नियंत्रण नही रहा।

गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल मे एक ओर तथा सुप्रीम कोर्ट में दूसरी ओर संबंध परिभाषित नही था। गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल के प्रशासकीय क्षेत्र के कार्य की प्रशासकीय क्षेत्र मे सुप्रीम कोर्ट द्वारा उसकी वैधानिकता परखने की बात भी स्पष्ट नही थी। इस तरह जहां गवर्नर जनरल और कौंसिल ने स्थानीय क्षेत्र के न्यायालयों का अधिकार जमीदारो को सौपा, वहां सुप्रीम कोर्ट ने इन न्यायालयों के कार्यकर्ताओ के विरुद्ध बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिटें जारी कीं और बहुत बार तो उन्हे बंदी बनाया। 1777 मे गवर्नर जनरल और कौंसिल ने यह अधिसूचना जारी की जिसके द्वारा जमीदारों को कंपनी का कर्मचारी न घोषित करते हुए सुप्रीम कोर्ट के कार्य क्षेत्र के बाहर बताया। पर सुप्रीम कोर्ट ने इस अधि-सूचना को अस्वीकार करते हुए शेरिफ अधिकारियों को कासीजुरा के राजा को बंदी बनाने का आदेश दिया जिससे राजा को मुक्त कराने के लिए शेरिफ अधिकारियों को घेरने के लिए सरकार को सैनिकों की टुकड़ी भेजनी पड़ी। इसके बदले में सुप्रीम कोर्ट ने कंपनी के प्रतिनिधि को सुप्रीम कोर्ट की मानहानि में बंदी बना लिया।

सुप्रीम कोर्ट की शक्ति व क्षेत्र को गत्र में अनिश्चित और अपरिभाषित छोड़ा गया। इसमे स्पष्टता और संक्षिप्तता, जिसकी आवश्यकता थी, [illegible] की धाराए अपनी कार्यशैली में अस्पष्ट और अपरिभाषित थीं एवं [illegible] के स्थान पर नकारात्मक ढंग पर [illegible] हो जाते थे और उनके अनेक अर्थ [illegible]

सुप्रीम कौंसिल मे गभीर झगड़े प्रारभ हो गए।"[1] इस तरह जहा न्यायालय राजस्व के मसलों पर अपना अधिकार जताता था वहा सुप्रीम कौंसिल यह कहकर इनकार करती थी कि ऐक्ट मे इस अधिकार का समर्थन नहीं है। जहां न्यायालय ने अधिकार जताया कि यह कपनी के न्यायिक और राजस्व अधिकारियों पर मुकदमा चला सकती है वहा पर सरकार ने इसका विरोध किया। ऐक्ट में सुप्रीम कोर्ट का जो अधिकार क्षेत्र बढ़ाया गया था उसमे था "कंपनी द्वारा या कंपनी की सेवा में कोई व्यक्ति" और "सभी ब्रिटिश प्रजा।" पर इसमें यह कही नहीं बताया गया कि ब्रिटिश प्रजा मे कौन आते थे। दूसरे शब्दों मे बगाल, बिहार और उड़ीसा के लोग ब्रिटिश प्रजा थे। दूसरे अर्थ में वही लोग जो कलकत्ता में रहते थे, ब्रिटिश प्रजा थे, न कि पूरे बगाल के लोग। फिर यह भी प्रश्न था कि कपनी की सेवा में क्या-क्या चीजें आती थी? क्या जमीदार या राजस्व वाले किसान कपनी के कर्मचारी थे। ऐक्ट की अस्पष्टता ने जिसने कंपनी के सभी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर्मचारियों को तथा जो ब्रिटिश प्रजा के कर्मचारी कहलाए उन्हे न्यायालय की क्षेत्र सीमा मे सौंप दिया और इसका लाभ उठाते हुए न्यायाधीशों ने अपना अधिकार क्षेत्र विस्तृत कर लिया। दूर-दूर के क्षेत्रो के लोगो को बदी बनाया जाता और सुप्रीम कोर्ट के केन्द्र स्थल पर लाया जाना। कार्य विधीय तकनीक, अनावश्यक देरी और कठोर व अमानवीय दंड ने लोगो को आतंकित करके आकाश की ओर देखने को बाध्य कर दिया और वे अस्वागत योग्य न्यायालय की रक्षा पर अपने आपको कोसने लगे। लार्ड मैकाले ने लिखा कि यह न्यायालय "काले पानी से आया। जिसे भारतीय लोग गुप्त आतंकपूर्ण नाम से पुकारते थे। इसके न्यायाधीश उन लाखों लोगों के, जिन पर वह अपना अधिकार मानते थे, तौर-तरीको के विषय में नही जानते थे।"

यह ऐक्ट उस विधि के विषय में भी स्पष्ट नही था जो सुप्रीम कोर्ट के द्वारा प्रयुक्त किया जाना था। यह विधि वादी का होगा या प्रतिवादी का? यह विधि हिन्दू का होगा या मुसलमान का? न्यायाधीश केवल अग्रेजी विधि ही जानते थे। कारिन्दे चूंकि जनता के कार्यकलापो और परंपराओं से अपरिचित थे इसलिए न्यायालयों के निर्णय को कार्य रूप मे बदलने के लिए स्त्रियो के व्यक्तिगत पर्दे पर ध्यान नही देते थे, व्यक्तिगत पूजा-गृहो मे घुस जाते थे और अपवित्र हाथो से मूर्तिया खीची जाती थी और घर की लकड़ी और फर्नीचर के बीच फेंक दी जाती थी और इस तरह न्यायालय के निर्णय की कार्रवाई पूरी की जाती थी। न्यायालय की सपूर्ण कार्रवाई "ऐसी विधियो और भेदभावो पर आधारित थी कि वे (बगाल के लोग) इसे बिल्कुल समझ नही पाते थे।" न्यायालय के कागज-पत्र अपरिचित

1. पुन्निया : पूर्वोद्धृत, पृ० 16-21।

हाथों में रखे जाते और "इसके निर्णय अपरिचित आवाजो में सुनाए जाते थे।" लोगों को भयभीत होना ही था।[1] इसके अतिरिक्त सुप्रीम कोर्ट ने कंपनी के अन्यान्य न्यायालयों को स्वीकृति प्रदान नहीं की और लोगो के व्यक्तिगत कानन को अमान्य करते हुए उसने लोगो को "स्वतंत्रता की आयातित विधि" को मानने को बाध्य कराया।

इस ऐक्ट ने एक ओर बंगाल, बिहार और उड़ीसा क्षेत्र के कपनी के प्रबंध व राजस्व मे और दूसरी ओर फोर्ट विलियम की प्रेसीडेन्सी, असैनिक व सैनिक सरकार मे अंतर बताने का प्रयास किया। यह उसे इसलिए करना पड़ा क्योंकि कंपनी को अपने द्वारा अधिग्रहीत क्षेत्रों की कार्य-प्रणाली व कर्मचारियो के हित का ध्यान रखना ही था। पर वह उन स्थानो की शक्ति में हस्तक्षेप नही कर सकता था जो दीवानी भूमि थी और जिस पर मुगल सम्राट की सप्रभता अब भी बनी हुई थी। यही कारण था कि कपनी फोर्ट विनियम की बस्ती, अन्य फैक्ट्रियो व इसके सहायक स्थानो की अच्छी सरकार के लिए इस ऐक्ट के अतर्गत कानून बना सकती थी। इसे बंगाल, बिहार और उडीसा के पूरे प्रात पर कार्रवाई का अधिकार नहीं मिला। पर कंपनी द्वारा प्राप्त ब्रिटिश क्राउन वाले अधिकार और मुगल सम्राट द्वारा प्राप्त अधिकार मे अंतर बराबर बनाए रखना कठिन हो गया और इसी के कारण अव्यवस्था का सचार हुआ। इस तरह जहा सुप्रीम कोर्ट का ब्रिटिश प्रजा पर अपना अधिकार जताना था या उन नागरिको पर जो उसके या कंपनी द्वारा नियुक्त किए गए थे, इसे यह भी अधिकार प्रदान किया गया कि यह देखे कि कपनी अपने कर्मचारियों पर कोई अत्याचार तो नही करती है। इस तरह स्पप्ट था कि यह उन लोगो की भी शिकायतें सुन सकती थी जो इसकी सीमा के भीतर नही आते थे। इस तरह जहा ऐक्ट का कार्यक्षेत्र कंपनी की बस्तियों मे सीमित था वहां अप्रत्यक्ष रूप से इसने कंपनी की दीवानी क्षेत्रवासी ग्राम पर भी अपना जाल फैलाया।

इस ऐक्ट ने न तो "राज्य को कंपनी पर निश्चित नियंत्रण प्रदान किया, न डाइरेक्टरों को इनके कर्मचारियो पर और न ही गवर्नर जनरल को मद्रास व बम्बई पर।" 1918 के भारतीय सवैधानिक सुधार रिपोर्ट मे ही स्पप्ट रूप से यह बात कही गई। रिपोर्ट के अनुसार इस ऐक्ट ने एक "ऐसे गवर्नर जनरल की सृष्टि की जो अपनी ही कौन्सिल के समक्ष शक्तिहीन था और एक ऐसी कार्यपालिका बनाई जो सुप्रीम कोर्ट के समक्ष शक्तिहीन थी और साथ ही स्वयं शाति के उत्तरदायित्वों और देश के हित का उत्तरदायित्व भी इस पर नही आया।..."[2]

---

1. देखें, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग 5, पृ० 240-47; ट्राटर: पूर्वोद्धृत, पृ० 133-43।
2. द रिपोर्ट आफ द इण्डियन कास्टीच्युशनल रिफार्म्स, 1918, पृ० 17।

1781 में जब संसद में इस संबंध में एक संशोधन बिल प्रस्तुत किया गया उस समय बाउटन राइज ने कहा : "नागरिक अशांति छा गई, सरकार की शक्तियां आपस में संघर्षरत हो गई, और मुझे आश्चर्य नहीं होगा यदि इस तरह के परामर्श की सूचना आए कि या तो सुप्रीम कोर्ट ने आज के सरकार के सदस्यों को मौत की सजा दे दी है या आज के गवर्नर जनरल और कौंसिल ने आज के न्यायाधीशों को ब्रिटेन वापस भेज दिया है।"

पर कहा यह जाता है कि इस ऐक्ट के निर्माताओं की सीमाओं और परिस्थितियों का भी अवलोकन हमें करना चाहिए। सबसे अधिक इस ऐक्ट की आलोचना का विषय यह था कि इसकी धाराएं अस्पष्ट थीं। पर कुछ ही लोगों ने समझने का प्रयास किया है कि इस अस्पष्टता को जान-बूझकर रखा गया। कंपनी को जो शक्ति प्राप्त थी वह ब्रिटिश क्राउन और मुगलों से प्राप्त थी। स्पष्ट था कि इन परिस्थितियों में ब्रिटिश क्राउन उन्हीं अधिकारों पर अपना प्रभुत्व मान सकता था जिसे कंपनी ने दीवानी भूमि पर मुगलों के माध्यम से प्राप्त कर रखा था और जिसे वह नकारने का प्रयास कर थी। वैसे यह कदम बड़ा कठोर था। दूसरी ओर ऐक्ट के अंतर्गत मुगल प्रभुसत्ता को स्वीकार करना भी संभव नहीं था क्योंकि वह नाममात्र की रह गई थी और पतनवत् थी। स्पष्ट रूप से इस कारण ऐक्ट को इस संबंध में अस्पष्ट ही होना था अर्थात् न तो इसमें मुगल सत्ता को स्वीकार ही किया गया था और न ही अस्वीकार एवं न तो दीवानी भूमि पर अपना अधिकार ही जताया गया था और न इस संबंध में शांत बना रहा गया था।

क्राउन खुले तौर पर संपत्ति अधिकार की पवित्रता को भी नकार नहीं सकता था जिसमें अमीर लोग बड़ा आकर्षण रखते थे और जिसे संसद और इंगलैंड के लोगों ने भी मान्यता दे रखी थी। कंपनी के संपूर्ण कार्यक्षेत्र पर क्राउन का प्रभुसत्ता अधिकार क्राउन के हाथ में संरक्षण की शक्ति प्रदान कर सकता था पर इसके लिए ब्रिटिश सरकार न तो तैयार ही थी और न उसे अनुभव ही था। और फिर रेग्युलेटिंग ऐक्ट संसद द्वारा प्रयोग में लाया जाने वाला प्रथम एक्ट था। कंपनी के क्षेत्रीय अधिकार की समस्यायें अत्यधिक विस्तृत और भिन्न-भिन्न नीति की थी जिसे हजारों मील दूर रहकर संसद सदस्य नहीं समझ सकते थे। और अन्ततः संपत्ति के अधिकार के अतिरिक्त मान्तेस्क्यु द्वारा प्रतिपादित शक्ति वैमिश्रीकरण का सिद्धान्त था जो इंगलैण्ड की जनता के विचारों पर प्रभाव जमा रहा था। इन परिस्थितियों में इल्बर्ट ने ठीक ही कहा है, "ऐक्ट के दोष स्वाभाविक थे, कुछ तो आर्थिक आवश्यकताओं के कारण और कुछ संसद के समक्ष उपस्थित कठिन संवैधानिक कानूनी प्रश्न के कारण। कामन्स में बाउटन राइज ने इसके विषय में कहा, "कि ऐक्ट का उद्देश्य तो अच्छा था, पर जो तरीका इसने अपनाया वह

अधूरा था।"[1]

यहां कुछ पंक्तियों में यह बताना आवश्यक लगता है कि किस तरह इस ऐक्ट के महान दोष अन्ततः हटाये गये। यह ऐक्ट 1773 में पास किया गया, पर जब भारत में इसके आधार पर कार्रवाई प्रारम्भ हुई तो धीरे-धीरे इसके दोषों का पता चला और एक-एक करके उन्हें दूर किया गया। क्राउन की सरकार की संतोषजनक कोई मशीनरी ऐसी नहीं थी जो इस ऐक्ट पर आधारित रिपोर्ट के आधार पर निर्देश देती। इस ऐक्ट का यह दोष 1784 में पिट के इण्डिया ऐक्ट से दूर किया गया जिसमें छः कमिश्नरों का एक बोर्ड बनाकर कंपनी का नागरिक, सैनिक और राजस्व का कार्य उन्हें सौंप दिया गया।

रेग्युलेटिंग ऐक्ट ने कौन्सिल की तुलना में गवर्नर जनरल को नियंत्रण का अधिकार नहीं दिया था। यह स्पष्ट दोष 1786 में उस समय समाप्त हुआ जब लार्ड कार्नवालिस ने गवर्नर जनरल का पद तब तक लेना अस्वीकार कर दिया जब तक कि उसे उसके साथियों पर सर्वोपरि अधिकार नहीं दे दिया गया। वारेन हेस्टिंग्स के अनुभव सभी के समक्ष थे और पिट की सरकार ने इसी कारण कार्नवालिस की शर्त के अनुसार परिवर्तन करने में संकोच नहीं किया।

1784 में पिट के इण्डिया ऐक्ट द्वारा बंगाल के प्रधान सरकार की अन्य प्रेसीडेन्सियों की तुलना में उपस्थित शक्तिहीनता को समाप्त कर दिया। इस ऐक्ट की धारा के अन्तर्गत अब युद्ध, संधि या अन्य संबंधों के विषय में प्रेसीडेन्सियों को जो वे स्थानीय शक्तियों से स्थापित करती थी, गवर्नर जनरल की देखभाल और नियंत्रण को अन्तिम माना गया। साथ ही इसका प्रावधान किया गया कि अब आगे कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स प्रेसीडेन्सियों को गवर्नर जनरल और कौन्सिल के माध्यम से ही नियन्त्रित करेंगे।

1781 के संशोधन ऐक्ट के द्वारा रेग्युलेटिंग ऐक्ट की उस अस्पष्ट धारा को जिसमें प्रधान कौंसिल और सुप्रीम कोर्ट के संबंधों की व्याख्या होनी थी, उसे भी स्पष्ट करते हुए घोषित किया गया कि (1) सुप्रीम कोर्ट को राजस्व-व्यवस्था और राजस्व वसूली के क्षेत्र में अधिकार नहीं होगा और इसकी देखभाल पूर्णतया गवर्नर जनरल और कौन्सिल के हाथ में होगा और यह कि (2) गवर्नर जनरल और कौन्सिल इंग्लैण्ड के ही किसी सुप्रीम न्यायालय के अधीन रखे जायेंगे, कलकत्ता के सुप्रीम कोर्ट के अधीन नहीं। इस तरह रेग्युलेटिंग ऐक्ट के प्रधान दोषों को दूर किया गया। पर जैसा स्पष्ट है इसमें 13 वर्ष लग गये और लार्ड कार्नवालिस की नियुक्ति के समय ही जब वह गवर्नर जनरल होकर आया, रेग्युलेटिंग ऐक्ट के दोषों को नियंत्रण में लाया जा सका।

---

1. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग 5, पृ० 189-92; [illegible]

संशोधी विधान

1781 का बंगाल जुडीकेचर ऐक्ट

जैसा पहले ही बताया जा चुका है रेग्युलेटिंग ऐक्ट की कुछ धारायें अत्यधिक दुर्भाग्यपूर्ण थी। सुप्रीम कोर्ट और मुख्य सरकार के बीच संबंध खराब होने लगे, विशेषकर कासीजोरा मुकदमे को लेकर। अंततः दोनों संस्थाओं का एक साथ मिल कर रहना कठिन हो गया था। गवर्नर जनरल और कौन्सिल की ओर से ब्रिटिश क्राउन को एक प्रार्थना पत्र के माध्यम से भारत की स्थिति का चित्र पेश किया गया और यह आग्रह किया गया कि ब्रिटिश संसद इस मसले पर हस्तक्षेप करके समस्या का निदान करे जिसके परिणाम स्वरूप एक सेलेक्ट कमेटी और एक सीक्रेट कमेटी बनाकर छानबीन करने व समस्या हल का सुझाव प्रस्तुत करने को कहा गया। एडमंड बर्क की अध्यक्षता में बनी सेलेक्ट कमेटी को समस्या का अध्ययन करने और प्रधान कौन्सिल व सुप्रीम कोर्ट के बीच संबंध सुधारने के लिए संस्तुतियां करने को कहा गया। सीक्रेट कमेटी को यह कार्य सौंपा गया कि वह मैसूर के द्वितीय युद्ध की स्थिति तथा कंपनी की पूर्व में क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र की स्थिति का पता लगाये। बर्क की अध्यक्षता वाली सेलेक्ट कमेटी ने अपने 12 रिपोर्टों के माध्यम से रेग्युलेटिंग ऐक्ट की बहुत-सी कमियों की तीखी आलोचना की। इन्हीं रिपोर्टों के आधार पर रेग्युलेटिंग ऐक्ट में परिवर्तन हेतु बंगाल जुडीकेचर ऐक्ट पारित किया गया।

धारायें—बंगाल जुडीकेचर ऐक्ट ने अपने प्रस्तावना में ही राजस्व संग्रह हेतु एक सक्षम व्यवस्था, बंगाल में एक शक्तिशाली व प्रधान सरकार की स्थापना तथा भारत निवासियों के विश्वासों व परम्पराओं को आदर प्रदान करने पर बल दिया। इसी प्रस्तावना में यह भी दर्शाया गया कि कौन्सिल ने सुप्रीम कोर्ट से संघर्ष में विजय पा ली है।

गवर्नर जनरल और कौन्सिल से संबंधित प्रमुख धारायें ये थी, (1) कुछ बहुत छोटे अपवादों को छोड़कर इस संस्था को सुप्रीम कोर्ट के दायरे से बाहर कर दिया गया जिसमे इसे कार्यालयीय शक्ति के आधार पर कार्य करने को मिला। (2) इस ऐक्ट ने गवर्नर जनरल के अपील संबंधी अधिकार को मान लिया और कौन्सिल को सदर दीवानी अदालत के रूप में। और यह भी घोषित किया गया कि 5,000 पौण्ड के या इससे अधिक के असैनिक मुकदमों की अपील सदर दीवानी अदालत से कौंसिल में राजा के पास भेजी जा सकती थी। (3) इस ऐक्ट ने गवर्नर जनरल व कौन्सिल को पूरा अधिकार प्रदान किया कि वह प्रांतीय कौंसिलों व न्यायालयों के लिए कानून बनाये। पहले सुप्रीम कोर्ट ने इस तरह के कानूनों को अस्वीकार कर दिया था; पर अब गवर्नर जनरल और कौन्सिल को इस

आवश्यकता से मुक्त कर दिया गया। पर यह अवश्य तय हो गया कि इस तरह के कानून की प्रतिभा डाइरेक्टरो और इगलैण्ड के सेक्रेटरी आफ स्टेट के पास भेजी जायेंगी जिसे कौसिल मे राजा के द्वारा परिवर्तित किया या रोका जा सकता था। पर यदि दो वर्ष तक उनमें परिवर्तन न हो और उन्हे रोका न जाय तो वे कानून के रूप मे चलते रहेंगे। (4) गवर्नर जनरल और कौन्सिल को राजस्व संग्रह सवंधी सभी अपराधो के संबंध मे कार्रवाई का अधिकार दिया गया। पर इस संबध मे दिया गया दण्ड लगातार बंदी होना, अपग बनाना या मृत्यु-दंड नही हो सकता था।

सुप्रीम कोर्ट के संबंध में—इस ऐक्ट मे तय हुआ कि (1) क्षेत्रीय न्यायालयो के कर्मचारी अपने पद पर कार्य करते समय के कार्यो के लिए इसकी सीमा मे नही रहेंगे। (2) कपनी के भारतीय कर्मचारी या भारत मे युरोपीय ब्रिटिश जनता के ऊपर भू-उत्तराधिकार व माल तथा सपत्ति के उत्तराधिकार के सवध मे सुप्रीम कोर्ट मे मुकदमा नही चलाया जा सकता था। दोनो दलो के सहमत होने पर उन पर असैनिक मुकदमा चलाया जा सकता था या अतिक्रमण के सवध मे। (3) पर सुप्रीम कोर्ट को कलकत्तावासियों पर जिनमे भारतीय व ब्रिटिश दोनो सम्मिलित थे, मुकदमा देखने का अधिकार हुआ, शर्त यह थी कि मुकदमे का आधार प्रतिवादी का ही कानून हो अर्थात् मुसलमानों के लिए मुस्लिम कानून और हिन्दुओं के लिए हिन्दू कानून का प्रयोग किया जाय। (4) ऐक्ट के अतर्गत यह घोषणा की गई कि सुप्रीम कोर्ट मुकदमो का निर्णय करते समय भारतीयो के धार्मिक विचारों, सामाजिक कर्तव्यो व परंपराओ का ध्यान रखेगी। हिन्दू और मुस्लिम परिवारों के मालिको और बुजुर्गों के अधिकारों व कानूनो को आदर प्रदान किया जाना था और जाति की आवश्यकता के आधार पर किसी काम को अपराध नही माना जाना था। (5) सुप्रीम कोर्ट का राजस्व-संग्रह. सवंधी अधिकार समाप्त कर दिया गया और अब आगे कोई भी व्यक्ति मात्र किसान या जमीदार होने के कारण मुकदमे का पात्र नही वन सकता था। (6) न्यायालय को भारतीय मुकदमो मे उचित कार्यशैली राजा की स्वीकृति से अपनाने का अधिकार दिया गया।

ऐक्ट के अनुसार यह भी तय हुआ कि कंपनी अपने भारतीय कर्मचारियो के नाम, पेशे और कुछ अन्य विवरणों के लिए रजिस्टर बनायेगी। रेग्युलेटिंग ऐक्ट के अन्तर्गत बगाल में बदी कुछ लोगो को सुप्रीम कोर्ट के आदेश के अनुसार कुछ सुविधा प्रदान की गई।

बंगाल जुडीकेचर ऐक्ट की धारायें इस तरह की थी जिन्होंने प्रधान सरकार को ऊंचा सिद्ध किया। पर यह सुप्रीम कोर्ट के प्रति कोई अवमानना का भाव नही था क्योकि ऐक्ट ने यह दिखाया कि उसने कानून की सही समझ प्रस्तुत की

सुप्रीम कोर्ट जब कुछ अपने बंधनों से मुक्त हो गई तो वह भारत में सक्षम कार्य में व्यस्त हो गई।

डुण्डास का इण्डिया बिल

जैसा पहले बता आये हैं संसद ने भारतीय स्थिति की जानकारी के लिए दो समितियां बनाई थी। बंगाल जुडीकेचर ऐक्ट बर्क की अध्यक्षता में गठित सेलेक्ट कमिटी के रिपोर्ट के आधार पर पारित हुआ था। डुण्डास की अध्यक्षता में गठित सीक्रेट कमेटी ने द्वितीय मैसूर युद्ध के संबंध में अपनी राय दी और भारत में कंपनी के कर्मचारियों की दमनपूर्ण कार्यवाहियों की कटु आलोचना की। हेस्टिंग्स ने बंगाल की तत्कालीन स्थिति का चित्र खीचते हुए लिखा था "एक देश, जो लोगों के व्यक्तिगत लोभ से ग्रस्त था और प्रतिवर्ष अपने अथाह साधन से महरूम हुआ जा रहा था, उसे ब्रिटिश अत्याचार से बचाने के लिए किसी विशेष कार्रवाई की आवश्यकता थी।"[1] पर इंगलैण्ड में अधिकारी असहाय थे। 1782 में हाउस आफ कामन्स ने एक प्रस्ताव पारित कर वारेन हेस्टिंग्स के प्रशासकीय कार्रवाई की आलोचना की थी। प्रस्ताव में वारेन हेस्टिंग्स को वापस बुलाने की मांग की गई। डाइरेक्टर इस प्रस्ताव से सहमत हो गये पर हेस्टिंग्स इसलिए वापस नही बुलाया जा सका क्योंकि कपनी के मालिकों ने संसद के प्रस्ताव और डाइरेक्टरों के अधिकार दोनो की अवहेलना की। कीथ लिखता है कि 'इस तरह स्पष्ट कर दिया गया कि कपनी के डाइरेक्टर न तो अपने कर्मचारियो को नियंत्रित कर सकते थे और न राज्यों को या कपनी को, जबकि कलकत्ता के विरुद्ध होने वाली मद्रास प्रेसीडेन्सी की कार्यवाहियों ने यह सिद्ध कर दिया कि मुख्य प्रेसीडेन्सी सहायक को अपने नियंत्रण में नही रख सकती थी।"[2] स्थिति इतनी खराब हो गई कि 1783 मे कपनी ने क्राउन के पास आर्थिक सहायता के लिए निवेदन किया। फाक्स और नार्थ के सयुक्त मंत्रिमंडल ने समस्या पर विचार किया और इन्ही परिस्थितियों में एक विरोधी सदस्य डुण्डास ने संसद में इस बिल को प्रस्तुत किया।

प्रमुख धारायें—डुण्डास के बिल की प्रमुख धारायें थी, (1) राजा को यह पूर्ण अधिकार होना चाहिए कि वह कंपनी के गवर्नर जनरल सहित बड़े से बड़े कर्मचारी को वापस बुला सके। (2) कौन्सिल मे गवर्नर जनरल की शक्ति में वृद्धि होना चाहिए और इसे विशेष परिस्थितियो मे कौन्सिल के विचारो का विरोध करने के लिए निर्णायक मत प्राप्त होना चाहिए। (3) गवर्नर जनरल को सेनापति का भी अधिकार प्राप्त होना चाहिए। (4) गवर्नर जनरल और कौंसिल

1. कीथ : पूर्वोद्धृत, पृ० 95।
2. वही, पृ० 94।

की शक्ति और अधिकार में प्रेसीडेन्सी की तुलना मे वृद्धि होनी चाहिए और (5) पंचवर्षीय योजना के कारण बगाल के जिन जमीदारो को स्थान छोड़ना पड़ा था उन्हें पुनः उन्ही स्थानों पर लाया गया।

यदि डुण्डास का बिल पारित हो जाता तो स्पष्टतया भारत की स्थिति मे पर्याप्त सुधार हो जाता। पर उसके विरोध पक्ष मे होने के कारण सफलता की आशा बहुत कम थी। बिल को अस्वीकृत कर दिया गया पर स्थिति की आवश्यकता का अनुभव किया गया जिसके फलस्वरूप मत्रिमडलीय कार्रवाई शीघ्र प्रारंभ हो गई।

फाक्स का 1783 का ईस्ट इंडिया बिल

समस्या को अधिक समय तक टाला नही जा सकता था। गवर्नर जनरल की भारत में कार्रवाई नियंत्रण के बाहर हुई जा रही थी, कम्पनी के कर्मचारियो का अत्याचार पराकाष्ठा को पहुंच गया था और प्रेसीडेन्सियो को भारत की प्रधान सरकार की अध्यक्षता मे ठीक से कार्य न करने से स्थिति और गड़बड होती जा रही थी। कमेटियो की रिपोर्ट संयुक्त मन्त्रिमंडल के समक्ष थी और 20 नवम्बर 1783 को फाक्स ने कार्रवाई करते हुए संसद मे ईस्ट इंडिया बिल प्रस्तुत कर दिया।

धाराएं—ऐक्ट की धाराओं के अंतर्गत दो संस्थाओं पर कार्रवाई की गई: सात कमिश्नरो का एक बोर्ड एव नौ सहायक डाइरेक्टरो के सबार्डिनेट बोर्ड को निर्मित करने का निश्चय किया गया।

सात कमिश्नरो के बोर्ड के विषय में ऐक्ट में बताया गया कि (1) कोर्ट आफ प्रोपराइटर्स व डाइरेक्टर्स को हटाकर सात कमिश्नरों या डाइरेक्टरों के बोर्ड की स्थापना की जाए। (2) ये कमिश्नर चार वर्ष के लिए कार्यभार संभाले जब तक कि संसद के किसी सदन के संबोधन के आधार पर राजा उन्हें हटा न दे। (3) इन परिस्थितियो मे प्रारंभ मे तो ऐक्ट ही में कमिश्नरों का नाम दे दिया गया पर रिक्त स्थान सम्राट द्वारा भरा जाएगा यह तय हुआ। (4) कमिश्नरो का कार्य स्थल इंगलैंड मे रखा गया और उनकी कार्रवाई को ससद द्वारा छानबीन के योग्य बना दिया गया। (5) बोर्ड को यह सपूर्ण अधिकार प्रदान किया गया कि कपनी की सेवा मे वह जिसे चाहे नियुक्त करे या पदमुक्त करे। (6) बोर्ड को राजस्व प्रशासन और भारत मे कंपनी के क्षेत्र मे पूर्ण नियत्रण अधिकार प्रदान किया गया।

सबार्डीनेट बोर्ड के सबंध मे बिल मे बताया कि (1) इंगलैंड मे नौ सदस्यों के सबार्डीनेट डाइरेक्टरो का एक बोर्ड गठित किया जाए। (2) इस बोर्ड के सदस्य ससद द्वारा कपनी के उन स्वामियो मे से चुने जाएं जिनके पास सबसे अधिक स्टाक हो। बोर्ड मे आकस्मिक रिक्त स्थान भरने के लिए कोर्ट आफ प्रोपराइटर्स को वहा

गया। (3) बोर्ड के सदस्यों का कार्यकाल पांच वर्ष का था लेकिन संसद में उनके विरुद्ध कार्यवाही से राजा उन्हे पहले भी पद से हटा सकता था। इस बोर्ड को भारत में कपनी के व्यापारिक कारंवाई का पूर्ण कार्य दिया जाने का निश्चय किया गया।

इस बिल ने कुछ बहुत ही महत्वपूर्ण ऐसी धाराओ की भी रचना की जिसके द्वारा भारत मे कपनी के कर्मचारियों को भेंट लेने पर रोक लगाई गई। इसमें वे शर्तें और स्थितिया भी बताई गई जिनके अतर्गत भारतीय शासकों को सेना की सहायता की जाए और यह भी निर्देश दिए गए कि किस तरह कपनी के युरोपीय कर्मचारियो के अत्याचार से भारतीय जनता की रक्षा की जाए।

अस्वीकरण—ग्रान्ट रावर्टसन ने इस बिल के विषय में लिखा है कि यह "एक बडी समस्या का विस्तार में वास्तविक आधार पर राजनेता तुल्य प्रयास था।"[1] वर्क ने इसका समर्थन इसलिए किया क्योंकि इसने "एक ऐसी विधि प्रारंभ की जिससे साम्राज्य के हस्तान्तरण की प्रक्रिया लागू हुई।" क्योंकि उसने बताया कि कपनी की सरकार "एक अत्यधिक भ्रष्ट और विनाशकारी निरकुश सरकार थी जो विश्व मे कभी स्थापित हुई।" उसने कहा कि एक भी "राजा या राज्य नही है जो कपनी पर विश्वास करता हो और जिसे उसने बर्बाद न कर दिया हो।" फाक्स ने इसके विषय मे लिखा कि यह बिल "विकल्प की सतान न होकर आवश्यकता की सतान था।"

पर बिल जैसे ही संसद में प्रस्तुत हुआ इसका घोर विरोध प्रारंभ हुआ। राजा जार्ज तृतीय ने इसे विश्वासघातपूर्ण कारंवाई बताते हुए कहा कि भारत के संरक्षत्व का विस्तृत कार्य बदलकर ऐसे लोगों के हाथ सौंपा जा रहा है जो अपने भ्रष्टाचारपूर्ण कार्य के लिए भयानक रूप से बदनाम है। कंपनी के भागीदारो ने समझा कि उनके व्यक्तिगत अधिकार पर आघात किया जा रहा है। अन्य महत्त्वपूर्ण मुद्दे जिस पर आलोचना आधार पा रही थी, वह यह था कि यदि भारत का इतना अधिक सरक्षत्व बदलकर पदासीन दल द्वारा नियंत्रित बोर्ड आफ कमिश्नर्स के हाथ में सौंप दिया जाता है तो दल सदा शक्ति में बने रहने के लिए पूरी संसद को भ्रष्ट बना देगा। ग्रेनविल ने कहा कि बिल का स्पष्ट और अनिवार्य प्रभाव यह होगा कि "पांच वर्षो के लिए एक मत्री को या उसके समर्थक को संरक्षण प्रदान कर देने से चाहे वह शक्ति मे हो या न हो, यह शक्ति क्राउन के हाथो में चली जाएगी।" यह भी सोचा गया कि बोर्ड के प्रस्तावित कमिश्नर फाक्स के दल के समर्थक थे जो यह प्रमाणित करता था कि शक्ति का कैसा दुरुपयोग किया जा रहा है। लार्ड थर्लो ने इस बिल को "व्यक्तिगत सपत्ति का अत्यधिक अत्याचारपूर्ण

1. राबर्टसन, ग्राण्ट—इगलैण्ड अण्डर द हैनोवरियन्स, पृ० 299-307।

उल्लघन" कहा।

सविधान की परंपरा का उल्लघन करते हुए राजा ने घोषणा की कि जो इसके पक्ष मे मत देगा "वह उसका मित्र न रहेगा बल्कि शत्रु हो जाएगा।" इन परिस्थितियों मे लार्ड सभा ने इस बिल को अस्वीकार कर दिया, वैसे इसे हाउस आफ कामन्स ने स्वीकार कर लिया था। फाक्स ने इस परिस्थिति मे क्रुद्ध होकर 17 दिसबर को घोषणा की, "आज की रात का सत्र यह तय करे कि हम स्वतंत्र व्यक्ति है या दास; हमारी कामन्स सभा सदस्यो की सुरक्षा स्थली है या निरकुशता का अग, हम आगे अपनी आवाज को बनाए रखना चाहते हैं या गुप्त प्रभाव के सकेत पर नाचते है।"[1] पर फाक्स की दहाड़ का कोई प्रभाव नही हुआ क्योकि बिल असफल हो गया। यह कहा गया कि यह बिल अपनी धाराओं मे किसी दोष के कारण अस्वीकार नही किया गया बल्कि इसके अस्वीकरण का कारण जिससे विरोध पक्ष क्षुब्ध हो गया था और जिससे जार्ज तृतीय के हस्तक्षेप के माध्यम से इसे असफल कराने की आवश्यकता पडी, वह थी नार्थ फाक्स सयुक्त मत्रिमंडल का अलोकप्रिय होना और अपने ही समर्थको को बोर्ड का सदस्य बनाने की फाक्स की अनुत्तरदायित्वपूर्ण नीति। यह लोगो का मत था कि यदि फाक्स और नार्थ थोड़ा-सा उदार होते और बोर्ड के अन्य दलों को भी इसमें सम्मिलित किया होता तो बिल पारित हो गया होता।

1784 का पिट का इंडिया ऐक्ट

फाक्स का इंडिया बिल जिसे कामन्स मे पारित कर दिया गया था, लार्डस मे इसे एक अभूतपूर्व विरोध का सामना करना पड़ा। राजा जार्ज तृतीय ने भी इसके प्रति अपना विरोध गुप्त नही रख छोड़ा था। बिल के अस्वीकृति के बाद राजा ने फाक्स और नार्थ के मत्रिमंडल को बर्खाश्त कर दिया और युवा पिट को मत्रिमडल बनाने के लिए आमंत्रित किया। जनवरी 1784 में भारत के सबंध में एक नया बिल प्रस्तुत किया, पर चूकि कामन्स मे उसका बहुमत न था इसलिए उसे विरोध का सामना करना पडा। उसीके सस्तुति पर नये चुनाव कराने के लिए संसद को बर्खाश्त कर दिया गया। चुनाव मे पिट को प्रबल बहुमत मिला और इस तरह उसे बिल को पुनः प्रस्तुत करने और उसे पारित कराने का अवसर मिला। इस तरह से पारित इस बिल को 1784 का पिट का इंडिया ऐक्ट कहते है।

इस ऐक्ट की धाराओं को स्पष्ट रूप से समझने के लिए जिसका उद्देश्य पिट के ही अनुसार जहा फाक्स के बिल का उद्देश्य व्यक्तियो को स्थायी करना था वहां

---

1. देखें, कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 5, पृ० 196-200।

इसका उद्देश्य एक व्यवस्था को स्थायी करना था, यह आवश्यक है कि यह जाना जाए कि यह बिल किन समस्याओं को हल करना चाहता था।

सबसे गंभीर समस्या कंपनी के मालिकों द्वारा असीमित अधिकार प्राप्त करने के प्रयास की थी। रेग्युलेटिंग ऐक्ट को न तो डाइरेक्टरों के कंपनी कर्मचारियों पर नियंत्रण स्थापना में और न ही संसद को कंपनी पर अधिकार जताने में सफलता मिली थी। संसद एवं डाइरेक्टरों की सम्मिलित शक्ति के हेस्टिंग्स और हर्निवी को मई 1782 में वापस बुलाने में असफलता ने तत्कालीन बीहड़ परिस्थिति का परिचय दिया। इससे यह सिद्ध हो गया कि कंपनी के मालिक दोनों की शक्ति को चुनौती देने योग्य थे। इन्हें उस स्थान से विरक्त करना इसलिए आवश्यक था जिससे राज्य के अपनी जनता के ऊपर नियंत्रण की शक्ति को स्वीकार कराया जा सके।

यह भी असहनीय था कि भारत का गवर्नर जनरल वहां की स्थिति को अपने पक्ष में मोड़ ले। जी० एन० पिट ने लिखा है कि इन परिस्थितियों में "क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स संवैधानिक नियंत्रण के मामले में उतने ही स्वतंत्र हो गए जितने कि रोमन गणतंत्र को बर्बाद करने वाले प्रोकान्सल।"[1] युद्ध करने का अधिकार उन्होंने अपने हाथ में ले लिया और संधि व संघ बनाए जाने लगे। पर इस सबमें क्राउन का कहीं अस्तित्व नहीं था। यह कंपनी के नाम पर किया जाता था और यह सोचकर भी आश्चर्य होता था कि यह स्वयं या क्राउन सार्वभौम शक्ति था।

प्रेसीडेन्सियां गवर्नर जनरल के नियंत्रण के प्रति उत्तरदायी थीं पर वह स्वयं डाइरेक्टरों के नियंत्रण के प्रति उतना उत्तरदायी न था। वे कंपनी को खर्चीले युद्ध में फंसा देते थे और साथ ही गवर्नर जनरल या किसी अन्य उच्च अधिकारी को इस मामले में विश्वास में भी नहीं लेते थे। दो आंग्ल मैसूर युद्ध और प्रथम आंग्ल मराठा युद्ध इसके गंभीर उदाहरण थे। बहुत देर हो जाए उसके पहले ही इन घटनाओं की पुनरावृत्ति को रोकना था।

अंग्रेजी नवाबों के अवैध प्राचुर्य और समृद्धि को भी अब सहन नहीं किया जा सकता था। भारत में जहां एक ओर कंपनी के अंग्रेज कर्मचारियों एवं इन नवाबों की कार्यवाहियां इस देश की जनता के लिए हानिप्रद थीं जैसा कि बर्क ने कहा भी कि जनता के समक्ष "अंतहीन, नैराश्यपूर्ण शिकार होने वाले साथियों के नवीन उड़ान की संभावना थी तथा लगातार बर्बाद हो रहे अनवरत खाद्य के प्रति इन लोगों के प्रति भूख भी उपस्थित थी" दूसरी ओर इन नये आगे बढ़ने वालों की संसद की सीटों को खरीदने के लिए चेष्टा जिसमें वे पूर्ण समर्थ थे, ब्रिटिश संसद में निहित स्वार्थ वालों के लिए कठिनाइयों को बढ़ाने वाला था।

1. पिट, जी० एन० : पूर्वोद्धृत, पृ० 26।

पूरी संवैधानिक स्थिति ही बिगर जाए उसके पहले ही इन पर नियंत्रण आवश्यक था।

पिट ने इस बिल को प्रस्तुत करते समय ही बताया कि अमेरिका की उपनिवेश समाप्ति ने आर्थिक शोषण के क्षेत्र के रूप मे भारत की महत्ता को बढ़ा दिया। ब्रिटिशो को अमेरिका की बाजारों की क्षति पूर्ति के लिए भारत से व्यापार भी बढ़ाना था जो तभी संभव था जब भारत में सरकारी मशीनरी अधिक कार्य-क्षम्य हो तथा गृहसरकार के बेहतर नियंत्रण मे हो।

गृह विभाग के अधिकारी मानववादी दृष्टिकोण भी रखते थे। उच्च अंग्रेजी सस्कृति का विस्तार एव भारतीय जनता के नैतिक व भौतिक विकास के लिए एक कार्यक्षम्य सरकारी मशीनरी की रचना दोनों देशो के सबध को भारत के लिए वरदान सिद्ध कर सकती थी; पर कपनी की तत्कालीन सरकार जैसा बर्क ने कहा भी, "सभवत: एक अत्यधिक भ्रष्ट व विनाशात्मक अत्याचारी शासन था जो विश्व मे सभवतः ही पहले रहा हो"[1] कुछ भी नही कर सकती थी।

डुण्डास के बिल और बाद में फाक्स के बिल के प्रस्तुत होने के समय ससद के हस्तक्षेप की आवश्यकता का अनुभव किया गया। आवश्यक समस्याओं व उनके समाधान के पथ के विश्लेषण हम पहले ही कर आए है। या दूसरे शब्दो में पथ प्रदर्शन पहले ही हो चुका था और पिट को इस समस्या को चुनाव मे जीतने के बाद हाथ में लेकर बिल को प्रस्तुत करना पड़ा जो दोनो सदनो से पारित हुआ। स्टेचूट बुक में इसे अगस्त 1784 मे रखा गया।

धाराएं

जिन समस्याओं से पिट को जूझना था वह बहुत विस्तृत थी और उनका सबध भारत की प्रशासकीय मशीनरी से ही नही बल्कि कंपनी के सविधान व क्राउन द्वारा नियत्रित एक ऐसी सरकारी मशीनरी के निर्माण से था जो कंपनी को अपनी छाया में लाये। इसके लिए इसीलिए आवश्यक धाराए बनाई गई।

गृह सरकार—गृह सरकार सबधी इस ऐक्ट की धाराएं सुविधा के लिए दो भागो मे विभाजित की जा सकती है: (1) बोर्ड आफ कट्रोल के संबंध में एवं (2) कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के संबध मे।

बोर्ड आफ कंट्रोल—(1) कंपनी की कार्यवाहियो पर नियत्रण के अभाव के लिए एक उचित मशीनरी का अभाव गभीरता से अनुभव किया जा रहा था। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए इगलैड में छः कमिश्नरों का एक बोर्ड स्थापित किया गया जिसे बोर्ड आफ कट्रोल भी कहा गया। इसमें सेक्रेटरी आफ स्टेट, चान्सलर

---

1. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इडिया, भाग 5, पृ० 197-98।

आफ एक्सचेकर और प्रीवी कौसिल के चार सदस्य होने थे। इनकी नियुक्ति क्राउन को करनी थी और इनका कार्यकाल क्राउन की इच्छानुसार होना था। (2) इनका वेतन एव व्यय ससद को देना था जो भारत के राजस्व से लिया जाना था, पर इस मद में 16 हजार पौड से अधिक नही लिया जाना था (3) सेक्रेट्री आफ स्टेट को इस वोर्ड का चेयरमैन होना था और मतविभाजन के वरावर होने पर उसे निर्णायक मत प्राप्त होना था। वैठक के लिए कोरम 3 था। (4) जहा तक वोर्ड की शक्ति का प्रश्न था इसे ईस्ट इडीज में सपूर्ण राजस्व व असैनिक कार्यवाहियो व ब्रिटिशो द्वारा अधिकृत क्षेत्रो की सेना पर निरीक्षण व नियंत्रण का अधिकार दिया गया। (5) कंपनी के डाइरेक्टरो से कहा गया कि वे बोर्ड को भारत से प्राप्त होने वाले प्रत्येक प्रस्ताव, आदेश और मिनिट की प्रतिलिपि भेजें और साथ उन पत्रों की प्रतिलिपिया भी जो वे भारत से अधिकारियो को भेजते हों। (6) डाइरेक्टरों द्वारा प्रस्तावित और प्रेषित किए जाने वाले पत्रों को पहले बोर्ड द्वारा उसे स्वीकृति दिलानी पड़ती थी जो चाहे तो उसमे परिवर्तन कर सकता था या उनकी जगह पर नया पेश कर सकता था और उसे ही भारत मे भेजने के लिए वाध्य कर सकता था। पर ऐसे भी आदेशों व पत्रो को वोर्ड अस्वीकृत कर सकती थी। (7) साथ ही वोर्ड को यह भी अधिकार हुआ कि वह डाइरेक्टरों को निश्चित तरह के पत्र या आदेश भारत मे भेजने को कहे। यदि 14 दिनों के अदर डाइरेक्टर ऐसा न करे तो वोर्ड स्वयं ऐसा आदेश या पत्र तैयार करे और डाइरेक्टरो को उसे भेजने के लिए कहे। वोर्ड को यह भी अधिकार था कि वह डाइरेक्टरो की सीक्रेट कमेटी को गुप्त निर्देश भेज सके जो वे भारत भेजें और उसे यह भी अधिकार हुआ कि वह उक्त समिति से कोर्ट के किसी सदस्य को इसे न वताने को भी कहे। (8) पर वोर्ड को कंपनी के कर्मचारियो की नियुक्ति सबंधी कोई अधिकार नही दिया गया। इस तरह सरक्षत्वशक्ति पूर्णतया डाइरेक्टरो के हाथ सौप दी गई।

(9) कोर्ट आफ प्रोपराइटर्स जो कुछ काल से गभीर कष्ट का कारण बने हुए थे उनसे डाइरेक्टरो के आदेश व प्रस्ताव का, जिसकी स्वीकृति बोर्ड आफ कट्रोल द्वारा प्राप्त हुआ हो, विरोध का अधिकार छीन लिया गया।

कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स—(1) कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को उसके व्यापारिक विशेषाधिकारो सहित यथावत् वनाए रखा गया। (2) कपनी के कर्मचारियो को नियुक्ति के संबंध में डाइरेक्टरों की शक्ति यथावत् बनी रही। (3) कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स में से अधिक से अधिक तीन सदस्यों की एक सीक्रेट कमेटी बनाने का प्रस्ताव किया गया जिसे वोर्ड गुप्त आदेश भेजती थी व जिसे उन्हे अन्य सदस्यो को नही वताना था। (4) कोर्ट का व्यापारिक विशेषाधिकार तो बना रहा पर यदि इसके किसी अन्य अधिकार पर अतिक्रमण हो तो कौसिल में राजा को

अपील करने का अधिकार इसे प्रदान किया गया। (5) यह भी घोषित किया गया कि असैनिक और सैनिक केन्द्रों के घटाने या समाप्त करने का अधिकार पूर्णतया डाइरेक्टरों के नियंत्रण में बना रहेगा।

भारत की केन्द्र सरकार—भारत में केन्द्रीय सरकार के संबंध में इस ऐक्ट ने घोषणाएं की कि (1) जहां गवर्नर जनरल की कौंसिल मे पहले चार सदस्य होते थे अब उसमें गवर्नर जनरल के अतिरिक्त तीन अन्य सदस्य होने को हुए। इनमें से एक भारत का सेनापति था जो भारत में ब्रिटिश सेना से संबद्ध था। जिस तरह से कौंसिल की रचना हुई उसमे गवर्नर जनरल की शक्ति बढ़ गई क्योकि मात्र एक सदस्य को अपने पक्ष में करके अपने निर्णायक शक्ति के सहारे कोई भी कार्य कर सकता था। (2) कंपनी के बंगाल के सेनापति को अन्य प्रेसीडेन्सियों के सेनापतियो की तुलना में उच्च अधिकार प्राप्त हुए। जब कभी वह अन्य प्रेसीडेन्सियो में जाता तो वह स्थानीय सेनापति का स्थान प्राप्त करते हुए गवर्नर की कौंसिल में बैठता। वैसे स्थानीय सेनापति को भी उसमें बैठने की अनुमति मिल जाती। (3) सेण्ट्रल कमेटी में गवर्नर जनरल की कौंसिल मे उसे उसके बाद दूसरा स्थान प्राप्त था। पर गवर्नर जनरल के अस्थायी रूप में पदरिक्त होने पर उसे उत्तराधिकारी न बनाया जाकर यह पद अस्थायी रूप मे अन्य दो सदस्यों में से कौंसिल में जो वरिष्ठ होते थे उन्हें प्रदान किया जाता था।

(4) गवर्नर जनरल की कौन्सिल में नयी नियुक्तियों का अनुभव कटु व असफल होने के कारण यह तय हुआ कि अब ये सदस्य कम्पनी के ही प्रतिज्ञाबद्ध कर्मचारियो मे से नियुक्त किये जायेंगे। (5) गवर्नर जनरल की नियुक्ति हेतु क्राउन की स्वीकृति डाइरेक्टरों को लेनी पड़ती थी पर इस तरह की स्वीकृति की आवश्यकता न तो गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्यो के लिए थी और न गवर्नर और कौंसिलरो के लिए। पर क्राउन को यह अधिकार प्राप्त हुआ कि वह गवर्नर जनरल या गवर्नर जिसको चाहे वापस बुला सकता था। (6) इन अधिकारियों में से किसी को भी स्तीफा लिखित देना होता था। इस धारा की आवश्यकता इसलिए अनुभव की गई कि जिससे 1777 में हेस्टिंग्स की तरह की स्थिति उत्पन्न न हो।

(7) गवर्नर जनरल या उसकी कौन्सिल को किसी क्षेत्रीय शक्ति के विरुद्ध कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स या कम से कम कमेटी आफ सेक्रेसी की अनुमति के बिना युद्ध घोषित करने का अधिकार नही दिया गया। कौंसिल और गवर्नर जनरल की यह अधीनता इसलिए लागू की गई क्योंकि इस ऐक्ट ने यह घोषित किया कि "भारत में विजय व राज्य विस्तार की योजना हमारे राष्ट्र की इच्छा, प्रतिष्ठा और नीति के अनुकूल नही है।"

(8) इसी तरह से बंगाल के गवर्नर जनरल और कौंसिल का अन्य प्रेसीडेन्सियों पर अधिकार शक्तिशाली कर दिया गया क्योंकि उन्हें राजस्व तथा भारत में युद्ध, शांति व संधियों के मसले पर इनकी अध्यक्षता व निर्देश में काम करना होता था। पर एकाएक उपस्थित होने वाले आपातकाल में या खतरे की स्थिति में इन प्रेसीडेन्सियों को संधि का अधिकार प्राप्त हुआ पर उसकी स्वीकृति गवर्नर जनरल और कौन्सिल से उसे बाद में लेनी आवश्यक थी। (9) ये प्रेसीडेन्सियां गवर्नर जनरल और कौन्सिल की आज्ञा का उस स्थिति में उल्लंघन भी कर सकती थीं यदि उन्हें डाइरेक्टर्स से गवर्नर जनरल की गैर जानकारी में कोई आदेश प्राप्त हो जाते। ऐसी स्थिति में यह आदेश तुरन्त गवर्नर जनरल और उसकी कौन्सिल के पास भेजे जाते थे और वहां से उचित आदेश प्राप्त होते थे। (10) प्रेसीडेन्सियों को इन पत्रावलियों की प्रतियां केन्द्र को भेजनी पड़ती थी। (11) विशेष लोगों के मसले को छोड़कर कमाण्डर इन चीफ के नीचे की सैनिक सेनाओं और कौन्सिलों के नीचे की असैनिक सेवाओं में पदोन्नति का आधार वरिष्ठता को बनाया गया जिसकी सूचना डाइरेक्टरों को दी जाती थी। (12) भारत में कंपनी के सभी अधिकारों को ब्रिटिश अधिकार का नाम दिया गया।

प्रेसीडेन्सियां—प्रेसीडेन्सियों की सरकार में (1) एक गवर्नर तथा एक कौंसिल होना था। कौन्सिल में तीन सदस्य होने तय हुए। इनमें से एक-एक कंपनी का प्रत्येक प्रेसीडेन्सी का सेनापति भी होता था। (2) अन्य दो सदस्यों को कंपनी के प्रतिज्ञाबद्ध कर्मचारियों में से नामित किया जाता था। (3) गवर्नर और कौन्सिलर दोनों डाइरेक्टरों द्वारा नियुक्त किये जाते थे, पर जैसा पहले ही बताया जा चुका है, गवर्नर को राजा द्वारा वापस बुलाया या हटाया जा सकता था।

(4) जैसा हम पहले ही संकेत कर आए हैं प्रेसीडेन्सियां पूर्णतया गवर्नर जनरल और कौन्सिल के अधीन थी। उन्हें हर तरह के पत्रों की प्रतिलिपि ऊपर भेजनी पड़ती थी। आपातकाल और खतरे की स्थिति को छोड़कर वे युद्ध, शांति या समझौता केन्द्र की अनुमति के बिना नहीं कर सकते थे। डाइरेक्टरों द्वारा निर्देश प्राप्त होने पर भी उन्हें केन्द्र के निर्देश पर ही काम करना पड़ता था। (5) आज्ञा का उल्लंघन करने पर प्रेसीडेन्सी के गवर्नर को निलंबित किया जा सकता था।

कुछ सामान्य धारायें—अंग्रेज नवाबों की कार्यवाहियों पर रोक लगाने के लिए ऐक्ट में प्रावधान किया गया कि (1) यदि कंपनी का कोई अधिकारी भेंट मांगेगा या प्राप्त करेगा तो उसकी उस कार्रवाई को शोषण समझा जायेगा। (2) कंपनी के अधिकारी को इंग्लैण्ड वापसी पर शपथपूर्वक अपनी संपत्ति की

घोषणा करनी होती थी। (3) यदि कंपनी का कोई कर्मचारी न्यायालय द्वारा पद से हटा दिया जाता था तो न तो उसे वह पद ही दिया जाता और न ही कम्पनी के किसी अधिकारी के द्वारा छुड़ाया ही जाता था (4) कंपनी का कोई भी कर्मचारी स्वास्थ्य के आधार को छोड़कर यदि किसी अन्य कारण से पांच वर्ष के लिए अनुपस्थिति रहता तो उसे उसके पद पर नियुक्ति तभी मिल सकती थी, जब कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के तीन चौथाई सदस्य उसकी सस्तुति करे। (5) कोई पद देना या लेना या डाइरेक्टरो की आज्ञा का उल्लंघन अपराध माना जाता था। (6) शोषण तथा अन्य अपराधो के मुकदमे देखने के लिए प्रति सत्र एक विशेष न्यायालय की स्थापना होती थी जिसमे तीन न्यायाधीश, चार पियर और हाउस आफ कामन्स के छ. सदस्य होते थे। यह एक महत्त्वपूर्ण धारा थी पर दुर्भाग्य से 1786 मे इसमें परिवर्तन कर दिया गया। (7) युरोपीय बस्तियां और अन्य स्थानीय राज्यों मे गवर्नर जनरल एव गवर्नरो को उन लोगो को बंदी बनाने का अधिकार मिला जो उच्च पदासीन लोगों से अवैध पत्र-व्यवहार करते पाये जाय।

(8) इस ऐक्ट के एक अन्य प्राविधानानुसार ब्रिटिश सम्राट की समस्त प्रजा चाहे वह कंपनी की सेवा मे हो या न हो उन्हे इंगलैण्ड और भारत के न्यायालय के दायरे मे ले आया गया जिसके अतर्गत भारतक्षेत्र मे उनके द्वारा किए गए अपराध पर मुकदमा चल सकता था।

एक आलोचनात्मक सिंहावलोकन—पिट के इण्डिया ऐक्ट में तात्त्विक रूप से फाक्स की ही बातें थी। दोनों कपनी के, जनता के कार्यो के नियंत्रण को ब्रिटिश सरकार के हाथों मे सौंपना चाहते थे। पर पिट का इंडिया ऐक्ट फाक्स के बिल की तुलना में चालों में आगे था। पिट ने स्वयं भी कहा कि जहां उसका ऐक्ट एक स्थाई व्यवस्था के उद्देश्य में लगा है वहा फाक्स का बिल व्यक्तियो को स्थाई करने में लगा है। पिट ने कपनी को सविधान में कोई विशेष परिवर्तन नही किया और उसने कंपनी के ही हाथ मे भारतीय संरक्षत्व को बना रहने दिया। कीथ के मतानुसार पिट का इंडिया ऐक्ट "मूलतः एक मध्यममार्ग"[1] था।

(i) **द्वैध सरकार**—इस ऐक्ट की सबमे प्रमुख बात यह थी कि इसने इंग्लैण्ड में कंपनी के लिए द्वैध सरकार का प्रारभ किया। कंपनी को राजनीतिक, प्रशासकीय और व्यापारिक कार्य दो भागो मे बाट दिया गया। पूर्णतया व्यापारिक कार्यों का उत्तरदायित्व जहां डाइरेक्टरों के हाथो में था, वही कपनी के राजनैतिक कार्यों का उत्तरदायित्व बोर्ड आफ कन्ट्रोल के हाथों मे सौंप दिया गया। बोर्ड जहा क्राउन का प्रतिनिधित्व करता था वही डाइरेक्टर्स कंपनी का प्रतिनिधित्व करते थे। इसे ही लंदन में कंपनी के द्वैध सरकार के नाम से जाना गया।

---

1. कीथ : पूर्वोद्धृत, पृ० 95।

जैसा कि ऐक्ट की धाराओं से स्पष्ट था, इसके रचना करने वालों का उद्देश्य कंपनी के राजनैतिक मामलों में बोर्ड के प्रभुत्व की स्थापना था। डुण्डास ने घोषणा की थी कि "सरकार के पूर्णशक्ति के बिना बोर्ड आफ कन्ट्रोल एक नगण्य संस्था थी।" इस तरह बोर्ड के हाथों में एक प्रभावी सरकार की स्थापना की जानी थी।

बोर्ड को कंपनी के राजस्व, नागरिक और सैनिक विभाग के कार्यों का निरीक्षण, नियंत्रण और निर्देश का अधिकार प्रदान किया गया। डाइरेक्टरों के आदेश और पत्र भारत भेजने से पूर्व बोर्ड के पास सहमति के लिए भेजे जाते थे। प्रक्रिया यह थी कि भारत भेजे जाने वाले पत्र के संबंध में पहले कोर्ट के चेयरमैन और बोर्ड में आपस में पत्र-व्यवहार के द्वारा या मौखिक रूप से बातचीत होती थी। इसके बाद पत्र तैयार किया जाता था और अन्य संलग्नकों सहित बोर्ड के अध्यक्ष को भेज दिया जाता था। इस प्रक्रिया को "प्रीवियस कम्युनीकेशन" कहा जाता था। जब यह प्रेषण बोर्ड के चेयरमैन के पास पहुंचता था तो वह चाहे तो इसे स्वीकार कर सकता था या कुछ परिवर्तन कर सकता था। उसे इसमें आवश्यकतानुसार जितना आवश्यक हो परिवर्तन करने का अधिकार था। कभी-कभी तो ऐसा करने पर इस प्रेषण की रूपरेखा ही बदल जाती थी और "कभी-कभी कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की इच्छा के विलोम भी यह हो जाता था।"[1]

अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत ही बोर्ड डाइरेक्टरों से किसी विषय विशेष पर आदेश या प्रेषण बनवाने को कह सकता था। यदि डाइरेक्टर 14 दिन के अन्दर ऐसा न करते तो बोर्ड इसे स्वयं बनाकर भारत में भेजने हेतु डाइरेक्टरों को प्रेषित कर सकता था। बोर्ड डाइरेक्टरों की सीक्रेट कमेटी के पास कुछ गुप्त आदेश भी भेज सकता था और शेष सदस्यों को इसे न बताने को कह सकता था। कोर्ट आफ प्रोपराइटर्स को एकदम शक्तिहीन कर दिया गया जिसकी गिनती डाइरेक्टरों और बोर्ड के बीच कहीं नहीं रह गई थी। यदि डाइरेक्टर बोर्ड के निर्देशों के अनुसार कार्य न करते तो राजा के बेंच में परमादेश हेतु एक रिट याचिका प्रस्तुत की जा सकती थी।

यदि बोर्ड को भारत के संरक्षण हेतु कोई शक्ति न प्राप्त होती तो यह कंपनी के किसी भी महत्त्वपूर्ण कर्मचारी को वापस बुला सकती थी। यह एक ऐसा अस्त्र था जो डाइरेक्टरों को बोर्ड के पसंद के व्यक्तियों को ही नियुक्त करने के लिए बाध्य करता था।

वैसे तो भारतीय कार्यों के लिए ऐक्ट में किसी मंत्री की चर्चा नहीं थी पर बोर्ड के अध्यक्ष चूंकि ब्रिटिश केबिनेट के सदस्य होते थे इसलिए वे शासक दल के सदस्य होते थे। इससे बोर्ड का प्रेसीडेन्ट संसद का एक प्रभावशाली सदस्य हो जाता था

1. फ्लिया, पूर्वोद्धृत, पृ० 41।

और कंपनी इस तरह न तो केबिनट और न संसद का विरोध कर पाती थी। दूसरे शब्दों में डाइरेक्टर बोर्ड के पूर्ण दास हो जाते थे क्योंकि उन्हें यह भय था कि यदि वे बोर्ड के प्रेसीडेन्ट का विरोध करेंगे तो वह अपने ससदीय प्रभाव का प्रयोग कर उनके सरक्षण शक्ति को काट-छांट देगा।

बोर्ड के प्रेसीडेन्ट को अधिकार भारत के विदेशी मामलों मे और मजबूत था जबकि इस मामले में डाइरेक्टर की शक्ति एक कस्बे के मेयर से अधिक नही थी। भारत का गवर्नर जनरल भी इसीलिए डाइरेक्टरों के परामर्श की जगह बोर्ड के आदेशो के अनुसार कार्य करता था। बोर्ड चूंकि क्राउन का प्रतिनिधित्व करता था इसलिए वर्ग के मामले को लेकर प्राय: इसी की होती थी।

पर इसका यह अर्थ नही है कि बोर्ड सर्वशक्तिमान था और डाइरेक्टरो का कोई महत्त्व नही था। बोर्ड आफ कन्ट्रोल के अधिकार पर दो प्रतिबंध थे (1) डाइरेक्टरों के संसद में शक्तिशाली मित्र होते थे। (2) कैबिनेट का मिला-जुला उत्तरदायित्व। 1918 के भारतीय संवैधानिक सुधार की रिपोर्ट में सच में ही कहा गया कि यह निष्कर्ष नही निकाला जा सकता कि "बोर्ड आफ कन्ट्रोल के प्रेसीडेन्ट की महत्ता ने डाइरेक्टरों के हाथ में नियंत्रण रहने ही नही दिया। उनकी स्थिति अब भी मजबूत थी, साधारणतया पहलशक्ति अब भी उन्ही के हाथ में थी, वे अब भी ज्ञान के प्रमुख पात्र थे और वैसे तो कानूनी उत्तरदायित्व सरकार का ही होता था पर उन्हें अन्त तक प्रशासन में प्रभाव डालने का अवसर रहता था।"

भारत से संबंधित सभी मूलभूत कागजात बोर्ड के हाथ मे ही होते थे जिसके पास इसकी देखभाल के लिए बहुत बडा एक स्थायी कर्मचारियों का दल होता था। इसीलिए इनके पास समस्याओं की समझ और अनुभव अधिक होता था। अगर अन्य बात के लिए नही तो इसी बात के लिए बोर्ड और इसके अभिमत का पर्याप्त महत्त्व होता था।

हमें इस तथ्य को भी नही भूलना चाहिए कि डाइरेक्टर ही भारत सरकार और बोर्ड के बीच एक कड़ी थे। भारत से प्रेपित किये जाने वाले सारे पत्र डाइरेक्टरो के नाम होते थे औ भारत भेजे जाने वाले आदेश उनके हाथो से होकर गुजरते थे। डाइरेक्टरों के हाथ में नेतृत्व शक्ति थी। बोर्ड को स्वतंत्र रूप से कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को एक ओर छोडकर भारत से पत्र-व्यवहार का अधिकार नही था।

डाइरेक्टरो के हाथ में संरक्षण शक्ति लगभग सुरक्षित रखी गई और बोर्ड को इन अधिकारों के अतिक्रमण का सीधा अधिकार नही प्रदान किया गया। वैसे अप्रत्यक्ष रूप से यह अपना नियंत्रण स्थापित करने की चेप्टा करता था। गवर्नर जनरल कौंसिल सदस्य, गवर्नर एवं लिपिको तक अन्य कर्मचारी जो

द्वारा ही नियुक्त होते थे उन्हे वे वापस भी बुला सकते थे और पदमुक्त भी कर सकते थे। डाइरेक्टरो की संरक्षण शक्ति का परिचय इसी से प्राप्त होता है कि 1784 और 1833 के बीच डाइरेक्टरो का पचास प्रतिशत प्रस्ताव पूर्ण रूप से बोर्ड द्वारा स्वीकार किया गया।

इसके अतिरिक्त बोर्ड मुख्य रूप से भारत के राजनीतिक और विदेशी मामलों में रुचि रखता था। दैनिक प्रशासन मे बोर्ड चूंकि संशोधक शक्ति का ही कार्य करती थी इसलिए "मुख्यतया अत्यधिक प्रभाव उनके हाथ मे था जिनके हाथ से होकर अधिकतर कार्य जाता था।"[1] इस तरह यह स्पष्ट है कि दोनों संस्थाएं सह-व्यापक शक्ति रखती थी। इसने कंपनी के लिए अपने यहां एक द्वैध सरकार की रचना की।

इसकी कार्य-प्रणाली—इस द्वैध प्रथा मे, जिसकी कार्य-पद्धति से ही स्पष्ट है' कई बुराइया थी जिनमे से सबसे महत्त्वपूर्ण थी ब्रिटिश ससद की भारतीय कार्यो के संबंध में रुचि न लेना। बोर्ड का प्रेसीडेन्ट चूकि बहुमत दल के सरकार का प्रतिनिधि था इसलिए उसे संसद से तनिक भी डर नही था। उससे वार्षिक या समय-समय पर भारत के संबंध में संसद के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करने को भी नही कहा गया। इसने प्रेसीडेन्ट को लगभग अनुत्तरदायी बना दिया।

चूकि कंपनी के कार्रवाई की एक विशेषता गुप्तता थी इस कारण बोर्ड के बाहर भारत के प्रशासकीय समस्याओ की जानकारी तनिक भी नही हो पाती थी। इसलिए ससद को बोर्ड की कार्यवाहियो का ज्ञान ही नही हो पाता था और इस तरह इसका अध्यक्ष अपनी सीमा में लगभग निरकुश हो जाता था। कीथ के अनुसार बोर्ड सच में "गुमनामी की स्थिति मे पहुंच गया था।"[2] और कोई भी विरोधी सदस्य इस सबंध में रुचि ही नही लेता था।

एक सीमा तक ऐक्ट की धाराएं डाइरेक्टरों तथा बोर्ड की शक्ति का विवेचन करने में अस्पष्ट थी। प्राय: बोर्ड आफ कन्ट्रोल यह जताता कि उसे प्राप्त निर्देशन और निरीक्षण की शक्ति के अन्तर्गत कंपनी के बड़े अधिकारियो की नियुक्ति मे हस्तक्षेप का भी अधिकार है। इस सबंध मे वेलजली के समय मे मसला जब आगे बढकर न्यायालय तक पहुंच गया तो जाकर उसके माध्यम से यह तय हुआ कि बोर्ड कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स से ऊपर है।

गवर्नर जनरल और गवर्नरों को भारत से वापस बुला लेने की बोर्ड की शक्ति ने कई बार संघर्ष की स्थिति पैदा की। 1784 मे डाइरेक्टरो ने सेण्ट जार्ज की सरकार का कार्यभार ग्रहण करने के लिए हालैण्ड को भेजा। बोर्ड के प्रेसीडेन्ट

1. कीथ पूर्वोद्धृत, पृ० 98।
2. वही, पृ० 99।

डुण्डास ने इसका विरोध किया। डाइरेक्टरो के जिद से कोई काम न बना क्योकि डुण्डास ने हालैण्ड को स्पष्ट रूप से बता दिया कि यदि वह अपना कार्यभार ग्रहण करने का प्रयास करेगा तो उसे भारत भूमि पर कदम रखते ही वापस बुला लिया जायगा। डाइरेक्टरों के पास इसलिए अब इसके अतिरिक्त कोई चारा नही था कि वे उस नियुक्ति को रद्द करके डुण्डास की संस्तुति को स्वीकार कर लें। एक अन्य संघर्ष 1806 में उस समय हुआ जब भारत मे लार्ड कार्नवालिस की मृत्यु हो गई और उसके बाद अस्थायी रूप से कौंसिल के वरिष्ठ सदस्य सर जार्ज बार्लो को उत्तराधिकारी बनाया गया। संयोग से इसी समय ब्रिटिश केबिनट मे परिवर्तन हुआ और लार्ड मिन्टो बोर्ड आफ कन्ट्रोल का प्रेसीडेन्ट हो गया। प्रारंभ में तो वह राजी हो गया कि बार्लो को स्थायी कर दिया जाय, पर 10 दिन बाद उसने अपना विचार बदल दिया और डाइरेक्टरो को निर्देश दिया कि बार्लो को हटाकर अर्ल आफ लैन्डरडेल को वह स्थान दे दिया जाय। स्वाभाविक रूप से डाइरेक्टरो ने इसका विरोध किया। पर लार्ड मिन्टो ने इसका ध्यान न देते हुए बार्लो को वापस बुला लिया।

इस ऐक्ट ने सच मे बोर्ड को भारत मे महत्त्वपूर्ण नियुक्तियों तथा देश के दैनिक प्रशासन में हस्तक्षेप की लोभी भूख को बढा दिया। डाइरेक्टर नीति तय करते और नियुक्ति करते जबकि बोर्ड सदा हस्तक्षेप करता और उनकी नीति को नीचा दिखाना चाहता और अधिकारियों को वापस बुलाना चाहता।

एक डिस्पैच को भारत भेजने से पूर्व, तैयार करने की विधि भी अति बोझिल थी। लार्ड पामर्सटन ने कहा कि इसके पहले कि "सबसे महत्त्वपूर्ण विषय पर डिस्पैच भारत के लिए बाहर भेजा जाय यह कैनन रो और इंडिया हाउस के बीच (क्रमश: बोर्ड व डाइरेक्टरों का केन्द्र) चक्कर काटा करता था। एक दल उसे प्रस्तावित करता, दूसरा उसमे संशोधन करता फिर वापसी मे प्रथम दल इसमे संशोधन करता और वापस भेजता।" स्वाभाविक रूप से इसके कारण अत्यधिक देरी होती जिसके गंभीर परिणाम होते।

इन परिस्थितियों मे गवर्नर जनरल की स्थिति भी बहुत अच्छी न होती। उसे दो मालिकों की सेवा करनी पड़ती। डाइरेक्टरो द्वारा नियुक्त होने के कारण वह बोर्ड द्वारा वापस बुलाया जा सकता था। जब इन दो संगठनो मे संघर्ष होता तो गवर्नर जनरल की कार्य-पद्धति अस्त-व्यस्त हो जाती। कभी-कभी जब गवर्नर जनरल तुरन्त निर्णय चाहता और गृह क्षेत्र के अधिकारियों के विचार का पता न चल पाता तो वह अचानक कठिनाई मे पड़ जाता। इस तरह के संकट ने "एक से अधिक गवर्नर जनरलो का कार्यकाल का लज्जास्पद अन्त किया।"

दोनो संगठनों के दो भिन्न-भिन्न हित थे। जहा बोर्ड क्राउन के लिए वहां डाइरेक्टर कंपनी के लिए कार्य करते थे। उनसे हित आपस में टकराते थे और

कभी-कभी बोर्ड गवर्नर जनरल से षड्यंत्र करके शक्ति बना लेता था और जिसके फलस्वरूप डाइरेक्टर प्रतिकार के वशीभूत होकर अपनी स्थिति व शक्ति बढ़ाने के लिए गलत रास्तों का प्रयोग करते थे। इसका परिणाम यह होता कि कंपनी की अकार्यक्षमता बढ़ जाती और भारत सरकार की कभी-कभी बड़ी हानि होती। इस तरह प्रेसीडेन्ट के गर्ममिजाजी और कठोर निर्देशों के कारण भारत को तमाम महगे "फलहीन एवं आक्रामक" युद्धों में लग जाना पडता जिसमें डाइरेक्टरो की तनिक भी इच्छा न होती।

इस सबमे सबसे दुर्भाग्यपूर्ण बात यह थी कि बोर्ड की निरंकुश शक्ति बढ़ती जा रही थी जब उत्तरदायित्व शून्य हो गया था। ऐसा इसलिए था क्योंकि ब्रिटिशों ने भारतीय मसलो मे रुचि लेनी बंद कर दी थी और भारत के लोग और कंपनी प्रेसीडेन्ट के विरुद्ध सर उठाने मे अपने को बहुत कमजोर पाते थे।

सच में स्थिति इतनी चकरा देने वाली थी कि किसी को स्पष्ट रूप से यह समझ में नही आता था कि भारत सरकार की शक्ति आखिर कहां है। गवर्नर जनरल उसी स्थान पर कार्य करता था, डाइरेक्टरों को जहा नेतृत्व शक्ति प्राप्त थी, बोर्ड को निर्देशन और देखभाल की। इसीलिए यह अस्वाभाविक नही था कि 1853 मे इसका कोई उत्तर न दे सका कि भारत के संबंध में नियत्रक अधिकार किसके हाथ में हैं।

1787-88 के वर्ष मे एक अत्यधिक आकर्षित करने वाली संवैधानिक समस्या सामने आई। 1781 के ऐक्ट में प्रावधान था कि भारत के हित मे इंग्लैण्ड से भेजी जाने वाली सरकारी सेना के लिए कंपनी को एक हजार की एक रेजीमेन्ट की सेना के लिए एक वर्ष मे 2 लाख रुपये देने पड़ते थे। 1787 में चार रेजीमेंट सेना भारत भेजी गई और कंपनी से उसका व्यय देने को कहा गया। कंपनी, चूकि यह बोझ बर्दाश्त करने की स्थिति मे नही थी, हिचकिचाई जिसके फलस्वरूप उसी वर्ष एक नया ऐक्ट बनाया गया जिसके अंतर्गत बोर्ड को सेना भेजने तथा संख्यानुसार कपनी से व्यय लेने का अधिकार दिया गया। इस ऐक्ट के कारण एक अत्यन्त रुचिकर वैधानिक विवाद छिड गया। यह कहा गया कि चूकि कपनी के कार्य करने के लिए एक अच्छी और सस्ती सेना थी इसलिए क्राउन को संसद से बिना वार्षिक मत प्राप्त किये अपनी सेना थोपने का अधिकार नही था।

इस तरह स्पष्ट है कि लदन की द्वैध सरकार द्वारा उत्पन्न कठिनाइयां कभी-कभी अति गभीर रहती थी जिससे भारतीय मसले का हल कठिनाई मे पड़ जाता था। पर फिर भी इस ऐक्ट के बनाने वालो के प्रति न्याय करते हुए हमें यह नही भलना चाहिए कि उनके समक्ष यह एक विचित्र समस्या थी। कंपनी के पास भारत में राजनीतिक और व्यवसायिक दो तरह की शक्तियां थी। अंग्रेजी विधान के अनुसार जहां राजनीतिक शक्ति जनता को क्राउन के नाम से ही प्राप्त होती

थी, यहा व्यावसायिक शक्ति व संपत्ति का अधिकार उसे स्वयं प्राप्त होता था। स्पष्ट रूप से क्राउन को राजनैतिक शक्ति के निरीक्षण व नियंत्रण की शक्ति प्राप्ति के लिए हस्तक्षेप और अधिकार जताने के लिए, जो व्यावसायिक व सापत्तिक अधिकारों में मिलजुल गया था, किया गया प्रयास अस्पष्ट हो जाना निश्चित था पिट को राज्य अधिकार और व्यक्तिगत सपत्ति के पाटे के बीच काम करना पड़ता था। पर दोनो के बीच सीमा रेखा खीचना चूंकि कठिन था इसलिए उसने ऐक्ट की धाराओं को सोद्देश्य रूप से अस्पष्ट रखा।

संक्षेप में पिट की इस बात के लिए प्रशंसा करनी होगी कि उसने जहां राज्य के लिए सर्वोच्च शक्ति की प्राप्ति की वहा साथ ही उसने कंपनी के चार्टर एव संपत्ति अधिकार को भी आदरपूर्ण संस्थान दिलाया। इससे उन लोगो का मुह बद करने का अवसर मिला जो क्राउन की प्रजा द्वारा क्षेत्रीय अधिकार व प्रभुसत्ता बढ़ाने पर हिंसक विरोध कर रहे थे। अंत में हम इस ऐक्ट के संबंध मे पिट को ही उद्धृत करते हुए कह सकते हैं कि "अधिक शक्तिशाली नियंत्रण और कम से कम प्रभाव स्थापना की नीति अपनायी, इसने कंपनी की सपत्ति का अपहरण किये बिना पूर्व पर अधिकार कर लिया और इसने दोषपूर्ण सरकार की प्रकृति लाभपूर्ण पथ की ओर कर दिया जिसमे व्यक्तिगत चार्टर अधिकारों पर कोई दुष्प्रभाव न हो, यह भी देखा गया।"

अन्य विशेषताएं—(1) इस ऐक्ट की अन्य अच्छी विशेषताओं मे एक यह थी कि कंपनी पर क्राउन की अस्पष्ट प्रभुता को समाप्त कर उसका स्थान इगलैण्ड की शासक सरकार के प्रतिनिधि बोर्ड आफ कमिश्नर्स को दे दिया गया। कंपनी के नागरिक और सैनिक अधिकार की देखभाल और निर्देशन अब बोर्ड के प्रेसीडेन्ट के हाथ में सौंप दिया गया जो ब्रिटिश संसद का एक प्रभावी सदस्य होता था।

(2) कोर्ट आफ प्रोपराइटर्स का अधिकार अत्यधिक कम कर दिया गया जो कीथ के शब्दो में "1782 में कामनर्स के विरोध के प्रतिफल के रूप मे एक दंड था।"[1] वे अब किसी भी तरह, डाइरेक्टरों द्वारा निर्णीत और बोर्ड द्वारा स्वीकृत नियमों में हस्तक्षेप नही कर सकते थे। एक तरह से कंपनी की भारत सरकार को निर्देश देने का अब कोई अधिकार न रहा।

(3) गवर्नर जनरल के कार्यालय की कार्यशैली भी पूर्णतया बदल गई। हेस्टिंग के कटु अनुभवों के सन्दर्भ में कौंसिल में गवर्नर जनरल की स्थिति इसकी संख्या घटाकर मजबूत की गई।

(4) गवर्नर जनरल और कौसिल का निर्देश और नियत्रण का विरोध प्रेसीडेन्सियों के लिए करना असंभव हो गया। इन्हें पूर्णतया उनका अनुगामी बना

1. कीथ : पूर्वोद्धृत, पृ० 96।

दिया गया और ऐक्ट के 31वी धारा के अनुसार गवर्नर जनरल और कौंसिल को यह अधिकार मिल गया कि वह अपनी आज्ञा उल्लंघन के आरोप में प्रेसीडेन्सियों को निलंबित कर सकता था। गवर्नर जनरल के कार्यालय को भारत में असीमित अधिकार प्राप्त हो गया।

(5) पर यह स्पष्ट रूप से बता दिया गया कि "भारत में विजय और राज्य विस्तार की योजना राष्ट्र की नीति और प्रतिष्ठा के प्रतिकूल है।" डाइरेक्टर्स भारत में व्ययशील युद्धों से ऊब गये थे जिसके कारण कंपनी व्यावसायिक कार्यवाहिया द्वितीय स्थान पर पहुंच गई थी। इससे कंपनी के अधिकारियों के साम्राज्यवादी प्रवृत्ति पर प्रतिबंध लगने की आशा थी और उनके क्षेत्र बढ़ाने की भूख पर भी अंकुश लगने की आशा थी।

(6) इस ऐक्ट ने एक स्वागत योग्य कदम यह उठाया कि भारत में अंग्रेजो के अपराध करने पर भी दंड देने की प्रक्रिया की नीति अपनाई। इसके लिए इंग्लैण्ड में एक विशेष न्यायालय स्थापित किया गया जिसमें तीन न्यायाधीश, चार पियर और छः कामनर्स नियुक्त किये गये।

(7) एक अन्य धारा के द्वारा कंपनी के कर्मचारियों के शोषण की प्रवृत्ति पर भी प्रतिबंध लगाया गया। वे अब न तो भेंट मांग सकते थे न दे सकते थे और उनके द्वारा डाइरेक्टरों की आज्ञा उल्लंघन एक अपराध माना जाता था। स्वास्थ्य गिरने के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से किसी कर्मचारी के पांच वर्ष से अधिक अपने पद पर अनुपस्थित रहने पर उसकी पुनर्नियुक्ति कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के तीन चौथाई के बहुमत से ही संभव थी।

पर बोर्ड के लिए भारतीय राजस्व से वेतन एवं व्यय हेतु 16 हजार पौण्ड प्राप्त करना दुर्भाग्यपूर्ण था। चूंकि बोर्ड के सदस्य संसद के प्रति उत्तरदायी थे इसलिए संसद के लिए इस कार्य हेतु ब्रिटिश राजस्व से धन न लेना उचित नही था।

कौंसिल में गवर्नर जनरल की शक्ति भी ईर्ष्यापूर्ण नही थी। कौन्सिल सदस्यो की संख्या चार से घटाकर तीन करके गवर्नर जनरल की शक्ति घटाने की चेष्टा अवश्य की गई पर उसे बहुमत के मत को स्वीकार करने की बाध्यता थी। 1786 में यह मसला उस समय और गूढ़ हो गया जब लार्ड कार्नवालिस ने तब तक भारत का गवर्नर जनरल होना स्वीकार नही किया जब तक कि विशेष परिस्थिति में उसे कौंसिल के निर्णय को भी अस्वीकार करने का अधिकार भी न मिल जाय। आवश्यकता का अनुभव कर उसी वर्ष एक ऐक्ट पारित किया गया जिसके द्वारा कार्नवालिस की मांग पूरी हुई। ऐक्ट के अन्तर्गत गवर्नर जनरल और सेनापति के कार्यालय को एक व्यक्ति के हाथों सौंपने का निश्चय हुआ। इसलिए यह सच ही कहा गया है: "भारत में सरकार के लिए पिट्स इण्डिया ऐक्ट ने एक

कामकाजी सविधान तैयार किया और कार्नवालिस ने भारत में एक सवैधानिक सरकार की स्थापना की।" शक्ति के इस केन्द्रीकरण की तुलना करते हुए बर्क ने कहा कि "इसने एक स्वेच्छाचारी और निरंकुश सरकार का प्रारम्भ किया।"[1] पर हेस्टिंग्स के अनुभवों के कारण इस परिवर्तन को उचित ठहराया गया।

हेस्टिंग्स और उसकी कौन्सिल

1773 के रेग्युलेटिंग ऐक्ट ने बगाल के गवर्नर को गवर्नर जनरल बना दिया। उसकी सहायता के लिए कौन्सिल के चार सदस्य थे। इन चार में से एक बारवेल हेस्टिंग्स की पुरानी कौन्सिल से लिया गया था; जब कि अन्य तीन जनरल क्लेवरिंग, फिलिप फ्रांसिस और कर्नल मान्सन को इग्लैण्ड की लार्डनाथ सरकार द्वारा चुना गया। नये कौन्सिलरो ने भारत की नीति को क्राउन एवं ससद की नीति के अनुरूप ढाला। तीन कौन्सिल सदस्य इंगलैण्ड से अप्रैल 1774 मे चले और भारत में चन्दपाल घाट पर 19 अक्टूबर 1774 को पहुचे जहां उनका सत्रह तोपों की सलामी से स्वागत किया गया।

हेस्टिंग्स के जीवनी लेखक ट्राटर ने अपने नायक का कौन्सिल सदस्यों के संबध मे अपनी पुस्तक मे प्रकाश डालते हुए यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि ये कौन्सिल सदस्य जो इंग्लैण्ड से आये अपने नियुक्ति के समय से यह तय कर चुके थे कि "प्रेसीडेन्ट के अधिकारों की अवहेलना करते हुए उसे अपमानित करने का कोई अवसर न छोड़ा जाय, और उसका कोई काम न किया जाय।"[2] ट्राटर लिखता है कि इन तीन मे से "क्लेवरिंग, जिसे सेनापति भी बनाया गया था, एक ईमानदार व क्रोधी सैनिक था। उसने 1759 में ग्वाड़ीलूप पर आक्रमण का नेतृत्व किया था और उसके संसदीय प्रभाव ने राजा और लार्ड नार्थ को यह स्थान दिलवाने मे सहायता की थी।" "जार्ज मान्सन भारत की लड़ाइयों में समुद्र किनारे के क्षेत्र मे युद्ध किया था और 1762 मे मनीला विजय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। वह एक साधारण मस्तिष्क, अक्खड़, क्रोधी व स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति का व्यक्ति लगता था और आवश्यक आदर पाने पर किसी का काम करने को तैयार हो जाता था।" ट्राटर फ्रांसिस के चरित्र के विषय मे उसी तरह का निर्णय देते हुए निष्कर्ष निकालता है कि वैसे तो तीनों का स्वागत" उचित शिष्टाचार और आदर के साथ किया गया" पर "उन्होंने इसका उदासीन उत्तर दिया क्योंकि वे उचित और मित्रतापूर्ण भाव से काम नही करना चाहते थे।"[3]

---

1. कीथ : पूर्वोद्धृत, पृ० 99।
2. ट्राटर, एल० जे० : वारेन हेस्टिंग्स, पृ० 79-83।
3. वही।

हमें यह पता नही है कि ट्राटर की अपनी योग्यताएं और सफलताए क्या थी, पर एक ओर यह कहना कि क्लेवरिंग "संसदीय प्रभाव" रखने और "राजा तथा लार्ड नार्थ" का पक्ष प्राप्त करने में सफल था और दूसरी ओर घृणास्पद ढंग से उसे यह कहना कि वह एक "क्रोधी स्वभाव वाला सैनिक" था; और फिर मॉन्सन की उस योग्यता को बताना जिसने उसे कौसिलर बनाया तथा बाद में यह कहना कि वह "एक साधारण मस्तिष्क का व्यक्ति था...और आवश्यक आदर प्रदान करने वालो के चक्कर मे आ जाता था" यह सब इस बात का सूचक है कि वह अपनी पुस्तक के नायक के प्रति अत्यधिक पक्षपाती था और एक लेखक के रूप में हर चीज को ठीक से सोचे-विचारे बिना उसने अत्यधिक संकुचित दृष्टिकोण अपनाया है। पूरी जीवनगाथा मे ट्राटर पूर्वाग्रहपूर्ण विचारों से ग्रस्त है और अपनी घोषित विचारधारा के अनुसार अनोखे जोश के आधार पर उसे सिद्ध करने का प्रयास किया है।

अपनी पुस्तक मे ट्राटर का उद्देश्य हेस्टिंग्स के हर कार्य की प्रशंसा लगता है और उस हर चीज का विरोध जिसे किसी ने हेस्टिंग्स के विरुद्ध कहा या किया, उसे उसने विधर्मी और बदमाश कहा। ब्रिटिश संसद मे बर्क, शेरिडान, फॉक्स, पिट, नार्थ और अन्य सदस्यों ने जिन्होंने हेस्टिंग्स के विरुद्ध कौसिल सदस्यों के मत में कुछ औचित्य पाया, उन्हे इतिहास के कटघरे में खड़ा किया गया है और ट्राटर ने अपने निर्णय में तथ्यो को अपनी सुविधानुसार तोड़ा-मरोड़ा है। एक इतिहासकार मे यह भावना क्षम्य नही है।

जैसा भी हो हम अपनी ओर से कौसिल सदस्यों की तरफदारी नही कर रहे है। हेस्टिंग्स और उसके कौसिलरों के मध्य अनबन की कथा रोचक है। कौसिलर जब भारत पहुंचे तो "उनके स्वागत मे सैनिक नही खड़े किए गए" और "हेस्टिंग्स ने कौसिल चैम्बर की जगह अपने व्यक्तिगत निवास पर भेंट की।" हेस्टिंग्स के पक्ष में जो भी तर्क ट्राटर प्रस्तुत करे, पर कौसिलर इन भूलों को क्षमा करने को तैयार नही थे और इसीलिए प्रथम बैठक मे ही कौसिलरों और हेस्टिंग्स के मध्य कड़े मतभेद प्रारंभ हो गए। जब हेस्टिंग्स ने अपने भूतकालीन कार्यवाहियों का आकलन प्रारंभ किया, तो कौसिलरो ने पहला कार्य यह किया कि उन्होंने हेस्टिंग्स की रोहिला नीति की आलोचना की और यह मांग की कि वह अपने तथा लखनऊ के ब्रिटिश एजेन्ट के मध्य होने वाले पत्र-व्यवहार को उनके समक्ष प्रस्तुत करे जिसे उसने अस्वीकार कर दिया। चार कौसिलरों मे से, यह स्मरणीय है, कि बारवेल ने सदा उसका साथ दिया, पर अन्य उसके विरुद्ध रहे। इन्होंने बहुमत से यह निश्चय किया हेस्टिंग्स द्वारा नियुक्त लखनऊ के एजेन्ट मिडिल्टन को वापस बुलाकर ब्रिस्टो को भेजा जाए। बनारस में की गई हेस्टिंग्स और नवाब अवध की संधि की भर्त्सना की गई और वजीर से कहा गया कि उसने रोहिलों से सहायता

की जो धनराशि प्राप्त की है उसे तुरन्त वापस कर दे।

ट्राटर ने स्वय लिखा है[1] कि यह नही भूलना चाहिए कि नये कौसिलरों को नियुक्ति ही इस घोषित नीति के उद्देश्य से हुई थी कि "वे भारत सरकार की नीति को संसद एवं क्राउन के विचार के अनुसार मोड़ें।" हो सकता है कि उन्होंने अति उत्साह सहित कार्य किया हो जो तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल न रहा हो। पर चूंकि हेस्टिंग्स के द्वारा अपनाई जाने वाली नीति का इग्लैंड मे भी सामान्यतया विरोध हो रहा था इसलिए कौसिलर भी इसके अपवाद न रहे होंगे, यह सिद्ध हो जाता है।

कौंसिल सदस्य हेस्टिंग्स की अवध को मध्यवर्ती राज्य बनाने की नीति को भी नापसन्द करते थे। और जब नवाब वजीर शुजाउद्दौला की मृत्यु हुई तो कौसिलरो को एक अवसर मिला कि वे अवध के प्रति किए गए वादों को त्याग दें। यह बात डाइरेक्टरों के पास प्रेषित की गई जिन्होने नये नवाब आसफुद्दौला के प्रति पुराने आश्वासनों के चलते रहने का पक्ष लिया और इसी परिस्थिति मे 1775 मे एक नई सधि की गयी जिसके अंतर्गत नवाब द्वारा देय राशि को बढा दिया गया और चेतसिंह पर से नवाब के अधिकार को समाप्त कर उस पर कपनी का अधिकार कर दिया गया। चूकि यह सब विरोधी बहुमत ने किया था, इस कारण इसमें कुछ गुणों के बावजूद हेस्टिंग्स ने इसे नीची दृष्टि से देखा और इस निर्णय का विरोध किया। यह मतभेद तब और तीव्र हो गया जब हेस्टिंग्स ने गृह अधिकारियों को यह लिख दिया कि उसके विरोधियों को वापस बुला लिया जाए।

एक दूसरा विषय जो कौसिल में तीव्र वाद-विवाद का आधार बना, वह था नन्दकुमार का मुकदमा। इसमे नन्दकुमार ने हेस्टिंग्स पर आरोप लगाया कि उसने मीर जाफर की विधवा मुन्नी बेगम व रजा खां, जिसे गवर्नर जनरल ने मुकदमा चलाकर छोड़ दिया, से घूस लिया है। नंदकुमार कौंसिल के समक्ष व्यक्तिगत रूप से गवाही देना चाहता था। हेस्टिंग्स के विरोधी इसके लिए तैयार भी थे। पर जब तक नंदकुमार आए, गवर्नर जनरल स्थान छोड़कर चला गया। विरोध पक्ष ने क्लेवरिंग को अध्यक्ष बनाया, नंदकुमार की गवाही ली और हेस्टिंग्स को दोषी घोषित किया।

इस घटना ने बहुत से अन्य लोगों को भी जिन्हें गवर्नर जनरल से शिकायत थी, प्रोत्साहित किया। अनियमितता और भ्रष्टता के अनेक प्रमाण आने लगे। पूरी परिस्थिति अत्यधिक अपमानपूर्ण हो गई। इस पर हेस्टिंग्स ने नंदकुमार के विरुद्ध सुप्रीम कोट में षड्यंत्र करने का मुकदमा दायर किया। कमालुद्दीन नामक

---

1. वही, पृ० 76।

एक राजस्व किसान गवाही में पेश किया गया जिसने कहा कि नंदकुमार ने जोर जबरदस्ती करके उससे गवर्नर जनरल के विरुद्ध गवाही दिलाई। मुन्नी बेगम ने यह कह दिया कि वह पत्र उसने नही लिखा जिसके आधार पर हेस्टिंग्स का घूस लेना सिद्ध किया गया था। मुख्य न्यायाधीश इम्पे और उसके साथियों ने नंदकुमार को जालसाजी का दोषी पाया और मौत की सजा सुना दी। इम्पे हेस्टिंग्स का सहयोगी रह चुका था और उसके आलोचकों का आरोप है कि उसने न्यायालय के एक शत्रु को समाप्त करने के लिए प्रभावित किया। नंदकुमार के विरुद्ध लगाए गए आरोप भी ऐसे नही थे कि उसे मृत्युदंड दिया जाए।

कौंसिल मे हेस्टिंग्स का विरोध अब भी चलता रहा। उन्होंने बंगाल नवाब को न्याय के वे अधिकार वापस कर दिए जो हेस्टिंग्स ने छीन लिये थे। 1772 के राजस्व बंदोबस्त की आलोचना की गई और 1774 के भूराजस्व वसूली की स्थाई योजना को रोक दिया गया।

जब बम्बई के अधिकारियों ने राघोबा से सूरत की संधि की, तो एक बार ही सही, गवर्नर जनरल और कौंसिल ने एक स्वर से इसकी आलोचना की। बाद में हेस्टिंग्स ने तब अपना दृष्टिकोण बदल लिया जब उसे लगा कि बम्बई की कार्रवाई में औचित्य है, पर विरोधी बहुमत अपनी नीति पर अडिग रहा और मराठों से उसने पुरंदर की संधि की जिसे न तो हेस्टिंग्स ने पसंद किया और न बम्बई ने। इससे युद्ध चलता ही रहा।

पर हेस्टिंग्स भाग्यशाली था। मॉन्सन सितंबर 1776 मे मर गया जिससे हेस्टिंग्स को एक प्रभावी निर्णायक मत मिल गया। इसका प्रयोग करके उसने लखनऊ से ब्रिस्टो को वापस बुला लिया और मिडिल्टन को वहां पुनः नियुक्त कर दिया। अवध के प्रति पुरानी नीति फिर दुहराई गई तथा न्याय व राजस्व के क्षेत्र में पहले की योजना के अनुसार परिवर्तन किए गए।

पर इंग्लैंड में हेस्टिंग्स की स्थिति कमजोर हो गई। नार्थ हेस्टिंग्स को वापस बुलाना चाहता था और क्लेवरिंग को उसकी जगह नियुक्त करना चाहता था। मई 1776 में डाइरेक्टरों ने एक वोट के बहुमत से इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। पर कोर्ट आफ प्रोपराइटर्स ने लार्डनार्थ और डाइरेक्टरो दोनो का विरोध किया और इस कारण हेस्टिंग्स को वापस न बुलाया जा सका। नैराश्य में हेस्टिंग्स ने स्वय स्तीफा दे दिया जिसे जून 1777 मे स्वीकार कर लिया गया और क्लेवरिंग को उसका उत्तराधिकारी बना दिया गया। पर हेस्टिंग्स कार्य भार किसी को सौंपे उसके पूर्व ही क्लेवरिंग ने "कौंसिल की बैठक"···अपने ही नाम से बुलाई, गवर्नर जनरल की शपथ ली, हेस्टिंग्स को किले और शेफ की चाबी हस्तान्तरित करने को कहा, फोर्ट विलियम में सेना का नेतृत्व किया और पास-पड़ोस के लोगों को अपने आदेश के अलावा किसी का आदेश न मानने को कहा।" हेस्टिंग्स ने अपमान का

अनुभव कर स्तीफा वापस ले लिया और सेना को दूसरे आदेश प्रसारित कर दिए और नागरिक अधिकारियों को सूचना भिजवा दी कि वे क्लेवरिंग को स्वीकार न करें। उसने सुप्रीम कोर्ट को भी अपील की जिसने उसके पक्ष मे निर्णय दिया और इस तरह शत्रु पराजित हो गया।

कुछ ही समय बाद क्लेवरिंग बीमार पड़ा और 29 अगस्त 1777 में उसकी मृत्यु हो गई। इससे गवर्नर जनरल को काफी आराम हो गया और अब उसे केवल फ्रांसिस का ही विरोध झेलना रह गया। हेस्टिंग्स ने फ्रांसिस से सुलह कर लिया, उसकी कुछ मांगे मान ली जिसके बदले मे वह कौंसिल मे उसका पक्ष लेने को तैयार हो गया। पर यह सुलह नीति असफल हो गई और दोनो मे द्वन्द्व पुनः प्रारंभ होकर इस पराकाष्ठा पर पहुंच गया कि उन्होने आपस मे एक दूसरे के ऊपर गोली तक चला दी, फ्रांसिस एक गोली से घायल हो गया, और कुछ महीनों के बाद वह इंग्लैंड वापस चला गया। हेस्टिंग्स इस तरह अब मराठा युद्ध से निबटने के लिए स्वतत्र था जो एक बार पुन. प्रारंभ हो गया था और अन्य बाते भी अब वह अपनी इच्छानुसार कर सकता था।

गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल की विरोध व्यथा-कथा मे इसकी आवश्यकता नही कि हेस्टिंग्स या उसके विरोधियो की स्थिति के नैतिक आधार की तलाश की जाए। हम पहले ही उसके पर्याप्त सिद्धान्त और नीति की व्याख्या कर आए हैं और हमें कुछ और भी तब कहने का अवसर मिलेगा जब उसकी इंग्लैंड की वापसी के तथ्यों का विवेचन करेंगे। पर उसके विरोधियो के विषय में कहा जा सकता है कि वैसे तो उनके राज्य संबंधी विचारो व नीतियों में कुछ गुणो का समावेश अवश्य रहा, पर उनका व्यक्तिगत व्यवहार सचमुच उचित नही था। और यह कहना भी कठिन है कि किसने किसको उकसाया।

सुप्रीम कौंसिल एवं सुप्रीम कोर्ट

हेस्टिंग्स को रेग्युलेटिंग ऐक्ट के अंतर्गत बनी सुप्रीम कोर्ट के कारण भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सुप्रीम कोर्ट की धारा मे इसके क्षेत्र का विवरण अस्पष्ट था। उदाहरणार्थ, कंपनी के द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सेवा प्राप्त करने वाले लोग इसके क्षेत्राधिकार में आते थे। न्यायालय इसका अर्थ यह भी लगाती थी, कि जनता से कर वसूल करने वाले जमीदार भी एक तरह से कंपनी के सेवक होने के कारण न्यायालय के प्रति उत्तरदायी थे। पर गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल ने इसे सही नही माना पर सुप्रीम कोर्ट ने उनके विचारों पर ध्यान नहीं दिया। इसने राजस्व न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुननी प्रारंभ कर दी जिसका परिणाम यह हुआ कि राजस्व विभाग को अपनी नीति को कार्यान्वित करने मे देर लगने लगी और अन्य कठिनाइयां भी

सामने आनी प्रारंभ हो गईं।

सुप्रीम कोर्ट का मुख्य न्यायाधीश इम्पे हेस्टिंग्स का सहपाठी रह चुका था और दोनों ने अपने मतभेद कम करने की चेष्टा भी की। पर एक बार कलकत्ता से मुख्य न्यायाधीश की अनुपस्थिति में न्यायाधीश हाइड ने कोसीजोरा के राजा के विरुद्ध बंदी प्रत्यक्षीकरण की याचिका स्वीकार कर ली। राजा इससे बचने के लिए छिप गया। गवर्नर जनरल ने एडवोकेट जनरल से परामर्श करके राजा से कह दिया कि वह न्यायालय के क्षेत्राधिकार के समक्ष न झुके और उसने एक अधिसूचना जारी कर दी कि जमीदार न्यायालय के क्षेत्र मे नही आते। इससे न्यायालय उत्तेजित हो गया और उसने एक आदेश देकर एक अधिकारी को कुछ नाविकों के साथ भेजकर राजा की सपत्ति जब्त कर ली और उसकी मूर्ति को भी घर में प्रयोग आने वाली वस्तु की तरह बाध लिया। गवर्नर जनरल और उसकी कौसिल ने प्रतिशोध में एक सैनिक टुकड़ी भेजकर इन लोगों को कलकत्ता लाने को कहा। और न्यायालय के आदेश से बचाने के लिए अन्य जमीदारों के पक्ष में कार्यवाहियां की। न्यायालय ने सुप्रीम कौसिल के नाम भी सम्मन भेजा, पर उन्होने उसके अनुसार कोई कार्य नही किया।

अक्टूबर 1780 मे हेस्टिंग्स इम्पे से मिला और उससे उसके पद के अतिरिक्त सदर दीवानी अदालत का प्रेसीडेन्ट बनने को कहा जिसके लिए उसे वर्ष मे एक बार एक निश्चित धनराशि देने को कहा गया। मुख्य न्यायाधीश ने इसे स्वीकार कर लिया और दोनों के मध्य के झगड़े समाप्त हो गए। इसके लिए हेस्टिंग्स और इम्पे दोनों को आरोपित किया गया कि उन्होने घूस लिया और दिया है।

महाभियोग और मूल्यांकन

भारत से पदमुक्त होकर हेस्टिंग्स 13 जून 1785 को इंग्लैण्ड पहुंचा जहां उसके मित्रो और प्रशंसको ने उसका स्वागत किया। पर कुछ समय बाद ही बर्क ने घोषणा की कि वह हेस्टिंग्स के विरुद्ध कुछ अभियोग प्रस्तुत करने वाला है। बर्क को फिलिप फ्रासिस से इस संबंध में प्रोत्साहन और सहायता प्राप्त हो रही थी जो हेस्टिंग्स का शत्रु था और प्रतिशोध के लिए उतावला था। कामन्स मे हेस्टिंग्स के विरुद्ध जो पहला अभियोग लगाया गया वह यह था कि उसने असहाय और सीधे-सादे रोहिल्लों के विरुद्ध उनके विनाश की नीति अपनाई। दूसरा अभियोग यह लगाया गया कि उसने चेतसिंह के साथ बड़ा 'क्रूर' व्यवहार किया जो 39 मत के बहुमत से पारित भी हो गया। तीसरा अभियोग जो अवध की बेगमो के संबंध में था वह भी बहुमत ने मान लिया और इस तरह हेस्टिंग्स को दोषी मान लिया गया।

अब यह निश्चय हुआ कि हेस्टिंग्स के 'विरुद्ध हाउस आफ लार्ड्स' मे महाभियोग लगाया जाय और इस उद्देश्य से 20 आरोप प्रस्तुत किये गये।

13 फरवरी 1788 को मुकदमा प्रारंभ हुआ और इसके समाप्त होने में सात वर्ष लगे। हेस्टिंग्स के एक पुराने विद्यालय साथी ने जिसने इस मुकदमे का कुछ भाग देखा, लिखा—

"हेस्टिंग्स ! तुम्हारे युवा-काल से ही मैं तुमसे परिचित हू,
संकुल थे तुम संवाद—कुशलता, स्फूर्ति, दया, मानवता से,
पर वह तेरा सौजन्य, कहो विश्वास भोग्य रह गया कहां,
समझौता जो कर चुका आज दुर्दमनशील दानवता से।"[1]

लार्ड कार्नवालिस जो अब तक भारत से पदमुक्त हो चुका था उसके पक्ष मे गवाही दी। उसने अन्य स्थानो से उसके लिए समर्थन जुटाया जिसके फलस्वरूप अन्त में वह विजयी हुआ।

पर विजय हेस्टिंग्स के लिए महगी साबित हुई। 80 हजार पौण्ड जो उसने भारत में एकत्र किया था उससे 60 हजार पौण्ड उसे मुकदमे में ही लगा देना पडा। उसने सरकार से तथा कम्पनी से पेन्शन की अपील की। सरकार ने तो उसकी बात को नही सुना पर कंपनी ने 4 हजार पौण्ड की वार्षिक पेन्शन बाध दी। उसका यह प्रयास कि उसकी मृत्यु के बाद यह पेन्शन उसकी पत्नी को मिलती रहे, सफल नही हुई पर जब तक वह जीवित रहा उसने प्रसन्नता से दिन बिताये। 86 वर्ष की परिपक्व अवस्था में 22 अगस्त 1818 को उसकी मृत्यु हो गई।

भारत मे हेस्टिंग्स की सफलताए महान थी। वह बगाल का प्रथम गवर्नर जनरल था और उसने प्रशासन व विदेश नीति के प्रत्येक क्षेत्र मे वह आधार-शिला रखी जिसके आधार पर आगे चलकर भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तृत महल तैयार किया गया।

हम विस्काउन्ट मेरसे के शब्दो में निष्कर्ष रूप में उसके विषय मे यह कह सकते हैं : "हेस्टिंग्स एक विद्वान था और था एक दिवास्वप्नदर्शी जो धन का कोई मूल्य न करता हो। पर वह ऊंचे आदर्शवाला भी था और उसमें अत्यधिक दृढता व साहस था। उसकी प्रौढ़ता की आधी आयु भारत मे युद्ध व समस्याओं में ही बीती और दस वर्षो तक यहा के ब्रिटिश क्षेत्रों का वह प्रभावी शासक रहा। कुछ बातो में चाल-चलन में वह ढीला था, पर युद्ध व शांति मे उसकी निश्चित नीति थी। उसका निश्चय था कि उसके युरोपीय व भारतीय विरोधी घुटने टेकें। वह अपने सहायको को ईमानदार देखना चाहता था और इन दोनों उद्देश्यों में उसे अधिकतम सफलता मिली। यह वही था जिसने भारतीय साम्राज्य में ब्रिटिश प्रशासन और अर्थ व्यवस्था की एक-एक व्यवस्था स्थापित की।"[2]

---

1. एडवर्ड मिलियट : पूर्वोद्धृत, पृ० 63।
2. मेरसे : पूर्वोद्धृत, पृ० 20।

19

हैदर अली एवं प्रथम दो आंग्ल-मैसूर युद्ध

हैदर अली, एक साधारण जागीरदार व सैनिक अधिकारी फतेह मुहम्मद का पुत्र था, जो बुदीकोटे में 1722 मे पैदा हुआ। उसका पिता 1728 की एक लडाई में मारा गया। उस समय हैदर छ: वर्ष का था। उसके बड़े भाई शाहबाज और विधवा मा, सीरा के नवाब दरगाह कुली खां के पुत्र अब्बास कुली द्वारा उत्पीड़ित किये गये। फतेह मुहम्मद के भतीजे हैदर साहब ने, जो मैसूर सरकार में एक सैनिक अधिकारी थे, शाहबाज को सेना मे नौकरी दिलाकर बिखरते हुए परिवार को सभालने में सहायता की। अब तक उसके पिता को मरे दस वर्ष बीत चुके थे और हैदर एक अशिक्षित पर युवा व्यक्ति हो चुका था। उसने भी अपने भाई की भांति मैसूर की सैनिक सेवा में प्रवेश कर अपना जीवन प्रारंभ किया।

हैदर में साहसी व्यक्ति के गुण थे और वह तेजप्रवृत्ति का होने के साथ बौद्धिक दृष्टि से जागरूक था, और उसमे यह भी योग्यता थी कि परिस्थिति से लाभ उठाये। मैसूर का शासक चिक्का कृष्णराजा चूकि मूर्ख था इसलिए यहां का शासन दो भाई देवराज और नेजराज के हाथो मे था। उनके हाथ मे सारी शक्ति तो थी तो भी वे अपने राज्य को मराठों और निजाम के सघर्ष व भवर से नही बचा पाये। हैदर अली को 1750 मे तब अवसर प्राप्त हुआ जब मैसूर सरकार ने निजामुलमुल्क की हत्या के बाद निजाम के पद के लिए उत्तराधिकार मे नासिरजंग का समर्थन किया। छ: सौ सैनिको को लेकर हैदर अली नासिरजंग के समक्ष उपस्थित हुआ इसके अतिरिक्त भी मैसूर से सैनिक आये। उसने वहां की अव्यवस्था से लाभ उठाकर विद्रोहियों से वह सारे धन का तीन चौथाई छीन लिया जो वे हत्या किये हुए शासक का लिये हुए जा रहे थे और इस तरह वह धनी हो गया। इस धन की सहायता से उसने धीरे-धीरे शक्ति प्राप्त की और अपहरणकर्त्ताओं को पद से दूर ही नही किया बल्कि शक्ति, धोखा-धड़ी और फुसलाहट द्वारा सेना और शासक दोनो का विश्वास प्राप्त किया। उसने मैसूर राजा के नाम पर बहुत सी विजयें प्राप्त की, परन्तु अपनी जीविका के अतकाल तक उसने राजा के पद छीनने की स्वयं चेष्टा नही की

प्रथम मैसूर युद्ध (1767-69)

परिस्थितियां

प्रथम मैसूर युद्ध की परिस्थिति का अध्ययन एक रोचक विषय है। 1760 तक हैदर अली ने मैसूर में अपनी शक्ति संगठित कर ली थी जिसमें फ्रांसीसियों ने भी उसकी सहायता की थी। परिणामस्वरूप यूरोप में जब सप्तवर्षीय युद्ध के कारण दक्षिण में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के सम्बन्ध बिगड़ गये तो लैली ने हैदर अली से सेना के द्वारा अपने घिरे हुए पांडिचेरी के लिए सामान भेजने के लिए निवेदन किया। हैदर अली ने उन्हें सहायतार्थ चार हजार घुड़सवार भेजे पर इसके पूर्व कि वह आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष पर कोई प्रभाव डाल सके, मैसूर में उसके विरोधियों ने मराठों से सहायता प्राप्त करके उसके ऊपर आक्रमण कर दिया जिसके फलस्वरूप उसे भागकर बंगलौर जाना पड़ा। यह घटना 12 अगस्त 1760 में हुई और अपनी स्थिति को उसे ठीक करने में मई 1761 तक का समय लग गया। तब तक फ्रांसीसियों की स्थिति पतन की पराकाष्ठा को पहुंच गई थी।

हैदर अली के दरबार में फ्रांसीसी प्रभाव बढ़ता ही रहा। "हैदर अली फ्रांसीसियों के निकट संगठित रहने के लिए प्रसिद्ध था और कहा जाता है कि उसने उन्हें सुरक्षित ही नहीं किया बल्कि बिखरे फ्रांसीसी लोगों को भारत में एकत्रित किया।"[1]

वे अन्य कारण थे, जिन्होंने हैदर और ब्रिटिश लोगों के बीच संबंधों को खराब कर दिया, कि उसने मुहम्मद अली के कट्टर शत्रु तथा बड़े भाई महफूज खा को अपने यहां शरण दी। मुहम्मद अली ब्रिटिश संरक्षण में था और उसके साथ हैदर का कुछ क्षेत्र को लेकर झगड़ा भी था जिससे करूर, उत्तमपलैय्यम, विरुपक्षी आदि का संबंध था। उसने चादा साहब के लड़के रजा साहब को नौकरी भी दी जिसे ब्रिटिशों ने नापसन्द किया। दूसरी ओर ब्रिटिशों ने वेरनौर में सैनिक केन्द्र बनाया जो हैदर के लिए सदा के लिए एक समस्या बन गया।

1776 के प्रारंभ में हैदर अली ने मालाबार क्षेत्र पर आक्रमण कर दिया जहां पर ब्रिटिशों के कुछ मित्रों ने उनसे सहायता की अपील की। इस संबंध में बम्बई और मद्रास सरकार के बीच परामर्श हुआ, और वैसे तो उन्होंने तत्संबंध में कोई कार्रवाई करने का निश्चय न किया, पर वे हैदर अली की योजनाओं के प्रति सतर्क हो गये।

दोनों शक्तियों के मध्य विरोध सामने आये उसके पहले ही हैदर अली ने ब्रिटिशों के साहस और साधन को ध्यान में रखते हुए उनसे मैत्री करने की इच्छा

1. सिन्हा, एन० के० : हैदर अली, पृ० 62।

व्यक्त की। उसका विश्वास था कि उनकी आपसी मैत्री उनकी क्षेत्रीय महत्वाकांक्षा में सहयोग देगी। 1766 में उसने अपने प्रतिनिधि को लिखा—"मेरे पास एक बड़ी सेना है। अंग्रेजों के पास भी वैसा ही है। यदि दोनों एक हो जाएं तो मुगल और मराठे कुछ नहीं कर सकते। यदि उनकी समस्या हो तो मेरी सेनाएं सहायतार्थ पहुंच जाएंगी और यदि मेरी समस्या हो तो उनकी पहुंच जाएंगी। इसकी सूचना गवर्नर को दो और यदि उसका भी वैसा ही मत हो और कौंसिल सदस्य भी चाहते हों तो मसला तय हो जाय। यह बात पत्र-व्यवहार से नहीं हो सकती। इसलिए तुम एक अंग्रेज और सात कौंसिलरों के सील सहित एक पत्र लेकर आओ।"[1] पर चूंकि दोनों में आपसी विश्वास का अभाव था इसलिए प्रस्तावित मित्रता सफल नहीं हुई।

इसी बीच यह अफवाह फैली कि हैदर अली निजाम अली से संधि करके कर्नाटक में प्रवेश करने के फिराक में है। इससे ब्रिटिश उत्तेजित हो गये और उन्होंने निजाम अली को अपनी ओर मिलाने की योजना बनाकर उसे आश्चर्य में डालने का निश्चय किया। इसमें वे सफल हो गये और 12 नवम्बर 1766 को उनके तथा निजाम के मध्य एक संधि हो गयी जिसमे हैदर चकित रह गया। फलस्वरूप उसने पूर्ण तैयारी के साथ आक्रमण की योजना बनाई जो शीघ्र ही कार्य रूप में बदली। माधवराव पहले से ही मित्र था और मैसूर के क्षेत्र में लूटपाट मे लगा था।

पर हैदर अली निराश नहीं हुआ। वह स्वयं भूतकाल में कूटनीति का खिलाड़ी रह चुका था। उसे ज्ञात था कि इन तीनों शक्तियों की मैत्री सुविधा हेतु निकटता है जिसे उतनी ही आसानी से तोड़ा जा सकता है जितनी आसानी से इसे जोड़ा गया है। उसने निजाम को कुछ भेटें भेजीं और कुछ आपसी मित्रों के माध्यम से उनके पास पहुंचकर उसे ब्रिटिशों से अलग कर लिया। उसे माधवराव से अलग से संधि करने मे सफलता प्राप्त हुई जिसके अंतर्गत माधवराव ने 35 लाख रुपये प्राप्त कर उसके क्षेत्र पर आक्रमण करना त्याग दिया।

इस तरह ब्रिटिश एकाकी रह गये और उनकी स्थिति हास्यास्पद हो गई। अपने विश्वासहीन मित्रों का साथ छोड़ने से वे कमजोर ही नहीं हो गये बल्कि हैदर अली को निजाम का समर्थन मिल जाने से वह अत्यधिक शक्तिशाली हो गया और उन्होने मिलकर अर्काट के नवाब के क्षेत्रपर आक्रमण भी कर दिया।

युद्ध

जैसे ही हैदर और निजाम कर्नाटक में प्रविष्ट हुए, उन्होंने दूर-दूर तक क्षेत्रों

1. मिलिटरी कान्सल्टेशन्स, भाग 24, 1766, पृ० 213; सिन्हा द्वारा उद्धृत, पूर्वोद्धृत, पृ० 64।

को बर्बाद कर दिया। ब्रिटिशों की समाचार सेवा चूंकि कमजोर थी इसलिए उन्हें शत्रुओं की चाल की सूचना नहीं हो पाती थी। पर जब एकाएक उन्होंने कावेरी-पटनम पर घेरा डाल दिया तो उन्हे पता चला। उस समय मद्रास मे सर्वोच्च सेनाधिकारी कर्नल स्मिथ के पास उसके नेतृत्व में थोड़ी-सी ही सेना थी। इसीलिए कावेरीपट्नम की सहायता के लिए जाने के स्थान पर वह त्रिनोमाली इस आशा से चला गया कि त्रिचनापल्ली से वुड की सेना पहुंच जाएगी। यह सूचना मिलते ही कि स्मिथ सेना लेकर आगे बढ रहा है, हैदर अली ने उसे छिन्न-भिन्न करने के लिए चगमा में पथ में रोका जहा पर एक भयानक लड़ाई हुई। इसमे ब्रिटिशो के बीस सैनिक मारे गये और डेढ सौ घायल हुए जब कि हैदर और निजाम के 1,500 सैनिक या तो मारे गये या घायल हो गये। यह युद्ध वैसे निर्णायक नही हुआ और स्मिथ आगे बढ़ता रहा। शत्रु सेना उसके आगे बढने मे दूर-दूर से बाधा डालती रही।

योजनानुसार, वुड जिसने अभी तक संघ सेना से लड़ाई का रसास्वादन नही किया था, वह त्रिनोमाली में स्मिथ से मिला और हैदर अली और उनका मिलन नही रोक सका। यहां से ब्रिटिशो ने ऐसे अवसर की प्रतीक्षा प्रारंभ की जिससे विरोधियों से निकट से भिडा जा सके। 26 सितम्बर 1767 को संघ सेना ने बेवकूफीवश यह अवसर उन्हें प्रदान कर दिया। वह ब्रिटिश कैम्प के विरुद्ध आगे बढ आई। दोनों सेनाओ के बीच एक पहाड़ी थी जो ब्रिटिश अधिकार में थी। ब्रिटिश सेना जब वहां से निकली तो मैसूर की सेना ने सोचा कि वे पीछे हट रहे है। पर उन्हे तब आश्चर्य हुआ जब वे पहाड़ी के एक ओर से होते हुए एकाएक उनके सामने आ उपस्थित हुए। पर ब्रिटिश अपनी बेहतर स्थिति का लाभ नही उठा सके क्योकि उन्होंने वीरता नही दिखाई और हैदर बिना अधिक हानि उठाये पीछे हट गया। इसके बाद निजाम ने हैदर का साथ छोड दिया। वर्षा का मौसम प्रारंभ हो जाने के कारण हैदर अली की तरह ब्रिटिश भी अपनी छावनी मे वापस हो गये।

1767 के नवम्बर में संघर्ष तब फिर प्रारंभ हो गया जब हैदर अली ने तिरुपत्तुर, वेनयामबादी और अम्बुर पर अधिकार कर लिया। पर ये सभी स्थान ब्रिटिशों ने पुन. अपने अधिकार में कर लिये और हैदर अली बंगलौर चला गया। इसी बीच निजाम, जो हैदर अली से अलग हो गया था, अपनी पूर्व गफलतों का आकलन कर रहा था। जब उसने देखा कि ब्रिटिश मैसूर वालों को एक के बाद एक स्थान से हटाये जा रहे है तो उसने मद्रास सरकार से 22 मार्च 1768 में अलग: एक सधि कर ली जिसकी एक धारा मे था : "आसफजाह हैदर नायक को विद्रोही और अपहरणकर्त्ता मानता है और इसलिए उसकी सारी सनदें, शक्तियां और उपाधिया रद्द करता है और वापस लेता है जो उसे दी गयी थी। यही बात उसके सबंध मे दक्षिण के सूबे पर भी लागू होती है।"

निजाम से संधि के तुरन्त बाद ब्रिटिश आक्रामक हो गये। ब्रिटिश सरकार ने सेना समुद्र के रास्ते से और थल के रास्ते से भेजी और मालाबार तट पर उसके क्षेत्रों पर अधिकार करना प्रारंभ कर दिया। शीघ्र ही मंगलौर उनके अधिकार में आ गया और उन्होंने हैदर के कई बेड़ो पर भी अधिकार कर लिया। हैदर का पुत्र टीपू मंगलौर पर पुनः अधिकार करने के लिए आगे बढ़ा और हैदर ने बंगलौर में मख्दूम साहब को छोड़कर पूर्व से पश्चिम की ओर तूफान की तरह कार्य करना प्रारंभ किया। मंगलौर पर फिर से अधिकार हो गया और ब्रिटिश 11 मई को घबड़ाकर पीछे हट गये और समुद्र की ओर चले गये।

इसी बीच बंगलौर के घेरे की तैयारी करते हुए ब्रिटिशों ने दक्षिण से उनका संपर्क काटने के उद्देश्य से वुड को उस ओर भेज दिया और उसने सलेम, अतुर, नमक्कल सत्यमंगलम और कोयम्बटूर जैसे कई स्थानों पर अधिकार कर लिया। कर्नल कैम्बेल ने वेंकटगिरि और मुल्बागल पर अधिकार कर लिया।

20 जून 1768 को स्मिथ के नेतृत्व में मुख्य ब्रिटिश सेना कृष्णागिरि से आगे बढ़ी। दक्षिण के क्षेत्रों मे विजय के बाद वुड उससे मिलने आगे बढा जिससे दोनों मिलकर बंगलौर की ओर आगे बढ सकें। हैदर, जो बंगलौर पहुच चुका था, उसने आगे बढ़कर इनका मिलना रोकना चाहा पर असफल हुआ। ब्रिटिश सेना कोलार मे एकत्रित हुई और यह चेष्टा की जाने लगी कि हैदर को बंगलौर वापस न होने दिया जाय। इसी अवसर पर हैदर ने स्मिथ को संधि के लिए लिखा, पर मद्रास सरकार ने कुछ कठोर मांगें पेश की जैसे सम्पूर्ण युद्ध पर होने वाले व्यय की क्षति-पूर्ति, जिसे हैदर ने स्वीकार नहीं किया। इस तरह नैराश्य मे साहस एकत्रित कर हैदर ने लड़ाई प्रारम्भ कर दी और मुल्बागल पर अधिकार कर लिया। मैलीसन ने लिखा है कि, "कम ही लोभ और शोपण को इतना अनुबोधक दंड मिला होगा। कठिनाइयों में पागल और अप्रशिक्षित बुद्धि हावी हो गयी। मुल्बागल के वापसी के साथ सफलता का ऐसा तांता लगा कि हैदर अली विजयी हो गया।"[1] वुड मुल्बागल पुन. प्राप्ति के लिए आगे बढ़ा और एक युद्ध प्रारंभ हुआ जिसमें हैदर अली दृढ निश्चय के साथ लड़ा और ब्रिटिशों का मनतव्य विफल कर दिया। वैसे उसके 1,000 सैनिक मारे गये या घायल हुए जबकि ब्रिटिशो के मात्र 250 सैनिक।

ब्रिटिश सेनाएं कोलार वापस आ गई, जहां स्मिथ को वापस बुलाया गया और सेनापतित्व विश्वासपात्र वुड के हाथ में ही रहने दिया गया। पर मद्रास सरकार का यह निर्णय दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध हुआ। हैदर ने होसुर में वुड को बड़ी हानि पहुंचाई और अलियर में भी ऐसा ही किया। मद्रास को शिक्षा मिल गई जिसने वुड को बुलाया और स्मिथ को पुन. सेनापति के पद पर नियुक्त किया। पर जनवरी 1769

1. मैलीसन : द डिसीसिव बैटिल्स आफ इंडिया, पृ० 220-221।

में स्मिथ अपना कार्यभार ग्रहण करे, हैदर ने दक्षिण के उस प्रत्येक किले पर अधिकार कर लिया जिस पर वुड ने अधिकार किया था। इसके अतिरिक्त करूर पर भी उसने अधिकार कर लिया।

हैदर त्रिनोमाली में था जब स्मिथ ने उसका पीछा किया। पर हैदर ने एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर उसे भुलावे में ही रखा और स्मिथ ने अपना रास्ता खो दिया। इसी समय एकाएक हैदर मद्रास और स्मिथ के सेना के बीच प्रकट हुआ जब वह ऐसी स्थिति में था कि प्रेसीडेन्सी से सधि की शर्तें मनवा सके।

संधि

4 अप्रैल 1769 को सधि हुई जिसकी मुख्य धाराएं थी—(1) दोनो पक्षो ने आपस मे एक दूसरे के विजित राज्य वापस कर दिये। पर करूर और उसके आस-पास का क्षेत्र हैदर के हाथ में ही बना रहा। (2) इनमे इन दोनों पक्षों मे से किसी पर भी इनका शत्रु आक्रमण करेगा तो दोनो एक-दूसरे की सहायता करेगे। (3) कोलार का भंडार हैदर को उसकी बम्बई की पकड़ी गई जहाजो के बदले दे दिया गया।

ब्रिटिशो के पराजय के कारणों मे एक मद्रास कौसिल की बेईमानी और उद्धत दृष्टिकोण था। यह बैलो को किराये पर ले लेते थे, कुछ समय बाद इन्हे मृत घोषित कर देते थे और इनका पूरा मूल्य कपनी के खजाने से वसूल लेते थे। इससे लोग इनका सहयोग नही करते थे। फलस्वरूप पूरे युद्ध मे सेना अपर्याप्त वस्तुओं की शिकायत करती थी और कम से कम एक बार तो स्मिथ ने इस मामले पर स्तीफा तक दे देने को कहा।

कौन्सिल का उद्धत दृष्टिकोण उस समय देखने को मिला जब हैदर से समझौता हो जाने की स्थिति मे उन्होने कुछ कठोर मागें उसके समक्ष प्रस्तुत कर दी। इस तरह उसने अपने हाथ से एक ऐसा अवसर निकल जाने दिया जो उसके हाथ फिर कभी नही आया। नागरिकों से बनी कौन्सिल का मात्र उद्देश्य, वैधानिक और अवैधानिक ढंग से धन एकत्रित करना था। नागरिको से बनी कौन्सिल प्राय. सैनिक मसलो मे भी हस्तक्षेप कर देती जबकि उसे चाहिए यह था कि वह ऐसी चीजे उच्च सैनिक अधिकारियों के जिम्मे छोड देती जो युद्ध क्षेत्र में कार्य करते थे। सेना के कुछ पदो पर नियुक्ति मे इनका अप्रिय हस्तक्षेप ऐसा था कि स्मिथ को इसका विरोध करना पडा जिसके फलस्वरूप उसे सेनापति के पद से हाथ धोना पड़ा।

एक अन्य कारण, जिससे हैदर की विजय हुई, वह उसके घुड़सवारों की उत्तमता थी जिससे उसके सैनिको की गति तीव्र बनी रहती थी। हैदर ने अपनी इस उत्तमता का पूरा प्रयोग किया और उसने ब्रिटिश सुरक्षा को तीव्र आघात पहुंचाकर अपग कर दिया। हैदर की निर्भीकता, दृढता और युद्ध के सम्बन्ध मे बौद्धिक पकड़ भी

प्रशंसनीय थी। जिस तीव्रता से वह चलता था और जिस तरह से वह स्मिथ और मद्रास के बीच आकर खडा हो गया वह उसके परिपक्व सैनिक नेतृत्व को प्रदर्शित करता है। यह भी नही भूलना चाहिए कि अपनी सेना मे फ्रांसीसी सैनिकों को रख-कर उसने अपने सैनिको को यूरोपीय ढग पर प्रशिक्षित किया और अनुशासनवद्ध किया। यदि ब्रिटिशो के अतर्गत लड़ने वाले भारतीय बहादुरी का परिचय दे सकते थे तो वे ऐसा उसके साथ रहकर क्यो नही कर सकते थे। हैदर को सत्यता का भान था और उसने उन्ही के अस्त्र से उन्हें पराजित किया। शत्रु सेना को असहाय समाचार-व्यवस्था ने भी उसकी सहायता की। इसके बिना वह स्मिथ को रोककर आश्चर्य मे नही डाल सकता था और न अपने मन की शर्तें मनवा सकता था।

जैसा भी हो, डाइरेक्टर इस ब्रिटिश असफलता से आश्चर्यचकित रह गये और उन्होने इसके लिए मद्रास के गवर्नर की भर्त्सना करते हुए कहा : "भारत की अनेक शक्तियो ने हमारे नाम और अस्त्र से त्रस्त होकर बड़ी मात्रा मे हमारी सुरक्षा और धनी-मानी होने मे योगदान किया। उन्होने ही आज मद्रास के दरवाजे पर हमारे सेन्ट जार्ज फोर्ट के गवर्नर को अपने मन की संधि की शर्तें पेश कर स्वीकार ली।" "हैदर ने इस अवसर के लिए एक चित्र बनाने का आदेश दिया जिसमें गवर्नर और उसकी कौंसिल झुके हुए उसके समक्ष बैठे है। हैदर को डूप्ले की नाक पकड़े हुए दिखाया गया था जो हाथी की सूड़ की तरह दिख रहा था जिससे गिनी और पगोडा निकल रहा था। स्मिथ को संधि-पत्र हाथ मे लिये और तलवार को दो टुकड़ो मे तोडता हुआ दिखाया गया था।"[1]

वारेन हेस्टिंग्स के काल में द्वितीय मैसूर-युद्ध (1780-84)

प्रथम मैसूर युद्ध 1769 की संधि के बाद समाप्त हो गया और हैदर अली को आशा थी कि ब्रिटिशो से स्थापित इस तरह की सधि स्थायी होगी। पर ऐसा नही होना था। 1769 के तुरन्त वाद ही संबंध विगड़ने के लक्षण दिखाई पड़ने लगे और 1780 मे द्वितीय मैसूर युद्ध का प्रारम्भ हो गया जो तब तक नही समाप्त हुआ था जब तक हैदर अली स्वयं मर नही गया।

1769 की सधि की दूसरी धारा मे दिया गया था कि यदि "दोनो मे से किसी पर आक्रमण होगा तो वे अपने-अपने क्षेत्र से एक-दूसरे की सहायता करके शत्रु सेना को वाहर खदेड़ देंगे।" हैदर अली ने स्वाभाविक रूप से ही सोचा था कि ब्रिटिश इस धारा के प्रति विश्वस्त बने रहेंगे और 1770 मे जब मराठो ने उस पर आक्रमण किया तो उसने उनसे सहायता मांगी। अंग्रेज उसके 1771 तक पूर्ण-पराजयकाल तक टाल-मटोल करते रहे और जून 1772 मे मराठों द्वारा उसके

---

1. सिन्हा : पूर्वोद्धृत, पृ॰ 91, 94 ।

ऊपर आरोपित सधि को उन्होने स्वीकार कर लिया ।

हैदर अली का भ्रम तो दूर हो गया, पर उसे अब भी आशा थी कि ब्रिटिश रास्ते पर आ जायेगे और 1773 मे इसी कारण उसने उनकी मित्रता व सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया । दूसरी ओर कर्नाटक के नवाब ने जिसका राजस्व और आय-स्रोत उसके अपने हाथ मे थे, अंग्रेजो से हैदर अली को बर्बाद करने के लिए निजाम और मराठो से हाथ मिलाने का परामर्श दिया । अर्काट के नवाब के ब्रिटिशों पर दुष्प्रभाव ने हैदर को उनसे और दूर कर दिया जिसने "अग्रेजो से शक्तिशाली निकटता की आशा त्याग दी और उनसे मित्रता का बहाना बनाये रखते हुए अपनी आत्मरक्षा के लिए कही अन्यत्र सहायता की तलाश मे लग गया ।"[1]

1770 मे हैदर ने बबई के साथ एक सधि की थी जिसके अतर्गत ब्रिटिशो ने ओनोर मे एक फैक्ट्री स्थापित की और मालाबार तट पर चन्दन की लकडी और काली मिर्च खरीदने का पूर्ण अधिकार प्राप्त किया जिसके बदले मे वे आवश्यकता पडने पर हैदर को युद्ध सामग्री देने को तैयार हुए । मराठो के सघर्ष के समय हैदर ने बार-बार युद्ध सामग्री की माग की पर बम्बई के अधिकारी इस माग की पूर्ति मे असफल रहे जिसके कारण उसने फ्रासीसियो से सहायता मागी ।

एक अन्य घटना जिसने द्वितीय मैसूर युद्ध को प्रोत्साहित किया वह मार्च 1779 में माही पर ब्रिटिशों का आक्रमण था । यह स्थान मालाबार तट पर हैदर के शासन का एक अग था वैसे इस स्थान पर फ्रासीसियो का अधिकार था । हैदर अली की माही मे इसलिए रुचि थी क्योकि वह युद्ध एवं अन्य आवश्यक सामग्री यूरोप से इसी स्थान पर मगाता था । इस कारण यूरोप मे अग्रेजो और फ्रांसीसियों के बीच संघर्ष प्रारम्भ होने पर जब अंग्रेजो ने 1779 मे पाडीचेरी पर अधिकार के बाद इधर दृष्टि फेरी तो उसने उनसे ऐसा न करने का निवेदन किया । बाद मे तिस पर भी जब माही पर ब्रिटिशो ने आक्रमण किया तो हैदर ने फ्रासीसियों को इसकी सुरक्षा में सहयोग दिया । जब यह स्थान उनके अधिकार मे आ गया तो उस समय हैदर का झडा भी लहरा रहा था ।

निजाम से की गयी एक सधि के अतर्गत निजाम के एक भाई बसालत जंग जिसे एक जागीर प्राप्त थी जिसमे गुण्टूर भी सम्मिलित था, उसके मृत्यु के बाद यह स्थान ब्रिटिशो के हाथ मे जाना था । बसालत जग का फ्रासीसियो से भी संबंध था जिसे ब्रिटिश नापसन्द करते थे । उन्होने उससे गुण्टूर की माग की और अपनी नौकरी से फ्रासीसियो को निकालने को कहा । उसने उनकी मागों को मानते हुए क्षेत्र पर अधिकार के लिए सेना भेजने को कहा और अपने दरबार के फ्रासीसियो के स्थान पर नियुक्ति के लिए कर्मचारियो की माग की । पर गुण्टूर जाने वाला रास्ता

---

1. बावरिंग, लेविन बी : हैदर एण्ड टीपू सुल्तान, दिल्ली, 1969, पृ० 83-84 ।

हैदर व निजाम के क्षेत्र मे होकर था जिनमें से किसी की आज्ञा की परवाह किये बिना ब्रिटिशो ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सेना भेज दी। इससे हैदर के साथ अनबन तो बढ़ी ही, निजाम से भी दूरी बढ गई।

इसी बीच 1775 की सूरत संधि के अनुसार ब्रिटिशो ने पूना के पेशवा पद के लिए राघोवा का पक्ष लिया। इसके बाद होने वाले आंग्ल मराठा युद्ध में मराठों ने हैदर अली को ब्रिटिशों के विरुद्ध अपने पक्ष में करने की चेष्टा की। इधर हैदर ब्रिटिशो से जब विश्वस्त मित्रता नही प्राप्त कर सका तो इस अवसर को प्राप्त कर वह प्रसन्न ही हुआ। और 1780 मे उसने उनसे एक समझौता कर लिया जिसके अंतर्गत उसने मराठो को सहायता के बदले तमाम क्षेत्रीय सुविधाएं प्राप्त की। इस समझौते के बाद निजाम से भी संपर्क किया गया जो गुण्टूर के मसले को लेकर ब्रिटिशों से खिन्न था। उसकी खिन्नता तब और बढ गई जब उसे पता चला कि गुण्टूर अर्काट के नवाब को सौंप दिया गया है। इस तरह एक त्रिगुट बन गया और उनके बीच ब्रिटिशो के विरुद्ध कार्रवाई करने की एक योजना बन गई।

योजना के अंतर्गत निजाम को सीरकार्स पर, मराठों को बरार तथा उत्तरी मध्य भारत पर आक्रमण करना था। हैदर अली को दक्षिणी भारत तथा मद्रास पर अधिकार करना था। फ्रांसीसी भी सहायता कर रहे थे और इस तरह ब्रिटिशों के विरुद्ध निर्मित संघ बड़ा शक्तिशाली लग रहा था। पर संघ बनने के समय से ही अभाव दिखाई पड़ने लग गया था। हेस्टिंग्स ने निजाम को गुण्टूर वापस करके तथा कुछ भेंटे भेज करके इस संघ से अलग कर दिया, पर निजाम ने हैदर के विरुद्ध अंग्रेजो का साथ नहीं दिया।

युद्ध

हैदर अली ब्रिटिशों को पाठ सिखाने पर आमादा था। उसने 83 हजार की वृहद सेना बंगलौर मे तैयार की। अर्काट के नवाब मुहम्मद अली ने ब्रिटिशो को सतर्क भी किया, पर चूंकि ब्रिटिशों की गुप्तचर व्यवस्था कमजोर थी इसलिए उन्होंने तब तक कार्रवाई नही की जब तक कि उन्हें यह पता नही चल गया कि हैदर अली मद्रास के 9 मील के आस-पास ही गांवों को जलाकर तूफान मचाये हुए है।

28 मई 1780 को सेरिंगपट्टम से हैदर अली चला और बंगलौर से अपने सैनिकों को एकत्रित करने के बाद उसने एक के बाद दूसरे स्थान पर आक्रमण प्रारंभ किया और पोर्टोनोवो, कांजीवरम, त्रिनोमाली, चेतपुट, अर्नी, आदि पर अधिकार करते हुए 20 अगस्त को वह अर्काट पहुंच गया और उसे घेरने की तैयारी करने लगा। इसी समय मुनरो वहां पहुंचा और हैदर को घेरा उठाने को बाध्य किया। पर वह इस समय तक काफी कुछ खो चुका था और पहल शक्ति अब हैदर के हाथ में थी।

यह तय किया गया कि बैली काजीवरम की ओर चले जहा मुनरो उससे मिलेगा और वहा दोनो मिलकर शत्रु सेना से युद्ध करेंगे। बैली वेंगल पहुंचा जहां से वह पेरामबौकम की ओर चला। वहां से उसे कांजीवरम पहुंचना था। पर 6 सितम्बर को पेरामबौकम में टीपू ने उस पर आक्रमण कर दिया। मुनरो जो वहां से 15 मील दूर था, बैली से आमिलने की जगह पर फ्लेचर के नेतृत्व में एक सैनिक टुकड़ी उसके सहायतार्थ भेजी और वह काजीवरम की रक्षा के लिए रुका रहा। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण निर्णय था। फ्लेचर के आ मिलने के बाद बैली के पास अब लगभग चार हजार सेना हो गई जिसे लेकर वह और आगे बढा। पर उसके ऊपर चारो ओर से आक्रमण हुआ जिसके फलस्वरूप उसकी सेना तितर-बितर हो गई। उसने आत्म-समर्पण की तैयारी कर ली और एक सफेद रूमाल हिलाया। पर यह देखकर कि उसकी ओर से गोला-बारी नही रुकी है, हैदर की सेना और आगे बढी। फ्लेचर मार डाला गया। घायल बैली कैद कर लिया गया जबकि चार घंटे के अन्दर जब तक यह युद्ध चला उसकी सेना तहस-नहस हो गई।

पर पता नही हैदर ने मुनरो का पीछा क्यो नही किया जो चुपके से खिसक कर सुरक्षित मद्रास पहुच गया। यदि मैसूर की सेना मद्रास की ओर बढी होती तो वह इस पर अधिकार कर लेती पर उन्होंने अवसर खो दिया।

विनाश का समाचार कलकत्ता पहुंचा। "यह सौभाग्यपूर्ण ही था," बावरिंग लिखता है, "कि भारत मे ब्रिटिश हित इस समय वारेन हेस्टिंग्स के कधों पर था, और उसका स्वामीभाव का उत्साह उनके भाग्य को नियन्त्रित किए हुए था।"[1] उसने अति प्रतिष्ठा प्राप्त लगभग तीस वर्षीय सर आयर कूट को चुनकर सेना व धन सहित मद्रास भेजा और मद्रास के गवर्नर को निलबित कर दिया।

इसी बीच हैदर ने अर्काट का घेरा पुनः प्रारम्भ किया जिस पर 3 नवम्बर को उसका अधिकार हो गया। मार्च 1781 के मध्य तक हैदर ने और स्थानों पर अधिकार कर लिया और अब उसने तियागुड पर घेरा डाल दिया। कूट ने आठ हजार घुडसवारो और पैदल सेना को पुनर्संगठित कर बीस तोपो सहित युद्ध मैदान मे उतरा पर कुड्डलोर के आस-पास तक ही बना रहा क्योकि उसे वहां से वस्तुओं की पूर्ति होनी थी। कभी-कभी वह बाहर भी निकला। 16 जून को चिदम्बरम की ओर आगे बढा पर कुछ हानि उठा लेने पर उसे पोर्टोनोवो वापस लौटना पड़ा। वह आगे बढने की तैयारी कर ही रहा था जब हैदर अली पोर्टोनोवो और कुड्डलोर के बीच आ खडा हुआ। इस परिस्थिति में कूट को तुरन्त उससे लड़ाई करनी पडी जैसा न करने पर वह अपने को शक्तिशाली बनाकर उसे उसके मूल स्थान से अलग कर देता। यह युद्ध चार घंटे तक चला जिसमें ब्रिटिशों के 500 सैनिक

1. बावरिंग, लेविन बी.: पूर्वोद्धृत, पृ० 93।

घायल हुए या मारे गये जबकि हैदर के 3,000 सैनिक मारे गये और उसे वापस होना पड़ा। इस विजय ने युद्ध को एक *नया स्वरूप प्रदान किया और ब्रिटिश* प्रतिष्ठा पुन. स्थापित हुई।

पर हैदर अली पूर्णरूप से पराजित नही किया जा सका। वह पीछे हटा जहां अर्काट में उससे टीपू मिला जिसने ब्रिटिशो के पहुंचने पर वान्डीवाश का घेरा उठा लिया था। इसी बीच पोर्टोनोवो विजय ने और हैदर की वापसी ने कूट को हर जगह जाने का अवसर प्रदान किया। कुछ ही समय बाद उससे पियर्स आ मिला और उसके पास अब भी साधन की बड़ी कमी थी। पर उसने हैदर को युद्ध मैदान में पराजित करने का निश्चय कर लिया और कर्नाटक खाली करने को भी तय कर लिया। शत्रु पक्ष ने उसे तिलोल्लम के मैदान मे यह अवसर प्रदान किया जिस युद्ध मे हैदर के 2,000 सैनिक मारे गये और कूट के 420 सैनिक मारे गए। साधनाभाव में कूट विजय का पूर्ण लाभ नही उठा सका और मद्रास वापस आकर उसने स्तीफा दे दिया। पर उसे कुछ ठहरने के लिए मनाया गया और हैदर पर एकाएक शोलिंघुर के निकट 27 सितम्बर 1781 को आक्रमण कराया गया जिसमें उसे पराजित करके हैदर की प्रतिष्ठा को आघात पहुचाया गया और अब उसके साथी भी उसका साथ छोड़ने लगे। पर युद्ध अब भी चलता रहा। समुद्र में ब्रिटिश शक्तिशाली थे और ऐसा होने तक मद्रास जैसी ब्रिटिश जगह पर अधिकार संभव नही था। इस कारण हैदर का उनके विरुद्ध प्रयास असफल ही जाना था। दोनो दलों के मध्य एक सघर्ष बेराकुन्दसोर के दर्रे के बीच हुआ जो अनिर्णायक रहा। अन्नागुड़ी मे ब्रैथवेट अपने 2,500 पैदल और 1,300 घुडसवारों सहित टीपू द्वारा घिरा हुआ था जिसने शत्रुओ मे वहुतो को नष्ट कर दिया और ब्रैथवेट को कैद कर लिया। वैसे ब्रिटिशो के लिए यह एक वडा आघात था, पर इससे उनकी शक्ति नष्ट नही होनी थी। पर हैदर अब युद्ध से थक चुका था। उसकी आशा की किरण उस समय चमक उठी जब उसने सुना कि 1782 के प्रारभ में कोरोमंडल तट पर एम० द० सफ्रेन के नेतृत्व मे एक फ्रांसीसी बेडा आ पहुंचा है। अंग्रेजो और फ्रासीसियों के बीच कुछ जल क्षेत्रीय कार्यवाहिया हुई पर सभी अनिर्णायक रही, ठीक वैसे ही जैसे 2 जून 1782 को अरनी की लड़ाई थी।

इसी बीच 17 मई को मराठो ने ब्रिटिशों से साल्बाई की संधि कर ली। अब ब्रिटिश हैदर से निपटने के लिए अधिक प्रभावी ढग से कार्यवाही कर सकते थे। पर जब युद्ध चल ही रहा था हैदर की दिसबर 1782 में मृत्यु हो गई। टीपू ने जो हैदर का उत्तराधिकारी हुआ, विरोध की नीति जारी रखी। पर जब 1783 में युरोप में फ्रासीसियो से ब्रिटिशों ने संधि कर ली और फ्रासीसियों ने अपनी सहायता भी टीपू से वापस ले ली तो टीपू अकेला रह गया। पर उसकी अक्खड़ता में कोई कमी नही आई। इन्ही परिस्थितियो मे दो पक्षों ने सधि करने का निश्चय

किया और 1784 मे मद्रास अधिकारियो द्वारा ब्रिटिशो की ओर से मंगलौर की संधि कर ली गई। पर संधि की शर्तों को हेस्टिंग्स ने पसन्द नही किया क्योंकि उसमे उसे ब्रिटिशों का अपमान नजर आया।

इस संधि के अन्तर्गत टीपू ने कर्नाटक खाली करना स्वीकार किया जबकि युद्ध-काल में ब्रिटिशो द्वारा छीने गये मैसूर क्षेत्र को छोड़ना पड़ा। मैसूर मे पूर्ण व्यापार की ब्रिटिश मांग अस्वीकार कर दी गयी और इस तरह शान्ति की स्थापना हुई।

इस अध्याय की समाप्ति के पूर्व हैदर के सामान्य चरित्र के विषय में कुछ शब्द आवश्यक है। उसकी सैनिक प्रतिभा का परिचय देते हुए बावरिंग लिखता है: "हैदर पैदाइशी सैनिक, एक अच्छा घुड़सवार तथा तलवार चलाने और बन्दूक चलाने दोनों मे निपुण था। प्रारम्भ से ही कठिन परिश्रम की आदत वाला हैदर थकाने वाले कार्य बिना किसी कठिनाई से कर सकता था। सेना का नेतृत्व करते समय वह आत्म-सुरक्षा के खतरे भी झेलता था। जिससे उसके साथियों को प्रोत्साहन मिलता था।"[1] हैदर की सेना में, जिसने ब्रिटिशों का विरोध किया, जिस साहस, दृढ निश्चय और साधन सम्पन्नता के दर्शन हुए उसे ब्रिटिशो ने इस देश मे पहले कभी नही देखा था। यह दुर्भाग्यपूर्ण ही था कि हैदर के पास ब्रिटिशो को पराजित करने के लिए जल सेना नही थी जिसके बिना उन्हें पराजित नही किया जा सकता था। उसके मित्र फ्रांसीसी, निजाम, और मराठे सभी अवसरवादी थे जिन पर षड्यन्त्र एवं स्वार्थ के मामलो में भरोसा किया जा सकता था। यह गुण हैदर मे स्वय भी काफी था। "सम्भवतः उसकी सबसे उच्चकोटि की विशेषता उसकी वह तेजी थी जिस तरह वह प्राय अनेक अवसरो पर अपनी सेना लेकर आगे बढा था और सफलता प्राप्त की थी। यह कार्य वही कर सकता था जो शक्तिशाली और साहसी दोनो हो।"[2]

एन० के० सिन्हा ने लिखा है कि एक प्रशासक के रूप में "हैदर एक शक्तिशाली निरकुश व्यक्ति था। पर वह नवीन कार्य करने वाला शासक न था। उसने सामान्यतया चली आ रही परपराओं को माना तथा अपने अधिकारित क्षेत्र के रस्मों-रिवाज तथा कानून को स्वीकार किया।"[3] वह केवल 6 घंटे आराम करता और शेष समय कठोर परिश्रम करता था। उसे यह भी ज्ञात था कि अपने सहायको से सही ढंग से कैसे कार्य लिया जाय। हैदर अली की वार्षिक कर की आय दो करोड़ तीस लाख थी जिसे वह बढ़ाने की चेष्टा करता रहता था। पर

1. बावरिंग : पूर्वोद्धृत, 107।
2. वही, 107-108।
3. सिन्हा : हैदर अली, पृ० 233।

इसका अधिकाश सैनिक कार्यों में व्यय हो जाता था। इस तरह जन-हित में व्यय करने के लिए न तो उसके पास धन था और न समय।

हैदर के विरोधियों ने उसे अपहर्त्ता बताकर उसकी अवहेलना की। पर इसके लिए उसकी प्रशंसा करनी होगी कि जो हिन्दू वंश मैसूर में शासन करता रहा था अब भी शासन का नेतृत्व कर रहा था, यह बात और थी कि ऐसा नाममात्र को था। हैदर को ज्ञात था कि वह तब तक शाति से वहां शासन नहीं कर सकता था जब तक कि वह हिन्दू प्रजा को संतुष्ट न कर दे। उसने अपने सिक्कों पर हिन्दू देवता शिव और उनकी पत्नी पार्वती का चित्र बनवाकर सहिष्णुता का परिचय दिया। उसका यह कार्य उसके लड़के टीपू की असहिष्णुता की नीति के विरुद्ध था। टीपू ने अपने क्षेत्र मे धार्मिक असहिष्णुता की नीति अपनाते हुए अपने क्षेत्र में आतंक मचा दिया। प्रायः हैदर जब युद्ध यात्रा पर जाता, ब्राह्मण उसे उचित तिथि बताते। उसकी सेना में मुस्लिम अधिक थे और नागरिक सेवा में हिन्दू अधिक थे।

ग्लेग लिखता है - "मैसूर सरकार पूरे विश्व में अत्यधिक साधारण और निरकुश राजतन्त्र है जिसमें नागरिक तथा सैनिक सभी विभाग हैदर द्वारा प्रदत्त नियमितता और व्यवस्था पर आधारित है। उसने उच्च जाति के सिद्धान्त को अस्वीकार किया। सभी स्वतन्त्र सरदारों और जमींदारों को उसने या तो अपने अधीन कर लिया या उन्हें समाप्त ही कर दिया। न्याय को क्रूरता और बिना भेदभाव के लागू किया गया। एक बड़ी और पूर्ण अनुशासित सेना का सगठन किया गया। लगभग प्रत्येक विभाग में विश्वासपात्र स्थान छोटे-छोटे स्थानों से आये लोगों को प्रदान किया गया जिससे सरकार के कार्य को इतना साहस मिला जितना पहले भारत में कभी नहीं हुआ था।"[1]

---

1. ग्लेग, जी० आर० ; मेमायर्स आफ वारेन हेस्टिंग्स, भाग-I, पृ० 84-85; सिन्हा ; पूर्वोद्धत, पृ० 258 भी देखें।

20

मार्क्विस कार्नवालिस (1786-1793)

द्वितीय अर्ल एवं प्रथम मार्क्विस चार्ल्स कार्नवालिस पंचम लार्ड और प्रथम अर्ल चार्ल्स का पुत्र था जो 31 दिसंबर 1738 मे गवर्नर स्क्वायर, लंदन में एक आयरिश परिवार मे पैदा हुआ। उसकी मां एलिजाबेथ द्वितीय विसकाउण्ट टाउन शेण्ड की पुत्री थी। कार्नवालिस को इटन में शिक्षा प्राप्त हुई और 1756 में प्रथम गार्डस मे उसने कमीशन प्राप्त किया। उसने त्युरिन की मिलीटरी अकादमी में प्रशिक्षण प्राप्त किया। 1759 मे वह ससद सदस्य हुआ और 1762 मे हाउस आफ लार्डस की सदस्यता भी उसे मिली। वह द्वितीय अर्ल के रूप मे अपने पिता का उत्तराधिकारी भी हुआ। 1768 में उसका जेमिना से विवाह हुआ जो कर्नल जेम्स जोन्स की पुत्री थी। 1776 तक उसने कई महत्वपूर्ण स्थानो पर काम किया और मेजर जनरल हो गया। वह अमेरिका में भी लड़ा जहा उसने कई प्रतिष्ठाएं प्राप्त की और अक्टूबर 1781 में यार्क टाउन पर अधिकार किया। पर पिट के मन में उसके प्रति बड़ा आदर था जिसने उसे 1785 मे फ्रेडरिक महान से मिलने के लिए साइबेरिया भेजा और कुछ ही दिनों बाद उसे बंगाल का गवर्नर जनरल का पद स्वीकार करने के लिए मनाया।

भारत में उसके पहुंचने से पूर्व, वारेन हेस्टिंग्स ने देश को उस प्रशासन की रूप रेखा तैयार कर दी थी जिस पर इसे चलना था। आते समय वह डाइरेक्टरो से कुछ निर्देश अवश्य लाया था जिसके अन्तर्गत पुरानी बुराइयो मे सुधार तथा प्रशासन क्षेत्र में कुछ विकास करना था। उसने जो विभिन्न सुधार प्रचलित किये उनमें से एक बगाल में स्थायी भू-राजस्व व्यवस्था की।

बंगाल में भू-राजस्व-व्यवस्था

कार्नवालिस के पहुंचने के काल की स्थिति

9 फरवरी 1785 को भारत से वारेन हेस्टिंग्स पदमुक्त हो गया और 1 सितम्बर 1786 से पूर्व कार्नवालिस ने यहां का कार्यभार नही सभाला। इस बीच मैकफरसन ने गवर्नर जनरल की हैसियत से कार्य किया और उसी के काल मे यह

तय हुआ कि कलेक्टरो को जिलों में भेज दिया जाय। जिले पुनर्गठित करके कम संख्या मे 35 कर दिए गये। यह एक तरह का विकेन्द्रीकरण था और 1772-73 की स्थिति पर पुन लौटना था जिसे डाइरेक्टरों ने सितम्बर 1785 के एक डिस्पैच मे स्वीकार कर दिया। इस तरह से नियुक्त जिला कलेक्टरों को केवल राजस्व ही नही वसूलना था बल्कि बन्दोबस्त भी करना था।

1781 मे चार सदस्यीय राजस्व समिति फिर से बनाई गई और इसे बोर्ड आफ रेवन्यु का नाम दिया गया जिसकी अध्यक्षता गवर्नर जनरल की कौंसिल का सदस्य करता था जो इसका पाचवा सदस्य होता था। 1786 मे कानूनगो से राजस्व के कागज-पत्र और सूचना सग्रह के लिए और इस तरह उसकी इस क्षेत्र की सर्वसत्ता समाप्त करने के लिये एक मुख्य शेरिस्तादार का पद सृजित किया गया।

1772 में जब वे जमीदार जिनका अधिकार किसी और को नही दिया गया जब पांच वर्ष के लिए सबसे अधिक बोली बोलने वाले को जमीनें दी गई थी, तो वे अभी तक अनियमित स्थिति मे ही पड़े रहे। वे वैसे पहले राजस्व एकत्रित करने वाले किसान की हैसियत ही रखते थे पर अब उन्होने भूमि पर मालिकाना अधिकार जताना प्रारंभ किया और ऐसे लोगो में जिनकी भूमि अपहरित की गई उन्होंने अपनी भूमि का मुआवजा मागा। जैसा हम पिछले अध्याय में बता आये है, उनके अधिकार पैतृक थे, वे रैयत से कर वसूलते थे, उसका दसवां भाग अपने पास रखते थे और शेष राज्य को देते थे। वारेन हेस्टिंग्स के समय मे फ्रांसिस ने जमीदारों के साथ स्थायी व्यवस्था की वकालत की थी जिससे व्यवस्था में स्थायित्व आये जबकि गवर्नर जनरल ने वार्वेल की सहायता से इसे एक व्यक्ति या अधिक से अधिक उसके उत्तराधिकारी के काल तक उसको चलाने को तय किया। 1777 मे जब पचवर्षीय बन्दोबस्त का काल समाप्त हुआ तो डाइरेक्टरों ने एक एकवर्षीय बन्दोबस्त करने का निश्चय किया। यह व्यवस्था स्थायी व्यवस्था न हो जाने तक चलनी थी। इस बीच वार्तालाप चलता रहा।

1780 तक इंगलैण्ड में फ्रांसिस के पक्षधरों की संख्या बढ़ गई। उसी वर्ष वह इंगलैंड गया था और उसने राजस्व सम्बन्धी कई पर्चे भी प्रसारित किये थे। चेत सिह के साथ हेस्टिंग्स के व्यवहार ने बिहार के जमीदारों को विद्रोह करने को बाध्य कर दिया। दूसरी ओर इगलैंड मे यह धारणा जोर पकड़ रही थी कि उन्हें तुष्ट किया जाना चाहिए और ब्रिटिश शासन का विश्वस्त सहायक बनाना चाहिए। 1784 में पिट का इण्डिया ऐक्ट पारित किया गया जिसने स्थायी व्यवस्था की वकालत की और जमीदारों के पक्ष मे मत दिया पर इस सम्बन्ध में अभी तक कोई कदम नही उठाया गया।

रैय्यतों की स्थिति पहले की ही भाति खराब बनी रही। उनके मित्र न तो भारतीय कर्मचारियों में थे और न कंपनी के। जिलो मे कलेक्टर फिर से

नियुक्त कर दिए गये। पर प्रजा के सम्बन्ध में उनका उत्तरदायित्व भी अस्पष्ट था।

कार्नवालिस के अन्तर्गत

इन परिस्थितियों मे कार्नवालिस डाइरेक्टरों से यह निर्देश लेकर आया कि वह जमीदारों के साथ मध्यम दर पर बन्दोबस्त कर ले जो नियमित रूप से और निश्चित समय पर सरकार को मिल जाय। इस तरह से रैय्यत का पूर्ण रूप से ध्यान नही दिया गया। बोर्ड आफ रेवन्यु का नेतृत्व सर जानशोर के हाथ में कार्नवालिस के आगमन से पूर्व ही था जिसने राजस्व के मसलों पर पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर लिया था। मुख्य शेरिस्तादार जेम्स ग्राण्ट राजस्व पत्रावलियों के निकट संपर्क मे था और धीरे-धीरे राजस्व के सैद्धान्तिक क्षेत्र मे पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था जो कार्नवालिस के लिए सहायक हो सकता था। अन्य महत्त्वपूर्ण और अनुभवी अधिकारी जो गवर्नर जनरल के लिए सहायक हो सकते थे, वे थे चार्ल्स स्टुअर्ट, डंकन एवं सर विलियम जोन्स।

राजस्व वन्दोवस्त की समस्या के किसी अन्तिम निष्कर्ष पर पहुचने से पूर्व इन अधिकारियों की सहायता से कुछ सुधार जो कार्नवालिस ने चालू किये, वे थे—(1) आर्थिक परिस्थिति को ध्यान में रखकर 35 जिलो से घटाकर 23 जिले कर दिये गये। (2) राजस्व एवं न्यायिक कार्य एक बार फिर जोड़ दिये गये जिसके अन्तर्गत जिलों में नियुक्त कलेक्टरों से नागरिक न्याय करने को भी कहा गया। बाद में फौजदारी न्याय के कुछ अधिकार भी उन्हे सौपे गये। नागरिक मुकदमो मे कलेक्टरो के सहायतार्थ भारतीय रजिस्ट्रारों को भी अधिकारित किया गया जो 200 रु० तक के मुकदमो का निर्णय कर सकते थे।

भ्रष्टाचार निवारण के लिए कलेक्टरों का वेतन बढाकर 200 रु० से 1500 रु० प्रतिमास कर दिया गया और इसके अतिरिक्त एकत्रित राजस्व पर उन्हें कमीशन देने का निर्णय किया गया जो उनके वेतन से काफी अधिक होता था। कलेक्टरो की शक्ति परिभाषित कर दी गई और 1788 और 1790 मे इसमे वृद्धि की गई।

1777 मे प्रारम्भ किया गया सालाना बन्दोवस्त कार्नवालिस ने तब तक चलते रहने दिया जब तक कि उसका संपूर्ण अध्ययन करके वह कोई स्यायी व्यवस्था न प्रारम्भ कर दे। जैसा कि आवश्यक सूचना प्राप्त की गई और प्रारम्भिक परिवर्तन किये गये, अब इस पर लगातार वार्ताए भी प्रारम्भ हुई कि राजस्व बन्दोवस्त कैसे किया जाय।

दो विचारधाराए सामने आई, एक जिसका नेतृत्व जेम्स ग्राण्ट ने किया, जिसका आधार मुख्य शेरिस्तेदार के कागजात आदि थे। इसमें समझा गया कि

जमीदारी की कोई अधिकारिता नही थी। उन्हें न तो भू-स्वामी ही माना जा सकता था और न ही राजस्व संग्रह करने वाला राज्य का अधिकारी ही। जेम्स ग्राण्ट का मत यह था कि स्थायी बन्दोबस्त के स्थान पर एक लम्बा बस्दोवस्त कर दिया जाय और राज्य को भूमि का असली अधिकारी मान लिया जाय तथा उसे यह अधिकार दे दिया जाय कि वह भूमि पर जितना चाहे किसानों से बढ़ाकर कर की माग क सके।

दूसरे विचारधारा का पोपक-वर्ग जानशोर के नेतृत्व मे था जिसे व्यवस्था का व्यावहारिक ज्ञान था। उनका कहना था कि जमीदार मात्र आवादकार ही नही है। वह चाहता था कि जमीदारों को भू-स्वामी माना जाय और राजस्व का एकत्रीकरण ठेके के आधार पर किया जाय। पर यह भी देखा जाय कि कर एक निश्चित सीमा से अधिक न होने पाए। वह उनके साथ एक लम्बे वन्दोबस्त के हामी थे जिससे जमीदार भूमि का विकास कर सकें और राज्य की समृद्धि मे सहायक हो सकें। उसने एक स्थायी बन्दोवस्त का पक्ष नही लिया क्योकि उसके विचार से राजस्व कर्मचारी अभी कम अनुभव वाले थे और उनका ज्ञान अभी ऐसा नही था कि स्थायी व्यवस्था करके अव्यवस्था मोल ली जाय।

वैसे कार्नवालिस जानशोर सहमत तो था पर उसने उसकी यह वात नही मानी कि अभी उन्होंने इतना अनुभव व ज्ञान नही प्राप्त किया है कि जमीदारो के साथ स्थायी बन्दोबस्त किया जा सके। स्वय एक अंग्रेज जमीदार श्रेणी का होने के कारण वह जमीदारों की एक श्रेणी वनाना चाहता था जो राज्य की शक्ति का आधार हो। डाइरेक्टरो से वह जो निर्देश लेकर आया था और 1784 के तत्सम्वन्धी संसद के ऐक्ट ने उसे इस दिशा मे प्रोत्साहित किया और 1790 में उसने जमीदारों से एक दससाला वन्दोवस्त किया। उसने यह भी घोपित किया कि इसके स्थायी हो जाने की संभावना है। इसी वीच इस मसले को डाइरेक्टरो के पास प्रेपित कर दिया जहा से स्वीकृति प्राप्ति के बाद 1793 मे इस बन्दोबस्त को स्थायी कर दिया गया।

बंगाल में भू-राजस्व की स्थायी व्यवस्था (1793)

(1) बन्दोवस्त जमीदारो के साथ किया गया जिन्हें भूमि पर इस शर्त के साथ स्वामित्व प्रदान किया गया कि उनके द्वारा गवन किये जाने पर उनकी भूमि को क्रय करके उसे पूरा किया जायेगा। (2) चूंकि राज्य को स्वामित्व के अधिकार से मुक्त कर दिया गया इस कारण उत्तराधिकार शुल्क के रूप में इसे सामन्ती देय-राशि देने का भी अधिकार न रहा। (3) जमीदारों के साथ जो दर तय हुई वह 1765 की दूनी रखी गई जिसका कारण यह बताया गया कि स्थायी बन्दोवस्त राज्य की उत्पत्ति और धनवृद्धि की अवस्था में भविष्य में इसमें वृद्धि नही करेगा।

(4) जमीदारो से सभी न्यायिक अधिकार ले लिये गये। (5) रैय्यतों के साथ उनका सबध स्वतत्र कर दिया गया। शर्त यही थी कि वे उन्हें पट्टा देंगे। यदि एक जमीदार रैय्यत को दिये गये पट्टे की अवहेलना करता तो रैय्यत को न्यायालय मे शरण लेने का अधिकार था।

इस तरह से प्रस्तुत स्थायी व्यवस्था मे गुण भी थे और अवगुण भी। जहा तक इसके गुणों का सबध है, वे थे—(1) कार्नवालिस द्वारा प्रस्तुत व्यवस्था शीघ्रता मे नही लायी गई थी। हेस्टिग्स के संबंध मे यह बात सामने आयी थी, डाइरेक्टरो ने भी इस पर विचार किया था और ससद ने भी इस सबध मे सोचा-विचारा था। प्रधान मन्त्री पिट, बोर्ड आफ कन्ट्रोल के प्रेसीडेन्ट डुन्डास और बहुत से राजनयिकों ने इसे आशीर्वाद प्रदान किया था। (2) इस व्यवस्था के कारण राज्य की आय मे वृद्धि हो गयी क्योंकि दर मे 1765 से दोगुना वृद्धि कर दी गई थी। (3) फिर भी समय-समय पर किये गये बन्दोबस्त पर होने वाले व्यय और अत्यधिक कर्मचारियों पर होने वाला व्यय जो बहुत अधिक होता था अब वह पर्याप्त कम हो गया। (4) कंपनी के अधिकारी अब संतुष्ट रह सकते थे क्योंकि खेती हो या न हो एक बार कर निर्धारित हो जाने पर देय होता था। इससे कपनी वार्षिक आय के लिए आश्वस्त रहती थी। (5) भारत मे कंपनी के पास अनुभवी और प्रशिक्षित कर्मचारी नही थे। स्थायी बन्दोबस्त ने उसमें से बहुतो को अन्य कार्यों के लिए मुक्त कर दिया और कपनी देश में अब गंभीरता से प्रशासकीय सुधार करने की स्थिति में हो गयी।

(6) जमीदार चाहे उनके पास कोई अधिकारिता हो या न हो, ऐसे लोग थे जो समाज में महत्त्व रखते थे। रैय्यतों की कोई आवाज न थी और एक संगठित बुद्धिजीवी वर्ग का अभी जन्म होना था। यदि जमीदार शान्त कर दिये गये तो पूरी जनता शान्त हो गई और ब्रिटिशो ने यह आशा की कि पूरे देश भर मे शान्ति बनी रहेगी। पर यदि वे असंतुष्ट हों तो वे जनसाधारण को उत्तेजित कर ब्रिटिशो के लिए शासन करना कठिन कर सकते थे। उन्होने ऐसी स्थिति बना रखी थी जिसे अस्वीकार नही किया जा सकता था। उनके साथ स्थायी बन्दोबस्त करके ब्रिटिशो ने देश में एक ऐसे वर्ग को जन्म दिया जो अपने जीवन के लिए उनपर निर्भर करते थे और इसलिए एक स्वामिभक्त समाज का निर्माण किया जो उनकी कठिनाइयों में उनका साथ देता था।

(7) स्थायी बन्दोबस्त से पूर्व कृषि के पेशे मे स्थायित्व नही था। 1772 मे जब पंचवर्षीय बन्दोबस्त के अंतर्गत सबसे अधिक बोली बोलने वाले को भूमि दी गई तो तमाम भूमि इधर-उधर हो गई और पैतृक जमीदार नगण्य हो गये। इसके बाद वार्षिक बन्दोबस्त ने सभी को यह कल्पना करते छोड़ दिया था कि अब क्या होगा! कोई भी अपने भविष्य के प्रति आश्वस्त नही था इसलिए इस कार्य से लोगो को असतोष भी था और विरोध भी। ये बुराइया अब दूर कर दी गई।

(8) समय-समय पर किये जाने वाले बन्दोबस्त ने सुधार की भावना को घटा दिया। जैसे ही उत्पादन में वृद्धि दिखाई जाती कर्मचारियों की दृष्टि मे यह बात आ जाती और अगले बन्दोबस्त में इसे उचित रूप से समायोजित कर लिया जाता। जमीदार, किसान और रैय्यत सभी भूमि की ओर अपने मस्तिष्क को ले ही नही जाते थे। अब जब स्थायी रूप से दरें तय हो गयी तो इस तरह भू-उत्पादन में वृद्धि खेती करने वाले के हाथ में हो गई। इससे काम करने की उनमे लालच पैदा हुई और भू-उत्थान मे धन लगाने में उनकी रुचि हुई। यह इसलिए भी क्योंकि वार्षिक आधार पर धन देना था, चाहे फसल हो या न हो। दरें ऊंची तय हुई और गबन की स्थिति मे उतने मूल्य की भूमि ले लिये जाने की हुई। इस कारण टाल-मटोल की सम्भावना समाप्त हो गई।

(9) जमीदारों के व्यक्तिगत जीवन मे समय-समय पर हस्तक्षेप जैसे नवीन उत्तराधिकार आदि, जब उतराधिकार शुल्क देय होता था समाप्त कर दिया गया। (10) यदि राज्य खेती की समृद्धि से लाभान्वित न हो जाता क्योंकि कर सदा के लिए निश्चित कर दिया गया तो अप्रत्यक्ष रूप से मनोरंजन कर और आर्थिक क्षेत्र के अन्य कार्यवाहियों पर जैसे व्यापार आदि से राज्य को लाभ हुआ जिसका संबंध कृषि के विकास से था। (11)इस व्यवस्था को पूरे राज्य मे लागू किया गया जिसमें एकरूपता थी। जमीदारो से न्याय सबधी अधिकार ले लिये गये जिससे दो लाभ हुए। इससे एक जमीदारो को कृषि की ओर ध्यान देने का अवसर मिला तो दूसरी ओर न्याय के क्षेत्र मे इससे कार्य-क्षमता आई तब यह कार्य उन लोगों के हाथ में सौप दिया गया जो इस कार्य के लिए प्रशिक्षित किये गये थे।

अतत. इसके समर्थकों ने कहा कि यदि इस व्यवस्था ने जमीदारों का पक्ष लिया तो इसने रैय्यतों के हित की भी अनदेखी नहीं की। जमीदारो को उन्हे पट्टा देना पडता था और यदि वे उनके अधिकार पर हस्तक्षेप करते तो रैय्यत न्यायालय का दरवाजा खडखड़ा सकती थी और आत्मरक्षा के लिए लड़ सकती थी।

इस तरह स्थायी व्यवस्था के बहुत से लाभ थे। पर इसकी बुराई का पक्ष भी था। (1) यह बन्दोबस्त असली भू-पतियों के साथ नही किया गया था और जमीदारो की स्थिति को भी स्पष्ट नही किया गया था। इसलिए प्रारंभ मे सरकार के और जनता के बीच तमाम मुकदमेबाजी हुई जिससे बहुत से परिवार बर्बाद हो गये। (2) तय की गई दरें ऊंची थीं। जो धन नही दे पाते थे उनकी जमीन राज्य छीनकर बेच देता था। इस तरह बहुत से लोग अपने पुश्तैनी पेशे से मुक्त हो जाते थे। (3) परिश्रम के बल-बूते या जिन लोगों ने सरकार की मांगें प्रारम्भ मे पूरी कर दी, वे धीरे-धीरे धनी होते गये और अपना गाव छोडकर नगरो में जा बसे। वे गाव की देख-भाल किये बिना पराश्रयी वहां रहने लगे। (4) इन पराश्रयी जमीदारों ने अपने एजेन्टो के माध्यम से रैय्यत से कर की वसूली की। इस तरह एक

नया शासक वर्ग तैयार हो गया। यह वर्ग बिचौलिए का काम करने लगा। यह एक ऐसा पर जीवी वर्ग था जिसने रैय्यत के बोझ को बढ़ा दिया क्योंकि वैध और अवैध सभी तरह का धन ये वसूलने लगे। बंगाल के एक नागरिक पिडिंग्टन ने लिखा है : "मैं ये कहते हुए आलोचना के पात्र होने का भय करता हूं कि सही जमा बदी पर 20 से 40 प्रतिशत तक गरीब रैय्यत से चूसा जाता है।" राम गोपाल ने लिखा है, "एक खराब मौसम जमीदार को सपन्न बना देता था क्योंकि उसे कर मिल जाता था, और वह और कर मांगता था। जहा यह करदाता को बर्बाद कर देता था क्योंकि उसकी फसल नही होती थी, वहा उसे कर और लगान दोनो देना पड़ता था।"

(5) रैय्यतों को जमीदार से सदा पट्टा नही प्राप्त होता था और जब वे देते भी थे तो भी उसके अनुसार कार्य नही करते थे। कानून रैय्यत को जमीदार से रक्षा हेतु उसे न्यायालय जाने की इजाजत देता था। पर ऐसा करने के लिए न तो उनके पास साधन था और न सम्बन्ध जो जमीदारो के पास था और जो इच्छानुसार अपने मन से कर सकते थे।

(6) सेट्टान कार ने लिखा है—"स्थायी बन्दोबस्त ने जमीदारो के हित की रक्षा की, किसानो के हित को टाल दिया और राज्य के हित का बलिदान कर दिया।" राज्य केवल एक निश्चित धनराशि ही वसूल सकता था चाहे कृषि के उत्पादन मे दसगुना वृद्धि क्यो न हो जाय। इस तरह जहां पजाब मे राज्य की आय का 60 प्रतिशत भू-राजस्व से आता था, उत्तर प्रदेश से यही 50 प्रतिशत आता था, वहा बंगाल सरकार को मनोरजन कर और मुद्राक शुल्क पर निर्भर करना पडता था।"[1]

(7) बन्दोबस्त जमीदारो के साथ किया गया जो मात्र राजस्व किसान थे। पंजाबी भाषा मे एक कहावत है—'अग लेवन आई मालिक बन बैठी' जो जमीदारो पर एकदम सही बैठती है। रैय्यत अपने ही घर मे गृहविहीन हो गए। ऐसा न्याय पहले कभी नही सुना गया था।

न्यायिक सुधार

कार्नवालिस के पूर्व की स्थिति

एक अन्य विभाग जिसमें कार्नवालिस ने महत्त्वपूर्ण सुधार किये वह न्याय संबंधी था। इस क्षेत्र में दीवानी और निजामत अदालत के नाम से नागरिक और फौजदारी न्यायालय पहले से ही चल रहे थे। पर इनमें कार्यक्षमता लाने और अपव्यय को रोकने के लिए कई परिवर्तनों की आवश्यकता थी। कार्नवालिस के

1. देखो राम गोपाल : द ब्रिटिश रूल इन इंडिया, दिल्ली, 1963, पृ० 35, 37।

आगमन की पूर्व संध्या पर इस व्यवस्था में जो बुराइयां थी वे अधोलिखित थीं।

फौजदारी न्याय अब भी नवाब मुबारकुद्दौला के अन्तर्गत था जिसका मुख्य कार्य उस काल के साधारण प्रार्थना-पत्रों पर विचार करना था जिससे आर्थिक स्थिति ठीक हो सके। फौजदारी न्याय जो डिप्टी नवाब में निहित था और जिसे न्यायाधीशों को नियुक्त व विमुक्त करने का अधिकार प्राप्त था, ब्रिटिशों द्वारा ऐसी सीमाओं में बांध दिया गया था कि वह किसी भी तरह का सुधार करने में अक्षम था।

फौजदारी न्यायालयों के भारतीय कर्मचारी पूर्णतया ईमानदारी से दूर थे। वे अनियमित रूप से नामित किये जाते थे और एक ही क्षेत्र में रहते थे और वहीं संपर्क रखते तथा स्वार्थ-सिद्धि करते थे। ज़मीदार जिन्हें पुलिस का कार्य सौंपा गया था वे अपराधियों से मिले रहते थे और उनके द्वारा नियुक्त साधारण पुलिसकर्मी जनता को चूसते थे। मजिस्ट्रेटों से जो सूचनाएं प्राप्त होती थीं वह प्रायः बेईमानी और अकार्यक्षमता की होती थी।

मुस्लिम विधि जो फौजदारी न्यायालयों का आधार थी, दोषपूर्ण थी। हत्या के मामले में भी समझौते की नीति अपनाकर यह हत्यारे को क्षमा प्रदान करने की स्थिति पैदा करती थी। इस संबंध में एन० मजूमदार ने लिखा है : "इस्लामी कानून के अनुसार नर-हत्या संबधित परिवार को आर्थिक मुआवजा देकर संयोजित की जा सकती थी जिसके लिए हत्या करने वाले को राजीनामा लिखना पड़ता था। चटगांव में पांच व्यक्ति डाके और हत्या में फंसाये गये। इतराज करने वालों ने अपराधियों से 80 रु. लेकर सुलह कर ली, एक राजीनामा लिख दिया और फांसी के तख्ते से उन्हें बचा लिया।"[1] ऐसे राजीनामे पीड़ितों से भी प्राप्त किये जा सकते थे तथा छुरा लगने, घायल होने या अंग-भंग होने पर बच जाने वाले लोग ऐसा कर सकते थे। कानून में मुकदमा चलाने के तरीके में तथा दंड-व्यवस्था में भी ऐसे ही दोष थे जिनमें सुधार की आवश्यकता थी। "कठोर दंड देकर यहां तक की मौत की सजा देकर सहापराधियों और छोटे-मोटे जुर्म करने वालों के संबंध में न्याय के दिखावे को तो बनाये रखा गया था। पर धन न्याय को हल्का कर देता था और धनीमानी अपराधी अपने को बचा लेते थे।"[2]

पांचवें, कचहरी के कर्मचारियों का वेतन कम था। एक दरोगा जो न्याय प्रशासन की धुरी था केवल 100 रुपया मासिक पाता था; काजी और नायब काजी जिनसे आशा की जाती थी कि वे मुस्लिम कानून का पूरा ज्ञान रखें; क्रमशः 66 रु.

---

1. देखें मजूमदार, एन० : जस्टिस एण्ड पुलिस इन बंगाल (1765-93), कलकत्ता, 1960 पृ० 251।
2. वही, पृ० 258।

और 35 रु. पाते थे। ये अधिकारी घोर अपराधियों को बचाकर आर्थिक सुविधा के अनेक अवसर पाते थे और यह उनके लिए स्वाभाविक था कि वे इन अवसरों का लाभ उठाये। लार्ड कार्नवालिस का भारतीयो मे विश्वास नहीं था। ऐसी घोषणा उसने 1789 में की थी कि "फौजदारी विभाग के कानून मे सुधार का कोई प्रयास बेकार होगा यदि इमे कार्यरूप में भारतीयों को ही बदलना है।"[1]

खर और मिट्टी के बने जेलखानों को जला दिये जाने या तूफान में उड़ जाने का खतरा था। ये प्रायः आवश्यकता से अधिक भरे रहते थे और इनकी दशा अत्यंत खराब थी।

वारेन हेस्टिंग्स के काल मे जब विरोधी बहुमत ने सदा निजामत अदालत को मुर्शिदाबाद वापस भेज दिया उस समय से राजनीतिक अधिकार और न्यायिक अधिकार में अन्तर आ गया जिसका परिणाम यह हुआ कि नवाब और उसके सहायक को सुधार करने की शक्ति नही रही और कलकत्ता मे ब्रिटिश अधिकारी इतनी दूर हो गये कि उन्हे इसकी आवश्यकता ही अनुभव नही हुई।

कार्नवालिस के अन्तर्गत सुधार

इन परिस्थितियों मे कार्नवालिस आया। उसके न्याय संबंधी सुधार तीन अवसरों पर किये गये—1787, 1790 और 1793 और ये भारतीय न्याय पालिका के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है।

1787 के उसके सुधार का आधार आर्थिक था। जैसा पहले बताया जा चुका है उसने उस वर्ष जिलों की संख्या घटाकर 35 से 23 कर दी और इसे कलेक्टर के अधीन कर दिया जो कंपनी का प्रतिज्ञापत्रबद्ध कर्मचारी था। राजस्व वसूली और प्रबन्ध का सारा कार्य एव नागरिक एवं आपराधिक न्याय कलेक्टर मे ही निहित थे, पर वह अपने अन्य कार्यो के लिए अन्य कर्मचारियों के अधीन नियुक्त था। इस तरह उसके राजस्व न्यायालय की अपील माल अदालत से होती हुई कलकत्ता मे 'बोर्ड आफ रेवन्यु' तक पहुंचती थी। उसके नागरिक न्यायालय की अपील अदालत तक जाती थी जिसका 5 हज़ार रु० तक का निर्णय अन्तिम होता था। इससे अधिक मूल्य के मुकदमे की अपील कौंसिल मे राजा तक जाती थी। रजिस्ट्रार के कार्यालय भी खोले गये जहां 200 रु. तक के मुकदमे भेजे जाते थे। पर इस पर किया रजिस्ट्रार का निर्णय कलेक्टर की न्यायिक अधिकारी के रूप में हस्ताक्षर होने पर ही अन्तिम होता था।

इस व्यवस्था का दोष स्पष्ट था जिसकी स्वीकारोक्ति कार्नवालिस ने स्वयं की

1. वही, 250।

और कहा, "यदि सार्वजनिक राजस्व का निर्धारण और एकत्रित करने के नियम का अतिक्रमण हो रहा हो तो उसमें आक्रामक राजस्व अधिकारी ही होंगे। और वे लोग जो उनके द्वारा त्रस्त किये गये है उनसे सुविधा कभी नही पा सकते।" शक्ति का यह केन्द्रीयकरण स्पष्ट रूप से अच्छा नही था।

1790 में फौजदारी क्षेत्र में कुछ सुधार किये गये। सदर निजामत अदालत जो विरोधी बहुमत द्वारा हेस्टिंग्स के काल में मुर्शिदाबाद लायी गई थी, उसे पुनः कलकत्ता लाया गया जो कम से कम सप्ताह में एक बार कचहरी लगाती थी और अपने कार्रवाई का सारा विवरण रखती थी। इसका अर्थ था कि नवाब का इस क्षेत्र का अधिकार उससे ले लिया गया। जब यह न्यायालय कंपनी की राजधानी कलकत्ता ले आया गया तो फौजदारी न्याय अंग्रेजी अधिकार के अन्तर्गत संस्थापित हो गया। यह न्यायालय दया के लिए मुकदमों की सस्तुति कौसिल में गवर्नर जनरल को कर सकता था। उसकी सहायता इस सबंध में मुख्य काजी और दो मुफ्ती करते थे।

साथ ही 1790 मे बगाल, विहार और उड़ीसा के तीन प्रान्त चार संभागो में बांट दिये गये जिनमे से प्रत्येक एक सरकिट कोर्ट के अन्तर्गत कर दिया गया जिसकी अध्यक्षता कंपनी का एक प्रतिज्ञा पत्रवद्ध कर्मचारी करता था। सरकिट कोर्ट के निर्णयों का कार्यान्वयन मजिस्ट्रेट करते थे, पर मृत्यु और आजीवन कारावास के मसले पर सदर निजामत अदालत की स्वीकृति आवश्यक थी। जिला कलेक्टर को मजिस्ट्रेट भी बनाया गया जो चोरी, डाके और हत्या के साधारण मामले में दंड दे सकता या छोड़ सकता था। पर गभीर मामले में वह अपराधी को फौजदारी जेल मे तब तक रख सकता था जब तक कि सरकिट कोर्ट जिला मुख्यालय पर काम न प्रारंभ कर दे और मुकदमे के लिए उसे वह वहां ले आये। हत्या के गंभीर मसलो को छोड़कर मजिस्ट्रेट जमानत पर किसी को सरकिट कोर्ट की कार्रवाई प्रारंभ होने तक छोड़ सकता था।

कार्नवालिस ने न्यायिक अधिकारियों के वेतन में उदारतापूर्वक बढ़ोत्तरी की जिससे कि वे घूस के लालच से तथा अवैधानिक धन की वसूली से बच सकें और योग्य व चरित्रवान लोग इस सेवा के प्रति आकृष्ट हो सके।

1793 मे भी कुछ न्यायिक परिवर्तन किये गये और ये इतने महत्वपूर्ण थे कि "प्रत्येक नागरिक कर्मचारी 19वी सदी के प्रारभ से 1793 की तिथि को एक नये युग के सूत्रपात की तिथि मानता है।" राजस्व और न्यायिक अधिकार की एकता जो 1787 में कार्नवालिस ने स्थापित की वह हानिप्रद सिद्ध हुई। इसी कारण 1793 में कलेक्टरों को अपने न्यायिक अधिकार से वंचित कर दिया गया और उनके पास कर एकत्रित करने की ही शक्ति रह गई। राजस्व न्यायालय या माल अदालतें भी समाप्त कर दी गई और अब सभी राजस्व के मुकदमे साधारण

और कहा, "यदि सार्वजनिक राजस्व का निर्धारण और एकत्रित क
अतिक्रमण हो रहा हो तो उसमें आक्रामक राजस्व अधिकारी ही हो
जो उनके द्वारा त्रस्त किये गये हैं उनसे सुविधा कभी नही पा स
यह केन्द्रीयकरण स्पष्ट रूप से अच्छा नही था।

1790 मे फौजदारी क्षेत्र में कुछ सुधार किये गये। सदर नि
विरोधी बहुमत द्वारा हेस्टिंग्स के काल मे मुर्शिदाबाद लायी
कलकत्ता लाया गया जो कम से कम सप्ताह मे एक बार कचह
अपने कार्रवाई का सारा विवरण रखती थी। इसका अर्थ था
क्षेत्र का अधिकार उससे ले लिया गया। जब यह न्यायालय
कलकत्ता ले आया गया तो फौजदारी न्याय अंग्रेजी अधिकार मे
हो गया। यह न्यायालय दया के लिए मुकदमों की संस्तुति
जनरल को कर सकता था। उसकी सहायता इस सबध मे
मुफ्ती करते थे।

साथ ही 1790 मे बगाल, बिहार और उड़ीसा के तीन
बाट दिये गये जिनमे से प्रत्येक एक सरकिट कोर्ट के अन्तर्गत
अध्यक्षता कंपनी का एक प्रतिज्ञा पत्रबद्ध कर्मचारी करता
निर्णयों का कार्यान्वयन मजिस्ट्रेट करते थे, पर मृत्यु और
मसले पर सदर निजामत अदालत की स्वीकृति आवश्यक
मजिस्ट्रेट भी बनाया गया जो चोरी, डाके और हत्या के
सकता या छोड़ सकता था। पर गभीर मामले मे वह अपर
तब तक रख सकता था जब तक कि सरकिट कोर्ट जि
प्रारंभ कर दे और मुकदमे के लिए उसे वह वहां ले आये
को छोड़कर मजिस्ट्रेट जमानत पर किसी को सरकिट
होने तक छोड़ सकता था।

कार्नवालिस ने न्यायिक अधिकारियो के वेतन मे
जिससे कि वे घूस के लालच से तथा अवैधानिक धन क
योग्य व चरित्रवान लोग इस सेवा के प्रति आकृष्ट हो

1793 मे भी कुछ न्यायिक परिवर्तन किये गये
"प्रत्येक नागरिक कर्मचारी 19वीं सदी के प्रारभ से
युग के सूत्रपात की तिथि मानता है।" राजस्व और
जो 1787 मे कार्नवालिस ने स्थापित की वह हा
1793 मे कलेक्टरो को अपने न्यायिक अधिकार
उनके पास कर एकत्रित करने की ही शक्ति रह ग
अदालते भी समाप्त कर दी गई और अब सभ

अपराधी को 7 वर्ष की कड़ी जेल की सज़ा दी जाय। यदि मुस्लिम कानून के अंतर्गत किसी के दो अंग का भंग हो जाय तो उसे 14 वर्ष के कठोर कैद की सजा होनी थी। हिन्दू और मुस्लिम गवाहियों के भेदभाव को समाप्त कर दिया गया और अब महिलाओं को भी गवाही का अधिकार मिल गया।

एक अपराधी जिसने जेल में कम-से-कम 6 माह बिता लिया था और असहाय था उसे एक माह तक के लिए व्यय प्राप्त होता था जो 5 रु० से अधिक नहीं होता था और 1792 के एक प्रस्ताव में निर्देश था कि "मजिस्ट्रेटों को सभी गरीब अभियोगियों व गवाहों को 2 आना प्रतिदिन के हिसाब से सरकिट कचहरी में उपस्थित होने हेतु (जिसके लिए लोगों को दूर से आना पडता था) तथा इसी तरह से यात्रा व्यय निश्चित आवश्यक दिनों के लिए देना चाहिए।"[1]

लार्ड कार्नवालिस के सुधारों में जो दोष थे उनमें एक यह था कि उसने भारतीयों पर पूर्ण अविश्वास किया जिसका प्रमाण यह है कि उसने उन्हे मुसिफ के पद से ऊंचे पर नियुक्ति के योग्य नही समझा। न्याय और पुलिस प्रशासन के विस्तार के साथ करदाता का बोझ भी बढ़ गया।

पर कार्नवालिस के सुधारों के गुण दूरगामी थे। न्याय से राजस्व अधिकार में अलगाव कर दिया गया, मुस्लिम कानून में एकरूपता स्थापित की गई, विस्तारित और पुनर्गठित पुलिस प्रशासन ने देश में बहुत दिनों से गायब शांति और व्यवस्था की वापसी की और अन्ततः कानून की महत्ता की स्थापना हुई। कार्नवालिस के काल में सच मे भारतीय न्याय क्षेत्र में एक नये युग का सूत्रपात हुआ।

अन्य परिवर्तन

लार्ड कार्नवालिस ने कंपनी के लिए कुछ व्यावसायिक सुधार भी किए। इसके अन्तर्गत 'बोर्ड आफ ट्रेड' के सदस्यों की संख्या घटाकर 11 से 5 कर दी गई और इसके द्वारा लेन-देन को गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल की देखरेख में रख दिया गया। प्रत्येक कस्टम केन्द्र पर एक रेजीडेंट की नियुक्ति कर दी गई जिसको यह कार्य सौंपा गया कि वह यह बताये कि कंपनी के धन को कहां लगाया जाय ?

प्रतिज्ञापत्रबद्ध सिविल सेवाओं में भी सुधार किया गया। व्यक्तिगत व्यापार को पूर्णतया समाप्त नही किया गया, कर्मचारियों को कमीशन देने की प्रथा समाप्त कर दी गई और भेंट स्वीकार करने पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इसकी जगह पर कम्पनी के कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि कर दी गई। कार्नवालिस को भारतीयों की ईमानदारी पर भरोसा नही था। इसी कारण उन्हें ऊंचा स्थान नहीं

1. मजूमदारः पूर्वोद्धृत, पृ० 288-289।

वालिस कोड भी कहा जा सकता है।

अन्य सम्बन्धित सुधार

कार्नवालिस के समय मे किये गये अन्य सुधारो मे एक था मजिस्ट्रेटों को सौपा गया वह कर्तव्य जिसके अन्तर्गत उन्हें मास में एक बार जेल का निरीक्षण करने, यह देखने कि कैदियों के साथ अच्छा व्यवहार होता है, उन्हें उनके ग्रेड के अनुसार अलग-अलग ब्लाकों में रखा जाता है और उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखा जाता है; आदि बाते थी। बीमार कैदियो का ध्यान कपनी के सर्जन करते थे। जेल-सस्था को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया और इसके व्यय की समुचित व्यवस्था की गई।

अक्टूबर 1792 के एक प्रस्ताव के अनुसार कार्नवालिस की सरकार ने प्रति-वर्ष पाच नये, बड़े और मजबूत जेल तैयार करने का निश्चय किया। प्रत्येक जेल मे दो ब्लाक होते थे, एक नागरिक तथा दूसरा फौजदारी अपराधियों के लिए। इनकी सीमा कैदियों की अनुमानित संख्या पर आधारित कर दी गई। भिन्न-भिन्न तरह के कैदियो को भिन्न-भिन्न स्थानो पर रखने की व्यवस्था की गई। स्त्रियो के लिए अलग व्यवस्था की गई।

देश में पुलिस व्यवस्था में भी आमूल परिवर्तन किया गया। 1792 के रेग्यु-लेशन ने पुलिस प्रशासन को ब्रिटिश क्षेत्र मे एक तरह का कर दिया और इसे ब्रिटिश अधिकारियों के हाथों सौप दिया। जमीदारों और किसानों को अब पुलिस का काम नही करना पड़ता था और उनसे पुलिस सगठन समाप्त कर देने को कहा गया।

पुलिस-व्यवस्था के लिए प्रत्येक मजिस्ट्रेट को अपने जिले को 400 वर्गमील की इकाइयो में बांटने को कहा गया। प्रत्येक इकाई को एक दरोगा के अन्तर्गत कर दिया गया। इसी तरह से मुर्शिदाबाद और पटना जैसे नगर वार्डों में बाट दिये गये और उसे एक दरोगा को सौप दिया गया। बड़े-बड़े कस्बे भी एक दरोगा के अधीन कर दिये गये। मजिस्ट्रेट द्वारा नियुक्त एव चुने अधिकारी दरोगा की सहा-यता करते थे। दरोगा के क्षेत्र में गांव का चौकीदार उसकी सहायता करता था। ये चौकीदार अपराधियो को पकड़कर दरोगा के पास पेश करते थे जो उन्हें न्यायालय मे पेश करता था। एक नया कर सौदागरों और व्यापारियों पर पुलिस संस्था के व्यय भार बर्दाश्त करने के, लिए लगाया गया जिससे प्रतिवर्ष 3,19,440 रु० प्राप्त होता था।

फौजदारी न्यायालयों के लिए मुस्लिम कानून मे भी कुछ परिवर्तन किये गये। हत्या के मामलों मे अब राजीनामा नही किया जा सकता था और न्यायालय दण्ड प्राप्त करने वाले के मृत्यु पर भी मुकदमा चलते रहने देते थे। कैदियों का अंग-भंग बद कर दिया गया और यह तय किया गया कि एक अंग के भग होने पर

अपराधी को 7 वर्ष की कडी जेल की सजा दी जाय। यदि मुस्लिम कानून के अंतर्गत किसी के दो अग का भग हो जाय तो उसे 14 वर्ष के कठोर कैद की सजा होनी थी। हिन्दू और मुस्लिम गवाहियों के भेदभाव को समाप्त कर दिया गया और अव महिलाओ को भी गवाही का अधिकार मिल गया।

एक अपराधी जिसने जेल मे कम-से-कम 6 माह बिता लिया था और असहाय था उसे एक माह तक के लिए व्यय प्राप्त होता था जो 5 रु० से अधिक नही होता था और 1792 के एक प्रस्ताव मे निर्देश था कि "मजिस्ट्रेटों को सभी गरीब अभियोगियों व गवाहो को 2 आना प्रतिदिन के हिसाब से सरकिट कचहरी मे उपस्थित होने हेतु (जिसके लिए लोगो को दूर से आना पडता था) तथा इसी तरह से यात्रा व्यय निश्चित आवश्यक दिनो के लिए देना चाहिए।"[1]

लार्ड कार्नवालिस के सुधारो मे जो दोष थे उनमें एक यह था कि उसने भारतीयों पर पूर्ण अविश्वास किया जिसका प्रमाण यह है कि उसने उन्हें मुसिफ के पद से ऊचे पर नियुक्ति के योग्य नही समझा। न्याय और पुलिस प्रशासन के विस्तार के साथ करदाता का बोझ भी बढ़ गया।

पर कार्नवालिस के सुधारो के गुण दूरगामी थे। न्याय से राजस्व अधिकार में अलगाव कर दिया गया, मुस्लिम कानून में एकरूपता स्थापित की गई, विस्तारित और पुनर्गठित पुलिस प्रशासन ने देश मे वहुत दिनो से गायब शाति और व्यवस्था की वापसी की और अन्ततः कानून की महत्ता की स्थापना हुई। कार्नवालिस के काल में सच मे भारतीय न्याय क्षेत्र में एक नये युग का सूत्रपात हुआ।

अन्य परिवर्तन

लार्ड कार्नवालिस ने कपनी के लिए कुछ *व्यावसायिक सुधार* भी किए। इसके अन्तर्गत 'बोर्ड आफ ट्रेड' के सदस्यो की सख्या घटाकर 11 से 5 कर दी गई और इसके द्वारा लेन-देन को गवर्नर जनरल और उसकी कौसिल की देखरेख मे रख दिया गया। प्रत्येक कस्टम केन्द्र पर एक रेजीडेंट की नियुक्ति कर दी गई जिसको यह कार्य सौपा गया कि वह यह बताये कि कपनी के धन को कहा लगाया जाय?

प्रतिज्ञापत्रबद्ध सिविल सेवाओं में भी सुधार किया गया। व्यक्तिगत व्यापार को पूर्णतया समाप्त नही किया गया, कर्मचारियों को कमीशन देने की प्रथा समाप्त कर दी गई और भेंट स्वीकार करने पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इसकी जगह पर कम्पनी के कर्मचारियों के वेतन मे वृद्धि कर दी गई। कार्नवालिस को भारतीयो की ईमानदारी पर भरोसा नही था। इसी कारण उन्हे ऊंचा स्थान नही

1. मजूमदार: पूर्वोद्धृत, पृ० 288-289।

प्रदान किया गया ।

मद्रास प्रेसीडेंसी को बढ़ाया गया । तृतीय मैसूर युद्ध में प्राप्त मैसूर के क्षेत्र इसमें जोड़ दिये गये । मालाबार का पूरा तट अब ब्रिटिश के अन्तर्गत मद्रास का एक भाग था ।

1793 मे कार्नवालिस भारत से पदमुक्त हो गया और 1794 के प्रारम्भ में इंगलैंड पहुंच गया जहा वह तुरन्त "आर्डनैंस का जनरल तथा कैबिनेट का सदस्य" बना दिया गया । 1798 में वह आयरलैंड का लार्ड लेफ्टीनेन्ट बना दिया गया क्योंकि वह पुनः भारत जाने को तैयार नही हुआ था । 1801 मे उसने आयरलैंड से भी स्तीफा दे दिया । थोड़े ही दिनों बाद नैपोलियन से शांति समझौते के लिये वह दूत बनाकर एशिया भेजा गया । वेलजली के वापसी के बाद उससे भारत वापस जाने को फिर कहा गया । जुलाई 1805 में जब वह कलकत्ता पहुंचा तो वह 66 वर्ष से अधिक का हो चुका था । उसका स्वास्थ्य गिर रहा था और 5 अक्तूबर को उसी वर्ष गाजीपुर में उसकी मृत्यु हो गई और उसे वहीं दफना दिया गया ।

भारत को कार्नवालिस की सेवाएं महान थी । उसका नागरिक सेवाओ में सुधार न्यायिक मशीनरी का उसका पुनर्निर्माण और स्थायी राजस्व व्यवस्था की स्थापना सभी भारत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण बातें है । तृतीय-मैसूर युद्ध के बाद जो लाभ उसने अर्जित किये उसे भी कम नही आका जा सकता । कहा जाता है कि प्रत्येक क्षेत्र में उसने वारेन हेस्टिंग्स के कार्य को पूरा किया ।

"कार्नवालिस भारत पर प्रशासन करने वाला पहला भला आदमी था । वही एक व्यक्ति था जिसने इसे दो बार किया, दो आयोगों के माध्यम से लम्बे अन्तराल पर । वह ऐसा प्रथम शासक था जो इस देश मे पहले कई वर्षों तक नही रहा था । वह उन शासकों मे से एक था जिन्होंने भारत सरकार के स्वस्थ प्रशासन की नींव डाली ।"[1]

1793 का चार्टर ऐक्ट

इस अध्याय की समाप्ति के पूर्व हम उसी वर्ष ब्रिटिश संसद द्वारा पारित चार्टर ऐक्ट का विवरण यहां प्रस्तुत कर सकते है ।

कार्नवालिस भारत से पदमुक्त हो गया । ईस्ट इंडिया कंपनी जिसे 1773 में 20 वर्ष के लिए व्यापार का एकाधिकार प्राप्त हुआ था, 1793 में इस एकाधिकार को पुन. प्रदान किया जाना था, इसे रोका तभी जा सकता था जब कंपनी को ही समाप्त कर दिया जाय । 1793 मे इसीलिए कंपनी के व्यापारिक अधिकार

1. देखें, मरसे : पूर्वोद्धृत, पृ॰ 24-26 ।

का अगले बीस वर्षों के लिए नवीनीकरण किया गया। चार्टर का 1813 में पुनः नवीनीकरण हुआ और इसके बाद 1833 और 1853 में भी ऐसा ही हुआ। इस सदर्भ में जो कार्यवाहियां हुईं उन्हें ही चार्टर ऐक्ट का नाम दिया जाता है।

परिस्थितियां

1793 का चार्टर ऐक्ट चार्टर ऐक्टों में प्रथम था जिसे संसद ने 1793 और 1853 के बीच पारित किया। वैसे तो ऐक्ट काफी लम्बा था पर प्रकृति में इसने संगठन का कार्य किया। इसने सविधान में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया और न ही कपनी के तत्कालीन सस्था से सबन्धित कार्यों में ही कोई परिवर्तन किया।

इस ऐक्ट की एक परिस्थिति तो यह थी कि इसमें परिवर्तन इसलिए आवश्यक हो गया था क्योंकि 1773 के बाद 20 वर्ष बीत चुके थे,और कपनी के व्यापारिक अधिकार में अब परिवर्तन आवश्यक था। डाइरेक्टरों ने इस उद्देश्य के लिए प्रार्थना-पत्र दिया जिसपर कामन्स में विचार किया गया जहां पर कुछ मत्री कपनी के पक्ष में पहले ही थे इस कारण इस ऐक्ट के पारित होने में कोई कठिनाई नहीं थी। पिट इस समय पूर्ण रूप से शक्तिशाली था और डुण्डास भी वहां था जिसे भारतीय क्षेत्र की विशेष जानकारी थी।

कपनी अन्य तरह से भी भाग्यशाली थी। इग्लैंड इस समय नैपोलियन के नेतृत्व में फ्रास में क्रान्ति हो जाने के कारण कठिनाई में था क्योंकि वह पूरे यूरोप में साम्राज्यवादी विकास की नीति पर चल रहा था। इस कारण कपनी के विरोधियों ने भी इस सबध में गभीर प्रयास नहीं किया कि उसकी एकाधिकार शक्ति कम हो जाय। देश के समाचार-पत्रों ने भी इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया और यह बिल शक्तिपूर्वक अभूतपूर्व ढग से ससद से पारित हो गया।

धारायें

(1) कपनी का व्यापारिक एकाधिकार 20 वर्षों के लिए बढा दिया गया। अपवाद यह था कि व्यक्तिगत रूप से ब्रिटिश व्यापारी पूर्व में 3,000 टन तक के सामान का व्यापार कर सकते थे। (2) बोर्ड आफ कन्ट्रोल और उसके कर्मचारियों का व्यय और वेतन पूर्ण रूप से भारतीय राजस्व से लिया जाने लगा। (3) बोर्ड के दो अवर सदस्यों का प्रीवी कौंसिल में लेना आवश्यक नहीं था। (4) कपनी की आर्थिक स्थित को नियमित करने का प्रयास किया गया। कंपनी के लेखे-जोखे में एक निश्चित धनराशि को अलग रखकर इसमें से 5 लाख रुपये 8 प्रतिशत से 10 प्रतिशत तक की भागीदारी को बढ़ाया गया और अन्य 5 लाख रुपये कपनी के ऋण को समाप्त करने के लिए रखे गये। कंपनी को भारत में इंग्लैंड की सेना का व्यय वहन करना पड़ता था। वैसे इस सबध में 1792 तक कंपनी के

ऋण को उतारने की चेष्टा ही की गयी। इस ऐक्ट ने क्राउन को यह भी अधिकार दिया कि वह कंपनी की सारी धनराशि को आवश्यकतानुसार सुरक्षा कार्यों में लगा सके। (5) इसके पहले ही एक ऐक्ट पारित हुआ था जिसके अंतर्गत डाइरेक्टरों को गवर्नर जनरल की नियुक्ति के संदर्भ में राजकीय स्वीकृति लेने से मुक्त कर दिया गया था। इस ऐक्ट ने परिस्थिति में परिवर्तन कर दिया क्योंकि गवर्नर जनरल गवर्नर और सेनापति की नियुक्ति में राज्य की स्वीकृति आवश्यक कर दी गई।

(6) गवर्नर जनरल की कौंसिल तथा अन्य प्रेसीडेन्सियों के गवर्नरों की कौंसिल तीन सदस्यों की होती थी। अपनी नियुक्ति के समय तक जो भारत में 12 वर्षों तक रह चुका होता था वही कौंसिलर हो सकता था। (7) गवर्नर जनरल को यह अधिकार दिया गया कि वह कौंसिलों की बैठकों की अध्यक्षता करने के लिए अपनी अनुपस्थिति में अपने स्थान पर किसी को सह-अध्यक्ष बना सके। (8) गवर्नर जनरल को कौंसिल के निर्णय को अमान्य करने की शक्ति दुहराई गई और यह अधिकार गवर्नर को भी दिया गया। पर इस तरह का अधिकार वैधानिक, कर संबंधी तथा न्याय के मामले में उन्हें नहीं प्रदान किया गया। यह निषेधाधिकार ब्रिटिशों की सुरक्षा, शान्ति और हित में अपनाया जाता था। (9) गवर्नर जनरल के निरीक्षण, नियंत्रण और निर्देशन की शक्ति अन्य प्रेसीडेन्सियों में प्रदान की गई और पहली घोषणा की गयी कि "गवर्नर जनरल जब कभी अन्य प्रेसीडेन्सियों में जायेगा तो उसे वहां के गवर्नर की सारी शक्ति प्रदान हो जायेगी। (10) सेनापति अब कौंसिल का सदस्य नहीं होता था। ऐसा तभी हो सकता था जब "डाइरेक्टर्स उसे सदस्य बनाना चाहते रहे हों।" (11) गवर्नर जनरल को प्रेसीडेन्सी नगरों में स्वच्छता कर लगाने का अधिकार प्राप्त हुआ। (12) ऐक्ट में यह भी घोषित हुआ कि गवर्नर जनरल, गवर्नर और सेनापति सहित अन्य ऊंचे अधिकारी भारत छोड़कर अपने पद पर बने रहने तक अवकाश पर भारत के बाहर नहीं जा सकते थे।

(13) भारत में क्षेत्रों के विजय और विस्तार की योजना कंपनी के हित में नहीं मानी गई। (14) कलकत्ता के सुप्रीम कोर्ट का नौ सेना संबंधी क्षेत्राधिकार समुद्रों तक बढ़ा दिया गया। (15) कौंसिल में गवर्नर जनरल को प्रेसीडेन्सियों में शांति न्यायाधीश नियुक्ति करने का अधिकार हुआ। इन्हें विभिन्न प्रेसीडेन्सी नगरों में स्वच्छता की ओर ध्यान देना पड़ता था। पर ये बिना बुलाये ओयर, टर्मिनर और गोल डेलीवरी के न्यायालय में नहीं बैठ सकते थे। (16) कंपनी के नागरिक कर्मचारियों की स्थिति वरिष्ठता के आधार पर तय होनी थी और पदोन्नति पर विचार सेवाकाल पर आधारित होना था। कंपनी का प्रतिज्ञापत्रबद्ध कर्मचारी जो 3 वर्षों तक कार्य कर चुके हों वही 500 पौण्ड वार्षिक वेतन का पद प्राप्त कर

सकता था और 1,500, 3,000, 4000 पौण्ड प्रति वर्ष वेतन वाली सेवा के लिए क्रमशः 6, 9, 12 वर्ष की सेवा आवश्यक थी। (17) भेंटों का देना और प्राप्त करना एक अयोग्यता घोषित हुई। (18) शराब की बिक्री के लिए लाइसेन्स जारी किये गये।

एक समीक्षा

ऐक्ट लम्बा होने पर भी सविधान या कपनी की कार्यशैली या इसकी सहायक सस्थाओ में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाने में सफल नही हुआ जैसाकि इसकी धाराओं से स्पष्ट है। पर यह दुर्भाग्यपूर्ण था कि इस ऐक्ट के आधार पर बोर्ड और उसके सहायको का व्यय भार भारतीय राजस्व पर आ गया। बाद मे भारतीयों को इस धारा के विरुद्ध एक भीषण विरोध प्रारम्भ करना पड़ा। पर 1919 के ऐक्ट के पूर्व इस धारा मे परिवर्तन नही किया जा सका।

9 अप्रैल 1782 को कामन्स मे पाच प्रस्ताव पारित किये गये जिसमे कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के इस भूमिका की सराहना की गई कि उन्होंने आत्मरक्षा को छोड़कर भारत में युद्ध करना बन्द कर दिया है। भारत मे क्षेत्राधिकार के विस्तार को ब्रिटिश हित के विरुद्ध समझ लिया गया जिसे ससद और डाइरेक्टरो दोनों ने बार-बार घोषित किया। 1781 के ऐक्ट ने इसकी विशेष घोषणा की और 1793 के ऐक्ट ने भारत में पुनः अनाक्रामक नीति अपनाई। पर 1793 के पूर्व की ही भाति बाद मे भी भारत के आक्रमण युद्ध जारी रहे और वैसे तो इसके प्रमाण पहले भी थे पर 1793 के ऐक्ट ने ऐसी कोई व्यवस्था नही की जिसके अतर्गत डाइरेक्टरों और ससद के निर्देशों की अवहेलना को रोका जाय। इस तरह इस ऐक्ट की धारा के विरोध में 1799 मे मैसूर-युद्ध किया गया जिसके अतर्गत इस राज्य के तमाम क्षेत्र छीन लिये गये। 1800 मे सूरत के नवाब को पेन्शन देकर उसके क्षेत्र पर अधिकार कर लिया गया। 1801 में कर्नाटक के नवाब के साथ भी यही हुआ। 1802 मे फर्रुखाबाद मे भी यही बात दुहराई गई। मराठो (1803-05) के विरुद्ध किये गये युद्ध सर्वविदित हैं। इस तरह 1793 के ऐक्ट की धारा की यह अत्यधिक गभीर असफलता माना जा सकता है।

21
मराठा संघ एवं कार्नवालिस

ब्रिटिश और मराठो के मध्य शान्ति स्थापित करने वाली 1782 की साल्बाई की सधि कार्नवालिस के काल में भी प्रभावी रही। दोनो के बीच कोई खुला सघर्ष भी नही था और न ही इस देश मे ब्रिटिश क्षेत्र में विस्तार हेतु ही इसकी आवश्यकता थी क्योकि मराठो में आपस मे असगठन के भाव का उदय हो गया था। मराठा राजनीतिक शक्ति स्वयं अस्वस्थ हो चुकी थी। यदि इसमें कोई शक्ति थी भी तो वह पतनवत थी। यह अभाव उनके व्यक्तिगत महत्त्वकाक्षो के कारण पैदा हुआ। उनमे प्रशासन का कोई ऐसा स्तर भी नही था जो जनसाधारण की सहानुभूति प्राप्त कर सके। मराठा सामन्त किसी के स्वामित्व में ही रह सकते थे, सम्राट की तरह से नही। यह उनका एक गुण था। पर इसकी अनुभूति के लिए उचित समय की आवश्यकता थी, जिससे स्वाभाविक रूप से ब्रिटिश उनके ऊपर अधिकार करने को आकृष्ट हो गए। कार्नवालिस का समय इसके लिए सबसे उचित था।

संघ की उत्पत्ति

इसके पूर्व कि हम यह चर्चा करे कि मराठा संघ के सामन्त सदस्य कौन-कौन से थे कार्नवालिस के समय उनके बीच संघर्ष क्या था, यह जानना आवश्यक है कि सघ की उत्पत्ति के विषय मे जाना जाय।

जब तक शिवाजी जीवित थे, तब तक एक केन्द्रीकृत राजतन्त्र था जिसके अन्तर्गत राज्य के नागरिक व सैनिक अधिकारियो को धन के रूप में राज्य उन्हे पारिश्रमिक देता था व जागीर के रूप में नही। पर शिवाजी की मृत्यु के साथ परिस्थितियां ऐसी विकसित हुई कि जागीर प्रदान करने की आवश्यकता पड़ गई। यह जागीरदार समय बीतने के साथ शक्तिशाली हो गए और इस तरह मराठा सरकार विकेन्द्रित सामन्त शासकों का एक समूह हो गई। इसी को मराठा सघ का नाम दिया गया।

राजाराम के समय मे जब राजा के पास साधन भी नही था और न इच्छा

ही थी कि वह सैनिक अभियान प्रारम्भ करे, उसने दक्षिण का क्षेत्र विभिन्न सैनिक नेताओं में बांट दिया और उन्हें सनद दे दी। अपने क्षेत्र में इन्हें चौथ और सरदेशमुखी वसूलने का अधिकार प्रदान किया गया जिसका कुछ भाग राजा को भेज करके वे शेष अपने व्यय के लिए रख लेते थे। चूंकि इन सैनिक सामन्तो को यह सारा कार्य अपने बलबूते पर करना पड़ता था इसलिए प्रारम्भ से ही इनमें स्वतंत्रता की भावना अधिक दिखाई पड़ी और राजा के प्रति भक्ति नाम मात्र ही देखने में आई।

जब शाहू मुगल कैद से मुक्त किया गया तो उसमें तथा ताराबाई में संघर्ष प्रारम्भ हो गया। दोनों ने इन सैनिक अधिकारियों को अपने पक्ष में करने की चेष्टा की। ये सैनिक नेता जो अब तक साधारण राजा का स्तर प्राप्त कर चुके थे और अपना क्षेत्र व अपनी राजधानियां बना चुके थे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गए। वे राजा व उसके विरोधियों का समर्थन और विरोध अपनी इच्छानुसार करने लगे।

पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने उनकी शक्ति और स्वतन्त्रता में और वृद्धि की। वह अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर अपने पद को वंशानुगत बनाना चाहता था। इसीलिए उसने दूसरों को भी उसी तरह की माग प्रस्तुत करने को उत्तेजित किया जिससे कि उसकी माग में कोई बाधा न डाले। 1719 में दक्षिण के छ: प्रान्तो में तथा कुछ अन्य अनधिकृत क्षेत्रों मे जब मुगल सम्राट ने चौथ और सरदेशमुखी वसूलने का अधिकार स्वीकार कर लिया तो अनेक सामन्तो को अपने अधिकार को कार्यरूप मे बदलने का अवसर आया। इसने उनके स्वतन्त्र अधिकार के विकास मे सहायता की। पेशवा ने राजा के विभिन्न विभागो के व्यय का भार विभिन्न सामंतों के जिम्मे किया। इससे राजा कम या अधिक एक पेंशनभोक्ता रह गया जो अपने सामन्तों पर ही हर चीज के लिए आश्रित हो गया। इस तरह उनकी महत्ता बढ़ गई।

पेशवा बाजीराव प्रथम ने अन्य सामन्तों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा की, पर वह एक सीमा के बाहर नही जा सका। जैसे समय बीतने के साथ अपने कार्यों और सफलताओं के द्वारा पेशवाओ ने अपना पद पैतृक सत्ता में परिवर्तित कर लिया, उसी तरह मल्हर राव होल्कर और रघुजी सिंधिया ने भी अपना अधिकार बढ़ाया। होल्कर और सिंधिया ने बड़ौदा और ग्वालियर पर अधिकार किया और मराठा शक्ति को दिल्ली और दोआब तक पहुचा दिया। रघुजी भोसले ने उड़ीसा जीत लिया और बगाल व बिहार पर चौथ लगा दिया। माधव राव प्रथम के बाद पेशवा का पद पहले की तरह महत्त्वपूर्ण नही रह गया। मराठा राजा की तरह नाना फड़नीस जो पेशवा का प्रधानमंत्री था, उसने अपने हाथ मे सारी शक्ति संयोजित कर ली। वे सामन्त जो पेशवा की प्रभुसत्ता स्वीकार करने को

तैयार थे, उन्होने पेशवा के प्रधान मंत्री के शक्ति अपहरण को स्वीकार नही किया और लार्ड कार्नवालिस के समय में अपने को और स्वतंत्र कर लिया। 1795 में खार्दे में निजाम के विरुद्ध उन्होंने सामूहिक संगठित लड़ाई लड़ी।

विभिन्न सामन्तों का, जिन्होंने शक्ति प्राप्त की और मराठा संघ का निर्माण किया और एक-दूसरे से लड़े उनका विवरण निम्नवत् है।

नाना फड़नीस

विभिन्न मराठा सामन्तो में एक पेशवा भी था जिसकी शक्ति अब घट गई थी और जिसकी ओर से मुख्यमंत्री नाना फड़नीस लड़े थे। विभिन्न मराठा सामन्तो में जो इस समय आपस मे एक-दूसरे से लड़े, उनमें से एक नाना थे जो फड़नीस का पैतृक अधिकार पाये हुए थे। वे लेखा-जोखा विभाग के सर्वेसर्वा होते थे। यह रुचिकर है कि पैतृकता के जिस पाप ने मराठों का पतन किया वह राजा के पद से लेकर पेशवा और सेनापति के पद तक ही नही फैला था बल्कि फड़नीस जैसे प्रशासकीय पदों तक भी यह पहुंच चुका था। नाना ने मराठा इतिहास में एक अहम भूमिका अदा की और यह वही था जो प्रथम आंग्ल मराठा युद्ध मे पूना की ओर से सारी शक्ति अपने हाथ मे संजोये हुए था। उसके जीवन का संक्षिप्त परिचय यहां समीचीन होगा।

प्रतिष्ठित महेन्ड़ाले परिवार से सबद्ध जनार्दन भानु और रुक्मा बाई दपत्ति के पुत्र नाना का जन्म 12 फरवरी 1742 में हुआ। वह 14 वर्ष का ही था जब फड़नीस का पैतृक पद उसके सिर आ पड़ा। पेशवा के महल से उसकी निकटता ने उसे राज्य की बहुत से प्रशासकीय समस्याओं से परिचित ही नही कराया, बल्कि पेशवा माधवराव सहित बहुत से प्रमुख राजनीतिक लोगो से जान-पहचान करायी। माधवराव के चाचा राघोबा ने नाना मे महत्वाकांक्षा की पराकाष्ठा देखकर उसे फड़नीस के पद से बरखास्त कर दिया। पर माधवराव ने उसकी योग्यता का मूल्यांकन कर फड़नीस को 2 सितम्बर 1763 मे उसके पद पर बहाल कर दिया। इसके कारण नाना और राघोबा में अनबन पैदा हो गई जो नारायण राव के समय मे अत्यधिक स्पष्ट हो गई क्योकि राघोबा अपनी महत्ता बढ़ाने के फेर में था। वह पेशवा के प्रति विश्वस्तता और अपनी योग्यता से पेशवा के प्रधान मंत्री सखाराम बापू के विरुद्ध असली मंत्री के शक्ति प्राप्त करने मे सफल हो गया जो राघोबा की ओर उसके भतीजे से अधिक आकृष्ट लगता था।

1772 से 1775 के बीच नाना ने ब्रिटिशों के लिए मैत्रीपूर्ण नीति अपनाई, पर मोतसीन के षड्यन्त्रों और अंगरेजों की मराठों मे भेद-भाव पैदा करने की नीति ने उनके संबंध में कटु अनुभव करा दिये। 30 अगस्त 1773 को दरबारी षड्यंत्र के फलस्वरूप नारायण राव की हत्या हो गई जिसकी योजना राघोबा ने बनाई

तथा जिसमे उसके कर्मचारी तुलाजी पवार ने प्रमुख भूमिका अदा की। नाना ने मराठा सामंतो का एक वड़भाई नामक संगठन वनाया जिसका प्रकट मे सक्खाराम ने भी समर्थन किया और इसी कारण राघोवा को अंततः पेशवा के पद से हटना पड़ा। ब्रिटिशों और राघोवा के बीच होने वाली सूरत की संधि ने उसे सन्न कर दिया और प्रथम मराठा युद्ध के मसलों को जिस तरह से मराठों ने संभाला तथा उन्होने ब्रिटिशों को जिस तरह अपमानित किया जिसका विवरण पीछे दिया जा चुका है, सब नाना की ही सफलता थी; वैसे सक्खाराम वापू प्रधानमंत्री पद पर 1778 तक बना रहा जब उसके ऊपर ब्रिटिशों के प्रति सहानुभूति दिखाने का आरोप लगाया गया और उसे सिंहगढ़ में वद कर दिया गया जहा उसकी 2 अगस्त 1781 को मृत्यु हो गई।

सक्खाराम की पदावनति के बाद नाना ने पूना में पूर्ण शक्ति प्राप्त कर ली। पर नगर के बाहर उसे महादाजी सिंधिया से निवटना था जिसने ब्रिटिशों से गुप्त समझौता करते हुए नाना की विजयों से लाभ उठाकर 1782 में साल्वाई की सधि कर ली। इसके कारण ब्रिटिशों को दडित होने की जगह मराठों की स्थिति ही अच्छी न रह गई। फरवरी 1783 में नाना ने भी इस सधि को मान्य कर दिया। परिस्थितियों ने उसे ऐसा करने को वाध्य किया।

सिंधिया ने उसे अपमानित कराया, पर नानाचूकि एक राजनेता थे इस कारण उनसे अलग होने की जगह उनके गुणो को स्वीकार किया और उसका उपयोग सामान्य मराठा जगत के लिए किया जिसमे पूरे हिन्दुस्तान पर उनका प्रभुत्व स्थापित हो सके। 1772 मे ही जब नाना राजनीति मे आये, सिंधिया और होल्कर ने शाहआलम को मराठों से सुरक्षा प्रदान करके उसे ब्रिटिशों से अपनी ओर कर लिया और उसे दिल्ली मे पुनः स्थापित करा दिया। पर माधव राव की मृत्यु, नारायण राव की हत्या और ब्रिटिशो के विरुद्ध उनकी नीति ने उन्हें दिल्ली से सेना सहित हटने को वाध्य कर दिया। अव जव आग्ल मराठा युद्ध समाप्त हुआ और पूना में शाति स्थापित हो गई तो नाना ने सिंधिया को दिल्ली पुनः जाने को कहा और सम्राट को अपनी ओर मिलाने के लिए कहा, इसके पूर्व कि ब्रिटिश उस पर अपना प्रभाव स्थापित कर लें।

पर महादाजी समय चाहता था। उसने नवसेना गठित की, पुर्तगालियों से एक शक्तिशाली आधार बनाया, पुर्तगाली और फ्रासीसी अधिकारियों को अपनी सेना में अनुशासन के लिए रखा और तब वह दिल्ली की ओर आगे बढ़ा। तब तक नाना को दिल्ली से गुप्त सूचना मिली कि सम्राट ब्रिटिशों से सांठ-गांठ कर रहा है। ब्रिटिश दिल्ली में अपना गोदाम बनाना चाहते थे जिससे सम्राट को [illegible] हो सकती थी। यह ब्रिटिशों के द्वारा दिये गये उस आश्वासन के विरोध में था जो उन्होने सिंधिया को देते हुए कहा था कि वे सम्राट के मामलों में हस्तक्षेप न

करेंगे। 14 अप्रैल 1784 को जवाबख्त (वाद में जहांगीर शाह) जो सम्राट का सबसे बडा लड़का था वह दिल्ली छोड़कर लखनऊ पहुंचा जहां वारेन हेस्टिंग्स और नवाब वजीर ने उसका स्वागत किया। इससे नाना की चिन्ता बढ़ी कि कहीं ब्रिटिश राजा का अपने स्वार्थ के लिए दुरुपयोग न करें। 16 नवम्बर को उसी वर्ष जब महादाजी सिंधिया दिल्ली पहुंचा तो सम्राट ने मुगल सेना की बागडोर उसके हाथों में सौंप दी और उसे आगरा और दिल्ली का प्रशासन सौंप दिया जिससे नाना की इच्छा की पूर्ति हुई और वह प्रसन्न हो गया।

सिंधिया को उत्तरदायित्व सौंपे जाने के वदले उसे 65 हजार रु० प्रति मास सम्राट को देना पड़ता था और इसके अरिरिक्त भी धनराशि वह दे सकता था यदि दोनों प्रांतों के राजस्व से देय धनराशि से इसे देना संभव हो। 1785 में सिंधिया ने मुहम्मद बेग को दबाया जो आगरा का विद्रोही गवर्नर था और इस तरह दिल्ली के रेजीडेन्ट ब्राउन को मात देकर अपनी स्थिति संगठित कर ली। नवाब के दूत ने दिल्ली से सूचना भेजी कि गंगा तक हिन्दू राज्य की स्थापना हो चुकी है और अब वह समय दूर नही है जब पूरा भारत मराठों के अधिकार में आ जायगा।

पर ऐसा नहीं होना था। सिंधिया की अपनी राजधानी से अनुपस्थिति ने उसके सामन्तों मे भेदभाव पैदा कर दिया और जब वह दिल्ली से अपने घर की स्थिति को ठीक करने के लिए चला तो रोहिल्ला सरदार गुलाम कादिर और मुगल सेनापति इस्माइल वेग ने आगरा तथा गगा के उत्तर के क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया और सम्राट से कहा कि वह उनके साथ आगरा में आकर रहें। चूंकि सम्राट ने इससे इन्कार कर दिया इसलिए वे दिल्ली के विरुद्ध रवाना हुए, उसे पद से हटाया और 10 अगस्त 1788 को क्रूरता से उसकी आंखें निकाल ली।[1] राजकुमारियों का अपमान किया गया और राजपरिवार के सदस्यों तथा कर्मचारियों को मारा-पीटा गया। पूरे 9 सप्ताहो तक महल में अमानवीय अत्याचार होते रहे और लूट-पाट की ऐसी घटनाएं होती रही कि क्रूर हूण भी लज्जित हो जायं।

जब नाना को यह सूचना प्राप्त हुई तो उसने अपने समक्ष हिन्दू साम्राज्य के स्वप्न पर आघात होते हुए देखा। भाग्य से सिंधिया ने अब भी हिम्मत नही हारी थी जिसके पास नाना ने और सेना भेज दी जिसके सहारे उसने दिल्ली और आगरा पर पुनः अधिकार कर लिया जिसे मराठा राज्य मे मिला लिया गया। दुर्भाग्यशाली शाहआलम को पुनः गद्दी दी गई जो ऐसे चिह्न की भांति लग रहा था जिसकी

---

1. कादिर द्वारा सम्राट पर ढाये गये जुल्म का यह एक भाग था जिसके द्वारा उसने गुप्त खजाने की जानकारी का प्रयास किया था। देखें, वीन, एच. जी.; माधवराव सिंधिया, नयी दिल्ली, 1968, पृ० 138।

कोई महत्ता न हो। गुलाम कादिर पकड़ लिया गया और उसे उसी तरह दंडित करते हुए, जैसे उसने सम्राट को किया था, मार डाला गया। इसी तरह के दण्ड अन्य षड्यन्त्रकारियों को दिया गया और इस तरह नाना की इच्छा को पुनः फलीभूत किया गया। शाहआलम ने पेशवा को वकीले मुतलिक (मुगल साम्राज्य का सहायक रीजेन्ट) का पद देकर अपना साधुवाद प्रदान किया। सिंधिया को वख्शीगीर और नाना को फड़नीसी की उपाधि दी गई।

नाना की महत्त्वाकांक्षा दिल्ली में पूरी होती हुई दिखी पर सिंधिया ने ये सफलताएं उसके हित के लिए नहीं बल्कि अपनी स्थिति में सुधार के लिए किया। और उसने जैसे ही दिल्ली में अपना अधिकार जमाया, वह तुरन्त पूना की ओर नाना को नीचा दिखाने के लिए रवाना हो गया। इसी बीच अन्य कई मसलों पर भी नाना को कठिनाइयां झेलनी पड़ रही थी।

मैसूर के टीपू सुल्तान ने अपने संबंध में साल्बाई की संधि की धारा को स्वीकार नही किया। फलस्वरूप मद्रास मे ब्रिटिशो ने टीपू के साथ मंगलौर की अलग से एक संधि कर ली जिसमे मराठो का कोई स्थान नही था। नाना ने इसे पसन्द नही किया, और जुलाई 1784 मे निजाम के साथ संघ बनाकर टीपू को दंडित करने की चेष्टा की जिसे वह अपना सहायक समझता था। पर दोनो शक्तियां कुछ कर सकें, कि नाना पेशवा माधवराव द्वितीय (माधवराव नारायण के नाम से भी इसे जाना जाता है।) को पद से हटाने तथा उस पद पर बाजीराव को लाने के षड्यंत्र में लग गया। बाजीराव राघोबा का पुत्र था जो कोपरगांव मे साल्बाई की संधि के तुरन्त बाद मर गया था। टीपू ने स्थिति का लाभ उठाया और अपनी तैयारी की। नाना ने षड्यंत्र को दबाया और टीपू से राजस्व की मांग की तैयारी प्रारम्भ की। 1785 मे टीपू ने नरगुण्ड के देसाई पर आक्रमण करके स्वयं कार्रवाई प्रारम्भ कर दी जो एक ब्राह्मण राज्य था और साथ ही कृष्णा के दक्षिण उनका धर्म-परिवर्तन भी प्रारम्भ कर दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि दो हजार ब्राह्मणो ने इस अपमान से बचने के लिए अपने को बर्बाद कर दिया।[1] नाना टीपू की इस बढ़ी हुई शक्ति की सूचना प्राप्त कर चौंक पड़ा। निजाम विश्वसनीय नही था और अब ब्रिटिशों से सहायता के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नही था। ब्रिटिशो का सिंधिया से संबंध पहले ही खराब हो चुका था जिसके माध्यम से उनका पूना में प्रतिनिधित्व था। उन्होंने नाना से अपने प्रतिनिधि की सीधे नियुक्ति की आज्ञा मांगी थी जिसे मान लिया गया और चार्ल्स मैलट को पूना में रेजीडेन्ट बना दिया गया। वैसे तो ब्रिटिशों ने मराठों को टीपू के विरुद्ध सहायता हेतु आश्वस्त नही किया पर "लगातार कई

1. देखें नादकर्णी, आर. वी. : राइज एण्ड फाल्स आफ द मराठा इम्पायर, बम्बई, 1944, पृ० 253।

तुलनात्मक दृष्टि से सफल अभियानों के बाद जो टीपू की तुलना में मराठों के पक्ष में अधिक था, टीपू ने यह सोचा कि चार्ल्स मैलट की नियुक्ति'''और कुछ बम्बई में तथा अन्य जगहों पर की गई सैनिक तैयारी ने अंग्रेजों की हस्तक्षेप की प्रवृत्ति को बढ़ाया जिससे मराठे अप्रैल 1787 में संधि करने को तैयार हो गये।"[1] इस समझौते के अन्तर्गत मराठों ने टीपू को कुछ पहले के विजित स्थान वापस कर दिये और टीपू ने इसके बदले उन्हें कित्तुर, बादामी और नरगुण्ड प्रदान कर दिया और 45 लाख रुपये भी दिया।

महादाजी सिंधिया

नाना ने ब्रिटिशों से इसलिए भी समझौता करने की चेष्टा की क्योंकि सिंधिया सुलह के विरुद्ध था जिसके लिए अलग से कुछ लिखने की आवश्यकता है।

पेशवा बालाजी विश्वनाथ का एक सेनानायक और रणोजी का जारज पुत्र, महादाजी (माधवराव के नाम से भी जाना जाता है) 1730 के लगभग पैदा हुआ। उसके पिता रणोजी ने पेशवा के रक्षक और चट्टी ढोने के काम से जीवन प्रारम्भ किया और अपनी निःस्वार्थ सेवा के बल पर उत्तरी मालवा में एक सैनिक जागीर प्राप्त की और उज्जैन को अपना केन्द्र बनाया जिसके बाद उसकी प्रसिद्धि बढ़ी। उसके जारज पुत्र महादाजी सहित पांच पुत्र थे। सभी चार पुत्र 1761 के अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध लड़े गये पानीपत के युद्ध के पूर्व मर गये। इस कार्रवाई में उसकी भी शारीरिक क्षति हुई। पर चूंकि पिता की ओर से वही शेष था, इसलिए अपने पिता के मरने पर उसने एक अनिश्चित समय पर वह स्थान प्राप्त किया। पानीपत के युद्ध के बाद हम यह देखते हैं कि वह "मध्य भारत की प्रभुसत्ता की आधारशिला रखता है जहां पर कि उसकी जागीर थी; और 15,000 चुने घुड़सवारों का स्वामी होने के कारण उसने अपने को नर्मदा और चम्बल क्षेत्र का स्वामी बना लिया।"[2]

यह महादाजी ही था जो 1772 में दिल्ली में शाह आलम के वापसी के लिए उत्तरदायी था। माधवराव की मृत्यु, नारायण की हत्या और प्रथम मराठा युद्ध ने उसे दिल्ली छोड़ने को बाध्य कर दिया। पर मराठा युद्ध के पूरे काल में वह दिल्ली लेने की चेष्टा करता रहा और हमने देखा है कि किस तरह उसने साल्बाई की संधि की और ब्रिटिशों से यह आश्वासन लिया कि वे शाहआलम के मसले में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

जैसे ही साल्बाई की संधि हुई, सिंधिया ने नई सेना की भर्ती प्रारम्भ कर दी

1. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग 5, पृ० 365।
2. कीन : पूर्वोद्धृत, पृ० 53-54।

और फ्रांसीसी तथा पुर्तगाली अधिकारियों से उन्हें अनुशासित कराया। उसने गोहद जीता, ग्वालियर के किले पर अधिकार किया और इसके बाद 1784 में दिल्ली रवाना हुआ जहां मुगल सम्राट ने उसे अपनी सेना का सेनापति बनाया। सिंधिया की प्रतिष्ठा इस समय पराकाष्ठा पर थी, पर यह सब खोखली थी। उसने ब्रिटिशों का अपने को इसलिए शत्रु बना लिया क्योंकि उसने सम्राट से अपना कर उनसे लेने को कहा अन्यथा उसके बदले में दी गई चीजों को वापस लेने को कहा। साथ ही उसे सम्राट का सहायक भी बनाया गया था जिससे मुगल अधिकारी भी ईर्ष्यालु हो गए थे तथा साथ ही पूना अधिकारियों की भी कठिनाइयां बढ़ गई थी क्योंकि वे मराठों को नाम मात्र की प्रतिष्ठा मिले, इसमें उनकी रुचि थी। पर सिंधिया को प्राप्त पारितोषिक उत्तरदायित्वों और ईर्ष्या की तुलना में कुछ भी न थे। सम्राट ने उसे पद प्रदान किया पर उसे सरकारी भूमि का अधिकार नही सौंपा और न ही किले और खजाने सौंपें। सिंधिया को सम्राट के व्यय हेतु पर्याप्त धन देना पड़ता, अपनी 30 हजार की सेना पर प्रतिमाह 7 लाख रुपये व्यय करना पड़ता और 3 लाख रुपया सरकारी सेना पर व्यय करना पड़ता। दिल्ली व आगरा से इतना अधिक न मिलता कि व्यय के बाद कुछ शेष बचे।

अपने इलाके में भी चीजें बहुत अच्छी नही थीं। यहां प्रशासन ठीक से ध्यान न देने के कारण उचित रीति से नही चल पा रहा था और राजपूत व मुस्लिम जागीरदार कठोर मांगों के नीचे रगड़े जा रहे थे। इसके अतिरिक्त वह ब्रिटिश शत्रुता भी थी जो उसने सम्राट से यह कहकर पाल ली थी कि वह 1765 की इलाहाबाद की संधि के अन्तर्गत उनसे कर मांगे, इससे नाना और उनमें संबंध निकट के हो गये। कठिनाइयां बढ़ती ही गयी और 1784 तक वह 50 लाख रु० का कर्जदार हो गया। उसने ऐसी स्थिति में जयपुर की ओर जाकर 3 करोड़ रुपये का कर वसूलने का निश्चय किया जिससे उसकी कठिनाइयां कम हो सकें। पर इन चीजों का आकार दूसरे तरह का हो गया। वह जयपुर में राजपूत और मुस्लिम जागीदारों द्वारा पराजित कर दिया गया। जब उसने अपने शत्रु को पराजित करने की दूसरी बार चेष्टा की तो मुहम्मद बेग तथा उसके भतीजे इस्माइल की अध्यक्षता में सम्राट की सेना ने उसका साथ छोड़ दिया। उसकी अपनी सेना का ही वेतन बाकी था जिससे धीरे-धीरे सैनिकों के साथ छोड़ने से सेना घटती जा रही थी और जब गुलाम कादिर ने सम्राट के विरुद्ध आक्रमण किया तो उसके दामाद देशमुख को राजपरिवार को उसके भाग्य के भरोसे छोड़कर भागना पड़ा।

पर शीघ्र ही स्थिति में परिवर्तन आ गया। नाना जी सिंधिया की बढ़ती शक्ति से ईर्ष्या रखता था, उसने यह कभी नही चाहा कि दिल्ली मराठों के हाथ से निकल जाय। उसने उसे सहायतार्थ सेना भेजी। मुगल सामन्त भी आपस में एक-दूसरे से लड़ने लगे और सिंधिया के पास मिर्जा जवां बख्त के सहायता की पुकार पहुंची।

इस तरह शक्तिप्राप्त सिंधिया ने दिल्ली सहित दुर्भाग्यशाली सम्राट को 1789 में अपने अधिकार में किया और गुलाम कादिर जैसे दुष्टों को उचित दंड दिया। उसने राजपूताना मे पाटन में इस्माइल बेग को भी पराजित किया, और 1791 में मिरथा मे राजपूत नेताओं को भी नीचा दिखाया। जोधपुर में उन्हें पुनः हराया। इस सबने नाना को फिर ईर्ष्यालु बना दिया और कहा जाता है कि उसने होल्कर को सिंधिया के लिए कठिनाइयां पैदा करने के लिए प्रोत्साहित किया। पर 1792 में सिंधिया ने लखेरी में यह चुनौती स्वीकार की जहां होल्कर को भी पराजित होना पड़ा। इस विजय ने उत्तरी भारत मे सिंधिया की वीरता व नेतृत्व-शक्ति को सिद्ध कर दिया और अब उसने पूना आकर अपना भाग्य आजमाने का निश्चय किया।

मुगल सम्राट ने पेशवा को वकीले मुतलिक की उपाधि प्रदान की थी और इसे व्यक्तिगत रूप से प्रदान करने के बहाने वह स्वयं पूना की ओर चला। सच में ब्रिटिशों की टीपू पर विजय ने तथा हरिपंत के माध्यम से नाना के कार्नवालिस से संपर्क ने, जिसमें उसने सिंधिया के विरुद्ध उसे सहायता की इच्छा व्यक्त की थी, सिंधिया को उत्तेजित कर दिया। जैसे ही सिंधिया पूना पहुंचा वहां उसका उन लोगों ने जोरदार स्वागत किया जो उसकी सफलताओं से प्रसन्न थे तथा उन्होंने भी उसका स्वागत किया जो नाना को अपमानित करना चाहते थे। पूना में सिंधिया ने शीघ्र ही नाना को दबा दिया और यह लगा कि नाना का अस्तित्व ही पूर्णरूप से समाप्त हो जाएगा। पर भाग्य ने फिर एक बार पलटा खाया और पूना ही में 12 फरवरी 1794 में, जब वह अपने जीवन के चरमोत्कर्ष पर था, उसकी मृत्यु हो गई।"[1]

इस तरह एक और नेता अस्ताचलगामी हो गया जिसकी सफलता पर मराठा राष्ट्र को घमंड था। पर यह संदेहास्पद है कि यदि वह कुछ वर्ष और जीवित रहता तो वह मराठों को शक्ति प्रदान करके ब्रिटिशों को समाप्त करने में सफल हो पाता। वैसे उसने दिल्ली पर जो झंडा लहराया वह तब तक वैसे ही फहराता रहा जब तक कि वेल्जली ने आकर उसे उतार नहीं दिया।

अपने तमाम गुणों के बावजूद जिसने महादाजी को दिल्ली और पूना में प्रमुखता दिलाई, उसमें कुछ दोष भी थे। एक दोष उसमे अत्यधिक आत्म-विलोचन का था जिससे लोग उसके निकट जाने की जगह दूर हो जाते थे। पूरे जीवन वह शक्ति एकत्रित करता रहा, पर उसके पास प्रशासन को सुधारने व संगठित करने को न तो

---

1. समकालीन इतिहासकार की पुस्तक 'तारीखें मुजफ्फरी' के अनुसार सिंधिया को नाना के आदमियों ने रास्ते मे घेरकर घायल कर दिया जिससे वह दूसरे दिन मर गया। कीन : पूर्वोद्धृत, पृ० 186।

इच्छा थी न समय, जिसके अभाव में राजनैतिक शक्ति का सुरक्षित आधार नही तैयार हो सकता था। राजनीति मे भी वह ईमानदार नही था। पूना शक्ति के लिए उसका संघर्ष उसकी अवसरवादिता को उजागर करता है। वह नाना के राजनीतिज्ञता से तो लाभ उठाता था और इस आधार पर उसने दिल्ली पर अधिकार किया पर उसने ऋण वापसी के प्रति अनिच्छा दिखाई। "उसने दो बार पथभ्रष्टता के माध्यम से यह चेष्टा की कि ब्रिटिश अधिकारियों से बंगाल के कर प्राप्त करने की शक्ति प्राप्त की जाय। इस मांग के लिए उसे काफी दूर तक जाना था और उसे इस अधम और अस्वीकरण योग्य मांग के लिए शीघ्रता न करनी चाहिए थी।"[1]

फिर भी हम एच०जो० कीन के शब्दों में निष्कर्ष निकाल सकते हैं : "तर्कपूर्ण योजनाओं के विचार मे स्पष्ट, वह उनके पूर्ति मे शक्तिशाली और चालाक था और अपने समय और काल की लालच के आगे नही झुकता था। क्रूर अत्याचार के काल में जब समाज के सभी संबंध शिथिल पड़ गये थे, उसमें सौम्यता, शिष्टता और उदारता के दर्शन होते थे। वैसे उसकी व्यक्तिगत मनोवृत्ति प्रतिशोध की सीमा तक अटल थी पर उसने इसे दबाये रखा और धीरे-धीरे इन दोषों को दूर किया।"[2]

गायकवाड़

गायकवाड़ पद से जाना जा रहा सयाजी बड़ौदा का एक मूर्ख राजा था जिसके पास गुजरात और काठियावाड़ का क्षेत्र था और जो एक दूसरा मराठा सामत था। उसके राज्य का प्रशासन फतेहसिंह चला रहा था जो 1789 मे मर गया। 1789 व 1792 के बीच जब सयाजी की मृत्यु हो गयी और गोविन्द राव उत्तराधिकारी हो गया तो वहा प्रतिशासन के लिए सघर्ष ने राज्य मे अव्यवस्था पैदा कर दी। पर नया गायकवाड़ शासक योग्य था और अपने राज्याधिकार के बाद छत्रपति ने उसे मान्यता प्रदान की। गायकवाड़ ने अपने क्षेत्र मे सफलतापूर्वक व्यवस्था की स्थापना की और उसके बाद अन्य लोगों की तरह पेशवा के विरुद्ध षड्यन्त्र मे तथा राज्य छीनने के खेल मे लग गया।

होल्कर

होल्कर एक अन्य मराठा नेता था जो इन्दौर को राजधानी, बनाकर मालवा के दक्षिण-पश्चिम भाग पर राज्य कर रहा था। इस क्षेत्र की शासिका अहिल्या बाई थी जो यहां के क्षेत्र के सस्थापक मल्हारराव की पुत्रवधू थी। उसने पूरी शक्ति

---

1. कीन : पूर्वोद्धृत, पृ० 190।
2. वही, पृ० 191।

प्राप्त की और अपने क्षेत्र पर चतुराई व भविष्य को देखते हुए 1795 तक शासन किया जब उसकी मृत्यु के बाद तुकोजी उत्तराधिकारी हुआ। वह बड़ी उम्र का एक व्यक्ति था जो 1797 में मर गया। जसवंत राव जो उसके बाद उत्तराधिकारी हुआ उसकी रुचि पूना में क्या हो रहा है, इसमें अधिक थी, इसमें नहीं कि इन्दौर में प्रशासकीय समस्याएं क्या थी। हमें इसके विषय में और अधिक अगले पृष्ठ में जानने को मिलेगा।

भोसले

इनका क्षेत्र नागपुर और कटक के बीच था और राजधानी नागपुर थी। यहां का नेता मुदाजी 1788 मे मर गया जिसे प्रथम मराठा युद्ध में ब्रिटिशो ने उसे नाना के संघ मे सम्मिलित होने की स्थिति पैदा कर दी थी। यह मराठों के आपसी ईर्ष्या के कारण ही संभव हुआ। उसका उत्तराधिकारी रघुजी हुआ जो उससे बेहतर नही था।

कार्नवालिस के समय में मराठों की यह स्थिति थी। इनका छत्रपति धार्मिकता का प्रतीक नेता रह गया था जिसे उत्तराधिकार के समय स्मरण किया जाता था। राष्ट्रीयता की भावना का उदय तो बाद में हुआ। जिस काल की हम बात कर रहे है उस समय तो अनेकता ही व्याप्त थी। वतन, जो व्यक्तिगत जागीर होती थी, उसी का महत्व था। इस शक्ति का पतन अर्थात् मराठा सघ की अधोगति पहले ही प्रारंभ हो गई थी। अंतिम आंग्ल मराठा युद्ध ने इस पर साघातिक प्रहार कर दिया।

22

टीपू सुल्तान एवं आंग्ल-मैसूर युद्ध

अर्काट के एक मुस्लिम फकीर के नाम पर नामित, जिसके प्रति उसका पिता हैदर अमीर विशेष आदर रखता था, टीपू 1753 में देवनहल्ली में पैदा हुआ। उसकी माता फखरुन्निसा के पिता मीर मुईनुद्दीन कुछ समय तक कदापा के गवर्नर थे और इस तरह उसके रगों मे एक राजशाही व्यक्ति और शासक का खून था जिसने टीपू के मस्तिष्क को उस दिशा मे मोड़ा। 1782 के दिसबर मे जब ब्रिटिशों का विरोध करता हुआ हैदर मृत्यु को प्राप्त हुआ तो इस सूचना को गुप्त बनाये रखा गया और कई दिनों तक ब्रिटिश ही नही बल्कि उसकी अपनी सेना भी इसकी सूचना नही प्राप्त कर सकी जब तक कि सूचना प्राप्त करके टीपू पेन्नार नदी की ओर अपनी मुख्य सेना की ओर नही बढ़ा और उत्तराधिकार अपने हाथ में नही लिया। उसे सेरिंगपट्टम का विस्तृत कोष प्राप्त हुआ और 90 हजार सेना उसकी आज्ञा मानने को भी मिली।

हमने पहले ही देखा है कि किस तरह अपने पिता की मृत्यु के बाद टीपू ने द्वितीय मैसूर युद्ध को चलते रहने दिया जब तक कि ब्रिटिशों के साथ मगलौर की सधि करने की स्थिति में वह नही आ गया। इस सधि की शर्तें ब्रिटिशो से अधिक उसके पक्ष में थी और इसने उसकी शक्ति घटाने के स्थान पर "उसकी प्रतिष्ठा को बढ़ा दिया, जबकि जिस परिस्थिति मे यह संधि हुई थी उससे अंग्रेजों को अपना मुंह छिपाना पड़ा।"[1]

कार्नवालिस के अंतर्गत तृतीय मैसूर युद्ध 1790-92

परिस्थितियां

जिन परिस्थितियो में टीपू को शक्ति प्राप्त हुई और जिस तरह से द्वितीय मैसूर युद्ध समाप्त हुआ, उसने युवा टीपू को उग्र और आक्रामक बना दिया। उसने फ्रांसीसियो की सहायता से निजाम को दबाने, मराठों की शक्ति नष्ट करने और फिर भारत से अंग्रेजों को निकालने का अभियान चलाने का निश्चय किया।

---

1. हसन, मोहिब्बुल (सपा०)—वाकये-मंज़िले-रुम (कुस्तुनतुनिया की यात्रा की डायरी) ख्वाजा अब्दुल कादिर लिखित, पृ० 12।

1785 के प्रारंभ में उसने नरगुण्ड पर विजय प्राप्त किया और मराठों के हस्तक्षेप के बावजूद कित्तूर जीत लिया। ब्रिटिश गवर्नर मैम्फर्सन को नाना की अपील भी बेकार गई जिस पर उसने गोवा की ओर हाथ फैलाया जिससे भयभीत होकर ब्रिटिशों ने उनसे अपील किया कि वे उनके न्यायालय में ब्रिटिश रेजीडेन्ट के माध्यम से अपील करें। निजाम ने भी मराठों का पक्ष लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि मराठों को अपना खोया क्षेत्र मिल गया और उन्होंने 1787 मे टीपू को उनसे एक संधि करने के लिए बाध्य किया जिसके फलस्वरूप उस दिशा में उनकी महत्त्वाकांक्षा समाप्त हो गई। ब्रिटिशों ने पूना में मैसूर को रेजीडेन्ट नियुक्त कर रखा था और उनके सैनिकों के हलचल ने टीपू को यह सोचने को बाध्य किया कि वे उसके विरुद्ध किसी कार्रवाई मे भाग लेने जा रहे है। इसी कारण उसने जल्दी से मराठों द्वारा प्रस्तुत संधि की शर्तों को तुरत स्वीकार कर लिया।

टीपू की युवावस्था और महत्त्वाकाक्षा ने उसे अशांत बना दिया। "अपनी शक्ति के विचारों से प्रोत्साहित और अग्रेजों के विरुद्ध भावना से ग्रस्त उसने अपने को फ्रासीसियों से बुरी तरह जोड़ा जिनकी सहायता की आशा से वह भयावह और घृणित शक्ति को नीचा दिखाना चाहता था।"[1] 1786 मे उसने गुलाम अलीखान की अध्यक्षता में कुस्तुनतुनिया एक दल भेजा जिसका उद्देश्य तुर्की क्षेत्र मे फैक्ट्रियां स्थापित करना था तथा मैसूर की गद्दी पर अपने पद की स्वीकृति खलीफा से करवानी थी क्योकि मुगल सम्राट उसे अपहर्ता समझता था और इसीलिए उसे अभिषेक नही प्रदान किया। इसके अतिरिक्त इस दल के माध्यम से ब्रिटिशो के विरुद्ध सहायता प्राप्त करने की भी योजना थी। दूतों को उसी उद्देश्य हेतु कुस्तुनतुनियां से फ्रास भी जाना था और 1787 मे टीपू ने सीधे भी एक दल फ्रांस की राजधानी भेजा। पर यह दोनों दल अपने सैनिक उद्देश्य में सफल नही हुए। तुर्की का सुल्तान रूस और आस्ट्रिया से युद्ध में व्यस्त था और ब्रिटिशो की मित्रता पर निर्भर करता था जबकि फ्रासीसी सरकार ने ब्रिटिशों को आश्वस्त कर रखा था कि वे उन्हें उत्तेजना का कोई अवसर नही प्रदान करेंगे। लुई 16वें को आतरिक कठिनाइयो का भी सामना करना पड़ा जिसके कारण पूरा फ्रास तबाही की भंवर मे फंस गया।[2]

इसी बीच टीपू मालाबार पर अधिकार के द्वारा पश्चिमी तट के क्षेत्रो पर अधिकार करने के लिए व्यग्र था; इसके लिए उसने 29 दिसबर 1789 को ट्रावनकोर के राजा पर इसलिए आक्रमण किया क्योंकि उस स्थान के राजा ने डचों

1. बावरिंग . पूर्वोद्धृत, पृ० 137।
2. विस्तार के लिए देखें, हसन, मोहीबुल : पूर्वोद्धृत, पृ० 161-62।

से जयकोट्टाई और क्रांगनूर का क्षेत्र खरीदा था जो उसके अनुसार उसके सहायक कोचीन के राजा का था। पर ट्रावनकोर का राजा इस अभिमत से सहमत नही था। मद्रास के गवर्नर हालैण्ड ने टीपू से घूस लेकर ट्रावनकोर की अपील को सहायतार्थ अनसुना कर दिया। इस तरह टीपू को ट्रावनकोर जो ब्रिटिश आरक्षित प्रदेश था, में प्रवेश का अवसर मिल गया। इस स्थान के सभी क्षेत्रों में उसने आग लगवा दी और लोगों को मारना प्रारंभ किया। कार्नवालिस अब तक बगाल का गवर्नर जनरल हो चुका था और उसने हालैण्ड के अशोभनीय और एक मित्र के प्रति अविश्वस्त कार्य की भर्त्सना की।

तृतीय मैसूर युद्ध प्रारंभ करने के लिए यह पर्याप्त था। निजाम और मराठा टीपू द्वारा पहले ही विभाजित किये जा चुके थे। कार्नवालिस ने इन दो शक्तियों के साथ 1790 में अलग-अलग संधियां की और इस तरह टीपू के विरुद्ध त्रिगुट तैयार हो गया।

युद्ध

मद्रास के नवीन गवर्नर जनरल मीडोज ने युद्ध के प्रथम चरण में युद्ध की योजनाए बनाई जिसके अंतर्गत जनरल केली को बारामहाल पर आक्रमण के लिए भेजा गया। वह स्वय कोयम्बटूर को छीनने के लिए तथा गजलहट्टी होकर मैसूर मे प्रविष्ठ होने के लिए पश्चिम की ओर रवाना हुआ। उसने करूर, धर्मपुरम और कोयम्बटूर नगर पर अधिकार कर लिया तथा इस तरह पूरे प्रान्त पर ब्रिटिशों का अधिकार हो गया। अब गजलहट्टी दर्रे की ओर बढने की चेष्टा हुई जिसे टीपू ने पूरा नही होने दिया। वह एकाएक वहा आया, सत्यामंगलम में ब्रिटिशों को अत्यधिक हानि पहुचाई और कोयम्बटूर वापस जाने को बाध्य किया। इस तरह अपनी राजधानी के विरुद्ध ब्रिटिश कार्रवाई को असफल करने के बाद टीपू कोयम्बटूर पर पुनर्विजय प्राप्त करने के लिए दक्षिण की ओर रवाना हुआ। उसने इरोदे, धर्मपुरम और अन्य कई स्थानों पर अधिकार किया। इसी समय उसका ध्यान बारामहाल जिले की ओर आकर्षित किया गया।

केली जो बारामहाल की ओर आगे बढा था, दुर्भाग्य से कुछ करने से पूर्व ही मर गया। उसके उत्तराधिकारी मैक्सवेल ने कृष्णगिरि को घेर लिया जो बारामहाल की राजधानी थी। टीपू ने इसी समय यहा आकर इस घेरे को उठा लेने को बाध्य किया पर कुछ ही समय बाद मीडोज और मैक्सवेल मिलने में सफल हो गये और टीपू ने ब्रिटिशों की रक्षात्मक नीति और मजबूती देखकर, वह स्थान छोड़ दिया और चिनोमलाई और परमाकोइल की ओर रवाना हुआ। पर यह दोनो स्थल भी छिन गए। अब वह पांडिचेरी पहुंचा और ब्रिटिशों के विरुद्ध फ्रांसीसी सहायता चाही जिसमे वह सफल नहीं हुआ।

पर पश्चिमी तट पर टीपू का एक और बड़ा दुर्भाग्य प्रतीक्षा कर रहा था। यहा बम्बई का गवर्नर जनरल अबरकाम्बी और कर्नल हर्टले एक के बाद दूसरा स्थान जीतते हुए 1790 तक पूरे मालाबार क्षेत्र पर अधिकार कर चुके थे।

पर सामान्यतया युद्ध के प्रथम चरण में ब्रिटिश मैसूर पर अधिकार नही कर सके जिसके फलस्वरूप 1791 में कार्नवालिस व्यक्तिगत रूप से सेनापतित्व ग्रहण करने के लिए पहुंचा। युद्ध का दूसरा चरण प्रारंभ हुआ। सेना वेलोर में थी जहां से कार्नवालिस ने बंगलौर की ओर चलने का निश्चय किया। टीपू ने ब्रिटिशों को रास्ते में ही रोकने की चेष्टा की। पर कार्नवालिस अक्बूर पर आक्रमण का दिखावा कर बच निकला और फिर पहले उत्तर की ओर जाते हुए तथा पुनः पूर्व की ओर रवाना होकर वह मुगली दर्रा पहुंच गया। वहां से कोलार व होसाकोटे होता हुआ वह बंगलौर के किले के पास प्रकट हुआ जो पूरे मैसूर राज्य में द्वितीय स्तर का किला था। पहले कस्बे पर अधिकार कर लिया गया और टीपू की इसकी पुनर्प्राप्ति की चेष्टा असफल कर दी गई। इसके बाद किला घेर लिया गया और 20 मार्च 1791 में इसे जीत लिया गया जिसमे 500 लोग मारे गए या घायल हो गए और टीपू के 1,000 सैनिक मारे गए।

बंगलौर के किले की आवश्यक मरंमत करके कार्नवालिस सेरिंगपट्टम की ओर चला जो मैसूर की राजधानी थी। इसके सुरक्षा की व्यवस्था टीपू ने पहले से ही कर रखी थी। रास्ते मे कार्नवालिस से निजाम के 10 हजार घुडसवार सैनिक आ मिले। पर अपने सभी प्रयासों के बावजूद सेरिंगपट्टम से वह टीपू को पीछे नही हटा सका और 26 मई को बंगलौर की ओर वापस होने को बाध्य हो गया।

इसी बीच मराठे भी इस युद्ध में सम्मिलित हो गए। इसमें उनका उद्देश्य यह था कि इसके बदले वे हैदरअली को दिये गये तुंगभद्रा और कृष्णा के बीच के राघोबा द्वारा दे दिये गये क्षेत्र पर जायेंगे। उन्होंने 10 हजार पैदल तथा 10 हजार घुड़सवार सेना परसुराम भाऊ के नेतृत्व में भेजी जिसने सितबर 1790 मे धारवार को घेर लिया। मराठों को बम्बई से भी एक सेना की सहायता प्राप्त हुई। पर 30 मार्च 1791 से पहले किले पर वे अधिकार नही कर सके। यहां पर अधिकार के बाद उन्होंने पूरे प्रान्त पर अधिकार कर लिया और उसके बाद चेरकुली मे वे कार्नवालिस से मिलने पहुचे। अप्रैल 1791 में निजाम की सेना ने कोपाल पर अधिकार कर लिया और इसके बाद सेना का एक भाग कदापू पर अधिकार के लिए भेजा जबकि शेष सेना कार्नवालिस से जा मिली जब वह सेरिंगपट्टम पर घेरे की तैयारी मे था। इसकी चर्चा पहले ही आ चुकी है।

कार्नवालिस जब बंगलौर वापस हुआ उस [illegible] का एक दूत समझौते के लिए मिला था। पर [illegible] हो सकी।

बगलौर वापसी के समय कार्नवालिस ने मराठो को उत्तर-पश्चिम के क्षेत्रों पर अधिकार के लिए भेजा, निजाम की सेना इसी तरह का कार्य करने उत्तर-पूर्व की ओर बढी और कार्नवालिस बारामहाल के किलों को जीतने मे लग गया। इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण किला नंददुर्ग 15 अक्टूबर को जीत लिया गया। पर कर्नल मैक्सवेल कृष्णागिरि को लेने में असफल रहा। कोयम्बटूर पर भी अभी अधिकार होना था। इसी बीच सेरिंगपट्टम के विरुद्ध अभियान की भी तैयारी चलती रही और 5 फरवरी 1792 को निजाम और मराठो की सेना की सहायता से कार्नवालिस टीपू की राजधानी के 6 मील निकट तक पहुंच गया। जब सेरिंगपट्टम के विरुद्ध कार्रवाई चल ही रही थी इसी समय टीपू ने पुनः अपना दूत भेजा। सधि की वार्ता हुई और सधि कर ली गई।

सेरिंगपट्टम की सधि

फरवरी 1792 मे सेरिंगपट्टम की जो सधि हुई उसकी शर्तें थी: (1) टीपू को लगभग आधा राज्य त्याग देना पडा जिसे ब्रिटिश मित्रों में बांट दिया गया। (2) हैदर के काल से चले आ रहे युद्ध बंदियो को उसे छोड़ना पड़ा। (3) उसे 30 लाख रुपये क्षतिपूर्ति के रूप मे देना पडा। (4) उसे बधक के रूप मे अपने दो पुत्रो मुईनुद्दीन और अब्दुल खालिक को ब्रिटिशो को सौपना पड़ा।

कार्नवालिस की इस बात के लिए आलोचना की गई कि टीपू को उसने तब जीवनदान दिया जब उसका दुर्भाग्य पराकाष्ठा पर था। पर उसने इसे उचित ठहराते हुए बताया कि टीपू की विनाशात्मक शक्ति पर काफी प्रतिबंध लगा दिया गया। उसने बताया कि यह कपनी की नीति भी थी कि सुरक्षा की नीति के बाहर राज्य छीनना ब्रिटिशों का उद्देश्य भी नही था। फिर टीपू को पद से हटाने और वदी हिन्दू राजा को पुनः पद प्रदान करने से कठिनाइया बढ़ती ही क्योंकि हिन्दू राजा बिना ब्रिटिश सहायता के शासन नही कर सकता था और जो स्थान उससे छीना गया था वह सभी मैसूर राज्य के भाग के रूप मे टीपू के राज्य क्षेत्र मे अब भी बना रहा।

जैसा भी हो, सेरिंगपट्टम की सधि ने मैसूर की महत्ता के दिनों की समाप्ति कर दी। वैसे तो टीपू अब भी अपनी असफलता मानने को तैयार नही था और उसने जनता से अधिक से अधिक धन वसूल कर सधि की शर्तें पूरी करने की चेष्टा की और अपने बंधक लड़कों को छुड़ाने का प्रयास किया। पर अब वह इतना शक्तिशाली न रह गया कि निजाम मराठो या ब्रिटिशों की नीद खराब कर सके। निजाम को कृष्णा और पेन्नार के मध्य के तथा कुछ और स्थान प्राप्ति का लाभ मिला, मराठो को हैदर के काल से छीने गये उनसे सभी स्थान प्राप्त हुए जबकि ब्रिटिशों को मालाबार, बारामहाल और अन्य जिले मिले जिसे वे चाहते थे। कुर्ग

का उत्पीड़ित राज्य भी ब्रिटिश लाभक्षेत्र में सम्मिलित कर लिया गया।" अंग्रेजों के निजाम से मित्रता ने निश्चित रूप से उन्हें एक शक्ति प्रदान की; यह कहा जा सकता है कि यह अब परंपरागत स्थायित्व प्राप्ति में वैसे ही सफल हो गया जैसे युरोप में पुर्तगाल और इंगलैण्ड का संबंध अटूट हो गया था।"[1]

वेलजली के अंतर्गत चतुर्थ मैसूर-युद्ध (1799)

परिस्थितियां

मैलकाम ने लिखा है कि सेरिंगपट्टम की संधि के बाद टीपू के स्वभाव में "ठीक से तथा अत्यधिक नियम से मित्र संगठन को संधि की शर्त के अनुसार धन देता हुआ देखते हैं। दुर्भाग्य के बोझ से डूबने की जगह उसने युद्ध की गति से भोगी क्षति को समाप्त करने की चेष्टा की। उसने अपनी राजधानी की किलेबंदी को और शक्तिशाली बनाया, घुड़सवारी की शक्ति बढ़ाई, पैदल सेना में भर्ती की और उन्हें अनुशासनबद्ध किया, अपने विरोधी सहायकों को दंडित किया और अपने इलाके में कृषि के प्रोत्साहन हेतु चेष्टा की जिससे पुरानी समृद्धि वापस लौट आई।"[2]

1793 में सरजानशोर लार्ड कार्नवालिस का उत्तराधिकारी होकर आया जो अपने पूर्वाधिकारी की तरह कर्मठ नहीं था और जिसके समय में 1796 में मैसूर के हिन्दू राजा चामराज की मृत्यु के बाद टीपू ने उसके अल्पवयस्क पुत्र से औपाधिक स्थिति भी छीन ली। 1795 में निजाम के पुत्र अलीजाह ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और टीपू ने इस शर्त पर उसे सहायता देने को कहा यदि वह कृष्णा और तुंगभद्रा के दक्षिण के क्षेत्र उसे दे दे। भाग्य से निजाम अपने लड़के को कैद करने में सफल हो गया। पर टीपू की शरारत करने के अवगुण की जानकारी सभी को हो गई।

1796 में टीपू ने एक दूतावास के माध्यम से अफ़गानिस्तान के शासक जमानशाह से संपर्क स्थापित कर उसे उत्साहित किया कि वह भारत में मराठा और अंग्रेजी शक्ति को उसकी सहायता से नष्ट कर दे। उसने मराठों में अनबन पैदा करने की भी चेष्टा की और ब्रिटिशों व निजाम के बीच भी गलतफ़हमी पैदा करने की चेष्टा की। युरोप में जब इस समय फ्रांसीसियों और अंग्रेजों में पुनः लड़ाई छिड़ गई तो टीपू ने फ्रासीसियों से पुनः सहायता चाही। उसने एक पत्र लेकर एक दूत फ्रासीसी अधिकारियों से मिलने के लिए तथा ब्रिटिशों से संघर्ष

1. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग-5, पृ० 337।
2. मार्टिन : वेलजलीज डिस्पैचेज, भाग-1, पृ० 669 : राबर्ट्स द्वारा उद्धृत : इंडिया अंडर वेलजली, पृ० 41।

में एक होने के लिए मारीशस भेजा। लगभग 100 फ्रांसीसी लोगों ने दूतावास को अपनी सेवाएं अर्पित की और मारीशस के गवर्नर जनरल मालार्टिक ने टीपू के पत्र को फ्रांस भेजने का आश्वासन दिया। सुल्तान ने सेरिंगपट्टम मे स्वतंत्रता का एक पौधा लगाया और हिन्दू जनता को भुलावे मे रखकर, फ्रास की क्रांति का समानता और भ्रातृत्व का नारा लगाने लगा।

मई 1798 में जब वेलजली भारत पहुंचा तो उसने देखा कि फ्रासीसी गणतंत्र सरकार मित्र होकर एक सेना भारत भेजने के चक्कर मे है। इस तरह के पग उठाने की तुरंत आवश्यकता अनुभव की गई। उसने निजाम को ब्रिटिशों से सहायक संधि स्वीकार कर लेने के लिए समझाया, जिसके अंतर्गत उससे सभी फ्रासीसी सेना समाप्त करने और ब्रिटिश सहायक सेना की सरक्षता उसकी ही कीमत पर मानने को तैयार कर लिया गया। मराठो से भी सपर्क किया गया, वैसे तो उसे कोई आश्वासन नही मिला, पर उसे आशा थी कि वे पूरी तरह से तटस्थ बने रहेंगे। मद्रास सरकार को संभावित युद्ध की तैयारी के लिए सूचित कर दिया गया जिसमें टीपू के विरुद्ध कार्रवाई होनी थी। अब उसने टीपू से उसकी उत्तेजक कार्यवाहियों के लिए स्पष्टीकरण मागा।

8 नवम्बर 1798 में वेलजली ने टीपू को एक शिकायत पत्र भेजा जिसमे लिखा कि वह उनसे सेरिंगपट्टम की मैत्री संधि के बावजूद फ्रांसीसियों से मैत्री के लिए प्रयास कर रहा है। उसने मेजर डोवेटन को उससे मिलने के लिए प्रस्तावित किया जिससे दोनों के बीच फैली गलतफहमियां दूर हो सके। कुछ ही दिनो बाद उसने इसी तरह का दूसरा पत्र भेजा पर टीपू ने उसका उत्तर नही दिया। कार्नवालिस ने टीपू के पास एक पत्र भेजा जो कुस्तुनतुनिया के सब्लाइम पोर्ट से सुल्तान सलीम ने यह लिखते हुए भेजा था कि फ्रासीसियों के मिश्र पर आक्रमण की सारे दुनिया के मुसलमानों को निन्दा करनी चाहिए और उनसे लड़ने के लिए चेष्टा करनी चाहिए। पर टीपू अंग्रेजो के विरुद्ध गुस्ताखी पर आमादा रहा जिसका परिणाम यह हुआ कि वेलजली के सामने युद्ध के अतिरिक्त कोई चारा ही नही रहा।

युद्ध

टीपू के पास इस समय 30 हजार पैदल, 15 हजार घुड़सवार और तोपखाना था। ब्रिटिशो की सेना जिसमें निजाम की सेना भी सम्मिलित थी और जो जनरल हैरिस के नेतृत्व में वेलोर से मैसूर की ओर 11 फरवरी 1799 को रवाना हुई, की संख्या 37 हजार थी। इसके अतिरिक्त कुर्ग के रास्ते जनरल स्टुअर्ट 6400 सैनिक लेकर बंबई से चला।

5 मार्च को टीपू ने सिद्धेश्वर दर्रे के पास स्टुअर्ट की उस सेना को रोकने का

असफल प्रयत्न किया जो उसकी राजधानी की ओर आ रही थी। उसने 27 मार्च को मालवल्ली के निकट हैरिस की सेना को रोकने की चेष्टा की पर उसे असफल होकर पीछे हटना पड़ा जिसमें उसके 1000 सैनिक या तो घायल हुए या मारे गए। टीपू ने यह आशा करके कि ब्रिटिश सीधे बंगलौर से चलेंगे और सेरिंगपट्टम पर उत्तर से आक्रमण करेंगे, इसलिए उसने उस क्षेत्र के जानवरों के सारे चारे को समाप्त कर उनके सामने कठिनाई उपस्थित करने की चेष्टा की। लेकिन ब्रिटिश दक्षिण के उस क्षेत्र से होकर जहां जानवरों के लिए चारा ही चारा था, आकर सेरिंगपट्टम से 15 मील दूर आकर प्रकट हुए। टीपू के विरुद्ध कुछ और आश्चर्यचकित करने वाले प्रहार हुए और 7 अप्रैल 1799 को सुल्तान के विरुद्ध घेरेबंदी का कार्य प्रारंभ हो गया। 14 अप्रैल को जब बम्बई की सेना हैरिस से आ मिली तो टीपू की स्थिति निराशापूर्ण हो गई। उसने अपना एक दूत शांति समझौते के लिए भेजा। हैरिस ने अपनी ओर से जो शर्तें भेजी, वे थी—(1) टीपू अपने क्षेत्र का आधा भाग दे दे; (2) सभी बंदियों को छोड़ दे, (3) अपने सेना में सभी फ्रांसीसी कर्मचारियों को पदों से हटा दे, (4) छः माह के भीतर 20 लाख स्टर्लिंग देने को तैयार हो, एवं (5) अपने चार सबसे उच्च अधिकारियों, जिनके नाम भी दिये गये थे, सहित अपने सबसे बड़े दो लड़कों को बंधक के रूप में भेजे। इस सबका कोई उत्तर नही आया। इधर ब्रिटिश किले की दीवार को एक स्थान पर तोड़ने में सफल हो गये और एक कड़े संघर्ष के बाद इस पर अधिकार कर लिया।

टीपू एक साधारण सैनिक की भांति गंभीर रूप से घायल होने तक लड़ता रहा। "उससे अपने विषय में जानकारी देने को अंग्रेजी सेना ने कहा। ऐसा करने पर उन सेनापतियों से उसे अपेक्षानुसार आदर मिल सकता था पर उसने इस मत की पूर्ण रूप से अवहेलना की। उसी के बाद कुछ युरोपीय सैनिक दरवाजे के पास दिखे जिनमें से एक ने टीपू की हीरे-जवाहरात जड़ी तलवार की पेटी को छीना। टीपू चूंकि नितान्त घायल था उस आदमी पर प्रहार किया और घुटने पर घायल किया। घायल व्यक्ति ने अपनी बंदूक सीधी करके उसके माथे पर प्रहार किया जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गई।"[1]

इस तरह से चतुर्थ मैसूर युद्ध का अंत हुआ और अब टीपू का सारा राज्य ब्रिटिशों के घुटने के नीचे था। एक समझौता किया गया जिसके अंतर्गत ब्रिटिशों ने कुछ क्षेत्र मराठों को सौंप दिया जिसका वार्षिक राजस्व 2,64;000 पगोडा था।[2] निजाम को जो क्षेत्र मिले उसका राजस्व 5 लाख पगोडा प्रतिवर्ष, या

1. वावरिंग : पूर्वोद्धृत, पृ॰ 199-200।
2. एक पगोडा, लगभग तीन रुपये के बराबर था।

जबकि ब्रिटिशों ने कनारा, कोयम्बटूर, धारापुरम, सेरिंगपट्टम और अन्य स्थानों पर अधिकार किया जिसका राजस्व लगभग निजाम द्वारा प्राप्त क्षेत्रों के ही बराबर था।

मैसूर का शेष भाग, जिसकी वार्षिक आय लगभग 14 लाख पगोडा थी, 1796 में मृत मैसूर के राजा चामराज के अल्पवयस्क पुत्र को सौंप दिया गया। इस राज्य पर हैदर ने अधिकार कर लिया था। अल्पवयस्क पुत्र की मां ने ब्रिटिशों के प्रति इन शब्दों में आभार व्यक्त किया : "चालीस वर्ष हो गये जब से मेरी सरकार नही रही थी। अब आपने मेरे बच्चे को इस क्षेत्र की सरकार प्रदान की है और पुरर्णैया को उसका दीवान नामित किया है। जब तक इस धरा पर सूर्य और चन्द्रमा रहेंगे, हम आपकी सरकार के विरुद्ध कोई कार्रवाई नही करेंगे।" ब्रिटिशों ने यहा एक रेजीडेन्ट भी नियुक्त किया जो राज्य के प्रशासन पर सामान्य नियंत्रण रखता था। यहां की राजधानी सेरिंगपट्टम पर उन्होंने अधिकार कर लिया और उनके साथ सहायक प्रथा लागू कर दिया जिसके अंतर्गत राज्य को 29 लाख रुपये वार्षिक आर्थिक सहायता ब्रिटिशों को उन्हें देनी पड़ती थी।

टीपू के जो लड़के विवेक वयस हो गये थे, कैद कर लिये गये और कलकत्ता भेज दिये गये जबकि उसके महत्त्वपूर्ण सामंतों को प्रतिष्ठापूर्ण जीवन के लिए आश्वासन दिया गया। उनकी संपत्ति की खुद सुरक्षा की गई।

टीपू की राजधानी के पतन से सबका लाभ हुआ। गवर्नर जनरल के भाई आर्थर वेलजली को 1,200 पौंड मूल्य के जवाहरात मिले और 7,000 पौंड अलग से। सेनापति हैरिस और छः अन्य अधिकारियों को लूटपाट की प्रवृत्ति के लिए टोका गया और आर्थर ने अपने भाई को लिखा : "शायद ही इस नगर में कोई घर लुटने से बचा हो और मेरी समझ से सैनिक बाजार में अनगिनत मूल्य के जवाहरात, सोने की छड़ें आदि हमारे सैनिकों, सहयोगियों और कर्मचारियों द्वारा बेची गई हैं।"[1] सेरिंगपट्टम से प्राप्त धन में से कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने लार्ड वेलजली को एक लाख देने का प्रस्ताव किया जिसे उसने अस्वीकार कर दिया। इस पर यह तय किया गया कि अगले 20 वर्षों के लिए उसे 5,000 पौंड वार्षिक प्रदान किये जाएं।

बोर्ड आफ कंट्रोल के चेयरमैन डुण्डास ने चाहा था कि पूरे मैसूर पर ब्रिटिशों को अधिकार कर लेना चाहिए और इसका कोई भी भाग इसके मित्रों को नहीं दिया जाना चाहिए। पर वेलजली निजाम को अप्रसन्न नही करना चाहता था और डुण्डास को सतुष्ट करने के लिए उसने कहा : "यदि आप थोड़ा सतोष रखे तो निजाम के मरते ही सभवत. मैं आपकी भूमि व किले की भूख को शान्त कर

1. टाम्सन ऐण्ड गैरेट : राइज एण्ड फुलफिलमेण्ट आफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया, पृ० 205।

सकूं। तंजौर और पोलिगार क्षेत्र को छोड़िये, सेरिंगपट्टम की प्राप्ति से ही शायद आपके पेट की भूख कुछ शांत हो। आपकी भूख शांति के लिए शायद मैं अवध और कर्नाटक का भोजन भी आगे परस सकूं।"[1]

वेलजली की मैसूर नीति की लेखकों ने आलोचना की है जिनका कहना है कि उसने युद्ध प्रारंभ करने में अत्यधिक शीघ्रता और सवेदनशीलता का परिचय दिया जिसका कि कोई आधार नहीं था। फ्रांसीसियों के प्रति ब्रिटिशों का भारत में अधिकतर भय काल्पनिक था। फिर और भारतीय शासकों ने फ्रांसीसी सेनाएं तैयार की पर किसी को भी टीपू की तरह दंड नहीं दिया गया। ब्रिटिशों के पास भारत में जो विपुल साधन था उसके आधार पर उन्हें अधिक विश्वास तथा सहनशीलता का परिचय देना चाहिए था। पर इसकी जगह पर जेम्स मिल के अनुसार "गवर्नर जनरल तथा अंग्रेजों की मनोदशा और नैतिकता ऐसी थी कि एक फ्रांसीसी की उपस्थिति भी उनकी चिन्ता का कारण बन जाती थी।"[2]

पर वेलजली का कहना था कि वह एक सिद्धान्त के लिए लड़ रहा है। केवल इसलिए नही कि टीपू अत्यधिक शक्तिशाली है जिससे ब्रिटिश अहित की संभावना है। अब तक अत्यधिक सहनशीलता का परिचय इस बात का दिया गया था कि अपनी उद्दडता के बावजूद टीपू को तीसरे मैसूर युद्ध के उपरांत भी पद से नही हटाया गया था। उसने अब भी ब्रिटिशों के विरुद्ध नीति अपना रखी थी जो अधिक दिनों तक सहन नही की जा सकती थी। इतना ही नही, गृह विभाग की भी यह सूचना थी कि टीपू ने फ्रांसीसियों से संबंध स्थापित करने का सीमोल्लंघन कर दिया है और अब उसकी महत्त्वाकांक्षा सहन नही की जा सकती। जैसा भी हो टीपू के हटने से एक और भारतीय शासक का पतन हो गया। मिल ने लिखा है कि "पूर्व के राजाओं मे ब्रिटिशों के विरोध के लिए वह भारी था।"

टीपू स्वतंत्रता का पुजारी था और वह ब्रिटिश गुलामी को किसी भी रूप या रंग में नापसंद करता था। इसमें संदेह नही कि यदि अपने उद्देश्यों में वह कम महत्त्वाकांक्षी और शक्तिहीन होता तो ब्रिटिशों की संरक्षता में वह भी निजाम की तरह स्थिति बनाये रखते हुए धनी-मानी बना रह सकता था। वह सुलह-सपाटे में विश्वास नही करता था और, शत्रु के समक्ष घुटने टेकने की जगह पर एक साधारण सैनिक की भांति मर जाना पसंद करता था। वह ब्रिटिशों के हाथ अपनी स्वतंत्रता बेचने के भी पक्ष मे नही था। पी० ई० राबर्ट्स ने लिखा है: "लोग अपने गुण और अवगुण के प्रति समानुरूप नही होते। टीपू का ऐसा पुरुषो-

---

1. फिलिप्स, सी० एच० : ईस्ट इंडिया कंपनी, 1940, पृ० 104।
2. मिल : पूर्वोद्धृत, भाग-6, पृ० 105।

चित उद्देश्य अहितकर व दुराग्रहपूर्ण होते हुए भी पूर्वी शासकों में इतनी स्थिरता से नही प्राप्य है और इसी कारण वह अपनी भयानक बुराइयो के होते हुए भी अंग्रेजो के विरोधियो मे सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने में सक्षम है; क्योकि पूर्व मे इच्छा, उद्देश्य और व्यक्तित्व ही सब कुछ है जो राजनीति के क्रुद्ध, कष्टदायी और अप्रभावी लहरों के समुद्र को बड़ी जहाज के लोहे की मान्दान की तरह चीरकर आगे बढ़ जाते हैं।"[1]

टीपू के ऊपर यह आरोप भी है कि वह धर्म-विरोधियों के विरुद्ध क्रूर था। बावरिंग लिखता है कि 1784 मे जब उसने कनारा और मालाबार को ब्रिटिशो से छीना "तो वहां से 30 हजार ईसाई लोगो को भगाकर इस्लाम धर्म के प्रति अति उत्साह का परिचय दिया। इन लोगो को मैसूर की ओर जाना पड़ा।" "ऐसा कहा जाता है कि टीपू ने इन ईसाइयो में से कुछ की कन्याये अपने हरम मे रखने के लिए मांगी थी और उनके सरक्षको के इन्कार करने पर उनकी नाक, कान और ऊपर के होंठ कटवाकर गधो पर पूछ की ओर मुंह करके बैठाकर गलियों में घुमवाया था।" टीपू ने अपनी इस कार्रवाई को यह कहकर उचित ठहराया कि पुर्तगालियों ने पश्चिमी घाट के क्षेत्रो मे जब बस्तियां बसाई तो उन्होंने भी गैर-ईसाइयों के प्रति इसी प्रकार का दुर्व्यवहार किया था।[2]

जो ऊपर कहा गया है, हो सकता है उसमें कुछ सत्य का अश हो पर यह कहना कि टीपू गैर-मुसलमानों के प्रति पूर्णरूप से अमानवीय दृष्टिकोण अपनाता था, सही नही है। बावरिंग स्वयं लिखता है कि मृत्यु से पूर्व जिस कठिनाई ने उसे आ घेरा, उससे बचने के लिए उसने "ब्राह्मणों से पूजा तथा मंत्रोच्चार कराया", जो उसके घृणास्पद विचारों के बावजूद "उसके कट्टर इस्लामवाद"[3] के उदारता का परिचायक है। सच तो यह था कि पुरनैया और कृष्णराव जैसे हिन्दू ऐसे थे जो टीपू के राज्य मे ऊंचे स्थानो पर थे और विश्वासपात्र तथा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य संभालते थे। यदि कुछ अंग्रेज लेखक टीपू पर ईसाई विरोधी होने का आरोप लगाते है तो यह बात समझ में नही आती कि इन परिस्थितियों में फ्रांसीसियों से उसका संबंध कैसे ठीक बना रह सका। हमारे मत में सत्यता का अश तब अधिक होगा जब हम यह कहें कि टीपू अपने शत्रुओं के प्रति अधिक क्रूर था, सभी गैर-मुसलमानों के प्रति नही।

प्रशासन के रूप मे टीपू जिस भी क्षेत्र के सपर्क मे आता उसमें सुधार करने का उसे नशा हो जाता। वह विदेशों मे अपने व्यापार को बढ़ाना चाहता था

1. राबर्ट्स : पूर्वोद्धृत, पृ॰ 61-62।
2. बावरिंग : पूर्वोद्धृत, पृ॰ 125-127।
3. वही, पृ॰ 197।

जिसके लिए विदेशों में उसने दूत भेजे। उसने 9 कमिश्नरों का एक बोर्ड आफ ट्रेड स्थापित किया जो समुद्र एवं स्थल से होकर व्यापार के विकास का कार्य करते थे। उसने नाप-तौल-विधि मे परिवर्तन किया, नया कैलेण्डर प्रारभ किया, नवीन सिक्के चलाये, तमाम नये सुधार किये और घूसखोर अधिकारियो के विरुद्ध कठोर कार्रवाई की। उसने सेना को पुनर्गठित किया और युद्ध विधियों को संग्रहीत किया तथा विभिन्न स्तर के अधिकारियों के कर्तव्य आदि का निश्चय किया।

टीपू उद्बुद्ध निरकुश था। वह विद्वता का आदर करता और विद्वानों को संरक्षण देता। वह स्वयं तमाम भाषायें जानता था। फारसी में उसकी विशेष रुचि थी और इसके लिए उसने एक शानदार पुस्तकालय की स्थापना कर रखी थी।

डिरों लिखता है "उसके राज्य मे मस्ती की पूर्णता थी तथा जमीन की कोटि के अनुसार खेती-बारी भी खूब होती थी। उसके सैनिको की उसके पतन के समय तक विश्वासपात्रता और अनुशासनप्रियता बनी रही और सेना में कायदे से कार्य होता रहा। उसकी सरकार वैसे तो कठोर एवं स्वेच्छाचारी थी, पर उसमें एक योग्य शासक की चतुराईपूर्ण निरंकुशता थी।"[1]

पर भारतीय शासक जितने ही कार्यकुशल और उन्नत विचारों के होते, उतनी ही ब्रिटिश ईर्ष्या और आकुलता मे वृद्धि की सभावना हो जाती। संभवतः यही टीपू सुल्तान के साथ भी हुआ।

1. डिरो : ए नैरेटिव आफ द कम्पेन्स इन इण्डिया, पृ० 249, राबर्ट्स द्वारा उद्धृत, पूर्वोद्धृत, पृ० 60।

सर जान शोर (1793-1798)

रोमफोर्ड स्थित टामस शोर और उसकी पत्नी डोरोथी का पुत्र, जान शोर जो बाद में लार्ड टीनमाउथ हो गया, 8 अक्टूबर 1751 में सेण्ट जेम्स स्ट्रीट लंदन में पैदा हुआ। उसने हैरो मे शिक्षा प्राप्त की, होक्सटन में बुक कीपिंग सीखी और 1768 में ईस्ट इंडिया कंपनी में लिपिक हो गया। वह 1769 में बंगाल पहुंचा। इसी वर्ष वन्सीटार्ट ने अंग्रेज सुपरवाइजरों को जिलों में राजस्व वसूली के लिए नियुक्त किया था। इन्हें भूमि, इसके उपजाऊपन और भूमि अधिकार की जानकारी प्राप्त करने का भी कार्य सौंपा गया।

क्लाइव ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी का अधिकार गृहविहीन मुगल सम्राट शाह आलम से 1765 में प्राप्त किया था। इस अधिकार में राजस्व वसूली व नागरिक न्याय प्रशासन का कार्य भी आता था। पर ईस्ट इंडिया कम्पनी अभी तक इन शक्तियों के प्रयोग की न तो इच्छा ही रखती थी और न शक्ति ही, इसलिए ये अधिकार बंगाल के कठपुतली नवाब के हाथ में सौंप दिये गये। नवाब कर वसूली अपने राजस्व कर्मचारियों के माध्यम से करता था और मुर्शिदाबाद में ब्रिटिश रेजीडेन्ट के पास सारा संग्रहीत धन भेज देता। अपने व्यय हेतु वह एक निश्चित धनराशि अपने पास रख लेता था। यह प्रथा जिसके अंतर्गत ब्रिटिशों ने सारी शक्ति अपने हाथों में रखी और उत्तरदायित्व नवाब के हाथ में बना रहने दिया, क्लाइव की द्वैध व्यवस्था के नाम से जानी जाती है।

पर समय बीतने के साथ ब्रिटिश राजस्व की मांगें बढ़ती गईं, जनता की कठिनाई बढ़ती गई, पर कलकत्ता के अधिकारियों का यह विश्वास अब भी बना रहा कि कृषकों को लाभ के अत्यधिक अवसर थे। वे यह भी सोचते थे कि नवाब के कर्मचारी इसका लाभ भी अर्जित करते हैं। इन्हीं परिस्थितियों में सुपरवाइजरों की नियुक्ति की गई।

शोर जब बंगाल पहुंचा तब सचमुच कठिनाई का काल था। कंपनी ने सुपर- वाइजरों की नियुक्ति करके बंगाल में उत्तरदायित्व ग्रहण करने के क्षेत्र में कदम उठाया, पर इसे अभी तक इस बात का पता नहीं था कि उसे कितनी महती समस्या का समाधान करना है। भूस्वामी कौन है लगाना सरल न था। भूमि में खेती करने वाला रैय्यत

ऊपर जमीदार और उनके एजेण्ट होते थे। इन जमीदारों में से कुछ इन्हीं अधिकारियों के वंशज थे जिन्हें कर वसूल कर वेतन या पेन्शन की जगह पर अपने पास रखना था। समय बीतने के साथ ये वंशगत राजस्व वसूल करने वाले अपने को भूस्वामी मानने लगे जबकि असली खेती करने वाले किसान माने जाने लगे। कुछ ऐसे भी जमीदार थे जो राजस्व देने वाले किसान थे और बट्टे पर राजस्व की वसूली करते थे पर समय बीतने के साथ वे अपने को पैतृक मानने लगे और अब अपने को असली स्वामी मानने लगे। कुछ जमीदार साधारण सरदारों के वंशज थे जो सम्राट को कर प्रदान करते थे। इन जमीदारों के नीचे ऐसे लोग थे जिन्हें सहायक जागीरदारी के पैतृक अधिकार प्राप्त थे। इसके बाद इनसे भी नीचे कई कोटि के छोटे-छोटे कई श्रेणियों के जागीरदार थे। इन खून चूसने वालों के नीचे था दबा और बुरी तरह से कुचला खेतिहर।

पीढ़ियों से रैय्यतों ने जमीदारों को अपना शासक और मालिक स्वीकार किया था और उनके विरुद्ध अब सच बोलने की स्थिति में नहीं थे। इन सभी के अतिरिक्त खेती-बारी का हिसाब-किताब रखने वाले वर्ग के लोग भी थे जिन्हें प्रारंभ में भूमि की कोटि, भूस्वामी तथा कर की दर तथा उसकी विधि की जानकारी प्राप्त करने के लिए नियुक्त किया गया था। कानूनगो नाम से जाने जाने वाले ये लोग भूस्वामियों के हित-चिन्तन में व्यस्त थे तथा राजस्व वसूली करने वालों व जमीदारों पर निगाह रखते थे। इन्हें भी पैतृक शक्ति प्राप्त थी। ये कागज-पत्रों को अपना व्यक्तिगत धन समझते और जमीदारों से मिलकर रैय्यत के खून चूसने वाली नयी शक्ति के रूप में कार्य करते थे। वे जमीदारों से न तो विश्वासघात ही करना चाहते थे और न ही ब्रिटिश सुपरवाइजरों को वांछित सूचना ही देना चाहते थे। उनकी सूचना भी विश्वस्त न रही थी क्योंकि इन कागजातों में पीढ़ी दर पीढ़ी धोखाधड़ी का अंश बढ़ गया था और अब आवश्यकता थी कि कई वर्षों तक आंकड़े एकत्रित कर इसे सही करने के लिए जिलों में सुपरवाइजरों को भेजा जाय। इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि अपने कर्त्तव्यों की ओर ध्यान देने की जगह पर इन्होंने अपने को व्यक्तिगत व्यापार में फसा लिया और अन्य तौर-तरीकों से धन अर्जित करने लगे और थोड़े ही काल में वे दुर्भाग्यपूर्ण और पहले से ही दरिद्रभूमि पर एक भार बन गये।

इन परिस्थितियों में शोर भारत आया। भू-राजस्व व्यवस्था की समस्या कंपनी के समक्ष सबसे बड़ी समस्या थी और जान शोर ने तुरत इस ओर ध्यान दिया। 1770 में उसे राजस्व कौंसिल का मुर्शिदाबाद में सहायक नियुक्त किया गया था। इस पद पर रहते हुए उसने राजस्व के मुकदमे निबटाये। कौंसिल के प्रधान एवं अन्य सदस्यों के सुस्ती के कारण या उनके यात्रा पर रहने के कारण उसने अत्यधिक परिश्रम किया और लगभग उनके सभी कार्यों की देखभाल की।

इस कारण शीघ्र ही वह राजस्व के मसले पर एक अधिकारी व्यक्ति माना जाने लगा। उसने फारसी भाषा इसलिए सीखी क्योंकि तत्कालीन कागजात इसी भाषा में थे। 1772 में वह राजशाही के रेजीडेण्ट का मुख्य सहायक नियुक्त किया गया और 1775 व 1780 के बीच उसने लगातार कलकत्ता की राजस्व कौंसिल के सदस्य के रूप में कार्य किया और फिर ढाका के राजस्व कमिश्नर के पद पर कार्य किया। 1786 में अवकाश पर वह इंगलैंड गया जहां उसने चार्लोट कोर्निश से विवाह किया जिसका पिता एक डॉक्टर था और जो मध्यम श्रेणी का था। 1786 में बंगाल के गवर्नर जनरल कौंसिल का उसे सदस्य नियुक्त किया गया। उसी वर्ष शोर कलकत्ता के बोर्ड आफ रेवन्यु का प्रेसीडेन्ट हो गया और एक विचारधारा का नेतृत्व करने लगा जो कंपनी के बगाल में राजस्व सबंधी वन्दोबस्त को अपनाने का पथ प्रदर्शित करते थे। इसके अतिरिक्त दूसरी विचार-धारा के समर्थक जेम्स ग्राण्ट थे जो शेरिस्तादार अथवा रिकार्ड ऑफिस के प्रधान थे। कार्नवालिस के अंतर्गत जान शोर का निश्चित मत था कि किसके साथ और कितने समय तक के लिए राजस्व का बंदोबस्त किया जाना चाहिए। कार्नवालिस जान शोर की बात मानने के अधिक पक्ष मे था और उसने 1793 में बंगाल मे इसीलिए भू-राजस्व की स्थायी व्यवस्था चालू की।

1790 में जान शोर इंगलैंड वापस लौटा जहा उसने वारेन हेस्टिंग्स के अभियोग के मुकदमे मे उसके पक्ष में गवाही की। 1792 में उसके लिए बैरोनेट का स्थान सृजित किया गया और अगले वर्ष उसे बंगाल मे लार्ड कार्नवालिस का उत्तराधिकारी गवर्नर जनरल बना दिया गया। पर गवर्नर जनरल की हैसियत से उसका चरित्र उत्साह का भाव उत्पन्न करने वाला नहीं था; उसके प्रति लोगों में न तो अगाध प्रेम था और न घृणा, उसके जीवन मे उत्साह व उमंग का भाव भी नही था। वह निष्पक्ष था, उसके कार्य मे सम्पूर्णता थी, वह परिश्रमी था, वह सयमी था और वह था ईमानदार।[1] और इतना ही है जो उसके विषय में कहा जा सकता है।

शोर एक शातिप्रिय व्यक्ति था, या जिस बात पर अधिक बल दिया जाता है, वह यह थी कि वह एक कमजोर व्यक्ति था। इस सबंध मे टीपू सुल्तान का उदाहरण दिया जाता है। तृतीय आग्ल मैसूर युद्ध में कार्नवालिस ने टीपू को प्रभावी ढग से पराजित किया था। एक दूरदर्शी गवर्नर जनरल ने उसे शक्ति अर्जित करने का अवसर न प्रदान किया होता। टीपू ने उसके काल मे अफगा-निस्तान के जमानशाह से सबध स्थापित किया, अन्य मुस्लिम देशों को दूत भेजे और अग्रेजों के विरुद्ध, फ्रांसीसियों से सहायता प्राप्ति की चेष्टाएं की। सर जान

1 वुड्रफ, फिलिप : पूर्वोद्धृत, द फाउण्डर्स, पृ० 133।

शोर ने यह सब तब तक झेला जब तक कि टीपू पुनः शक्तिशाली न हो गया और शोर के उत्तराधिकारी वेलजली को चतुर्थ मैसूर युद्ध में लड़ाई लड़कर टीपू को सदा के लिए तहस-नहस कर देने का अवसर न आया।

जान शोर के समय में ब्रिटिश शत्रु ही शक्तिशाली नही हो गये और समस्यायें पैदा की वल्कि ब्रिटिश मित्र भी ब्रिटिशों का समर्थन नही प्राप्त कर सके जिसके कारण उन्होंने उनमे विश्वास खोना ही नही प्रारंभ कर दिया बल्कि ब्रिटिशों की कठिनाई के काल में सहायता करने मे अक्षम हो गये। ऐसा ही निजाम हैदराबाद के संबंध में हुआ जो अन्यों की तुलना में हर कठिनाई में ब्रिटिशों का साथी रहा था। शोर के समय में मराठों के झुण्ड-के-झुण्ड ने उस पर आक्रमण किया और ब्रिटिशों से सहायता का उसका निवेदन वेकार गया। खर्दा मे वह पराजित कर दिया गया और एक अपमानजनक सधि के अतर्गत उसे अपने तमाम क्षेत्र गंवा देने पड़े। ऐसी स्थिति मे ब्रिटिश दोस्ती से उसका विश्वास उठ गया, उसने नई सेना भर्ती करनी प्रारंभ कर दी और फ्रांसीसी अधिकारियों से उन्हें प्रशिक्षण दिलाना प्रारभ किया। वेलजली को बाद में निजाम को अपनी छत्रछाया मे लाने के लिए पुनः चेष्टा करनी पड़ी।

जान शोर अपने पूर्ववर्तियों से भी भिन्न था। उसके पास वारेन हेस्टिंग्स की वेधनीय आखे नही थी जिसने 18वी सदी के सातवें दसक मे पजाब की उन घटनाओं पर भी चिन्ता व्यक्त की थी जहां छोटे-छोटे सिख सरदार पूरे प्रान्त पर अधिकार करके आपस में ही एक-दूसरे का गला काटने मे जुटे हुए थे। हेस्टिंग्स यह समझता था कि शीघ्र ही इनमे से कोई सरदार सभी को परास्त कर अत्यधिक शक्ति प्राप्त कर बाहर वालों के लिए एक समस्या वन जायगा। जान शोर के समय में पजाब के सुकर चकिया क्षेत्र के सरदार रणजीतसिंह ने पूरे पजाव पर अधिकार कर एक नये राजतंत्रीय शासन की परंपरा प्रारंभ कर दी। पर शोर ने इस संबंध में कुछ भी न किया।

शोर के अपने शासितो के संबंध मे भी कुछ विचित्र विचार थे और वेतुके ढग से एक वार उसने लिखा : "बगाल की जलवायु धर्म के लिए उपयुक्त नही है। भारत मे लम्बा निवास उदासीनता को जन्म देता है जो आत्मा की शक्ति को जड़ बना देता है—और मेरा यह सदा से विचार रहा है कि धर्म के प्रति नगण्यता का भाव उसके प्रति पाप से भी अधिक जघन्य है।" और पुनः "यदि हम उन्हें प्रसन्नता प्रदान करें भी, तो उसमें उनका सहयोग नही मिलेगा।"[1]

पर वह अपने प्रति ईमानदार था और जनता के प्रति सद्भाव रखता था। उसने लिखा : "जब मैं अपने को ढाई करोड़ लोगो का शासक होने का अनुभव

1. कोडेड वाई वुड्रफ, फिलिप : पूर्वोद्धृत, द फाउण्डर्स, पृ० 133, 134।

करता हूं'''तो इतने बड़े उत्तरदायित्व के बोध से मैं कांप जाता हू । जिस भी स्थिति मे हो, मैं प्रत्येक भारतवासी का अपने पर अधिकार मानता हूं; और मैं स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक मनोरजन को छोड़कर एक क्षण भी नही चाहता और जल्दी से जल्दी कार्य निबटाना चाहता हू ।"[1]

शोर मे सबल साहित्यिक भाव थे। उसने काफी हद तक फारसी भाषा सीख ली थी और वह "योग-वाशिष्ठ के फारसी अनुवाद के तीन भागो को जो संस्कृत के वेदान्त दर्शन से संबद्ध था, समय निकालकर अंग्रेजी मे अनुवाद करता रहता था। वह अपने पत्र व्यवहार में अरबी कविताओं के अनुवाद रखने का अभ्यस्त हो गया था।"[2]

1798 में शोर ने अपने गवर्नर जनरल के पद से त्यागपत्र दे दिया और इगलैंड चला गया। वहा उसे "लार्ड टीनमाउथ का आयरिश पियर बनाया गया। वैसे उसने आयरिश हाउस आफ लार्ड्स में यह जगह कभी ग्रहण नही की।"[3] 1807 में उसे प्रीवी काउन्सिलर एवं भारत मे बोर्ड आफ कण्ट्रोल का सदस्य बना दिया गया। धर्म में उसकी विशेष रुचि थी और अपने बाद के वर्षों मे उसने ब्रिटिश एवं फारेन बाइबिल सोसाइटी के प्रथम प्रेसीडेन्ट की हैसियत से कार्य किया। 14 फरवरी 1834 मे लंदन मे उसकी मृत्यु हो गई।

विस्काउन्ट मेरसे ने उसके विषय मे लिखा है कि "सुस्त और खरा शोर न तो बड़ा शासक था और न इतिहास निर्माता, पर उसने इंडिया बोर्ड के एशियाई क्षेत्रों के गभीर और विश्वस्त प्रशासक के लिए ऐसे गुणों का परिचय दिया जो उनके लिए शांति और लाभ ला सका और युद्ध तथा बड़े व्ययों से बचा सका।"[4] पर शोर के उत्तराधिकारी लार्ड वेलजली की उसके विधियों के सबध में अत्यधिक तीव्र या यों कहा जाय कि आत्मदर्पपूर्ण विचारधारा थी। उसने लिखा था कि "उसका छोटे परिवार मे जन्म, उसका अशिष्ट व्यवहार एव पूर्व की आदतें तथा कंपनी की सेवा मे प्राप्त उसकी शिक्षा, उसका स्वाभाविक सकोच और अनाड़ीपन सभी ने उसकी अकर्मण्यता, भीरुता व बीमारी में वृद्धि ही की। इसने इस सरकार के साम्राज्य के प्रत्येक वसत को एक सिरे से दूसरे सिरे पर पहुंचा दिया। और सरकार के केन्द्र स्थल पर गवर्नर जनरल के व्यक्तित्व, प्रतिष्ठा और अधिकार का विधिवत् पतन कर दिया। यह सरकार के अंतिम काल का सही चित्रण है; छोटी प्रेसीडेन्सियों मे इसके पूर्व भारत मे इससे अधिक अकार्यक्षम्य

1. कोटेड बाई वुड्रफ : पूर्वोद्धृत, द फाउंडर्स, पृ० 149।
2. वही, पृ० 147-48।
3. मेरसे, विसकाउन्ट : द वायसरायज एण्ड गवर्नर जनरल्स आफ इंडिया, पृ० 28।
4. वही, पृ० 29।

व्यक्ति ने शासन नही किया, इससे अधिक लापरवाह और भीरु व्यक्ति वैदेशिक सबंधो के मामले में सामने नही आया, इससे अधिक गलत तथा एकतरफा सरक्षण किसी ने प्रदान नही किया और (और स्पष्ट करने के लिए) नागरिक या सैनिक सेवा के सभी वर्ग के लोगों द्वारा या भारत निवासियो द्वारा या शासन केन्द्र स्थल पर निवास करने वाले युरोपीयों द्वारा उसके प्रति सबसे कम भय व्यक्त किया गया तथा सबसे कम आदर भी व्यक्त किया गया।"[1]

1. हिस्टारिकल मैनुसक्रिप्ट्स कमीशन। मैनुसक्रिप्ट्स ऑफ जे० बी० फोरटेस्क स्वायर एट ड्रेपमोर, भाग-4, पृ० 383, कोटेड बाई पी० ई० राबर्ट्स : इंडिया अडर वेलजली, पृ० 180-81।

मार्क्विस वेलजली (1798-1805)

"वेलजली लोग अपने वंश की उत्पत्ति द वेलेस्लेग लोगों से मानते है, जिनमें से एक ने हेनरी द्वितीय के आयरलैण्ड जाते समय उसका झडा हाथ में लिया था।"[1] रिचर्ड कोले वेलजली, मोर्निगटन के अर्ल बैरन मार्निगटन एवं प्रथम विस्काउन्ट वेलजली जिसे गैरेट-वेलजली कहा जाता था, का पुत्र था। यह आयरलैंड के भूस्वामियों का एक परिवार था। रिचर्ड का जन्म डगन कैसिल के मीथ काउन्टी में 20 जून 1760 को हुआ। उसकी मां ऐने हिल ट्रेवल थी जो विस्काल्ट डगन्नान की पुत्री थी। इक्कीस वर्ष की आयु मे 1781 में उसके पिता का देहान्त हो गया। पर मा उसकी शानदार सफलताओं को देखने के लिए 1831 तक जीवित रही। ट्रिम मे प्रारंभिक शिक्षा के बाद दस वर्ष की आयु में रिचर्ड को हैरो भेजा गया जहा कुछ कठिनाइयों के कारण उसे इटन भेज दिया गया। इसके छ: वर्ष के बाद उसे क्राइस्ट चर्च आक्सफोर्ड भेजा गया जहा उसे लैटिन कविता के लिए चासलर का पारितोषिक प्रदान किया गया। पर वह कोई डिग्री नही प्राप्त कर सका और उसके पिता की मृत्यु ने उसके अध्ययन में व्यवधान उपस्थित कर दिया। इसके बाद वह मार्निगटन के द्वितीय अर्ल के रूप मे उत्तराधिकारी हुआ और अपने परिवार की देखभाल करने लगा।

रिचर्ड नारियों में अत्यधिक लोकप्रिय था पर विवाह उसने बहुत बाद मे किया। उसकी एक प्रेमिका गैब्रील रोला थी, उससे पांच सताने थी जिससे उसने बाद में विवाह किया। आयरिश हाउस आफ लार्ड्स में एक स्थान प्राप्ति के बाद 1781 मे वह हाउस आफ कामन्स का सदस्य चुना गया। 1786 में हेस्टिंग्स की रोहिल्ला नीति पर बहस के समय उसने अपना प्रथम भाषण दिया। उसे ट्रेजरी का जूनियर लार्ड पद भी दिया गया। वह बोर्ड आफ कंट्रोल का सदस्य भी नियुक्त हुआ था। उसे भारत का गवर्नर जनरल का पद भी प्रदान किया गया और मई 1798 मे वह सर जान शोर से कार्यभार ग्रहण करने हेतु कलकत्ता पहुंचा। 1793 मे शोर कार्नवालिस का उत्तराधिकारी हुआ था, पर तुलनात्मक दृष्टि से उसका काल महत्त्वपूर्ण न था।

---

1. गिलियट, मदवड : हीरोज आफ माडर्न इंडिया, पृ० 67।

वेलजली के आगमन पर भारत

जब वेलजली भारत पहुचा ब्रिटिशों का बंगाल, बम्बई और मद्रास पर अधिकार था जो बीच में पड़ने वाले राज्यों के कारण एक-दूसरे से अलग-थलग थे जिनके शासक एक-दूसरे से लड़ते रहते थे और जिनकी राजनीतिक कार्यवाहियों से ब्रिटिश अपने को असम्बद्ध नही रख सकते थे। पिट के इडिया ऐक्ट और 1793 के चार्टर ऐक्ट ने वगाल को अन्य दो प्रेसीडेन्सियों से अधिक अधिकार प्रदान कर दिया था, पर बम्बई और मद्रास की आत्म नियंत्रित राजनीतिक स्वतंत्रता अब भी समाप्त नही हुई थी।

मुगल सम्राट शाह आलम 1765 में ही ब्रिटिश संरक्षता में लाया जा चुका था। पर 1771 में वह सिंधिया और होल्कर द्वारा लालच देकर पुनः दिल्ली की गद्दी पर बैठा दिया गया। पर आंतरिक समस्याओ के कारण जब सिंधिया ने अस्थायी रूप से अपना संरक्षण वापस ले लिया तो रोहिल्ला सरदार गुलाम कादिर ने 1788 में बादशाह को अधा कर दिया। एक समय तो वारेन हेस्टिग्स ने बादशाह से सबंध ही तोड़ लिए और उसे कर देना बंद कर दिया तथा 1765 मे उसे प्रदान किये कड़ा और इलाहाबाद पर भी अपना अधिकार कर लिया। पर शीघ्र ही मित्रतापूर्ण सबंध पुनर्स्थापित किये गये। पर वेलजली के भारत पहुंचने पर दिल्ली पर मराठों का अब भी अत्यधिक प्रभाव था।

अन्य भारतीय शक्तियों मे मराठों के पास विस्तृत राज्य और अत्यधिक साधन थे पर इनमें अनुशासनहीनता, निरंकुशता, अनबन और आपसी संघर्ष द्रष्टव्य था। पेशवा पद के उत्तराधिकार के संघर्ष को लेकर पूना कमजोर हो गया था। बाजीराव द्वितीय जो इस समय इस पद पर था, उसमें राज्य मे स्थित बुराई को दूर करने की न तो क्षमता थी और न इच्छा। दिल्ली का अधिपति सिंधिया अपनी ही शक्ति बढ़ाने मे लगा हुआ था। उसकी सेना का प्रशिक्षण और अनुशासन फ्रासीसी अधिकारियों के कधों पर रख दिया गया था। इनमे से सबसे महत्त्वपूर्ण पेरो था जिसने जमुना के किनारे स्वतत्र राज्य की स्थापना कर रखी थी और उसके द्वारा नैपोलियन की सरकार की ओर से ब्रिटिशों के विरुद्ध कार्रवाई की भी आशा थी। होल्कर और भोसले भी ब्रिटिशो के प्रमुख विरोधी थे जिनसे वेलजली को निबटना था।

मैसूर में टीपू सुल्तान शासक था। तृतीय मैसूर के युद्ध ने और 1792 की सेरिंगपट्टम की सधि ने उसे बहुत कमजोर कर दिया था। पर उसकी महत्त्वाकांक्षा पर अब भी रोक न लग पायी थी। वह ब्रिटिशों और उसके मित्रो मे भेदभाव पैदा करने की नीति अपना रहा था। उसका अफगानिस्तान के जमानशाह से संबंध तथा मारीशस मे अपना दूत फ्रासीसियों से संपर्क हेतु भेजना, यह प्रमाणित करता

था कि उसके तथा ब्रिटिशो के बाच संघर्ष अधिक काल तक के लिए नही टाला जा सकता था।

निजाम मराठों द्वारा खर्दा मे पराजित किया जा चुका था और वेलजली का पूर्वाधिकारी जान शोर उसकी सहायता के लिए उसके निवेदन के बावजूद गया था जिसके परिणामस्वरूप वह फ्रासीसियों से मिल गया जिन्होंने उसके लिए युरोपीय ढंग की 14 हजार की प्रशिक्षित सेना तैयार करा दी और उनकी निजाम के क्षेत्र मे उपस्थिति, युरोप में ब्रिटिशों और फ्रासीसियो के संघर्ष की पराकाष्ठा की पृष्ठभूमि में, एक भयानक समस्या हो सकती थी।

अवध का नवाव ब्रिटिश आर्थिक मांगों के नीचे दवा हुआ था। उसका आतरिक प्रशासन टूट चुका था जवकि उसके सामन्तों में विद्रोह के लक्षण दिखाई पड़ रहे थे। अवध के व्यक्तिगत ब्रिटिश व्यापारी जो किसी के नियंत्रण में नही थे लोगों का शोषण कर रहे थे और अशांति पैदा कर रहे थे।

कर्नाटक का नवाव ऋण बोझ से दवा हुआ था। उसके हाथ से शक्ति बहुत पहले ही निकल चुकी थी। पर चूकि यह राज्य मद्रास के निकट था इसलिए इसके प्रभाव से कपनी के कर्मचारी काम भ्रष्ट ही नही हो गये थे वल्कि उसके लिए अपने राज्य मे प्रशासकीय सुधार करना कठिन हो गया था। और जहा तक अन्य छोटे राज्यों का संबंध है, दिल्ली के दक्षिण पश्चिम के राजपूतो की चर्चा अवश्य की जानी चाहिए जो मराठों की आक्रामक नीति से बचने के लिए ब्रिटिश संरक्षण के इच्छुक थे। पर ब्रिटिशो ने उनकी निर्हस्तक्षेप की नीति के कारण उनकी ओर ध्यान नही दिया था।

वाहर से नैपोलियन थलमार्ग से भारत पर आक्रमण की योजना बना रहा था। इंगलैण्ड की फ्रांसीसियों के विरुद्ध प्रथम संघ की योजना असफल हो चुकी थी; आयरलैण्ड मे विद्रोह की स्थिति पैदा हो गई थी; नवसेना मे विद्रोह हो रहे थे और आर्थिक कठिनाइयां थी। इन सभी ने ब्रिटिशों का अस्तित्व खतरे मे डाल दिया था। ये परिस्थितियां थी जव वेलजली भारत आया।

सामान्य ढंग से वेलजली के भारत में नियुक्त होने के समय हम वी० ए० स्मिथ को उद्धृत कर सकते है जिसने लिखा है कि "भारत और युरोप दोनों स्थानों पर राजनैतिक स्थिति मे परिवर्तन हो चुका था। यह स्पष्ट होता जा रहा था कि भारतीय शक्तियां अपने आप ऐसी शक्ति के राजनीति का विकास नही करेंगी जिससे एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का जन्म हो सके। 18वी सदी के युरोप की सयुक्त व्यवस्था के तरह की भारतीय शक्तियों की संयुक्त व्यवस्था सामने नही आयेगी। व्यापार अपने लिये शांति की चाह करता था लेकिन स्थायी हथियार की व्यवस्था इसके लाभों पर प्रहार करता था। जो लोग सतुलन के पक्षधर थे इसीलिए अव ब्रिटिशो के लिए भारत मे प्रभुता को राजनैतिक उद्देश्य मानने

लगे, यहां तक कि कपनी मे भी ऐसे लोग हो गये जो कंपनी की अग्रगामी नीति के पक्षधर हो गये जिससे आगे चलकर धन भी कम व्यय होने की संभावना थी। युरोप के वातावरण मे और परिवर्तन था। फ्रांसीसी क्रांति को एक युग का प्रारंभ करने वाली घटना मानने का काल समाप्त हो चुका था'''ब्रिटिश प्रशासक वर्ग सशंकित और तनावग्रेस्त था। 1796 में फ्रासीसियों द्वारा इटली पर आक्रमण के बाद उनका कोई भी कदम अविश्वसनीय नही था और उनका आगे बढ़ना स्वागतयोग्य था।"[1]

इसी पृष्ठभूमि में वेलजली के भारत में किये गये कार्यों की परीक्षा करनी है। भारतीय राजाओं से उसके संबंध एवं उसके द्वारा अपनाये गये फ्रांसीसी समस्या के विरुद्ध कदम अत्यधिक रुचिकर है। जटिल आन्तरिक और बाह्य समस्याओं के समाधान के लिए जो विधियां उसने अपनाई उनमें से सबसे महत्त्व-पूर्ण सहायक सधि थी। इतिहास के छात्र के लिए इसका सम्यक् अध्ययन आवश्यक है।

सहायक संधि-प्रथा

सहायक सधियों का उद्देश्य पहले से ही प्राप्त ब्रिटिश क्षेत्रों को और संगठित करना था। इसका उद्देश्य यह भी था कि ब्रिटिश क्षेत्रों के चारों ओर एक अंगूठी की तरह का घेरा ऐसे राज्यों का बना दिया जाय जिससे उन्ही की कीमत पर बाह्य आक्रमणों से तो बचा ही जा सकेगा साथ ही इससे ब्रिटिश व्यापार के विकास को भी अवसर प्राप्त होगा और अन्य स्थानों पर उठाई गई हानि की पूर्ति भी संभव हो सकेगी। इसके अतिरिक्त पूर्व में ब्रिटिश शक्ति को खतरा पैदा करने वाली फ्रांसीसी शक्ति के विरुद्ध आवश्यक कदम उठाये जा सकेंगे। इस सधि की प्रमुख विशेषताएं निम्न थी।

ब्रिटिशों से सहायक संधि करने वाले राज्यो को (1) अपने क्षेत्र में निश्चित मात्रा में ब्रिटिश सेना रखनी होती थी। इसका सेनापतित्व ब्रिटिश अधिकारियों के हाथ में होता था। इसका उद्देश्य इस क्षेत्र पर होने वाले वाह्य आक्रमण से उसकी रक्षा तथा वहा विद्रोह के विरुद्ध शान्ति की स्थापना था। इन सहायक सैनिकों के व्यय के लिए संरक्षित राज्य को अपने राज्य का कुछ भाग ब्रिटिशों को देना पडता था जिसका राजस्व इन पर व्यय किया जाता था। (2) उस राज्य का वाह्य संवध ब्रिटिशों के हाथ मे होता था जिनकी जानकारी व अनुमति के बिना वह बाहर से सबध नही रख सकता था। सरक्षित राज्यों के आपसी सघर्ष की स्थिति मे ब्रिटिश बिचौलिये का कार्य करते थे। (3) किसी भी सरक्षित राज्य

1. स्मिथ : द आक्सफर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया. 1961, पृ० 550-51।

को ब्रिटिशो की अनुमति के बिना किसी युरोपीय को सेवा में रखने का अधिकार नही था। इस धारा का प्रयोग विशेषकर निजाम और सिंधिया के लिए किया जाना था। इस सेना को हटा दिया जाना था। (4) प्रत्येक सरक्षित राज्य के दरबार मे एक रेजीडेन्ट रखा जाना था जिसका उद्देश्य संधि ठीक से मानी जा रही है, यह देखना था। वह यह भी देखता था कि राजा ब्रिटिश बंधन से बाहर तो नही जा रहा है।

यदि हम ब्रिटिशों का भारत में भूतकालीन इतिहास देखे तो पता चलेगा कि वेलजली इस प्रथा का संस्थापक नही था। वैसे उसने इसे अंतिम स्वरूप प्रदान किया। इस प्रथा की उत्पत्ति उतनी ही पुरानी थीं जितनी कि ब्रिटिश शक्ति की उत्पत्ति। इस प्रथा के विकास का प्रथम चरण 1768 मे निजाम से की गई ब्रिटिशों की उस सधि मे दिखाई पड़ता है जिसमे आवश्यकता पड़ने पर उसे सहायता देने को कहा गया था। इसके विकास का दूसरा चरण 1798 मे की गई उसी राजा की उस सधि मे दर्शनीय है जिसके अंतर्गत निजाम को 6 बटालियन की एक स्थायी ब्रिटिश सहायक सेना अपने राज्य में रखनी पडी। इस सेना के लिए उसे 2,41,710 पौंड वार्षिक की दर से धन भी देना पडता था। तीसरा चरण वह था जो वेलजली द्वारा सामान्य प्रयोग में लाया गया और जिसके अंतर्गत सहायक सेना पर व्यय हेतु राज्य को अपना एक क्षेत्र ही ब्रिटिशो को सौंपना पड़ता था, और जिसका राजस्व सेना के प्रयोग मे आता था। अंतिम चरण वेलजली का स्वय अपना प्रयोग था। वैसे इसके चिह्न उसके आने के 15 वर्ष पूर्व वारेन हेस्टिंग्स व अवध के संबधो मे दिखाई पड़ते है।

वेलजली ने इस प्रथा को उन सभी राज्यों पर लागू किया जो उसके काल में ब्रिटिश संरक्षण मे आये। वैसे इसका अस्थायी अपवाद सिंधिया था जिसके साथ 1804 की सधि के अतर्गत सहायक सेना उसके क्षेत्र मे न रखी जाकर सीमा पर रखी जानी थी जो आवश्यकतानुसार उसकी सहायता के लिए तैयार रहती।

वेलजली की सहायक सधि के लाभ भी थे और हानि भी। जहां तक लाभ का प्रश्न था एक यह था कि राजाओं की निर्मम आपसी प्रतिद्वन्द्विता, भेदभाव और सघर्ष की समाप्ति हो गई। सरक्षित राज्यों की राजनीति को स्थायित्व प्राप्त हो गया। आधारहीन कारणों के आधार पर युद्ध समाप्त हो गये, बाह्य खतरे समाप्त हो गये और राज्यो का आपसी झगड़ा शातिपूर्ण ढग से समाप्त होने लगा। दूसरे, ब्रिटिशो को यह लाभ हुआ कि भविष्य मे जब कभी उन्हे अपने शत्रु से लड़ाई लड़नी पड़ी तो वह सरक्षित राज्य मे लड़नी पड़ी जिससे उनका क्षेत्र युद्ध की विभीषिका से बच गया। तीसरे, ब्रिटिशों की सैनिक सीमा आगे बढ़ गई। यह पक्का नही था कि सहायक सेना राजाओं से व्यय प्राप्ति की बावजूद उनकी रक्षा ही करेगी। यह भी सभव था कि वह उनके स्वतंत्रता का अपहरण भी करे जैसा कि लार्ड डलहौजी

के काल में उसने किया। सैनिक सीमा में वृद्धि को राजनैतिक सीमा के वृद्धि में जोड़ देना कठिन न था। ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार सरल हो गया। चौथे, ब्रिटिश क्षेत्रों को घेरे हुए संरक्षित राज्यों में शान्ति की स्थापना हो गई जिससे ब्रिटिश क्षेत्रों में ही नहीं संरक्षित राज्यों में भी व्यापार विकसित हुआ और उसके धन के शोषण का मार्ग ब्रिटिशों के लिए ही सुरक्षित हो गया। अन्य युरोपीय शक्तियों को प्रभावी और स्थायी ढंग से दूर कर दिया गया। पांचवें, बिना खर्च के ब्रिटिशों के पास एक बहुत बड़ी सेना हो गई जिसका प्रयोग कहीं भी और किसी के भी विरुद्ध किया जा सकता था। वेलजली ने स्वयं कहा : "हैदराबाद व पूना में तथा गायकवाड़, दौलतराव सिंधिया और गोहद के राणा के क्षेत्र में सहायक सेना स्थापित करके 22 हजार की एक कार्य-क्षम्य सेना तैयार हो गई है जिसका व्यय वे ही देते हैं। इस सेना के पास सभी हथियार हैं और अल्प सूचना पर यह किसी भी दिशा में जाने को तैयार रहती है। यह सेना भारत के किसी भी प्रमुख राज्य के विरुद्ध भेजी जा सकती है। इससे कंपनी के अधिकृत क्षेत्र अशांत भी नहीं होते और भारत सरकार को सेना पर व्यय भी नहीं करना पड़ता।"[1]

संरक्षित राज्य पूर्णतया ब्रिटिश नियंत्रण में आ गए। ये ब्रिटिश साम्राज्य के इस तरह अंग हो गए और अन्य युरोपीयों को ईर्ष्यालु होने का अवसर भी नहीं मिला।

अन्तिम बात यह थी कि ब्रिटिश भारत में अन्य युरोपीय शक्तियों को अलग कर अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करना चाहते थे। इस उद्देश्य में वेलजली की जैसी सफलता किसी को भी प्राप्त नहीं हुई। संरक्षित राज्यों की फ्रांसीसी सेना को समाप्त कर दिया गया। उनके यहा कोई फ्रांसीसी नौकरी नहीं पा सकता था और नेपोलियन की सेना को ब्रिटिशों के विरुद्ध सहायता अत्यधिक कम हो गई थी।

इस प्रथा के दोषों का जहा तक प्रश्न है, प्रथम यह था कि जो संरक्षित राज्य हो जाते थे उन्हें आर्थिक सहायता के रूप में अनुपात में राजस्व से अत्यधिक धन देना पड़ता था जिसका परिणाम था कि उनके क्षेत्र के उपजाऊ भाग हाथ से निकल जाते थे और जो बचते थे उससे उनका अपना ही गुजारा नहीं होता था। जनता पर अधिक कर भी लगाया जाता था जिसके विरुद्ध आवाज उठाने के लिए कोई स्थान न था। दूसरे संरक्षित राजा को आन्तरिक या बाह्य संकट की परवाह की आवश्यकता न रह गई थी। इसके कारण वे अपने प्रशासकीय कर्तव्यों में ढीले पड़ गये और अनैतिक तथा विलासिता के जीवन के शिकार हो गये जबकि दूसरी ओर जनता उस क्षेत्र की अव्यवस्था के नीचे दबकर

1. कोटेड बाई राबर्ट्स, पूर्वोद्धृत, पृ० 36।

कराहती रहती। इससे ब्रिटिशों को हस्तक्षेप का अवसर मिलता और उस क्षेत्र पर डलहौजी की तरह अधिकार का अवसर।

-तीसरे, रक्षा का उत्तरदायित्व ब्रिटिशों के हाथ मे चले जाने से सेना में नौकरी पाने का जनता का दरवाजा बन्द हो गया। जो लोग पहले सेना का नेतृत्व करते एवं आक्रामक या आत्मरक्षा की योजनायें बनाते उनके हाथ से आत्म-निर्भरता, विश्वास और साहस का अवसर जाता रहा। अब वे सभी कार्य के लिए ब्रिटिशों की ओर देखने लगे। उनकी कानाफूसी भी गरजने जैसी लगने लगी।

चौथे, इस प्रथा ने उनमे ईर्ष्या पैदा की जो इस दायरे के बाहर थे। वे ब्रिटिशों के स्वार्थी चरित्र को जान गये जिसके उदाहरण के लिए बाजीराव द्वितीय से की गई सहायक संधि है। इसी सधि ने द्वितीय मराठा युद्ध को जन्म दिया जिससे ब्रिटिश शक्ति तहस-नहस हो गई और इसी कारण वेलजली को वापस भी बुला लिया गया।

सहायक प्रथा की तुलना मराठों के चौथ प्रथा से की गई है जिसके अंतर्गत वे पड़ोसी राज्यों से पूरी आय का 1/4 वसूलते थे और उसके बदले में आक्रमण न करने और वाह्य आक्रमण की स्थिति में सहायता के लिए आश्वस्त करते थे। कभी-कभी इसे सिखों के राखी प्रथा के समतुल्य रखा जाता है जो वे मुगल शासन के पतन के बाद पंजाब के लोगो पर लगा रहे थे। यह अफगानो और मराठो के अनवरत आक्रमण व असुरक्षा तथा लूट-पाट की स्थिति मे और आवश्यक हो गया था। सिख उपज का 1/5 लेते थे। जो यह धन देते थे उन्हें सिखों के 64 क्षेत्रो में बाट दिया गया था जो बाद मे मिलकर 12 ईकाई में कर दिये गये। इन बारह में से सुकरचकिया ईकाई सबसे प्रमुख हो गई और रणजीतसिंह ने पंजाब मे एक राज्य की स्थापना कर ली।

पर सहायक प्रथा चौथ और राखी प्रथा दोनों से इस अर्थ में भिन्न है कि इन प्रथाओं मे संरक्षित क्षेत्र मे स्थायी सेना नही रखी जाती थी और न ही उपजाऊ जमीन उनके व्यय हेतु प्राप्त की जाती थी। संक्षेप मे इन्ही दो बातों ने सहायक प्रथा को कठोर और कष्टदायी बना दिया।

भारतीय राज्यों से संबंध

अवध

अब यह विवेचन शेष है कि अलग-अलग राज्यो से वेलजली का संबंध क्या था और किस तरह उन पर यह प्रथा उसने लागू की। इनमें से अवध का इतिहास आकर्षक है।

हम पहले ही 1765 से ब्रिटिशो से अवध के संबंध की चर्चा कर आये हैं जिस समय कि इलाहाबाद की संधि हुई थी और उसे हेस्टिंग्स के प्रशासन-काल तक

वर्णित किया है।[1] जब कार्नवालिस बंगाल का गवर्नर जनरल हुआ तो नवाब के पास सेना की दो ब्रिगेड थी जिसमें से एक स्थायी ब्रिगेड कानपुर में थी और दूसरी एक अस्थायी फतेहपुर में थी। उसने पहले ही हेस्टिंग्स से यह माग की थी कि स्थायी ब्रिगेड को छोड़कर अवध से सभी सेना वापस बुला ली जाय क्योंकि वह उनका व्यय वर्दाश्त करने मे सक्षम नहीं है। पर अभी इस पर कार्रवाई नही हुई थी। पर 1781 के चुनार की सधि[2] मे इसे मान लिया गया था। इस मांग को नवाब ने कार्नवालिस के समय मे भी दुहराया पर उसने यह माग मानने की जगह आर्थिक सहायता की धनराशि को 75 लाख से घटाकर 50 लाख रुपये कर दिया।

1797 में एक विवादपूर्ण उत्तराधिकार की समस्या आई जब सर जान शोर ने सादात अली को एक नयी संधि के अंतर्गत नवाब स्वीकार कर लिया। सधि की शर्तें थीं—(1) कपनी ने उनके राज्य की पूर्ण सुरक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया और इसके बदले 76 लाख रुपये आर्थिक सहायता की धनराशि तय की। संधि मे यह भी निश्चित किया गया कि यह धनराशि भविष्य में बढ़ाई नही जायेगी। पर गवर्नर जनरल आवश्यक[3] होने पर इसे बढ़ा सकता है (2) इलाहाबाद का किला ब्रिटिशों को दे दिया गया और (3) ब्रिटिशों ने नवाब के गृह समस्याओं तथा आंतरिक कठिनाइयों मे हस्तक्षेप न करने का निश्चय व्यक्त किया।

नवाब पर आरोपित आर्थिक सहायता की राशि अधिक थी फिर भी वह समय से इसे दे देता था। उसका राज्य बेईमान और लालची साहसिकों का गढ़ हो गया था और उसकी प्रशासन-व्यवस्था "पूर्व और पश्चिम दोनों की बुराइयों से क्षतिग्रस्त कर दी गई थी'''स्वस्थ व्यापार का कार्य शोषण करने वालो के कारण खतरे मे पड़ गया था।"[4] पर फिर भी नवाब ब्रिटिशों का स्वामिभक्त बना रहा। पर यह सब भी वेलजली के भारत आगमन पर शोषण से उसे न बचा पाये। टीपू सुल्तान अफगानिस्तान के जमानशाह के सघर्ष मे था और 1798 में भारत पर उसके आक्रमण का खतरा बढ़ गया। यह वेलजली के लिए पर्याप्त कारण था जिसके अन्तर्गत उसने अवध मे सैनिकों की सख्या बढ़ाने का आदेश दिया[5] और सेना के व्यय हेतु आर्थिक सहायता की राशि बढ़ाकर 126 लाख रुपये कर दिया। नवाब इस स्थिति में गद्दी छोड़ने तक को तैयार हो गया। वेलजली इस बात से प्रसन्न हुआ पर उत्तराधिकार के प्रश्न पर मतभेद हो गया। जहा नवाब ने अपने पुत्रों मे

1. वारेन हेस्टिंग्स देखें।
2. अहमद, सफी : पूर्वोद्धृत, पृ० 32-34।
3. इसका अर्थ था कि भविष्य मे कोई भी वृद्धि अस्थायी होगी।
4. *हट्टन, डब्लू० एच० : द मार्क्विस वेलजली, 1893, पृ० 67।*
5. घटना रुचिकर है, देखें अहमद, सफी : पूर्वोद्धृत, पृ० 39-48।

से एक के पक्ष में गद्दी छोड़नी चाही, वहां वेलजली ने कहा कि पुत्रों के विषय में इतना ही ध्यान रखा जायगा कि उनके रख-रखाव की व्यवस्था की जाय इससे अधिक नही। इस नवाब ने गद्दी त्यागने की अपनी बात वापस ले ली जिस पर वेलजली अत्यधिक क्रुद्ध हो गया और उसने अवध मे और सेना भेजने का आदेश दे दिया और उनके उचित व्यय की व्यवस्था का आदेश नवाब के पास भेज दिया। नवाब ने संधि की दुहाई देकर कहा कि आर्थिक सहायता की राशि बढ़ाना उचित नहीं है पर सब बेकार गया। यदि नवाब अपनी सेना समाप्त करके ब्रिटिश सेना का व्यय भार सहन करने का प्रयास करता तो राजस्व वसूली कठिन हो जाती। साथ ही बेकार सैनिक अशांति व अव्यवस्था पैदा कर सकते थे। अंततः उसे झुकना ही पड़ा।

पर वेलजली अब भी संतुष्ट नही था। 1801 में उसने इस बात पर जोर दिया कि परिस्थितिया बदल चुकी है और नवाब को दो बातों मे से एक बात माननी पड़ेगी। पहली बात यह थी कि वह अपने क्षेत्र का कुछ भाग ब्रिटिशो को सौप दे जिसके राजस्व से वे स्वय अवध मे ब्रिटिश सेना का भार सहन कर लेंगे। दूसरी बात के अन्तर्गत नवाब को पद और पेन्शन प्राप्त करके पूरा अवध ब्रिटिशो को सौपना था। नवाब ने दूसरी बात अस्वीकार कर दी और प्रथम के लिए कहा कि इसका कोई औचित्य नही है। उसने बताया कि उसने नियमित रूप से आर्थिक सहायता की धनराशि दी है और उसमे कुछ बकाया नही है, पर नवाब का इतराज किसी काम का नही था। अवध के रेजीडेन्ट को क्षेत्र पर अधिकार करने का आदेश भेज दिया गया। नवाब के न मानने पर शक्ति का प्रयोग करने को भी कहा गया। पर नवाब ने सिर झुका लिया।

10 नवम्बर 1801 में सधि हुई। (1) नवाब ने ब्रिटिशो को रोहिलखड और नीचे दोआब का उपजाऊ भाग प्रदान किया। (2) उसके राज्य के शेष भाग में कही भी ब्रिटिशों को सेना रखने का अधिकार मिला। (3) नवाब के सैनिकों की संख्या घटा दी गई और उनका प्रयोग राज्य के अत्यावश्यक कार्यों के लिए ही करने का निश्चय हुआ। (4) नवाब के राज्य में ब्रिटिशों को पुलिस के लिए शांति व व्यवस्था हेतु नियम बनाने की शक्ति प्राप्त हुई।

इस संधि के परिणामस्वरूप क्षेत्र का शेष भाग ब्रिटिशों द्वारा तीन ओर से घिर गया। केवल उत्तर में नेपाल ही इसका अपवाद था। ब्रिटिश अब सीधे सिंधिया के क्षेत्रीय संपर्क मे आ गये और अब अवध को मध्यवर्ती राज्य बनाये रखने की पुरानी नीति का त्याग कर दिया गया। ब्रिटिशों को अब उसके आतंरिक मामलों मे हस्तक्षेप का अवसर प्राप्त हो गया, बंगाल की सेना पर होने वाला व्यय का भी अधिकतर भार इसे सौंप दिया गया और उसकी अपनी सेना मे कटौती कर दी गई। स्पष्ट रूप से वेलजली की अवध नीति 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की

नीति पर आधारित थी।

नवाब से प्राप्त क्षेत्र को वेलजली ने अपने ही भाई हेनरी वेलजली को लेफ्टीनेन्ट गवर्नर बनाकर उसे बोर्ड आफ कमिश्नर्स संस्था का अध्यक्ष पद देकर सौंप दिया। इंगलैंड के डाइरेक्टरों को उसकी ऐसी नियुक्ति-शक्ति अपहरण पर ईर्ष्या हुई। वैसे तो हेनरी ने जल्दी ही पदत्याग कर दिया, पर संसद में यह चर्चा का विषय बन गया। नवाब के विरुद्ध धोखा और दबावपूर्ण नीति की निंदा की गई। 1805 में इंगलैंड मे उसके वापसी पर लार्ड वेलजली के विरुद्ध कामन्स में आरोप तैयार किये गये। 1808 में जब इस पर मत-विभाजन हुआ तो संसद ने लार्ड वेलजली की गम्भीर परिस्थितियों मे कुशल सेवाओं के लिए धन्यवाद प्रस्ताव पारित किया।

कर्नाटक का नवाब

कर्नाटक का नवाब या अर्काट (राजधानी) का नवाब वेलजली के भारत पहुंचने पर अपनी राजधानी छोड़कर मद्रास के निकट अपने एक शानदार महल में रह रहा था। उसका विलासी जीवन उसके ऋण का कारण बन गया था। इस सम्बन्ध में प्राप्त विवरण भी रुचिपूर्ण है। नवाब ने यह ऋण कंपनी के कर्मचारियों से अपने क्षेत्र के तमाम भागों के राजस्व वसूली के बदले प्राप्त कर रखा था जिसकी ब्याज राशि बहुत बड़ी थी। इसका परिणाम यह था कि जो मूलधन उसने ले रखा था उस पर ब्याज ही 62,300 पौंड वार्षिक हो गया। यह धन राशि कंपनी के भागीदारी के दो गुने से भी अधिक था। कंपनी के वे कर्मचारी जिन्होंने नवाब को ऋण दिया था, अत्यधिक धनी हो गये। इसका एक उदाहरण एक व्यक्ति पाल बेनफील्ड था जिसने इस धन के बदौलत ब्रिटिश संसद में एक सीट ही नहीं प्राप्त की बल्कि अपने 9 सदस्य कामन्स में भेजने में सफल हो गया। इसके विषय मे जब पूछताछ हुई तो पिट्स के, इंडिया ऐक्ट में कंपनी के कर्मचारियों पर इस तरह के कार्य पर प्रतिबंध लगा दिया गया। पर यह बुराई अब भी जीवित रही जो ब्रिटिश नवाबो के शोषण प्रवृत्ति का परिचायक है और साथ ही भारतीय शासको की किसानों को चूसने की प्रवृत्ति का भी सूचक है जिनके कठोर, विधिविहीन और निरंकुश शासन के जुये के नीचे वे दबे थे।

कर्नाटक का बूढ़ा नवाब मुहम्मद अली 1795 मे मर गया और उमदुत-उल-उमरा उत्तराधिकारी हुआ। ब्रिटिशो ने उस पर एक संशोधित संधि आरोपित करने की चेष्टा की जिसके अंतर्गत उसे कुछ क्षेत्र ब्रिटिशों को अपने देय धन के बदले देना था। ऐसा करने को वह पहले कह भी चुका था। पर उमदुत-उल-उमरा ने इसका विरोध किया। अर्काट के नवाब सड़े हुए फोड़े की तरह थे जिनका हटाया जाना शायद ही किसी को कष्ट देता। वेलजली ऐसा ही करने पर आमादा था।

भ्रष्टाचार और धोखाधड़ी का आरोप लगाने की जगह पर गवर्नर जनरल ने मुहम्मद अली और उम-दुत दोनों के विरुद्ध षड्यंत्र का आरोप लगाया। यह सिद्ध तो नहीं हो पाया पर इसके ही आधार पर वर्तमान नवाब पद से हटा दिया गया। वेलजली के इस कार्य की इतिहासकारों ने आलोचना की है जबकि इस कार्य के लिए वह प्रशंसा का पात्र है।

उसके षड्यंत्रकारी होने की बात सेरिंगपट्टम के कुछ पत्रों से सामने आई जिसमें टीपू से उसने पत्र-व्यवहार किया था। यह विवाद चल ही रहा था कि 15 जुलाई 1801 में उम-दुत की मृत्यु हो गई। वेलजली ने उसी दिन उसके लड़के अली हुसैन के समक्ष प्रस्ताव रखा कि उसे पद और पेन्शन प्राप्त करके प्रशासन के लिए क्षेत्र ब्रिटिशों को सौंप देना चाहिए। अली हुसैन ने यह प्रस्ताव मानने से इन्कार कर दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि उसके उत्तराधिकार को अस्वीकार करके मृत नवाब के भतीजे अजीमुद्दौला को उत्तराधिकारी बना दिया गया जिसने ब्रिटिश शर्तों को मानकर बहुत कुछ पाया, खोया कुछ नहीं।

इस तरह 25 जुलाई 1801 में एक नयी संधि अजीम के साथ की गई जिसके अंतर्गत क्षेत्र का पूर्ण सैनिक व असैनिक प्रशासन ब्रिटिशों के हाथ में आ गया। इसके बदले नवाब को अपने तथा अपने उत्तराधिकारियों के लिए राज्य के राजस्व का $\frac{1}{5}$ देने का निश्चय हुआ।

वेलजली के नीति की आलोचना यह कहकर की जाती है कि मुहम्मद अली और उम-दुत के विरुद्ध आरोप सिद्ध नहीं हुए थे और यदि ये दोनों व्यक्ति षड्यंत्र कर भी रहे थे तो इसका दंड गुण व प्रतिभावान अली हुसैन को उत्तराधिकार से वंचित कर क्यों दिया गया।

तंजौर

1762 से ही तंजौर ब्रिटिश प्रभाव में था। 1773 में तंजौर के राजा को मद्रास के गवर्नर ने पद से हटा दिया। पर डाइरेक्टरों ने इसे अनुचित मान 1776 में उसे पद पर पुनः नियुक्त कर दिया। 1786 में राजा की मृत्यु हो गई और उसके गोद लिये पुत्र सरफोजी और सौतेले भाई अमीरसिंह के बीच उत्तराधिकार का युद्ध प्रारंभ हो गया। ब्रिटिश सरकार ने अमीरसिंह का पक्ष लिया। पर चूंकि वह योग्य शासक सिद्ध नहीं हुआ इसलिए डाइरेक्टरों ने सरफोजी को उत्तराधिकारी बनाने का आदेश दिया। पर यह किया जाता कि वेलजली आ गया। उसने इस संस्था को अपने अधिकार में लेने का निश्चय किया। 25 अक्टूबर 1799 की एक संधि के अंतर्गत सरफोजी को 4 लाख रुपये वार्षिक पेन्शन के बदले अपने पूरे क्षेत्र का सैनिक और असैनिक प्रशासन ब्रिटिशों को सौंपना पड़ा।

सूरत

भारत में ब्रिटिशों की पुरातन बस्ती स्थल सूरत के नवाब ने 1759 में ही अपनी सुरक्षा का उत्तरदायित्व उन्हें सौंप दिया था और असैनिक प्रशासन का कार्य अपने हाथ में बनाये रखा था। पर ब्रिटिशों को देय धन राशि उचित ढंग से चूंकि नही जमा की जा रही थी, इसलिए 1790 में यह प्रस्तावित किया गया कि चूंकि नवाब की मृत्यु हो गई है इसलिए यहा का प्रशासन कंपनी को दे दिया जाना चाहिए और सम्राट से इसकी स्वीकृति करा लेनी चाहिए। पर कार्नवालिस इसके लिए तैयार न हुआ। 1799 में दूसरा नवाब भी मर गया जिससे वेलजली को पुराने आदेश समाप्त करने का अवसर मिला। मृत नवाब का भाई जो जायज उत्तराधिकारी था उससे एक नयी संधि की गई जिसके अंतर्गत उसने 1 लाख रुपये की पेन्शन प्राप्त की और साथ ही कंपनी के सुरक्षा व्यय से बचने पर राजस्व का ⅕ पाने को हुआ। पूरा सैनिक और असैनिक शासन ब्रिटिशों के हाथ आ गया।

हैदराबाद का निजाम

पहले के अध्यायों में हम हैदराबाद के उत्पत्ति का विवरण दे आये हैं और दक्षिण में आंग्ल फ्रांसीसी संघर्ष में उनकी भूमिका की व्याख्या भी कर आये है। 1768 से ही हैदराबाद का निजाम ब्रिटिशों का मित्र था। वैसे वह अवध या कर्नाटक की तरह उनका अनुगामी नही बना जिसका कारण इस क्षेत्र की भौगोलिक दूरी थी। पर यह मैसूर तथा मराठों के क्षेत्र-विस्तार नीति का हमेशा शिकार था जिससे ब्रिटिश ही उसकी रक्षा कर सकते थे। ब्रिटिश हमेशा उसकी मांगों की पूर्ति नहीं कर पाते थे जिसके फलस्वरूप मैत्री कभी-कभी ट[illegible] [illegible]ी थी। पर यह टूटी कभी नही।

जैसा हमने देखा है 179[illegible] [illegible]ठित होन [illegible] विरुद्ध शेष चौथ के वसूली के लिए यदा [illegible] [illegible]ितीय जब पेशवा हुआ तो निजाम [illegible] सभी क्षेत्र उसे [illegible] कर दिये [illegible] 1795 [illegible] [illegible] मराठों उससे हुई [illegible] [illegible] और निर्हस्तक्षेप [illegible] इन परि[illegible] प्राप्त कर [illegible] प्रशिक्षित सेना [illegible] था। ब्रिटिशो के [illegible]

हुआ।[1]

हैदराबाद में फ्रांसीसियों का ब्रिटिशों के विरुद्ध खतरा सही था क्योंकि वेतन के बदले में निजाम फ्रांसीसी अधिकारियों को क्षेत्र प्रदान कर रहा था जो ब्रिटिशों के विरुद्ध विरोध-केन्द्र बन सकते थे। वेलजली हैदराबाद से इस प्रभाव को समाप्त करने पर आमादा था और भाग्य से निजाम का भी फ्रांसीसियों के अक्खडपन से जी भर गया था। उसका मंत्री मीर आलम भी ब्रिटिशों का समर्थक था और अभी कुछ काल पूर्व निजाम को अपने विद्रोही पुत्र अलीशाह के विरुद्ध जो टीपू की सहायता से अपने पिता को पद से हटाना चाहता था, प्राप्त ब्रिटिश सहायता ने सर जान शोर की निर्हस्तक्षेप की नीति के कष्ट को घटा दिया था।

1798 में वेलजली ने निजाम से सहायक संधि करने का प्रस्ताव किया जिसके अंतर्गत हैदराबाद की सभी फ्रांसीसी सेनाएं समाप्त कर दी गईं। इसकी जगह 6 बटालियन सहायक सेना वहां नियुक्त की गई जिसके लिए 2,41,710 पौंड वार्षिक नवाब को देना था। टीपू के पतन के बाद निजाम के ब्रिटिशों से संबंध और अच्छे हो गये और 1798 की संधि का क्षेत्र और विस्तृत कर दिया गया। 1800 में नवहस्ताक्षरित संधि के अंतर्गत निजाम के क्षेत्र में सहायक सेना और बढ़ा दी गई। सेना के व्यय के लिए उसने मैसूर के राजस्व का भाग ब्रिटिशों को सौंप दिया जिसे उसने तृतीय व चतुर्थ युद्धों के बाद प्राप्त किया था। ब्रिटिशों ने उसकी विदेशी आक्रमण से रक्षा का आश्वासन दिया और उसकी विदेशी नीति पर कंपनी का नियंत्रण हो गया।

निजाम का क्षेत्र इस तरह सुरक्षित हो गया और ब्रिटिशों के भारत में रहते इसी स्थिति में बने रहे। निजाम ने ब्रिटिशों को क्षेत्र देते समय उतना कष्ट का अनुभव किया जितना कि अवध के निजाम ने रुहेलाखंड प्रदान करते समय अनुभव किया था। इसका कारण यह दिया जाता है कि उसने ब्रिटिशों को जो क्षेत्र दिया वे उसके अपने नहीं थे। ये मैसूर क्षेत्र के अंग थे जिस पर उसने स्वयं भी पूर्ण स्वामित्व नहीं प्राप्त किया था।

दूसरी ओर ब्रिटिशों को प्राप्त लाभ अत्यधिक था। सहायक संधि प्रथा के लाभ के साथ-साथ जो स्वाभाविक रूप से उसने उपार्जित कर लिया वह कलम के एक नोंक से 14 हजार सैनिकों की प्राप्ति तथा हैदराबाद से फ्रांसीसी सेना की समाप्ति थी जो उनके लिए कठिनाई सिद्ध हो सकते थे। साथ ही निजाम से जो क्षेत्र उसने प्राप्त किया उससे ब्रिटिशों ने मैसूर राज्य को चारों ओर से घेर लिया। हैदराबाद का राज्य भी एक सहायक राज्य की श्रेणी में आ गया। "विद्रोह के आधी सदी पूर्व तथा वेलजली के पूरे काल में इसका महत्त्व अत्यधिक कम था और

1. यह सिंधिया के सेनापति पेरों से भिन्न है।

इसकी स्वतंत्रता पूर्णतया काल्पनिक। इसके प्रति सभी घृणा का भाव रखते रहे।"[1]

द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध

परिस्थितियां

1798 में वेलजली के आने से पूर्व विभाजित मराठे कुछ समय के लिए अपना भेदभाव भुलाकर, 1795 में निजाम से चौथ का बकाया वसूलने के लिए, उस पर आक्रमण कर बैठे। निजाम ने ब्रिटिशों से सहायता का निवेदन किया, पर सर जान शोर यह सोचकर कि कहीं ऐसा करने पर नाना साहब टीपू से न मिल जाए, सहायता देने से कतरा गया। परिणामस्वरूप खर्दा में निजाम बुरी तरह से हार गया और मराठों से अपमानजनक संधि करने को बाध्य हुआ। संधि के अंतर्गत वह मराठो को पर्याप्त क्षेत्र तथा धन देने को बाध्य हुआ। नाना की प्रतिष्ठा बहुत बढ गई और ऐसा लगा कि मराठा एकता के पाठ का लाभ जान गये है। पर यह संगठन अंतिम सिद्ध हुआ और शीघ्र ही परिवर्तन प्रारंभ हो गये और पूना को विजय फल चखने का अवसर नहीं मिला।

पेशवा माधव राव नारायण जो नाना के लंबे संरक्षण में परेशान रहा था, 27 अक्टूबर 1795 में पूना मे महल के छत से गिरकर मर गया। बताया जाता है उसने आत्महत्या की थी। इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना ने पूना मे उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर षड्यंत्रों और प्रति-षड्यंत्रों की बाढ़ ला दी। शांति काल में सवाई माधव राव के संतानहीन मरने पर उसके दो भतीजों बाजीराव द्वितीय और उसके भाई चिमना जी में से किसी को उत्तराधिकारी होना चाहिए था। पर उनके मृत पिता राघोवा की करतूतें और शक्ति प्राप्त करने के लिए बाजीराव द्वितीय का प्रयास उनके रास्ते में रोड़ा बन गया। यह प्रस्ताव आया कि सवाई माधव की विधवा यशोदा बाई को एक लड़का गोद ले लेना चाहिए और नाना के साले सहित 10 बच्चों पर विचार किया गया। इन आक्रामक कार्यवाहियों के बीच बाजीराव ने सिंधिया को बहुत कुछ देने का वादा किया और नाना, होल्कर और भोंसले को अपने पक्ष में कर लिया और जून से नवम्बर 1796 के बीच कुछ पराजयों को छोड़ उसे सफलतायें मिली। उसका भाई चिमनाजी अप्पा पेशवा बना दिया गया। इस काल मे उसने निजाम से सहायता की याचना भी की। निजाम ने उसके अधिकार को स्वीकार किया और इसके बदले मराठो द्वारा अधिकृत उसका क्षेत्र उसे वापस कर दिया गया और बकाया धन राशि भी उसे वापस कर दी गई।

बाजीराव द्वितीय, जिसे पी० ई० राबर्टस ने "अत्यधिक अयोग्य, शरारती और

1. टाम्सन, एडवर्ड : द मेकिंग आफ इण्डियन प्रिंसेज, 1943, पृ० 16।

झूठा"[1] कहा है, नाना से द्वेष रखता था और चरित्रहीन दौलतराव सिंधिया पर निर्भर करता था। सिंधिया की सेना का वेतन बकाया था, उसने बाजीराव पर रुपये के लिए दबाव डाला और बाजीराव ने धन प्राप्ति के लिए प्रत्येक वैध और अवैध तरीके अपनाये जिसे नाना ने पसन्द नही किया। एक षड्यंत्र के अंतर्गत नाना को बाजीराव व सिंधिया के साथ बैठक करने के लिए आमंत्रित किया गया जहां सिंधिया ने नाना को बन्दी बनाकर अहमदनगर जेल भेज दिया। इसके बाद सिंधिया के लोभ को खुला खेलने का अवसर मिला और उसके आदेश से पूना मे आतंक के माध्यम से धन एकत्रित किया गया। इन परिस्थितियो मे उसके और पेशवा के बीच मित्रता अधिक दिन तक नही चल सकती थी और जब सिंधिया को बाजी-राव के मन्तव्यो की सूचना मिली तो उसने एक ही उपलब्ध अस्त्र का प्रयोग कर नाना को स्वतंत्र कर दिया। बाजीराव की सुरक्षा इन परिस्थितियों में इसी मे थी कि वह नाना को बुलाकर फिर से शासन का नेता बना दे। इस तरह 1798 के अंत तक नाना पुनः अधिकार सपन्न हो गया और वह अपनी मृत्यु की तिथि 13 मार्च 1800 तक इसी स्थिति में बना रहा। उसकी मृत्यु पर ब्रिटिश रेजीडेन्ट ने लिखा "सरकार की सपूर्ण बुद्धि और उदारता"[2] की समाप्ति हो गई है।

घटनाओं की मुख्य धारा जिसने द्वितीय मराठा युद्ध प्रारभ कराया, की ओर आगे बढ़ने से पूर्व हम दो शब्द इस व्यक्ति के विषय मे कहना चाहते है जिसके विषय में इतिहासकारों के विभिन्न तरह के विचार है। उसके विरोधी इतिहासकारो ने उसे यह कहकर कलंकित किया है कि नाना "अपहर्ता थे, पर वे यह भी स्वीकार करते है कि जनता ने ही उसे शक्ति प्रदान की। कुछ ने उसका विरोध यह कहकर किया है कि वह नीरो की तरह का अटल निरकुश शासक था। पर उन्होंने यह भी माना है कि उसने जनता का आदर प्राप्त किया। अन्य लोग उसे शैतान तक कहते हैं पर साथ ही वे यह भी स्वीकार करते है कि वह अपने प्रत्येक व्यवहार में उदार था और शाति का इच्छुक। ऐसे भी आलोचकों की कमी नही है जो उसके शक्ति प्राप्ति करने की अथाह इच्छा को बुरा-भला कहते थे जिससे तत्कालीन लोगों का निर्दयतापूर्वक अधिकार-हनन ही नही हुआ बल्कि उसका स्वामी बाजीराव द्वितीय भी पंगु बना दिया गया। पर साथ ही यह भी स्वीकार किया जाता है कि उसकी चालाकी, राजनीतिक दूरदृष्टि और उदारता से पूरा क्षेत्र स्तभित था।"[3]

नाना की दूरदर्शिता के ही कारण माधवराव द्वितीय षड्यंत्रकारी राघोबा से बच सका और बाद मे मराठा शक्ति प्रथम आग्ल मराठा युद्ध के प्रभाव से समाप्त

---

1. राबर्ट्स, पी० ई० : इंडिया अंडर वेलजली, गोरखपुर, 1961, पृ० 26।
2. गुप्ता, प्रतुल चन्द्र : बाजीराव द्वितीय ऐण्ड द ईस्ट इंडिया कंपनी, बम्बई, 1964, पृ० 21।
3. देवधर : पूर्वोद्धृत, पृ० 205।

इसकी स्वतंत्रता पूर्णतया काल्पनिक। इसके प्रति सभी घृणा का भाव रखते रहे।"[1]

द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध

परिस्थितियां

1798 में वेलजली के आने से पूर्व विभाजित मराठे कुछ समय के लिए अपना भेदभाव भुलाकर, 1795 में निजाम से चौथ का बकाया वसूलने के लिए, उस पर आक्रमण कर बैठे। निजाम ने ब्रिटिशों से सहायता का निवेदन किया, पर सर जान शोर यह सोचकर कि कही ऐसा करने पर नाना साहब टीपू से न मिल जाए, सहायता देने से कतरा गया। परिणामस्वरूप खर्दा में निजाम बुरी तरह से हार गया और मराठों से अपमानजनक संधि करने को बाध्य हुआ। संधि के अंतर्गत वह मराठों को पर्याप्त क्षेत्र तथा धन देने को बाध्य हुआ। नाना की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई और ऐसा लगा कि मराठा एकता के पाठ का लाभ जान गये है। पर यह संगठन अंतिम सिद्ध हुआ और शीघ्र ही परिवर्तन प्रारंभ हो गये और पूना को विजय फल चखने का अवसर नही मिला।

पेशवा माधव राव नारायण जो नाना के लवे संरक्षण में परेशान रहा था, 27 अक्टूबर 1795 में पूना में महल के छत से गिरकर मर गया। बताया जाता है उसने आत्महत्या की थी। इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना ने पूना में उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर पड्यत्रों और प्रति-पड्यत्रों की बाढ़ ला दी। शांति काल में सवाई माधव राव के सतानहीन मरने पर उसके दो भतीजों बाजीराव द्वितीय और उसके भाई चिमना जी में से किसी को उत्तराधिकारी होना चाहिए था। पर उनके मृत पिता राघोवा की करतूतें और शक्ति प्राप्त करने के लिए बाजीराव द्वितीय का प्रयास उनके रास्ते में रोड़ा बन गया। यह प्रस्ताव आया कि सवाई माधव की विधवा यशोदा बाई को एक लड़का गोद ले लेना चाहिए और नाना के साले सहित 10 बच्चों पर विचार किया गया। इन आक्रामक कार्यवाहियों के बीच बाजीराव ने सिंधिया को बहुत कुछ देने का वादा किया और नाना, होल्कर और भोंसले को अपने पक्ष में कर लिया और जून से नवम्बर 1796 के बीच कुछ पराजयों को छोड़ उसे सफलतायें मिली। उसका भाई चिमनाजी अप्पा पेशवा बना दिया गया। इस काल में उसने निजाम से सहायता की याचना भी की। निजाम ने उसके अधिकार को स्वीकार किया और इसके बदले मराठों द्वारा अधिकृत उसका क्षेत्र उसे वापस कर दिया गया और बकाया धन राशि भी उसे वापस कर दी गई।

बाजीराव द्वितीय, जिसे पी० ई० राबर्टस ने "अत्यधिक अयोग्य, शरारती और

---

1. टाम्सन, एडवर्ड : द मेकिंग आफ इण्डियन प्रिंसेज, 1943, पृ० 16।

झूठा"[1] कहा है, नाना से द्वेष रखता था और चरित्रहीन दौलतराव सिंधिया पर निर्भर करता था। सिंधिया की सेना का वेतन बकाया था, उसने बाजीराव पर रुपये के लिए दबाव डाला और बाजीराव ने धन प्राप्ति के लिए प्रत्येक वैध और अवैध तरीके अपनाये जिसे नाना ने पसन्द नही किया। एक षड्यंत्र के अंतर्गत नाना को बाजीराव व सिंधिया के साथ बैठक करने के लिए आमंत्रित किया गया जहां सिंधिया ने नाना को बन्दी बनाकर अहमदनगर जेल भेज दिया। इसके बाद सिंधिया के लोभ को खुला खेलने का अवसर मिला और उसके आदेश से पूना में आतक के माध्यम से धन एकत्रित किया गया। इन परिस्थितियों में उसके और पेशवा के बीच मित्रता अधिक दिन तक नही चल सकती थी और जब सिंधिया को बाजीराव के मन्तव्यो की सूचना मिली तो उसने एक ही उपलब्ध अस्त्र का प्रयोग कर नाना को स्वतत्र कर दिया। बाजीराव की सुरक्षा इन परिस्थितियों में इसी में थी कि वह नाना को बुलाकर फिर से शासन का नेता बना दे। इस तरह 1798 के अंत तक नाना पुनः अधिकार सपन्न हो गया और वह अपनी मृत्यु की तिथि 13 मार्च 1800 तक इसी स्थिति में बना रहा। उसकी मृत्यु पर ब्रिटिश रेजीडेन्ट ने लिखा "सरकार की संपूर्ण बुद्धि और उदारता"[2] की समाप्ति हो गई है।

घटनाओ की मुख्य धारा जिसने द्वितीय मराठा युद्ध प्रारंभ कराया, की ओर आगे बढ़ने से पूर्व हम दो शब्द इस व्यक्ति के विषय मे कहना चाहते है जिसके विषय मे इतिहासकारो के विभिन्न तरह के विचार है। उसके विरोधी इतिहासकारो ने उसे यह कहकर कलकित किया है कि नाना "अपहर्ता थे, पर वे यह भी स्वीकार करते है कि जनता ने ही उसे शक्ति प्रदान की। कुछ ने उसका विरोध यह कहकर किया है कि वह नीरो की तरह का अटल निरकुश शासक था। पर उन्होंने यह भी माना है कि उसने जनता का आदर प्राप्त किया। अन्य लोग उसे शैतान तक कहते हैं पर साथ ही वे यह भी स्वीकार करते है कि वह अपने प्रत्येक व्यवहार मे उदार था और शांति का इच्छुक। ऐसे भी आलोचकों की कमी नही है जो उसके शक्ति प्राप्ति करने की अथाह इच्छा को बुरा-भला कहते थे जिससे तत्कालीन लोगों का निर्दयतापूर्वक अधिकार-हनन ही नही हुआ बल्कि उसका स्वामी बाजीराव द्वितीय भी पंगु बना दिया गया। पर साथ ही यह भी स्वीकार किया जाता है कि उसकी चालाकी, राजनीतिक दूरदृष्टि और उदारता से पूरा क्षेत्र स्तभित था।"[3]

नाना की दूरदर्शिता के ही कारण माधवराव द्वितीय षड्यत्रकारी राघोबा से बच सका और बाद में मराठा शक्ति प्रथम आग्ल मराठा युद्ध के प्रभाव से समाप्त

1. राबर्ट्स, पी० ई० : इंडिया अंडर वेलजली, गोरखपुर, 1961, पृ० 26।
2. गुप्ता, प्रतुल चन्द्र : बाजीराव द्वितीय ऐण्ड द ईस्ट इंडिया कपनी, बम्बई, 1964, पृ० 21।
3. देवधर : पूर्वोद्धृत, पृ० 205।

होने से बच सकी। शक्ति के होड़ में पड़ने की जगह पर यदि सिंधिया ने उसके निर्देशानुसार कार्य किया होता तो साल्बाई की संधि से मराठों का अधिक हित होता। बाजीराव द्वितीय की आत्म-केन्द्रित कार्यवाहियों ने नाना के 1795 में प्राप्त निजाम से सब लाभों को समाप्त कर दिया। पेशवा की ही कार्यवाहियों ने उस पूना में अव्यवस्था पैदा कर दी जहा नाना ने वर्षों से अनुशासन पैदा करने की चेष्टा की थी। इसी अव्यवस्था के काल में ही मराठो को अनाथ छोड़कर नाना उन्हे अपनी आंखो से डूबता हुआ देखता चल बसा।

नाना की मृत्यु ने मराठा शत्रुओं को अपने क्रोध का उन्हें शिकार बनाने का अवसर प्रदान किया। सिंधिया अब पूर्ण शक्ति प्राप्त करने मे असफल हो गया। जैसे ही नाना की मृत्यु हुई उसने उसकी जागीर पर यह कहकर अधिकार कर लिया कि उसने उससे 1 करोड़ रुपये ऋण लिया था। उसके द्वारा नामित अमृतराव नाना के स्थान पर नियुक्त किया गया। बाजीराव पुराने सरदारों से लड़कर उनका धन छीनने मे व्यस्त हो गया। यह जहा उसकी बदला लेने की भावना का एक अग था वहा साथ ही सिंधिया की अधिक मागों को पूरा करने का एक साधन। उत्तरी भारत में जसवन्तराव होल्कर सिंधिया के क्षेत्र को रौद रहा था। इसके लिए सिंधिया पूना से रवाना हुआ। उसकी अनुपस्थिति में बाजीराव की "बुरी इच्छाओं को स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई, उसने पूना मे लगातार कई जघन्य व क्रूर अत्याचार किये जिससे जनता उससे असतुष्ट हो गई। इससे क्रूर जसवन्त राव के क्रोध का भी उसे शिकार होना पड़ा। 1801 मे जिनकी बर्बरतापूर्ण हत्या उसने की उसमें जसवन्तसिंह का भाई विठाजी भी था। इसी अपराध का बदला लेने के लिए जसवन्त ने आने वाले वर्ष में दक्षिण के क्षेत्रो पर आक्रमण किया।"[1]

जसवन्त राव पूना के विरुद्ध आगे बढ़ा और 25 अक्टूबर 1802 को उसने हृदयसर में सिंधिया और बाजीराव दोनो को नगर के निकट पराजित किया। जब पेशवा के विरुद्ध स्थिति पैदा हो गई तो वह नगर छोड़कर चला गया। बड़गाव में रात बिताकर वह बेसीन गया जहां से उसने ब्रिटिशों से सहायता मांगी। '31 दिसबर को बम्बई सरकार और पेशवा के मध्य एक सामान्य रक्षात्मक सधि पर हस्ताक्षर हो गये जिसे बेसीन की संधि का नाम दिया जाता है।'

बेसीन की सधि

इस सधि की शर्तें थी, (1) ब्रिटिशों ने 6 बटालियन की सहायक सेना पेशवा के क्षेत्र में रखने का निश्चय किया; (2) इस सेना के व्यय हेतु पेशवा ने कपनी को कुछ क्षेत्र प्रदान किये जिससे 26 लाख रुपये का कर प्राप्त होता था; (3) भविष्य

1. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग-5, पृ० 372।

मे निजाम या गायकवाड़ से युद्ध नही करेगा, यह भी निश्चित हुआ। वह निजाम से चौथ भी नही मांगेगा। इनमे से किसी से भी सघर्ष होने पर वह अंग्रेजों की मध्यस्थता स्वीकार करेगा; (4) वह ऐसे युरोपीय राष्ट्रो के लोगों को सेवा में नही रखेगा जो ब्रिटिशों के विरोधी है; (5) वह सूरत पर से अपना अधिकार त्याग देगा जिसके लिए उसे उसके सत्तान्तरित क्षेत्र से मुआवजा प्रदान किया जाएगा; (6) और वह "भविष्य मे किसी भी शक्ति से, बिना ईस्ट इडिया कंपनी सरकार को पूर्व सूचना दिये या परामर्श किये, कोई बातचीत न करेगा और न ऐसा करने की चेष्टा करेगा।"[1]

इस तरह बाजीराव ने कपनी के हाथों अपनी स्वतत्रता बेच दी। जनरल आर्थर वेलजली उसके साथ पूना गया, होल्कर मालवा चला गया और 18 मई 1803 को उसे पेशवा की *गद्दी पुन: प्राप्त हो गई।* "*सिंधिया की महत्ता घट गई,* होल्कर की पूना की ओर देखने की हिम्मत न हुई। पर साथ ही पेशवा ने भी सेना व विदेश नीति पर से अपनी पकड़ गवा दी। ब्रिटिश निर्देशों और बदूकों की छाया मे नवीन पेशवा नया अनजाना दृश्य ही उपस्थित करता था। उसने अपना मनचाहा प्राप्त कर लिया था और अपने सरदारो से मुक्त हो गया था। पर इसके लिए उसे क्या कीमत चुकानी पड़ी अभी उसे यह जानना था।"[2] जिस अनर्थ की नाना ने कल्पना की थी और उसे इतने लम्बे अरसे तक रोक रखा था वह अब पूना को निगल गई। ब्रिटिशो का हाथ उनके गर्दन पर पहुच गया। बहुत पहले कल्पित हिन्दू राज की मराठा महत्त्वाकाक्षा अब कही नही थी।

वेलजली की इस सधि की स्वीकृति की आलोचना कासिलरे ने की और 1801 में बोर्ड आफ कन्ट्रोल के अध्यक्ष डुन्डास ने भी इसकी आलोचना की। उसने कहा कि मराठो ने "अभी तक हमारे क्षेत्र को स्वीकार किया"; उन्होंने "हमारे विरुद्ध कभी कोई नीति नही अपनाई। जब कि उनके आतरिक सघर्ष मे भाग लेकर हम किसी भी मराठा राज्य से युद्ध करने की स्थिति मे हो गये है। उन्होंने हमेशा हमसे शाति ही अर्जित की है और ब्रिटिश सेना के प्रति सहनशीलता एव मानवता का प्रदर्शन कई बार किया है, विशेषकर तब जब वह कठिनाई में थी।" यह सधि उनके आन्तरिक मामले में एक अनावश्यक हस्तक्षेप थी।

यह सधि पिट्स के इडिया ऐक्ट की मनोभावना के भी विपरीत थी जिसमें कपनी को किसी राज्य के क्षेत्र की गारन्टी लेने से रोका गया था। ऐसा तभी किया जा सकता था जब युद्ध के अवसर पर कोई सहायता करे या होने वाले युद्ध में सहायता का आश्वासन दे।

---

1. ऐटचिसन, सी० यू० . ट्रीटीज, इनगेजमेन्ट एण्ड सनद्स, कलकत्ता, 1876, पृ० 57-58।
2. गुप्ता, पी० एल० : पूर्वोद्धृत, पृ० 52-53।

यह एक ऐसा प्रयास था जिसके द्वारा पूना मे शांति समाप्त कर देने वाले और अल्पकाल में ही शक्ति अर्जित कर लेने वाले एक अयोग्य व्यक्ति को सह दी गई थी। पूना की जनता उसके पुनरोदय के विरुद्ध थी पर उन पर उसे थोप दिया गया था।

वेलजली को सोचना चाहिए था कि बाजीराव का ब्रिटिश सहायता से फिर से शक्ति प्राप्त करना, मराठा सरदारों को उनके विरुद्ध कर देगा जो अपने मराठा राज्य पर दासता की लटकती तलवार को देखकर एक हो जायेंगे। इस तरह द्वितीय मराठा युद्ध को प्रारंभ करने का पूर्ण श्रेय अंग्रेजों को ही जाता है।

यदि मराठों के मामले में हस्तक्षेप करने की जगह पर ब्रिटिशों ने पेशवा का सदयता से स्वागत किया होता और मराठा सीमाओं पर अपनी सेना को तैयार रखा होता तो मराठा सरदारों में ब्रिटिश मित्रता प्राप्ति की होड़ लग जाती और तब वे शांतिसर्जक की भूमिका अदा करते हुए युद्ध से बच सकते थे।

पेशवा की विदेश-नीति पर ब्रिटिश नियंत्रण से उन्हें असीमित पेचीदगियों का सामना करना पड़ा। मराठा राज्य विस्तृत था और उनकी समस्यायें अत्यधिक जटिल। उनके कभी न समाप्त होने वाले आन्तरिक झगड़े थे और आपसी संबंधों मे अनुशासन का कोई स्थान न था।

इस संधि को इस आधार पर भी न्यायपूर्ण नही माना जा सकता था कि मराठे फ्रांसीसियों के मित्र हो गये थे। मैसूर और हैदराबाद से फ्रांसीसी प्रभाव पहले ही समाप्त हो चुका था और कासिलरे के अनुसार मराठों से मिलने की उनकी संभावना नही थी। उसने कहा, "भारत मे ब्रिटिश शक्ति पूर्ण रूप से सगठित हो गई है और किसी ओर से आक्रमण की संभावना क्षीण ही है। इसलिए काल्पनिक आधार पर खतरे को सोचकर यह सब करना न्याय-संगत नही है।"[1]

वेलजली के पक्ष मे यह कहा जाता है कि बाजीराव के ब्रिटिश छाया में आ जाने से मराठों को दूसरा अवसर प्राप्त हुआ। राघोबा ने पहले एक ऐसे ही अवसर को हाथ से निकल जाने दिया था। यदि एक ब्रिटिश नामित व्यक्ति पेशवा की गद्दी पर बैठाया जा सकता था तो सभावना थी कि प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध में हुई हानि की क्षति पूर्ति की जा सके।

1800 में ही निजाम को ब्रिटिश सरक्षण में लाया जा चुका था जिसके परिणामस्वरूप मराठों को चौथ की वसूली रोक देनी पड़ी। इस तरह की मांग को सदा छोड़ देने की सभावना कम ही थी और मराठों से युद्ध की संभावना बढ़ती ही जा रही थी।

---

1. मार्टिन : वेलजलीज डिस्पैचेज, भाग-5, पृ० 312-18; राबर्ट्स, पी० ई० : पूर्वोद्धृत, पृ० 195-99 पर उद्धृत।

मात्र मराठा सीमाओं पर सेना को एकत्रित करना ही उद्देश्य पूर्ति में सहयोगी न होता क्योंकि भारत में सुरक्षात्मक नीति से ही भला नहीं होना था। पेशवा की विदेश-नीति पर ब्रिटिश नियंत्रण से पेचीदगी पैदा होने की जगह समस्या समाधान की संभावना अधिक थी। ब्रिटिशों के निर्देशन में अनावश्यक और स्वार्थ के आधार पर युद्ध संभावना कम थी। बाहर से वे लगातार अपने ऊपर प्रभाव डालने वाली घटनाओं की देखरेख भी नहीं कर सकते थे।

फ्रांसीसी खतरे को भी छोटा नहीं समझा जा सकता था। मराठा सरदारों की यह आदत होती जा रही थी कि वे फ्रांसीसी अधिकारियों की नियुक्ति कर अपनी सेना को प्रशिक्षित करते थे। यदि इसे तुरत न रोका जाता तो कठिनाइयां बढ़ने की ही संभावना थी।

जैसा भी हो, बेसीन की संधि ने भारत के इतिहास में एक नवीन अध्याय की शुरुआत की। अपने ही व्यक्ति को मराठा गद्दी पर बैठाकर ब्रिटिश मराठा राजनीति में पूरी तरह प्रविष्ट हो गये। और यह एक ऐसा दलदल था जिससे उन्होंने जितना ही निकलने की चेष्टा की वे उसमें और फसते गये। पेशवा ने ब्रिटिशों की सहायता से पूरे मराठा राष्ट्र पर शासन करके उन्हें अपमानित करने की चेष्टा की जिसका परिणाम उनका आपसी संघर्ष हुआ जो तब तक समाप्त नहीं हो सकता था जब तक कि कोई पक्ष पूरी तरह से विजयी न हो जाय। इसी सधि ने द्वितीय मराठा युद्ध का प्रारंभ किया और इसने उस क्रांति की आधार शिला रखी जिसे लार्ड हेस्टिंग्स ने 1818 में पूरा किया।

युद्ध

जैसे ही वेसीन की सधि पर हस्ताक्षर हुए और पेशवा को उसका पद प्राप्त हुआ, उसने अपने दूत सिंधिया और भोंसले के पास अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए भेजे। सिंधिया नर्मदा को पार करके आगे बढ़ गया और ब्रिटिशों के साथ उसी तरह की सधि करना नामजूर कर दिया और इस बात का विरोध किया कि साल्बाई की सधि कराने वाले व्यक्ति उससे कोई परामर्श क्यों नहीं लिये। भोंसले पश्चिम की ओर आगे बढ़ा और 3 जून 1803 को सिंधिया से अदजुन्टा घाट में मिला। ब्रिटिशों ने उनके आक्रमण के मध्य से दोनों को अलग हो जाने और नर्मदा पार वापस आने को कहा जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उन्होंने पेशवा की इस सधि को उनके परामर्श बिना करने को भी अनुचित बताया। जिस स्थिति मे इस समय सिंधिया था उससे उसे पूना और हैदराबाद में से किसी भी स्थान पर आक्रमण करने में सुविधा थी। ऐसी स्थिति में ब्रिटिशों को युद्ध की घोषणा करनी पड़ी जो 3 अगस्त 1803 को प्रारंभ हुआ।

होल्कर मलवा वापस चला गया था और संभवतः मराठों के शत्रुओं को नीचा

दिखाने के लिए आतुर था। इस तरह इस युद्ध के उद्देश्य और योजना ने वेलजली को एकाकी कर दिया। अन्यथा उसके युद्ध की योजना थी, (1) सिंधिया के फ्रांसीसी सेनापति मोन्सियर पेरों का फ्रांसीसी राज्य समाप्त करना जो उसने यमुना तट पर एक निश्चित क्षेत्र में बना रखा था। यह स्मरणीय है कि सिंधिया के दक्षिण में अधिक दिनों तक रहने के कारण उत्तर क्षेत्र की सारी प्रशासकीय शक्ति इसी सेनापति के हाथ में आ गई थी। उसे जयपुर और जोधपुर के राजपूत राज्य से भी कर प्राप्त होता था। सिक्के ढालने का अधिकार भी उसे प्राप्त था। मुगल सम्राट भी उसकी संरक्षता में था और दिल्ली और आगरा के किले भी उसके अधिकार में थे। वह एक सप्रभुशक्ति माना जाता था और उसे लगभग दो करोड़ रुपये का कर प्राप्त होता था। उसके एक अधिकारी ने पंजाब के कुछ क्षेत्रों पर भी अधिकार कर लिया था जहां पर अभी ब्रिटिश प्रकट ही नही हुए थे। स्पष्ट था कि यह स्थिति खतरे की थी क्योंकि ब्रिटिश यह डरते थे कि नैपोलियन की सरकार पेरों के प्रभाव का प्रयोग उनके विरुद्ध कर सकती है।

अन्य उद्देश्य थे; (2) जमुना तक ब्रिटिश सीमा को ले जाना, दिल्ली और आगरा पर अधिकार तथा शाह आलम को अपने सरक्षण में लेना; (3) बुंदेलखंड जीतना और सिखों से सपर्क स्थापित करना; एवं (4) जमुना के दक्षिण पश्चिम के राजपूत राज्यों को संधि के लिए बाध्य करना। उत्तर मे युद्ध का उत्तरदायित्व लार्ड लेक को सभालना था; दक्षिण मे सिंधिया और भोंसले से आर्थर वेलजली को निबटना था; पश्चिम में कर्नल मरे को गुजरात में सिंधिया के क्षेत्रों पर अधिकार करना था तथा बड़ौदा के गायकवाड़ की रक्षा करनी थी; जबकि पूर्व में भोंसले के उड़ीसा क्षेत्र के बालासोर व कटक पर अधिकार करके कंपनी को बगाल व मद्रास के क्षेत्र की सीमा को मिलाना था।

आर्थर वेलजली ने दक्षिण मे कई स्थानों पर विजय प्राप्त की और दिसबर 1803 मे बरार के शासक भोंसले को देवगांव की सधि करने को बाध्य किया। इस सधि के अतर्गत राजा को (1) ब्रिटिश सहायक सधि स्वीकार करनी पड़ी, (2) कटक और बालासोर सहित कुछ और क्षेत्र ब्रिटिशों को देना पड़ा, एव (3) स्वीकार करना पड़ा कि पेशवा और निजाम से होने वाले सघर्ष में उसे कपनी की मध्यस्थता स्वीकार करनी पड़ेगी।

29 दिसबर को सिंधिया को भी सुर्जी अर्जनगाव की सधि स्वीकार करनी पड़ी जिसकी शर्तें थी, (1) उसने यह मानना स्वीकार किया कि भविष्य मे किसी ऐसी युरोपीय शक्ति के लोगो को सेवा मे नही रखेगा जो ब्रिटिश विरोधी हों, (2) उसने ब्रिटिशों को मुगल सम्राट की सुरक्षा का भार सौंप दिया; (3) गंगा और जमुना के बीच का अपना क्षेत्र उन्हे दे दिया और असीरगढ़ तथा बुरहानपुर जैसे तमाम जगहो की अदलाबदली कर ली और (4) अपने सहायकों के साथ किये

गये ब्रिटिश समझौते को मान्यता प्रदान की। अगले वर्ष फरवरी मे सिंधिया ने भी ब्रिटिशों से सहायक संधि कर ली जिसके अंतर्गत उसे विशेष लाभ प्रदान किये गये। इसकी जगह पर कि वह अपने व्यय पर अपने क्षेत्र में सहायक सेना रखे, ब्रिटिशों ने यह स्वीकार किया कि वे राज्य की सीमा पर अपने व्यय पर सहायक सेना को रखेंगे जो सिंधिया को सहायतार्थ सदा उपलब्ध रहेगी। ब्रिटिशों ने इसका व्यय सुर्जी-अर्जनगांव की संधि के अंतर्गत प्राप्त क्षेत्रों के राजस्व से करना स्वीकार किया।

उत्तर में जनरल लेक को भी ऐसी ही महत्त्वपूर्ण सफलताएं प्राप्त हुई। जनरल पेरों को सिंधिया की सेवा से मुक्त कर दिया गया। उसे उसके ही निवेदन पर सुरक्षा प्रदान की गई।[1] उसका उत्तराधिकारी वोरक्विन 11 सितंबर 1803 को दिल्ली के निकट पराजित कर दिया गया, जहा से आगे बढ़कर लेक मथुरा पहुंचा और भरतपुर के राजा से 9 अक्टूबर को एक संधि की और 18 अक्टूबर को आगरा पर अधिकार किया। 1 नववर को अलवर राज्य के लासवाडी नामक स्थान पर सिंधिया की शेष सेना भी समाप्त हो गई।

दूसरी ओर पूर्व में जुगरनौट के बंदरगाह पर सितंबर मे अधिकार कर लिया गया। कटक का पतन अक्टूबर मे हो गया और इसके बाद-विरोध समाप्त हो गया। पश्चिम में भड़ौच का पतन अगस्त में हो गया और सितंबर बीतते-बीतते गुजरात क्षेत्र के सिंधिया के सब स्थान ब्रिटिश अधिकार मे आ गये।

कुछ ब्रिटिश विजित क्षेत्रों को निजाम और पेशवा के बीच विभाजित कर दिया गया। जयपुर, जोधपुर, मछेरी और बूंदी के राजपूत राज्यों, भरतपुर के जाट राजा एवं अम्बाजीराव इगलिया व गोहद के राजा से ब्रिटिशों ने संधि की और उन्हें अपनी सुरक्षा के घेरे में ले लिया। यह सुरक्षा राज्यों के ही कीमत पर स्थापित होनी थी, पर उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का आश्वासन दिया गया।

वेलजली ने कहा : "मै अत्यधिक आशावादी बुद्धि से घोषित करता हू कि मुझे अपनी योजनाओं के पूरा होने की इतनी जल्दी और इतने अच्छे ढग से आशा न थी।"[2] सच तो यह था कि सिंधिया होल्कर से लड़ते-लड़ते कमजोर हो गया था; ब्रिटिश सैनिक प्रशिक्षण और अनुशासन मे उच्च भी थे जब कि मराठे आमने-सामने की लड़ाई मे उतने दक्ष भी न थे। तीसरे, जिस तेजी और कूटनीतिज्ञता से लेक

---

1. इस तरह पेरों ने सिंधिया के साथ छल किया। वह अपने साथ उसका लाखों का हीरा और रुपये यूरोप ले गया। इससे यह सिद्ध हो गया कि भारतीयों का फ्रांसीसी अधिकारियों पर विश्वास करना बेकार है।
2. मार्टिन : वेलजलीज डिस्पैचेज, भाग-3, पृ० 420, रावट्र्स : पूर्वोद्धृत, पृ० 230।

और आर्थर वेलजली आगे बढ़े उससे शत्रु पक्ष को सोचने व योजना बनाने का अवसर ही नही मिला जिससे उनकी पराजय हुई; चौथे जिस गुरिल्ला युद्ध शैली मे मराठे चतुर थे उसका प्रयोग नही हुआ; और पाचवें जो सैनिक रोहिलखड और अवध से भर्ती किये गये थे वे मराठों का साथ नही दे सकते थे क्योंकि उनका लूट-पाट मे अधिक विश्वास था, अनुशासित प्रशासन मे कम।

सिंधिया और भोसले इस तरह पराजित कर दिये गये, पर द्वितीय मराठा युद्ध अभी तक जीता नही गया। होल्कर जिसने अपने को इस युद्ध से अलग कर रखा था और जिससे आशा थी कि अन्य मराठों के पराजय के बाद ब्रिटिशों से उनकी इच्छानुसार ही शाति से सधि कर लेगा, उसने उनके समक्ष ये मांगे प्रस्तुत की (1) इटावा पर उसने अपने परिवार का अधिकार बताकर मागा; (2) चौथ प्राप्त करने का अधिकार मागा; (3) सिंधिया से जिस तरह की सधि ब्रिटिशों ने की थी उसी तरह की सधि की माग उसने की जिसके अतर्गत सहायक सेना थी। ब्रिटिश व्यय पर ही नियुक्ति की बात थी, वेलजली समझ गया कि होल्कर से युद्ध के बिना मामला नही सुलझेगा इसलिए 16 अप्रैल 1804 को युद्ध घोषित कर दिया गया।

सावधानी से एक योजना बनाकर आर्थर वेलजली को दक्षिण से रवाना होने को कहा गया। जनरल लेक उत्तर से और कर्नल मरे गुजरात से होल्कर को चारों और से घेरने के लिए आगे बढ़े। पर अब की बार ब्रिटिश सफल न हुए। कर्नल मॉन्सन और कर्नल मरे अपनी योजना को कार्यान्वित करने मे असफल रहे और मॉन्सन को तो होल्कर ने मुकुद दारा के दर्रे मे बुरी तरह से हराया। यह स्थल कोटा से 30 मील दक्षिण है। गुजरात से प्रस्थान करने वाला मरे उससे मिल ही नही सका। पराजित मॉन्सन होल्कर से लड़ने का साहस जुटा न पाने के कारण अगस्त मे आगरा वापस लौट आया। उसका बुरा हाल था और उसके कुछ अधिकारी होल्कर से सपर्क किए हुए थे, लोग उसका साथ छोड़ने लगे और उसके साथियों की संख्या भी घट गई। इससे उत्साहित होकर भरतपुर के जाट राजा ने ब्रिटिशों का साथ छोड़ दिया और दिल्ली पर आक्रमण मे उसने होल्कर का साथ दिया। पर आक्टरलोनी ने उनकी योजना असफल कर दी और बाद में नवम्बर मे लेक ने होल्कर को डिग और फर्रुखाबाद मे पराजित किया। पर 1805 के प्रारंभ मे लेक ने "भरतपुर के किले पर एक के बाद एक चार बार तूफानी आक्रमण करके भयानक सैनिक भूल की। यह तब तक उसे करना पड़ा जब तक कि उसके तोपखाने ने दीवार में तोड़कर स्थान नही बना लिया।" वह इस तरह किले को नही ले सका और राजा से उसे बाध्य होकर सधि करनी पड़ी जिसके अंतर्गत किले पर राजा का अधिकार बना रहने दिया गया।

भरतपुर की असफलता मे सुधार संभव था। पर "गृह अधिकारी वेलजली की

लगातार सफलता से ही परेशान थे और जब उन्हे असफलता के प्रारभ की सूचना मिली तो उन्होंने तुरत उसे वापस बुला लिया।"[1] 67 वर्षीय लार्ड कार्नवालिस को भारत मे पुनः शांति स्थापना हेतु भेजा गया। पर वह जल्दी ही भारत में मर गया और वार्लो उसका उत्तराधिकारी हुआ जिसने डाइरेक्टरों द्वारा निर्देशित शाति की नीति अपनाई। वह निर्हस्तक्षेप का भी पक्षपाती था और उसने चेष्टा की कि भारत को उस स्थिति में ले जाया जाय जिसमें वह वेलजली के आगमन के पूर्व था।

कंपनी की नवीन नीति एक कमजोर समझौता नीति थी जिसके अंतर्गत (1) राजपूत राज्यो पर से ब्रिटिश संरक्षण वापस ले लिया गया; (2) ग्वालियर, गोहद और अन्य क्षेत्र सिंधिया को वापस कर दिये गये, एवं (3) होल्कर जो अब तक गृहविहीन हो चुका था उसे राजपूताना के वे जिले वापस किये गए जिसे उसने राजपुरघाट की सधि के अंतर्गत ब्रिटिशों को प्रदान किया था। पर निजाम और पेशवा के साथ की गई सहायक संधि चलती रही।

भारत मे अपनाई गई ब्रिटिश नीति ने गृह अधिकारियो को देश की सही स्थिति के संबध मे पूर्ण अज्ञानता का भान कराया। (1) यह दुर्भाग्यपूर्ण था कि कमजोर राजपूत राज्य जिन्होने ब्रिटिशों का सरक्षण चाहा और प्राप्त किया था उन्हें पुनः *मराठों का शिकार होने के लिए छोड़ दिया गया।* (2) होल्कर की शक्ति को लगभग दबा दिया गया। दक्षिण में उसके क्षेत्र, तथा चम्बल क्षेत्र मे उसके क्षेत्र, जिसमे उसको राजधानी इन्दौर भी सम्मिलित थी, पर अधिकार कर लिया गया। उसके चन्दौर जैसे महत्त्वपूर्ण किले धराशायी हो गए और रणजीतसिंह से उसकी सहायता की याचना भी फलीभूत नही हुई। यदि गृह अधिकारियों ने कुछ काल तक और हस्तक्षेप न किया होता तो द्वितीय मराठा युद्ध अपने तर्कपूर्ण निष्कर्ष तक पहुंच जाता।

(3) कमजोर समझौतावादी नीति के प्रारभ होने के फलस्वरूप वैसे तो मराठा क्षेत्र वापस हो गए, पर अपमान का जो घूट उन्हे पीना पड़ा था, उसका भाव अभी तिरोहित नही हुआ। वे बदला लेने की भावना के लिए बाध्य थे और शाति अधिक दिनो तक बनी रहेगी, इसकी सभावना नहीं थी।

एस० एम० यडवर्डस ने लिखा है: "1805 में सपन्न मराठों से सधि दुर्भाग्य से कमजोर समझौतावादी नीति से ग्रस्त थी···और (इसने) 13 वर्ष बाद मार्क्विस हेस्टिंग्स को इस कार्य को पूरा करने को बाध्य किया जिसे करने से इंडिया हाउस की सरकार ने भयवश वेलजली को रोक दिया था और इसका सफल अंत नही होने दिया था।"[2]

---

1. राबर्ट्स, पी० ई० : पूर्वोद्धृत, पृ० 242।
2. कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग-5, पृ० 375।

फ्रांसीसी संकट के विरुद्ध कदम

हमने पहले ही देखा है कि किसी तरह वेलजली के भारत पहुंचने पर पेरो और रेमण्ड जैसे फ्रांसीसी सेनापति सिंधिया और निजाम जैसे भारतीय राजाओं के दरबार में प्रभावपूर्ण स्थान बना चुके थे। यदि यह फ्रासीसी सबंध भारतीय दरबारो से निर्विरोध चलता रहता तो ब्रिटिशो के लिए इससे किसी भी समय खतरे की आशा थी। उस समय तो यह खतरा और बढ़ जाता जब युरोप मे भी फ्रास और ब्रिटिशों की शत्रुता बढ़ जाती। वेलजली ने जिसका भारतीय समस्याओं के प्रति अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण था, इस संकट को रोकने की चेष्टा की और अपनी सहायक संधि की नीति के माध्यम से इस क्षेत्र में शानदार सफलता प्राप्त की। फ्रासीसी सेनायें, जो भारतीय राजाओं के यहा थी, हटा दी गईं। भारतीय राजाओ ने ब्रिटिशों को आश्वस्त किया कि वे उनकी आज्ञा के बिना किसी युरोपीय को अपने यहां सेवा मे न रखेंगे। वेलजली की नीति का यह सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू था जिसके द्वारा भारत से फ्रांसीसी प्रभाव समाप्त कर दिया गया।

पर भारत पर बाहर से एक फ्रासीसी खतरा घात लगाये बैठा था, वह चाहे कितना ही अव्यावहारिक क्यो न रहा हो। 1798 मे[1] तथा पुनः 1801 मे यह अफवाह गर्म थी कि नैपोलियन एक बहुत बड़ी सेना तैयार कर रहा है जिसे लेकर वह रूस की सहायता से भारत पर आक्रमण करेगा। इस सेना के आने की योजना के अतर्गत उल्मन से होकर डेन्युब, कालासागर, अजोव समुद्र तथा वहा से जारित्सिन होकर, वोलगा को नावों से पार करके अस्त्राखान, हेरात तथा कान्धार होकर भारत पहुंचना था। फ्रासीसी सेना से रूसी सेना को मिलना था और इन सेनाओ के भारत की उत्तर पश्चिम सीमा पर पहुचने मे $4\frac{1}{2}$ मास लगना था।

यदि नैपोलियन अपने इस साहसिक कदम को उठाने मे सफल होता तो यह अत्यन्त भय का कारण होता। कट्टर मुस्लिम देशो से होते हुए इतनी लबी यात्रा और इतनी दूरी से सपर्क मार्ग बनाये रखते हुए ब्रिटिशो को दी जाने वाली चुनौती, जिनकी कोई खास समस्याएं नही थी, देखने मे सत्य से अधिक स्वप्न ही मालूम पडती थी। पर वेलजली कोई भी चीज संयोग पर छोडने को तैयार न था और इसीलिए मार्ग मे पड़ने वाले मुस्लिम देशों से सपर्क करके उसे रोकने की उसने चेष्टा की।

इस तरह दिसबर 1799 में वेलजली ने तेहरान जान मैलकाम को राजदूत बनाकर भेजा। वह अपने साथ फारस के शाह के लिए अमूल्य भेंटें भी ले गया।

---

1. जी० एस० मिश्रा : ब्रिटिश फारेन पालिसी एण्ड इंडियन अफेयर्स (1789-1815), बम्बई, 1963, पृ० 41।

दूत के साथ लगभग 500 लोग थे जिस पर ब्रिटिशों का बहुत धन व्यय हुआ। वेलजली के शत्रुपक्ष ने इसकी बड़ी आलोचना भी की। दूत की सफलता का प्रयोग नही किया गया और इस तरह यह सारा व्यय बेकार गया। वैसे तो मैलकाम ने शाह के मंत्री से दो संधियां की जिनमें से एक व्यापारिक थी और दूसरी राजनीतिक, जिसके अंतर्गत शाह ने फ्रांसीसियो को अपने देश होकर जाने का रास्ता न देना स्वीकार किया और न अपने देश में बस्ती की अनुमति देने को ही कहा। पर ये संधियां औपचारिक रूप धारण नही कर पायी। पर यदि वेलजली ने यह दौत्य समूह न भेजा होता और नैपोलियन सचमुच युद्ध यात्रा पर आ जाता तो वही लोग उसकी ढिलाई के लिए आलोचना करते जो उसके अत्यधिक भावुक होने के लिए अब आलोचना कर रहे थे।

जैसा भी हो, वेलजली ने अपनी बुद्धि के अनुसार कार्य किया। उसने फारस दूत भेजने के अतिरिक्त मारीशस पर विजय हेतु सैनिक तैयारियां की। पर ऐडमिरल रैनियर ने यह कहकर उसके कार्य में असहयोग कर दिया कि क्राउन ने इस संबध मे कोई आज्ञा नही प्रदान की है जिससे उसका उद्देश्य पूरा न हुआ। उसकी यह योजना अत्यधिक परिपक्व थी पर यह आश्चर्यजनक है कि ऐडमिरल के विरुद्ध वेलजली के इंगलैण्ड मे अलोकप्रियता के कारण कोई कार्रवाई नही हुई। वैसे इस कार्य को करने से इंकार करना अत्यधिक अन्यायपूर्ण था।

वेलजली ने मारीशस पर विजय प्राप्ति के लिए जो सेना तैयार की थी उसे जनरल सर बेयर्ड के नेतृत्व में मिश्र नैपोलियन को पराजित करने के लिए भेज दिया गया। पर यह सेना अपने गनतव्य पर पहुंचे, उसके पहले ही सर राल्फ अबर क्राम्बी ने फ्रासीसियों को घुटने टेकने को बाध्य कर दिया था। भारत की सेनाओं को चूंकि कुछ विशेष नही करना था इसलिए वे भारत वापस लौट पड़ी। इससे सारी दुनिया को मालूम हो गया कि यह भारतीय सेना केवल ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की रक्षा में ही सक्षम नही है बल्कि यह युरोप में ब्रिटिश जीवन की रक्षा भी कर सकती है।

1799 में पुर्तगालियों के सहयोग से वेलजली ने फ्रांसीसी नवसेना के आक्रमण से बचने के लिए गोवा की सुरक्षा-व्यवस्था भी की। 1801 में जब डेनमार्क और ग्रेट ब्रिटेन मे संघर्ष प्रारंभ हो गया तो वेलजली ने उचित अवसर देख अपनी सेना की सहायता से सेरामपुर और ट्रंकूवार की भारतीय डेनिश बस्ती पर अधिकार कर लिया। जैसे ही एमिया की संधि पत्र पर हस्ताक्षर हुए गृह सरकार ने गवर्नर जनरल को यह आदेश दिया कि कार्नवालिस के समय में अधिकार किये गए पांडिचेरी और अन्य फ्रासीसी बस्तियों को उन्हें वापस कर दिया जाय। वेलजली को मालूम था कि यह आदेश गलत है इसलिए साहस का परिचय देते हुए उसने पांडिचेरी देने से इंकार कर दिया और उसने यह घोषित कर दिया कि वह इस

संबंध में गृह सरकार से कुछ स्पष्टीकरण मांगने के लिए पत्र-व्यवहार कर रहा है। उसकी स्थिति उस समय अधिक सुरक्षित हो गई जब इंगलैण्ड और फ्रास के मध्य संघर्ष छिड़ने पर गृह सरकार ने उसे आदेश दिया कि वह सभी फ्रांसीसी वस्तियों पर फिर से अधिकार कर ले। उन्हें क्या मालूम था कि ये वस्तियां शत्रु पक्ष को कभी प्रदान ही नही की गई थी।

वेलजली ने फ्रांसीसियों के पक्षधर समाचार पत्रों एशियाटिक मिरर, द टेलीग्राफ, द पोस्ट को भी नियन्त्रित किया। उसने अंग्रेज व्यापारियों की जहाजों की बंगाल की खाड़ी में फ्रास के आक्रमण से बचाने की भी व्यवस्था की। ट्रिंकोमाली में सेनाएं तैयार रखी जाती थी जो आवश्यकतानुसार लालसागर या भारत क्षेत्र मे कही भी कठिनाई दूर करने के लिए भेज दी जाती थी।

अवकाश ग्रहण और सफलताएं

मराठो से भयानक रूप से सघर्ष में व्यस्त रहने के काल में ही वेलजली को 1805 मे यहा से वापस बुला लिया गया। जब वह अपने देश पहुचा तो डाइरेक्टरो ने उसकी कार्यवाहियों के लिए प्रशसा में एक शब्द भी न कहा। एक दशक से *अधिक बीत जाने पर उन्होंने यह समझा कि उसने कितना महत्त्वपूर्ण कार्य किया* था और वह कितना और कुछ कर देता यदि वह कुछ समय यहा और रह पाया होता। इस बीच उसकी इस बात के लिए आलोचना हुई कि वह भारत मे इगलैण्ड के लिए संकट पैदा करने के लिए उत्तरदायी है। जनरल पॉल ने, जो उसका व्यक्तिगत शत्रु था, ससद में उसके विरुद्ध आरोप लगाये पर हाउस आफ कामन्स ने सामान्य रूप से भारत मे उसकी कार्यवाहियो को उचित ठहराया।

वेलजली इसके बाद भी काफी दिनों तक सुख से जिया। 1809 में उसे स्पेन में दूत बनाकर भेजा गया जहां उसे नैपोलियन के विरुद्ध विरोध का संगठन का कार्य करना था। बाद मे वह विदेश सचिव हो गया और 1812 में उसे सरकार बनाने के लिए भी आमन्त्रित किया गया। पर बहुमत के अभाव मे वह असफल रहा। *1816 मे उसकी प्रथम पत्नी का देहान्त हो गया।* *1825 में उसने लीड्स की* डचेस की बहन, एक सपन्न अमेरिकन कैथोलिक श्रीमती मैरिएन पैटरसन से पुनः विवाह किया और शेष जीवन उसके साथ प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत किया, पर उसकी कोई संतान नही थी। 26 सितबर 1842 मे ब्राम्प्टन के किंग्सटन हाउस मे उसका देहात हो गया।

वेलजली की भारत मे ब्रिटिशो के प्रति सेवाए महान थी।[1] जैसा हमने देखा

---

1. वैसे तुरत उसके युद्धो ने कपनी का ऋण बोझ बढ़ा दिया जो 1805-06 में 2,85 23,804 पौण्ड था। जिसका 2/3 उसी के समय मे जुड़ा। कोर्ट आफ डाइरे

है उसके आगमन के समय भारत में ब्रिटिशों की स्थिति असंतोषजनक थी। जिस तरह से उसने मैसूर को धराशायी किया, भारत में ब्रिटिशों के सौभाग्य के लिए हैदराबाद और अवध को मिलाया और कर्नाटक, तंजौर और सूरत में तत्कालीन स्थिति को नया स्वरूप प्रदान किया, उससे सिद्ध हो गया कि भाग्य उसके पीछे दौड़ रहा है। वह एक दूरदर्शी राजनेता था और एक ऐसा अपूर्व बुद्धिवाला जो योजनाएं भी बनाता था और उसे कार्यरूप में भी बदलता था। यह दुर्भाग्यपूर्ण था कि डाइरेक्टरों ने उसमें विश्वास व्यक्त नहीं किया और चीजों को उसकी दृष्टि से नहीं देखा। उसने फ्रांसीसी प्रभाव पर अंतिम गहन प्रहार किया और सहायक संधियों के माध्यम से ऐसा वातावरण पैदा किया कि फ्रांसीसियों के पुनः प्रभाव में आने की संभावना ही न रह गई। यह वही व्यक्ति था जिसने बताया कि भारतीय साधन और सैनिकों का प्रयोग भारत में ब्रिटिश राज्य के विस्तार के लिए ही नहीं किया जा सकता था बल्कि विदेशों में भी इनका प्रयोग किया जा सकता था। यदि वह भारत में एक वर्ष ही और रह गया होता तो मोयरा के अर्ल लार्ड हेस्टिंग्स को न तो तृतीय मराठा युद्ध लड़ना पड़ता और न ही 1818 में अशांत पिंडारियों और पठानों के विरुद्ध हथियार उठाना पड़ता। भारत में जो कुछ उसने समझा उसे समझने में कंपनी के डाइरेक्टरों को इंगलैण्ड में अगले 13 वर्ष लग गए।

पर वेलजली में कुछ दोष भी थे जो कपनी के भारत में हित पहुंचाने वाले गुणों को ढक लेते थे। और इन दोषों की उपस्थिति में, यह आश्चर्यजनक नहीं है कि डाइरेक्टरों ने पहला अवसर हाथ में आते ही उससे मुक्त होने हेतु इसका प्रयोग कर लिया। उसमें दर्प बहुत था, "और वह अपने दृष्टि के अतिरिक्त किसी और की बात उड़ती निगाह से भी नहीं देखता था चाहे वह कितनी ही स्पष्ट क्यों न हो।"[1] अपने पूर्ववर्ती सर जान शोर का उसके द्वारा मूल्यांकन जिसमें उसने कहा कि वह "छोटे परिवार का था, उसका व्यवहार अभद्र था और उसकी आदतें पूर्वी थी।" यह विवेचन स्वयं अभद्र था और इससे प्रकट था कि उसका घमंडभाव बेवकूफी की पराकाष्ठा तक पहुंच सकता था। वह अपनी कौंसिल में कम ही राय लेता था जिसे वह बेकार कहा करता था। भारत के लोग उसकी दृष्टि में "परेशानी एवं असहिष्णुता की सीमा तक अभद्र, अज्ञानी, उजड्ड और मूर्ख थे; विशेषकर महिलाएं, उनमें से तो एक भी देखने योग्य न थी !" उसके सहायकों का भी व्यवहार ठीक नहीं था। वह स्वयं लिखता है कि उनके कारण "मुझे अधिक समय समारोहों आदि में ही गंवाना पड़ता है···मैंने सिफारिशों के दरवाजे बंद कर

चार्ल्स ग्राण्ट ने यह स्पष्ट किया। इम्ब्री : चार्ल्स ग्राण्ट एण्ड ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, लंदन, 1962, पृ० 227।

1. टाम्पसन, गैरट : पूर्वोद्धृत।

दिये हैं, और मैं अपने अधिकार का प्रयोग साहस और कठोरता से करता हुआ सख्ती की पराकाष्ठा तक पहुंचा देता हूं।"[1] और जहां तक सुपरवाइज़रों और कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स का संबंध है वे "इंडिया हाउस में एक अत्यधिक घृणित अड्डों" के अतिरिक्त और कुछ नहीं थे।

जब तक वह भारत में रहा तब तक वह साम्राज्यवादी विजय में व्यस्त रहा और ब्रिटिश राज्य का विस्तार करता रहा। उसने साधारण व्यक्ति की ओर शायद ही देखा और न ही उनकी कठिनाई, शोषण और दबेपन की ओर ध्यान दिया। वी० ए० स्मिथ ने लिखा है कि "उसका मूल्यांकन शक्ति को आधार बनाकर होना चाहिए, अधिकार और जन नैतिकता को आधार बनाकर नहीं।"[2] हिकी ने कहा है कि वह आकाश की ऊंचाइयां छू लेने वाला व्यक्ति था। वह एक चोटी से कूदकर दूसरी चोटी पर पहुच जाता था और नीचे आधार की ओर दृष्टि ही न करता था।

1. हिस्टारिकल मैनिसक्रिप्ट कमीशन, पूर्वोद्धृत; राबर्ट्स : पूर्वोद्धृत, पृ० 181।
2. स्मिथ : द आक्सफर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, पृ० 557।

25
अर्ल मिण्टो (1807-1813)

गिलवर्ट इलियट जो वाद में मिण्टो का प्रथम अर्ल हो गया, वह 23 अप्रैल 1751 को पैदा हुआ। उसके पिता का नाम सर गिलवर्ट इलियट था। उसकी मा ह्य् इलरिम्पिल मैरी कीनीमाउन्ड की पुत्री ऐगनीज थी। अपनी शिक्षा के वाद वह 1774 में लिंकन इन मे वार का सदस्य हो गया। 1776 मे वह ह्विग सदस्य के रूप में ससद का सदस्य चुन लिया गया। 1777 मे उसने सर जार्ज अमीण्ड की पुत्री अन्ना मैरिया से विवाह कर लिया। जव वारेन हेस्टिग्स और सर यलिजा इम्पे के विरुद्ध मुकदमा संसद मे चल रहा था तो वह भी उनमे से था जो इनकी अवहेलना के वाक्‌वाण से लोगों को आनंदित करता था जिससे उसका नाम हुआ। दो वार उसे स्पीकर वनाने का प्रस्ताव आया जो असफल रहा। उसे कई महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त हुए। उसे 1798 मे लार्ड मिण्टो की हैसियत से पियर बनाया गया। 1799 मे वियना में राजदूत वनाकर भेजा गया। 1806 मे वह भारत के लिए वोर्ड आफ कन्ट्रोल का अध्यक्ष वनाया गया और अगले ही वर्ष उसे भारत का गवर्नर जनरल वनाया गया। 3 जुलाई 1807 को उसने सरजार्ज वार्लो से कलकत्ता सरकार का कार्यभार ग्रहण किया।

डाइरेक्टरों ने वेलजली की भारत मे लगातार युद्ध नीति को नापसद किया था। उन्होंने उसे वापस बुलाकर कार्नवालिस को शाति स्थापना के लिए भेजा। पर कार्नवालिस यहा पहुचने के थोड़े काल वाद ही मर गया जिसके परिणामस्वरूप एक अन्य शातिप्रिय व्यक्ति लार्ड मिण्टो इस कार्य के लिए चुना गया। लार्ड मिण्टो ने भारत मे अपने को दो कार्यों में लगाया। एक तो यह कि वार्लो द्वारा प्रारंभ की गई भारतीय राजाओं से कमजोर समझौतावादी नीति को उसने चलते रहने दिया और दूसरे भारत मे फ्रांसीसी खतरे के विरुद्ध तैयारी की जाती रही जिसकी संभावना अव भी थी।

मराठा नेताओं से समझौता हो चुका था। पर जहा वेलजली ने बुंदेलखड के कुछ राजाओं को दवाया था, वहां अजयगढ़ और कालिंजर जैसे क्षेत्र के शासन मिण्टो के काल मे सर उठाने की तैयारी में थे। उन्हें व्रिटिश प्रभुसत्ता मानने को बाध्य किया गया। कोटा के गोपालसिंह ने, जिसने 40 वर्षों तक व्रिटिशों से लोहा लिया था, एक छोटा-सा राज्य अपने गुजारे के लिए प्राप्त कर मौन

धारण कर लिया।

ट्रावनकोर में समस्या थी जहां सहायक सेना का वेतन बकाया था और रेजीडेंट स्थानीय शासक से उसकी सेना में कटौती की मांग कर रहा था। राज्य के दीवान ने इसका विरोध किया और कहा जाता है कि उसने रेजीडेंट की हत्या तक की योजना बना ली। ब्रिटिश सेना को बुलाया गया, दीवान से लड़ाई हुई जिसमें वह हार गया और इस पर राजा ने उसके स्थान पर किसी अन्य को नियुक्त करना स्वीकार कर लिया और साथ ही यह भी मान लिया कि वह अपनी सेना की सख्या घटा देगा।

ईसाई मिशनरिया भारत में शिक्षा के प्रचार तथा अन्य माध्यमो से भारत की बड़ी सेवा कर रही थी। पर इधर इन्होने भारतीय धर्मों की खुलकर आलोचना प्रारभ कर दी थी जिसके कारण लोग उत्तेजित हो रहे थे और शाति व व्यवस्था की समस्या पैदा होने का खतरा बढ गया था। मिण्टो ने मिशनरियों को उत्तेजना-पूर्ण कार्रवाई न करने के लिए सचेत किया। इस पर उन्होंने उसके विरुद्ध गृह विभाग को शिकायत भेजी। पर मिण्टो ने अपनी स्थिति स्पष्ट करके इंगलैण्ड में अपने प्रति आदर का भाव जागरित करने मे सफलता पाई। मिशनरियों को अपने व्यवहार में परिवर्तन करना पड़ा।

विदेशों से दौत्य संबंध

फारस से संबंध

इसी बीच फ्रासीसी संकट से निवटने के लिए लार्ड मिण्टो को फारस के दरबार में ब्रिटिश प्रभाव बढाने के लिए कदम उठाना पड़ा जो वेलजली के फारस को ब्रिटिशों के निकट लाने के असफल प्रयास के बाद कमजोर पड़ गया था। वेलजली के काल मे ग्रेट ब्रिटेन ने इसकी महत्ता का अनुभव नही किया था। मिण्टो जब भारत पहुंचा तब तक ब्रिटिश भारत का फारस से सबध लगभग भग हो चुका था। 1804-5 रूस से होने वाले युद्ध मे फारस ने बड़ी हानि उठाई थी। उसे एक विश्वस्त मित्र की आवश्यकता थी जिसके लिए वे ब्रिटिशों को चाहते थे पर ब्रिटिश रूसियों को अलग न करना चाहते थे। दूसरी ओर तृतीय सघ निर्माण के बाद नैपोलियन को फारस की महत्ता समझ मे आ रही थी जो ब्रिटिशों के विरुद्ध उसके मन्तव्य पूर्ति मे सहायक हो सकता था। 1805 में एक फ्रासीसी दूत रोम्यो फारस आया, 1806 मे एक अन्य फ्रासीसी मिशन भी वहा आया और 1807 आते-आते फारस और फ्रांस के मध्य सधि की स्थिति मूर्त हो गई। पर फ्रांस और फारस मे एक नियमित सधि हो, उसके पहले ही एक फारसी दूत भारत मे रूस के विरुद्ध सहायता का निवेदन लेकर भारत पहुंचा। पर चूंकि ब्रिटिशों ने इसे अनसुना कर दिया, इस कारण 5 मई, 1807 को फ्रांस और फारस के बीच सधि हो गई।

इसकी शर्तें थी, (1) फारस ने ब्रिटिशों से एकदम किनारा कर लिया और (2) उन्होंने नैपोलियन को भारत के विरुद्ध आक्रमण में सहायता देने को कहा। जब कि नैपोलियन ने (i) फारस को छोटे हथियार तथा बदूकें देने का वादा किया, और (ii) उसके देश की अखंडता को बनाये रखने के लिए आश्वस्त किया। इस सधि को फिकेनस्टीन की सधि के नाम से जाना जाता है।

8 फरवरी 1807 में नैपोनियन ने रूसी सेना को एलों मे पराजित किया, जुलाई 1806 में फ्रीडलैण्ड मे उन्हें उसने पुनः बुरी तरह हराया और उसी वर्ष जार अलेक्जान्डर प्रथम को टिलसिट की संधि करने को बाध्य किया जिसके फलस्वरूप उसे फ्रास का मित्र बन जाना पड़ा। अब टर्की और फारस से होकर फ्रास व रूस की सम्मिलित सेना भारत पर आक्रमण करने को सोचने लगी।

जब मिण्टो ने भारत मे कार्यभार ग्रहण किया उस समय एक फ्रांसीसी और तुर्की दूत फारसी दरबार मे थे। फारस ने अपनी खाड़ी का गोम्बून का बंदरगाह फ्रास को दे दिया था। यह पता चला कि 300 फ्रासीसी सैनिक कैस्पियन सागर पहुंच गए हैं और 1200 जल्दी ही पहुचने वाले है। फ्रांस का भारत पर आक्रमण चूंकि टर्की और फारस की सहायता से ही सभव था इसलिए डाइरेक्टरों ने भारत और विदेशों मे सुरक्षात्मक नीति अपनाने की राय दी। उन्होंने यह भी कहा कि जल्द से जल्द फारस और टर्की को अपनी ओर मिलाने की चेष्टा की जाय।

मिण्टो को तेजी से कार्य करना था। उसने पुनः मैलकाम को आमत्रित कर भारत सरकार की ओर से उसे अरब की खाड़ी के क्षेत्रों, टर्की तथा बगदाद मे एजेन्ट नियुक्त किया तथा फारस के दरबार में उसे अपना राजदूत बना दिया। मिण्टो ने एक नवसेना फारस के क्षेत्र में किसी जलीय क्षेत्र पर फ्रासीसी अधिकार को रोकने हेतु भेजने का निश्चय किया। एक अन्य स्थलीय सेना भी फ्रासीसियों से लड़ने के लिए तैयार की गई। ये हमले मैलकाम के निर्देशन में होने थे जो 30 अप्रैल को मस्काट पहुंच गया, जहां के इमाम से उसने मित्रता की और जून 1808 में वह तेहरान पहुंच गया।

1808 के प्रारभ मे ही मैलकाम को पता लगा कि जनरल गार्डन तेहरान आ गया है और फ्रांसीसियों तथा फारसियों के बीच एक संधि होने वाली है जिसके अंतर्गत नैपोलियन दवाव डालकर रूस से उसे जार्जिया दिलवा देगा और अन्य अधिकारित क्षेत्र खाली कर देगा। इसके वदले फारस से होकर फ्रांसीसी सेना को जाने की अनुमति देनी होगी। मैलकाम को सावधानी से फारस को अपनी ओर मिलाना था जिससे रूस भी असतुष्ट न हो। इसलिए उसने शांति से फारसी दरवार के व्यवहार के प्रति असंतोष व्यक्त किया और प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें वता दिया कि वे इस देश के हाथों अपने हित की वलि नहीं चढ़ाने देंगे।

भाग्य से 1808 के अंत तक यूरोप में स्थिति में परिवर्तन हो गया।

के विरुद्ध स्पेनियों ने विद्रोह प्रारंभ कर दिया, टिलसित में स्थापित मित्रता कमजोर पड़ने लगी और फारस ने शीघ्र अनुभव किया कि रूस के विरुद्ध किए गए वादे को वह पूरा नही कर सकता। इस कारण भूमिका तैयार हो गई और गार्डेन के विरोध के बावजूद इंगलैण्ड से सर हार्फर्ड जोन्स के मिशन का वहां स्वागत हुआ और 12 मार्च 1809 को फारस ने इंगलैण्ड के साथ एक प्रारंभिक संधि कर ली। इसके अंतर्गत (1) उसने आश्वस्त किया कि वह अपने देश से होकर किसी युरोपीय सेना को भारत पर आक्रमण नही करने देगा (2) और इसके पूर्व युरोपीयों से की गई संधियां बेकार होगी। फारस में फ्रांसीसी मिशन को हटा दिया गया। 14 मार्च 1812 को एक स्थायी संधि की गई जो 25 नवम्बर 1814 को गृह अधिकारियों द्वारा कुछ संशोधन के बाद स्वीकार कर ली गई।

टर्की

मैलकाम की नियुक्ति के साथ टर्की मे भी एक गुप्त दूत नियुक्त करने का निश्चय किया गया जिसका कार्य टर्की में स्थिति का अध्ययन करना और वहां फ्रांसीसी चालो को काटना था। इस पद पर उसी देश का पीटर पाल जोसेफ जोहराब नियुक्त किया गया।

अफगानिस्तान

नैपोलियन एशिया के सभी देशों में अपने दूत भारत पर आक्रमण की परिस्थिति पैदा करने के लिए भेज रहा था। इस चाल की काट के लिए मिण्टो ने भारत से वैसी ही नीति अपनाते हुए एलफिन्सटन के नेतृत्व में एक मिशन काबुल को भेजा। इस दल को 3 लाख रुपये तक की आर्थिक सहायता वहां के शासक शाहशुजा को देने का अधिकार दिया गया जिसका उद्देश्य फारस और फ्रांस के साथ सुरक्षात्मक संधि थी। जब एलफिन्स्टन अफगानिस्तान पहुचा, शाहशुजा अपने आतरिक शत्रुओं से जूझ रहा था। उसे काबुल के शासक से साक्षात्कार के लिए दो माह तक प्रतीक्षा करनी पडी तब जाकर पेशावर मे उससे भेंट हुई। काफी लंबी बातचीत के बाद 1809 में संधि हो गई। इस संधि के अंतर्गत उसने अपने क्षेत्र से होकर भारत पर आक्रमणार्थ फ्रांसीसी सेना को आज्ञा न देने का वादा किया जिसके बदले ब्रिटिश उसे सैनिक साज-सामान देने को तैयार हुए। पर संधि के तुरंत बाद शाहशुजा स्वयं गद्दी से हटा दिया गया और कश्मीर मे फिर भारत मे एक भगोडे की तरह रहने लगा। एलफिन्स्टन ने उसके उत्तराधिकारी महमूदशाह से इसी तरह की संधि करनी चाही पर उसने इसकी कीमत के रूप में विपुल आर्थिक सहायता मागी। इसे ब्रिटिश स्वीकार न कर सके और अपने उद्देश्य के पूरा किए

बिना ही वे लौट आए।

सिंध

इसी तरह का एक मिशन कैप्टन डेविड सेटान के नेतृत्व में सिंध भेजा गया। पर सेटान ने अपने अधिकार का दुरुपयोग कर उस देश के अमीरो से एक सुरक्षात्मक संधि कर ली। चूकि यह स्थान अफगानिस्तान राज्य का एक भाग था इसलिए लार्ड मिण्टो ने इसे रद्द कर दिया क्योकि सिंध इसका प्रयोग अफगानिस्तान के विरुद्ध कर सकता था। पर उस देश के साथ 1809 मे एक समझौते के अतर्गत मित्रतापूर्ण सबध स्थापित किया गया जिसका नवीनीकरण 1820 मे किया गया।

आवा

1810 में यह पता चला कि आवा के दरबार मे एक फ्रासीसी दूत आया है जो बर्मा की सहायता से भारत में ब्रिटिश शासन को आघात पहुंचाना चाहता है। लार्ड मिण्टो ने लेफ्टीनेण्ट कैनिंग को उस देश में फ्रासीसी षड्यत्र से निबटने हेतु भेजा और उसे इसमे सफलता मिली।

पंजाब से संबध

अपने निकट लार्ड मिण्टो से पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह के सबंधो की विस्तार मे परीक्षण की आवश्यकता है। 18वी सदी के मध्य तक, कहा जाता है, अग्रेजो को सिखो के विषय मे प्रर्याप्त जानकारी नही थी। फ्रैंकलिन ने उस समय लिखा "*सिख लबे हैं*···*वे दिखते भयंकर हैं और उनकी आखे चुभने वाली है*···वे अफगानों की भाषा बोलते है, उनकी 2½ लाख की भयानक सेना है, पर सगठन के अभाव में उनसे डरने की कोई बात नही है।"[1] सिखो का यह मूल्याकन उस समय का है जब रणजीतसिंह का जन्म भी नही हुआ था।

सिखों का एक अधिक उचित मूल्याकन 1783 मे फोर्स्टर द्वारा किया गया। उसने उनका सही चरित्र बताया और भविष्यवाणी की कि उनका एक योग्य नेता एक दिन संभवतः इस बिखरे सगठन को एक कर अत्यधिक शक्ति अर्जित करेगा। *भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के संस्थापको में से एक वारेन हेस्टिंग्स को 1784 मे* सिखों के विषय में कुछ अधिक जानकारी हो गई थी जिसने पजाब से दूर होने के बावजूद अपनी सरकार को परामर्श देते हुए लिखा कि "उनके विरुद्ध आवश्यक कदम उठाए जाएं···सिखो को बिना रोक-टोक के शक्ति न अर्जित करने दिया

1. फ्रैंकलिन . शाहआलम, पृ० 175-178।

जाए।"[1] इसलिए स्पष्ट था कि रणजीतसिंह के लिए पूर्व में वड़ी उचित परि-स्थितियां न थी।

अंग्रेजो और सिखों के बीच प्रथम सीधा संवंध 1800 मे हुआ। ब्रिटिशों के सिखो के सवंध में इस समय यह नीति थी कि रणजीतसिंह के शक्ति प्राप्त करते राज्य को रूस और ब्रिटिश राज्य के बीच मध्यस्थ राज्य की भूमिका अदा करने दिया जाए क्योंकि रूस की आखें मध्य पूर्व की ओर थी। रूस फारस और अफगा-निस्तान से संपर्क करके भारत पर आक्रमण कर सकता था। 1771 में जनरल बार्कर ने 12 सिख इकाइयों में से एक के नेता झडासिंह भगी को एक पत्र पहले ही लिखा था: "स्पष्ट है कि खाल्सा सेना रक्षक है इसलिए भारत पर बिना विरोध के कोई आक्रमण नही कर सकता।" इसके अतिरिक्त ब्रिटिश चाहते थे कि यदि रूस से युद्ध किया ही जाना है तो यह युद्ध पजाव में या उसके और आगे लड़ा जाना चाहिए। ब्रिटिशो को एक और कठिनाई की आशंका थी। वे भारत में अभी अपनी शक्ति गठित नही कर पाए थे जहा के लोग वह भी विशेपकर मुसलमान रूसियों या अफगानों द्वारा पजाव पर अधिकार करने के बाद बहकाए जा सकते थे कि ब्रिटिशो की शक्ति का वे अंत कर दें।

उत्तरी और दक्षिणी भारत के तमाम भागों पर अधिकार के बाद, विशेपकर आग्ल-अवध मैत्री की सधि के बाद अंग्रेजो को स्वाभाविक रूप से उत्तर-पश्चिम की ओर अपना ध्यान ले जाना पड़ा। लार्ड वेलजली के समय में 1800 मे एक निश्चित अवसर उन्हे मिला जब भारत पर अफगान शासक जमान शाह के आक्रमण का खतरा पैदा हो गया। इसे परम ब्रिटिश शत्रु टीपू ने आक्रमणार्थ आमत्रित किया था। सावधानी के तौर पर ब्रिटिशों ने मुशी युसुफ अली को पर्याप्त भेटें लेकर रणजीतसिह के दरवार में भेजा। रणजीतसिह ने 1799 मे लाहौर पर अधिकार के बाद पजाब पर प्रभुसत्ता स्थापना का प्रयास प्रारंभ कर दिया था। ब्रिटिशो ने उससे यह निवेदन किया कि यदि जमान शाह भारत पर आक्रमण करे तो वह उसका पक्ष न ले। पर कुछ समय बाद ही जमान शाह के आक्रमण का खतरा टल गया और युसुफ अली ब्रिटिशों द्वारा वापस वुला लिया गया।

रणजीतसिह से ब्रिटिशों की यह प्रथम जान पहचान थी जिसकी ओर इतिहास-कारो ने अधिक ध्यान नही दिया है।

ब्रिटिशों और रणजीतसिह के बीच दूसरा संवध 1805 में हुआ। 19वी सदी के प्रारंभ मे दो महारथियो अंग्रेज और मराठों के बीच भारत मे प्रभुता के लिए सघर्ष तेज हो गया था जिसका परीक्षण हम पहले ही कर चुके हैं। दो मराठा

---

1. देखें, डूरण्ड, सर एच० मारियों: द फर्स्ट अफगान वार एण्ड इट्स काजेज (दो भाग), भाग-1, पृ० 121।

नेताओं महादाजी सिंधिया और जसवन्त राव होल्कर ने अपना प्रभाव दूर-दूर तक फैला दिया था, पर उनके पास ब्रिटिश कूटनीति का कोई उत्तर न था। जब दोनों शक्तियों के मध्य संघर्ष प्रारंभ हुआ तो दोनों मराठा नेताओं ने ब्रिटिशों के विरुद्ध रणजीतसिंह से सहायता चाही। प्रारंभ में सिंधिया ने दिल्ली के उत्तर में अपना प्रभाव स्थापित करके अपने फ्रांसीसी सेनापति पेरों और वोराक्विन के माध्यम से सिखों से संपर्क किया। पर चतुर रणजीत को अपने सीमित साधनों का ज्ञान था और यह भी कि इस आधार पर वह कुछ नही कर सकता, जल्दी ही सिंधिया अंग्रेजों से पराजित हो गया और उसकी शक्ति दबा दी गई।

पर जसवन्त राव होल्कर के साथ बात और ही थी। यों तो मराठा नेता जनरल लेक द्वारा अंग्रेजी सेना से डिग और फर्रुखाबाद में पराजित किया गया था पर कठिनाइयां तब सामने आईं जब होल्कर भागकर पंजाब पहुंचा और रणजीत सिंह से सहायता के लिये निवेदन किया। यह घटना 1805 में हुई और जनरल लेक ने रणजीत को लिखा कि यदि वह ऐसा करेगा तो उस सबका उत्तरदायी वह होगा। एक क्षण तो रणजीतसिंह निर्णय नही कर पाया और महत्त्वपूर्ण सिख नेताओं से परामर्श हेतु अमृतसर में गुरुमाता[1] में बैठक बुलाई। बैठक में उपस्थित अधिकतर लोगों ने और विशेषकर फतेहसिंह अहलूवालिया ने रणजीत सिंह से अंग्रेजों से संबंध न खराब करने की राय दी। इस मत को उसने मान लिया।

वैसे तो 24 दिसंबर 1805 में अंग्रेजों और होल्कर के बीच एक समझौता हो गया, पर फिर भी 1 जनवरी 1809 को जनरल लेक ने रणजीतसिंह और फतेह सिंह दोनों से एक समझौता किया जिसमें यह तय हुआ कि रणजीत सिंह होल्कर को अमृतसर से वापस होने को बाध्य करेगा और उसे कोई सहायता नही देगा। मराठा नेता के सैनिकों को, जो अंग्रेजों द्वारा डिग और फर्रुखाबाद में हराए गये थे, उन्हें हतोत्साहित करके अपने इलाके में वापस हो जाने को कहा गया। रणजीत सिंह उन्हें जाने में सुविधा व अनुमति देने को ही तैयार नहीं हुआ बल्कि इस दिशा में प्रोत्साहन देने को भी राजी हो गया।

दूसरी ओर यह भी निश्चित हुआ कि ब्रिटिश सेनाएं पंजाब से वापस हो जायेगी और यह भी कि मराठा नेताओं को उस क्षेत्र को बर्बाद करने का अवसर नही दिया जायेगा। ब्रिटिशों ने मित्रता के बदले रणजीत सिंह के क्षेत्र पर आक्रमण न करने को आश्वस्त किया। लतीफ के अनुसार रणजीत सिंह ने स्वयं इसके अतिरिक्त यह भी प्रस्तावित किया कि ब्रिटिश यदि चाहे तो सतलज के वाम क्षेत्र पर

1. बताया जाता है कि सिख केन्द्रीय सभा की अंतिम बैठक थी जो इसके बाद रणजीत सिंह द्वारा स्वयं समाप्त कर दी गई।

नियन्त्रण कर सकते हैं। इसमें रणजीत सिंह दखल नही देगा।[1]

इस संधि की मुख्य विशेषता यह थी कि अंग्रेज अब रणजीत सिंह के नियमित सपर्क में आ गये। अब आंग्ल सिख संबंध के लिए रास्ता साफ हो गया।

सिस-सतलज संबंध

जैसी की सूचना प्राप्त होती है। सिस सतलज क्षेत्र सिखों के 12 सदस्य संघों मे से एक शक्तिशाली परिवार फुल्कियां के अधीन था। इसमे पटियाला, जिन्द और नाभा आते थे। जे० एच० गार्डेन लिखता है कि इसका संस्थापक फूल सिंह नामक एक जाट था जिसका सबंध "राजपूताना के रेगिस्तान में जैसलमेर के पुराने वश से था।" 1640 मे फूलसिंह ने अपने नाम पर एक गांव बसाया। दिल्ली का सम्राट उसे मानता था। उसने सिख धर्म स्वीकार कर लिया और उसके सात लड़के ही पटियाला, जिन्द और नाभा के पूर्वज हो गये। "अन्य छोटे-छोटे परिवार उन्ही से निकले जिन्होंने धन और शक्ति प्राप्त की।"[2] इन राज्यों में से पटियाला का राज्य सबसे बड़ा और शक्तिशाली था। इस क्षेत्र ने चौधरी फूलसिंह के पौत्र अलासिंह के समृद्धि और विजय का काल देखा था। अलासिंह की मृत्यु के बाद 1765 मे अमरसिंह को शक्ति प्राप्त हुई। उसी के अंतर्गत यह राज्य सिस-सतलज क्षेत्र में सबसे अधिक शक्तिशाली हो गया। अहमदशाह अब्दाली ने उसे राजा-ए-राजगान बहादुर का पद प्रदान किया। पर अमरसिंह का उत्तराधिकारी वर्तमान शासक साहबसिंह, जो सात वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा, कमजोर था। उसके काल में राज्य का बड़ा पतन हुआ। साहब सिंह अपनी पत्नी ओस कौर से संघर्ष मे ही सदा व्यस्त रहा जिसका लाभ नाभा और जिन्द ने उठाना चाहा। इस क्षेत्र के कृषकों की स्थिति भी दयनीय थी। राजनीतिक षड्यत्रों और विलासिता मे फसे शासको ने अपने क्षेत्र के कृषि के विकास के लिए कुछ नही किया। किसी व्यापार या उद्योग को प्रोत्साहन नही मिला जो राज्य को धनी बना सके। सभी ओर अव्यवस्था और असतोष था जिसका लाभ उठाने के फिक्र मे अंग्रेज मराठे और रणजीत सिंह सभी थे।

1806 में ऐसा लगा कि अंग्रेजों और सिखों में यह समझौता हो गया कि सिस सतलज क्षेत्र के राज्य रक्षा का उत्तरदायित्व सिखो के ही हाथ मे रहे। होल्कर का पीछा करते हुए जनरल लेक जब लाहौर की ओर जा रहा था तो सिस-सतलज क्षेत्र के शासकों ने उसका बढ़िया स्वागत किया था। जिसके लिए आग्ल-सिख समझौते के बाद उसने उन्हे क्षेत्रीय पारितोषिक प्रदान किये। इसके बाद इनके

1. लतीफ : पूर्वोद्धृत, पृ० 367।
2. गार्डन : द क्रिकन, पृ० 94।

मध्य समीपवर्ती सबंध स्थापित होने प्रारभ हो गये। पर जमुना के आगे के राज्यो से सबध स्थापन कंपनी के डाइरेक्टरों को ठीक नही लगा। इसीलिए उनसे नियमित संबध स्थापित किये जा सके उसके पहले ही इसे वापस ले लेना पड़ा। ब्रिटिशो निर्हस्तक्षेप की नीति कुछ समय के लिए चली जिससे प्रोत्साहित होकर रणजीत सिह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन क्षेत्रो मे स्वय बढा।

1806 मे पटियाला और नाभा के बीच दोलाधी कस्बे के मसले को लेकर झगड़ा हुआ। जब वे आपस मे झगड़ा नहीं निवटा पाये तो नाभा और जिन्द के राजाओं ने रणजीत सिह से झगड़े को निवटाने के लिए निवेदन किया। रणजीत सिह ऐसे अवसर की तलाश मे ही था। वह तुरन्त सिस-सतलज क्षेत्र मे आगे बढ़ा। उसके साथ फतेहसिह अहलूवालिया और गुरदीपसिह लादवे जैसे लोग भी थे। उसके साथ 20 हजार सेना भी थी जो उस समस्या समाधान के लिए सचमुच वहुत वड़ी थी। उसने दोनो राज्यो के बीच झगड़ा निवटाने की जगह पर स्वयं दोलाधी पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया। उसने पटियाला से पर्याप्त नजराना भी वसूल दिया।

वापसी पर रणजीतसिह ने लुधियाना, डाखा, रायकोट, जगराव और घुघराना पर भी अधिकार किया। पर उसने इन क्षेत्रो को अपने साथ जाने वाले मित्रो में वाट दिया।

1807 मे रणजीत को सिस-सतलज क्षेत्र में जाने का पुनः अवसर प्राप्त हुआ। अबकी वार पटियाला की रानी औस कौर और उसके पति मे झगड़ा हो गया। वह अपने अल्प वयस्क लड़के करमसिह के लिए एक अच्छी जागीर चाहती थी जो उसका पति देने को तैयार न था। रानी ने रणजीत सिह को इस मसले पर हस्तक्षेप के लिए आमंत्रित किया और कहा कि मामला यदि उसके पक्ष मे निर्णीत हो गया तो वह उन्हे एक कीमती हार और प्रसिद्ध पीतल की बन्दूक खूरी खान प्रदान करेगी। रणजीतसिह ने निमत्रण स्वीकार कर लिया। पर उसके सतलज पार करने से पूर्व ही, ऐसा कहा जाता है, कि पति-पत्नी ने अपना मामला निवटा लिया। पर इसके बावजूद रणजीत सिह ने रानी से दवाव डालकर अपना पारितोषिक प्राप्त किया।[1]

इस बार पटियाला से रणजीत सिह अम्वाला की ओर गया और वहा की

---

1. रणजीतसिह के इस आक्रमण के विषय मे तरह-तरह के विवरण मिलते हैं। एक मत के अनुसार रानी ने ही उसे आमन्त्रित किया जैसा ऊपर बताया गया है। दूसरे मत के अनुसार, थानेश्वर, कैथल और रानी औसकौर के खतरे मे डरकर राजा भागसिह ने रणजीतसिह को आमन्त्रित किया। तीसरे मत के अनुसार साहब सिह ने अपनी पत्नी और अपने लड़के करणसिह के विरुद्ध सहायतार्थ रणजीत सिह को आमन्त्रित किया। ऊपर दिया गया मत सच मालूम पड़ता है।

शासिका रानी दया कौर से कर प्राप्त किया। उसने नारायण गढ़ पर अधिकार करके फतेह सिंह अहलूवालिया को सौंप दिया। कैथल के भाई लालसिंह कल्सिया के जोधासिंह तथा बहुत से अन्य सरदारों और जमींदारों से कर वसूला। इसकी एक लंबी सूची दीवान अमरनाथ ने दी है।[1] इन सरदारों में से मनी माजरा और रुड़ के प्रमुख थे। रणजीत सिंह ने वदनी, जीरा और कोट कपूरा पर भी अधिकार किया। जीरा मोहकमचंद को और फीरोजपुर वदनी महाराजा की सास सदा कौर को दी गई।

स्वाभाविक रूप से इससे सिस-सतलज क्षेत्र में भय छा गया। उन्होंने आपस में एक सम्मेलन किया और वे दिल्ली के रेजीडेन्ट मि० सेटान के पास गये और रणजीतसिंह के विरुद्ध ब्रिटिशों से सुरक्षा चाही। उनका तर्क यह था कि सिस-सतलज क्षेत्र सदा से दिल्ली सरकार से रक्षित होता रहा है और चूंकि अब दिल्ली अंग्रेजों के हाथ में है इसलिए उन्हें ही इस क्षेत्र की रक्षा करनी चाहिये। पर यह एक ऐसा काल था जब सेटान उन्हें ब्रिटिशों की ओर से सुरक्षा के लिए आश्वस्त नहीं कर सकता था चाहे वह कितना ही इस मनतव्य के पक्ष में क्यों न हो।

इस समय तक सिस-सतलज राज्यों के प्रति ब्रिटिश नीति में एक निश्चित परिवर्तन आ गया था। मार्च 1808 में गवर्नर जनरल लार्ड मिण्टो ने स्वयं लिखा "सिद्धांत रूप में इस बुद्धिमानी व न्याय की बात को स्वीकार करते हैं कि संघर्ष, झगड़ों और राज्यों के हित में हस्तक्षेप न होने दिया जाय। हमें यह भी ज्ञात है कि साधारण सरदारों की सुरक्षा का भार स्वीकार करने में कितनी कठिनाइयां और असुविधाएं सामने आती हैं। पर मैं यह स्वीकार करता हूं कि ऐसी स्थिति आ सकती है कि सुरक्षात्मक नीति के नाम पर इस नीति से थोड़ा हटा जाय क्योंकि इसे अनदेखा करने से हो सकता है और खतरा व कठिनाइयां सामने आए। लाहौर के राजा द्वारा हमारे क्षेत्र और सतलज के बीच के क्षेत्रों को जीतना वर्तमान परिस्थितियों को छोड़ अन्य परिस्थितियों में एक ऐसी बात होगी जिसमें आत्मसुरक्षा के नाम पर इस तरह की योजना को ब्रिटिशों द्वारा रोकने का प्रयास उतना ही उचित होगा।"[2] और इस तरह जैसा कि लतीफ ने लिखा है कि अंग्रेज चाहते थे "कि महाराजा की महत्त्वाकाक्षा पर सतलज के उत्तर में रोक लग जाय। पर साथ ही""""उन्हें भय था कि एकाएक संबंध इतने खराब न हो जाए कि मैत्री संबंध बिगड़ जाय और वह फ्रांस के हाथ में चला जाय।"[3] नैपोलियन की इच्छा ब्रिटिश द्वीप जीतने की थी और साथ ही पूर्वी साम्राज्य पर भी वह विजय

1. जफर नामा-ए-रणजीतसिंह, 1908 (फारसी)।
2. काउन्ट-आफ मिण्टो : लार्ड मिण्टो इन इण्डिया, पृ० 81।
3. लतीफ : पूर्वोद्धृत, पृ० 369।

करना चाहता था। इस तरह ब्रिटिश रणजीतसिंह को फ्रांसीसियों के गोद में फेंकने की स्थिति में नहीं थे। इन तरह से मरे के अनुसार उन्हें आश्वस्त न करते हुए मेटान ने यह इंगित मात्र किया कि विशेष परिस्थितियों में उनका साथ नहीं छोड़ा जायेगा।[1] उसका उत्तर सावधानीपूर्ण था जिसकी महत्ता पेने के शब्दों में यह थी कि "हम कुछ निश्चित वादा नहीं कर सकते पर आप के प्रति हमारी सहानुभूति है, और हम जो कुछ भी संभव होगा करेंगे।"[2]

पर सिस-सतलज सरदारों को यह नीति संतुष्ट नहीं कर सकती थी। पर इसी बीच रणजीत सिंह ने अपने दूत इनके भय दूर करने के लिए भेजे। उन्होंने भी यह सोचा कि ब्रिटिशों से सुरक्षा प्राप्त करने की जगह यदि रणजीत सिंह ही उनकी सुरक्षा का भार ले ले तो अधिक उचित हो। रणजीतसिंह और पटियाला के साहब सिंह ने तुरन्त भेंट की और दोनों ने अनवरत मित्रता प्रदर्शन करते हुए आपस में पगड़िया बदली।

टिलसिट की संधि

इसी समय युरोप की एक घटना ने पंजाब के इतिहास की धारा ही मोड़ दी। यह घटना थी नैपोलियन द्वारा की गई रूस के शासक जार अलेक्जेण्डर से टिलसिट की संधि। इसके बाद नैपोलियन ने यह निश्चय किया कि पूर्व में ब्रिटिश साम्राज्य पर अधिकार करने के लिये वह उधर प्रस्थान करेगा। अंग्रेजों का भय व खतरा चूंकि बढ़ा इसलिए मेटकाफ को लार्ड मिण्टो ने दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लाहौर भेजा। पहला उद्देश्य पंजाब में फ्रांसीसी उद्देश्य न पूरा होने देना था तथा दूसरा सिस-सतलज क्षेत्र में रणजीतसिंह के आक्रामक कदम को रोकना था। लेडी मिण्टो के शब्दों में जो उद्देश्य था उसके अनुसार "बड़े राजा को संधि के लिए प्रोत्साहित करना तथा उसके मन्तव्यों के क्षेत्रों पर उसे अधिकार न करने देना था।"[3]

11 सितंबर 1807 को मेटकाफ रणजीतसिंह से कसूर में मिला और संबंधित बातचीत की। रणजीतसिंह ने उससे लिखित संधि का प्रारूप मांगा जिस पर उसे हस्ताक्षर करना था। मेटकाफ द्वारा प्रस्तुत संधि का प्रारूप अधोलिखित था—

1. रणजीतसिंह और अंग्रेज दोनों फ्रांस के विरुद्ध सुरक्षा में भाग लेंगे और रणजीतसिंह नैपोलियन को ब्रिटिश भारत पर आक्रमण करने के लिए पंजाब से

---

1. मरे : रणजीत सिंह, पृ० 64-65।
2. पेने : पूर्वोद्धृत, पृ० 81।
3. काउन्ट आफ मिण्टो : पूर्वोद्धृत, पृ० 81।

होकर आने पर रोकेगा।

2. फ्रांसीसियों से युद्ध की स्थिति में अंग्रेजों को पंजाब से होकर आगे आने की सुविधा प्राप्त होगी।

3. रणजीतसिंह अपने क्षेत्र से होकर जाने वाले ब्रिटिश दूतों को रक्षा प्रदान करेगा।

इस संधि में स्पष्ट है कि रणजीतसिंह की महत्त्वाकांक्षाओं को कोई स्थान नहीं मिला था और कहा जाता है कि इसे देखकर रणजीतसिंह के चेहरे पर मुस्कान आ गई और उन्होंने अपने विदेशमंत्री फकीर अजीजुद्दीन से कहा कि ब्रिटिश कितने स्वार्थी है।

रणजीतसिंह अंग्रेजों के साथ सुरक्षा संधि हेतु तैयार हो गए। पर उन्होंने इसके लिए अपनी तीन शर्तें पेश कर दी: (1) अंग्रेज़ उसके एवं काबुल के अमीरों के संघर्ष में हस्तक्षेप नहीं करेंगे, (2) अंग्रेज उस अमीर से मैत्री संबंध नहीं स्थापित करेंगे और (3) रणजीत को सभी सिखों का राजा माना जाएगा जिसमें सिस-सतलज सरदार भी सम्मिलित होंगे। मेटकाफ को भी सिस-सतलज विजय में साथ रहने को कहा गया। मेटकाफ ने गवर्नर जनरल के अनुमति के बिना ऐसे संधि पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया। मूरक्रोफ्ट के अनुसार सिस-सतलज मामलों में अंग्रेजों की हस्तक्षेप नीति से रणजीतसिंह इतने क्रुद्ध थे कि फकीर अजीजुद्दीन ही "उन्हें युद्ध छेड़ देने से रोक सके।"[1]

पर मेटकाफ से मामले पर विचार करने को कहकर और विचार-विमर्श के लिए उपलब्ध रहने के लिए साथ चलने को कहकर रणजीतसिंह सतलज के दक्षिण की ओर रवाना हुआ। पहले उसने फरीदकोट और मालेरकोटला पर विजय पायी, फिर अम्बाला और शाहाबाद को अधिकार में किया। थानेश्वर के शासक से उसने कर भी वसूला। इस युद्ध का विवरण देते हुए सोहनलाल ने लिखा है कि "ऐसा लगा कि सिस-सतलज क्षेत्र में भूकम्प आ गया है।"[2]

मेटकाफ फरीदकोट और मालेरकोटका के युद्ध में रणजीतसिंह के साथ था जिससे अप्रत्यक्ष रूप से उसका एक उद्देश्य पूरा होता था। मेटकाफ इसे नहीं जानता था। ग्रिफिन लिखता है कि रणजीतसिंह ने "स्पष्ट रूप से दूत को अपने कैम्प में रखा जिससे विरोधियों का विरोध शक्तिहीन हो जाए और उसके कार्य को कुछ औपचारिक स्वीकृति प्राप्त हो जाए।"[3] लतीफ ने भी लिखा है कि—"लाहौर के

1. मूरक्राफ्ट : ट्रेवल्स, भाग 1, पृ० 94।
2. सोहनलाल : उमदत-उत-तवारीख।
3. ग्रिफिन : पूर्वोद्धत, पृ० 178।

शासक का उद्देश्य समय काटना था और दूत की आखो में धूल झोंकना।"[1] पता चलता है कि मालेरकोटला के शासक ने दिल्ली के रेजीडेंट से विरोध व्यक्त करते हुए कहा कि ब्रिटिश उनके विरुद्ध रणजीत की सहायता कर रहे हैं। इससे ब्रिटिश आश्चर्यचकित रह गए और मेटकाफ के पास रणजीतसिंह का साथ छोड़कर वापस आ जाने को कहा गया। इस तरह जब रणजीतसिंह अम्बाला में प्रविष्ठ हुआ, जो जगह ब्रिटिश संरक्षण में थी, तो मेटकाफ उसका साथ छोड़कर फतेहाबाद चला आया और रणजीतसिंह के द्वारा उसके ऊपर आजमाई गई राजनीतिक चालबाजी के विरुद्ध आपत्ति उठाई। पर परिस्थिति के जटिल होने के कारण ब्रिटिश महाराजा में अपने सबध तोड़ने के पक्ष में नही थे। इस सदर्भ में लार्ड मिण्टो ने लिखा: "मैं नही सोचता कि रणजीतसिंह से बिगाड़ करके हम कोई उचित नीति अपनायेंगे। वर्तमान बातचीत में जो हम लाहौर के राजा से कर रहे हैं, विशेष बात यह है कि हमें अपने को स्वतंत्र रखते हुए राजा से अलग नही होना है। इस सिद्धात पर मैं सधि को तुरंत कर लेने की जगह कुछ समय तक और टालने के पक्ष में हूं।"[2]

फ्रांसीसी संकट का कम होना

इसी समय फ्रास के विरुद्ध स्पेन में विद्रोह हो गया और अग्रेजो व तुर्की के सबंधों में सुधार भी हो गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि भारत पर से फ्रासीसी आक्रमण का खतरा टल गया। परिस्थितियो से प्रोत्साहित होकर मेटकाफ ने रणजीतसिंह से ब्रिटिश शर्तों पर सधि कर लेने को कहा। इसमें बताया गया था कि अब वह सिस-सतलज क्षेत्र में हस्तक्षेप नही करेगा। रणजीतसिंह सिस-सतलज क्षेत्र से इतने शीघ्र वापस नही होना चाहता था जिससे वे ब्रिटिश हाथ में चले जाएं। ग्रिफिन के अनुसार उसने कागड़ा से अपने सेनापति मोहकम चन्द को तुरंत बुलाया, गोला बारूद एकत्रित किया और युद्ध की तैयारी कर ली। पर-व्यवहार में इस तरह का कदम रणजीतसिंह जैसा बुद्धिमान व्यक्ति नही उठा सकता था। मेटकाफ का भी अपना विश्वास था कि उसकी यह कार्यवाही ब्रिटिशों को आतंकित करने के लिए है। इस परिस्थिति के विषय में उसने गवर्नर जनरल को लिखा और गवर्नर जनरल ने लाहौर के शासक को यह लिखते हुए एक चेतावनी भेजी—

"राजा ने बड़े आश्चर्य और सदमे से यह जाना है कि महाराजा उन सरदारों पर अधिकार का उद्देश्य रखते है जो बहुत पहले से उत्तरी भारत के शासकों के अधीन रहे है। उन्हे विशेष आश्चर्य इस बात का है कि महाराजा अपने इन कार्यों

1 लतीफ. पूर्वोद्धृत, पृ० 375।
2. देखिये, केयी: लाइफ आफ लार्ड मेटकाफ, भाग 1, पृ० 273।

की उनसे स्वीकृति भी चाहते हैं। मराठों से युद्ध करके ब्रिटिश सरकार ने उत्तरी भारत में उनके द्वारा प्राप्त शक्ति और अधिकार को अपने हाथ में ले रखा है।"

रणजीतसिंह ने इस चेतावनी का तुरंत उत्तर नहीं दिया। इस बीच उसने पटियाला के राजा से सपर्क करना प्रारभ किया और चाहा कि ब्रिटिशों के विरुद्ध वे दोनों एक हो जाएं। पर पटियाला के राजा से ब्रिटिश पहले ही संपर्क में थे और उन्होंने उसे रणजीतसिंह के विरुद्ध सुरक्षा के लिए आश्वस्त किया था। पत्र के उत्तर मे देर होने से ब्रिटिश क्रुद्ध हो गए और उन्होंने डेविड आक्टरलोनी को सेना लेकर आगे बढ़ने का आदेश दिया और लुधियाना में शक्ति प्रदर्शित करने को कहा। आक्टरलोनी वहां फरवरी 1809 में पहुंचा और रणजीत के पास यह सदेश भेजा कि वह सिस-सतलज क्षेत्र से अपनी सेना वापस कर ले। ऐसा न करने पर यह समझ लिया जाएगा कि रणजीतसिंह को ब्रिटिश मैत्री की चिंता नही है।

अमृतसर की सधि

रणजीत ने पहले तो सोचा-विचारा, पर फकीर अजीजुद्दीन के राय देने पर अंग्रेजों का प्रस्ताव मानने को तैयार हो गया। इस तरह 2 अप्रैल 1809 को रणजीतसिह ने फरीदकोट से अपनी सेनाए वापस बुला ली और 25 अप्रैल 1809 को उसने ब्रिटिशों से अमृतसर की सधि कर ली। इस सधि की मुख्य शर्तें निम्न थी—

1. दोनो सरकारें एक-दूसरे से मैत्रीपूर्ण संबंध रखेगी।

2. सतलज नदी के उत्तर पश्चिम से ब्रिटिशों का कोई मतलब नही रहेगा और न ही वे उस क्षेत्र के सरदारो तथा रणजीत के विवादों में उलझेंगे। इसी तरह अब रणजीतसिह सिस-सतलज क्षेत्र के राज्यों पर अधिकार करने को नही सोचेगा जिसे ब्रिटिश सरक्षित क्षेत्र मान लिया गया।

3. महाराजा रणजीतसिह को स्वतत्र राजा स्वीकार कर लिया गया और ब्रिटिशों के प्रमुख मित्रो मे उसे मान लिया गया।

4. दोनों पक्ष सतलज नदी के तट पर अधिक सेनाए नही रखेंगे।

5. सिस-सतलज क्षेत्र में पड़ने वाले रणजीतसिह के अधिकार क्षेत्र के 45 परगनों मे वह व्यवस्था स्थापित करने भर के लिए ही सेना रखेगा।

6. संधि की किसी धारा का किसी भी पक्ष द्वारा उल्लंघन सधि को बेकार बना देगा।

एक मूल्यांकन

रणजीतसिंह द्वारा इस संधि पर हस्ताक्षर करने के संबंध में तरह-तरह के विचार व्यक्त किए गए हैं। डॉ० सिन्हा का मत है कि "रणजीत को कूटनीति में पराजित हो जाना पड़ा और उसे अपना घमंड अपने जेब में रखते हुए साधारण व्यक्ति जैसा दिखना पड़ा।" मेटकाफ ने भी लिखा कि रणजीतसिंह "नैराश्यपूर्ण कार्यों के लिए प्रसिद्ध नहीं है।"[1] मेटकाफ द्वारा रणजीतसिंह का मूल्यांकन जो सीधे उसके संपर्क में था और जिसके साथ रणजीतसिंह के अनुसार ही उसका मैत्री संबंध था जिसे इस संधि ने और दृढ़ कर दिया, हमें यह निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य करता है कि रणजीतसिंह ने स्पष्ट रूप से अपनी कूटनीतिक पराजय स्वीकार कर ली थी। रणजीतसिंह की एक आकांक्षा यह थी कि वे गुरु गोविंदसिंह के सभी खालसों को संगठित करके सतलज के दोनों ओर के क्षेत्र को अपने झंडे के नीचे ले आएं तथा महाराजा इसमें असफल हो गए। इतना ही नहीं, ब्रिटिश लाहौर के और निकट आ गए जहां से रणजीतसिंह के चाल पर वे दृष्टि रख सकते थे और लाहौर राज्य के विरुद्ध षड्यंत्र कर सकते थे। रणजीतसिंह की सीमा से उनकी निकटता ने ब्रिटिशों को महाराजा के भावलपुर, सिंध एवं अफगानिस्तान से संबंधों पर नियंत्रण का अवसर दिया। और इन सभी मामलों में रणजीतसिंह को ब्रिटिशों के हाथ मुहकी खानी पड़ी। रणजीत का यह स्वीकार करना कि वह अपने सिस-सतलज क्षेत्र के परगनों पर शांति व व्यवस्था स्थापन भर को ही सेना रखेगा, कुछ लेखकों के मत से, उसकी प्रतिष्ठा और अधिकार दोनों को एक बड़ा आघात था।

ब्रिटिशों का सिस-सतलज क्षेत्र पर अधिकार का आधार भी काल्पनिक बातों पर आधारित था और "जिसकी लाठी उसकी भैंस" की नीति को चरितार्थ करता था। इस संधि पर हस्ताक्षर के 4 वर्ष पूर्व ही, गृह सरकार के हस्तक्षेप पर भारत की ब्रिटिश सरकार ने सिस-सतलज क्षेत्र में हस्तक्षेप न करने का निश्चय किया था, और यह समझ में नहीं आता कि किस नैतिक आधार पर ब्रिटिशों ने यह घोषणा की कि "मराठों से युद्ध के द्वारा ब्रिटिश सरकार ने उत्तरी भारत पर उनके अधिकार व शक्ति को अपने हाथ में प्राप्त कर लिया है।" मराठों के विरुद्ध लड़ाई पहले ही लड़ी और जीती गई थी जब उन्होंने 1803 में दिल्ली पर अधिकार किया और जब उन्होंने होल्कर से 24 दिसंबर 1805 में संधि की। यदि मराठों पर उनकी यह विजय 1805 में सिस-सतलज क्षेत्र पर उनके हस्तक्षेप को न्यायोचित नहीं ठहराती थी तो 1809 में इस हस्तक्षेप का क्या औचित्य था?

पुनः, यह तर्क कि चूंकि सिस-सतलज राज्य मराठों के अधीन था, इसलिए उनको ब्रिटिशों द्वारा हटाये जाने के बाद अपने आप इन राज्यों को उन्हें प्राप्त हो

1. सिन्हा, एन० के० : रणजीत सिंह, पृ० 154।

जाना था, सत्य से परे है। इन सभी क्षेत्रो पर मुगल साम्राज्य का अधिकार था जब अब्दाली ने आक्रमण करके सिंध से जमुना के बीच के क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। मुगल शक्ति के पराभव के बाद इन क्षेत्रों के लिए अब्दाली ने गवर्नर नियुक्त किए और शासन किया और बाद मे अब्दाली से ही सिखों ने यह क्षेत्र प्राप्त किया, न कि मराठों से।

मराठे यहा के शासक न होकर ढोंगी थे। यह भी सिद्ध नही है कि सिस-सतलज क्षेत्र कभी उनके संरक्षण में आया।

इसके अतिरिक्त भौगोलिक, सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से ये क्षेत्र सिस-सतलज क्षेत्र से अन्य स्थानों की तुलना मे अधिक मिलते-जुलते थे। यह बात ब्रिटिशो ने उस समय स्वयं स्वीकार की जब 1849 में पंजाब छीनने के बाद दिल्ली तक सिस-सतलज क्षेत्र जिसमें दिल्ली भी सम्मिलित था उसे ट्रास-सतलज क्षेत्र में मिलाकर पूरा क्षेत्र एक प्रात बना दिया गया।

एस० आर० कोहली का कहना है कि रणजीतसिंह का उद्देश्य सिस-सतलज राज्य के संबंध में स्वार्थपूर्ण नहीं था।[1] वह ऐसा व्यक्ति था जिसने अपने जीवन काल मे न तो मुकुट का प्रयोग किया, न गद्दी पर बैठा और न अपने नाम से सिक्के ढलवाये। सिक्के गुरु नानक और गुरु गोविंदसिंह के नाम से ढलवाये गए। यदि ऐसा व्यक्ति सभी खालसों को एक करना चाहता था जिसमें सिस-सतलज राज्य भी सम्मिलित था और उन्हे अपने झंडे के नीचे लाना चाहता था जो वह एक राष्ट्रीय उद्देश्य के लिए लड़ रहा था। इस तरह सिस-सतलज राज्यों का विरोध राष्ट्र विरोधी था। यह तब तो और जब उन्होने ब्रिटिश सुरक्षा की मांग की।

यदि इन तर्क-संगत अधिकारों के आधार पर भी वह सिस-सतलज क्षेत्र पर अधिकार प्राप्ति मे सफलता नही प्राप्त कर सका तो यह महाराजा की कूटनीतिक पराजय थी।

पर दूसरी ओर कुछ का कहना है कि संघर्ष महाराजा रणजीत सिंह की पराजय नही थी। बल्कि कलम के एक नोक से उसने ब्रिटिश हाथो से पंजाब को बचा लिया जो उसके मृत्यु के कुछ वर्षों तक यथावत् चलता रहा। कनिंघम लिखता है कि इससे उसे पंजाब के उत्तर तथा उत्तर पश्चिम भाग मे अपनी महत्त्वाकांक्षा तुष्टि की फुरसत मिल गई।[2] उसकी दक्षिणी सीमा के सुरक्षित हो जाने से उसे ब्रिटिशों से रक्षा हेतु वहां अधिक सेना रखने की आवश्यकता न रही जिससे धन और शक्ति दोनो बर्बाद होने से बची। इसे अब वह कही और भी प्रयोग मे ला सकता था।

1. कोहली, एस० आर० : रणजीतसिंह (पंजाबी), पृ० 136।
2. कनिंघम : पूर्वोद्धृत, पृ० 146।

इतना ही नहीं, चारों ओर शत्रु से घिरे तथा पंजाब में अपनी शक्ति संगठित कर महाराजा ने अपनी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ा ली। अंग्रेजों जैसी बड़ी शक्ति से मैत्री ने उसकी प्रतिष्ठा को चार चांद लगा दिये।

जैसा भी हो, चाहे दबाव[1] में हस्ताक्षरित इस संधि ने उन्हें कूटनीतिक पराजय प्रदान की हो या चाहे यह संधि उसकी सूझ-बूझ की पराकाष्ठा रही हो, हम इतना ही कह सकते हैं कि रणजीत सिंह के पास इसे स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई चारा ही न था। रणजीत का राज्य अभी थोड़े ही दिनों का था और ऐसे में कलकत्ता से दिल्ली पहुंचने वाले अंग्रेजों को दी जाने वाली चुनौती आत्महत्या के समान हो सकती थी। गवर्नर जनरल आकलैंड ने 1838 में लिखा कि "जिस भी भारतीय शक्ति ने हमसे युद्ध मोल लिया वह पराजित ही हुआ है।" यह बात 1838 की परिस्थिति पर जितना अधिक लागू होती थी उससे अधिक 1809 की परिस्थिति पर।

पुनः रणजीत सिंह के सेना की ब्रिटिश सैनिकों से प्रशिक्षण और अनुशासन के मामले में तुलना नहीं थी जिसे उसने स्वयं अनुभव किया। लतीफ और गार्डन जैसे लेखकों द्वारा एक रुचिकर घटना का विवरण दिया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि मेटकाफ अपने साथ कुछ मुसलमान सैनिक लाया था। इसी समय उससे महाराजा से संधिवार्ता चल रही थी। इसी समय मुसलमानों का मुहर्रम आ पड़ा। इसे मनाने के लिए ब्रिटिश मुस्लिम सैनिकों ने एक जुलूस निकालने का निश्चय किया। जब यह जुलूस लाहौर में एक गुरुद्वारा के सामने से होकर गुजर रहा था, कुछ अकाली अपमान का भाव अनुभव कर उन पर टूट पड़े। पर मुसलमानों ने उनसे लड़ाई की और अल्प संख्या में होने पर भी उन्होंने एक हजार अकालियों को भागने को बाध्य कर दिया। कहा जाता है कि इस घटना ने रणजीत सिंह की आखें खोल दी। एक ओर तो उसने मेटकाफ के समक्ष इन सैनिकों के बहादुरी की प्रशंसा की और दूसरी ओर वह यह जान गया कि ब्रिटिशों के साथ सावधानीपूर्वक संबंध निर्वाह करना पड़ेगा। यह उदाहरण, कि किस तरह होल्कर और अन्य मराठा नेताओं की बड़ी-बड़ी सेनाएं अंग्रेजो द्वारा नष्ट कर दी गईं, भी उसके सामने था। उसके मामा जिन्द के भागसिंह दिल्ली के निकट थे और ब्रिटिशों की शक्ति का सूक्ष्म ज्ञान रखते थे, उन्होंने भी ब्रिटिश शक्ति को चुनौती न देने को कहा था।

---

1. आसबर्न की लेखनी में यह स्पष्ट है जो 1838 में रणजीत के पास आया था। आसबर्न लिखता है : "रणजीतसिंह का व्यवहार इतना असंतोषजनक था... कि यह उचित समझा गया कि आक्टरलोनी के नेतृत्व में एक सेना अपनी मांगें मनवाने हेतु भेजी जाय। इसे अपने एजेन्ट की बातचीत का भी समर्थन करना था।" कोर्ट ऐण्ड कैम्प आफ रणजीत सिंह, पृ० 18।
2. देखें, ट्राटर, कैप्टेन एल० जे० : द अर्ल आफ आकलैण्ड (1905)।

इसके अतिरिक्त रणजीत जान गये थे कि ब्रिटिश यह निश्चय कर चुके हैं और इसके लिए एक नीति विकसित कर ली है कि किस तरह सिस-सतलज क्षेत्र को अपने संरक्षण में लिया जाय।

अंग्रेजों से संघर्ष की स्थिति में यह भी भय था कि सभी सिस-सतलज क्षेत्र के सरदार उन्हीं का साथ देंगे और उसके अपने ही ट्रांस-सतलज क्षेत्र में भी "यह भय था कि उसकी कठिनाइयों से लाभ उठाकर अर्धविजित सामन्त और कबीले उसके विरुद्ध विद्रोह कर देंगे।" इसके अतिरिक्त "महाराज के हठ करने पर, ब्रिटिश सरकार कसूर, मुल्तान और झग के राजाओं को संरक्षण प्रदान कर सकती थी।"[1] ये सभी शासक रणजीत सिंह के विरुद्ध ब्रिटिश सहायता के आकांक्षी थे। रणजीत-सिंह की आर्थिक स्थिति और हथियार भी अंग्रेजों के समकक्ष नहीं थे।

1838 में आसबर्न ने लिखा "वह अपनी शक्ति दुस्साहसिक कार्यों में नहीं गंवाता था और अपनी महत्त्वाकांक्षा को तर्क-संगत सीमा तक ही ले जाता था। इसे वह इस तरह समयानुकूल और सावधानी से करता था कि सफलता उसके पैर चूमती थी। पर असफलता (कम ही अवसरों पर वह असफल हुआ) की प्राप्ति के लिए न तो वह अपने स्थायित्व के लिए खतरा मोल लेता और न साधन को बर्बाद करता।"[2] और सबसे बड़ी सेवा जो उसने अपने राष्ट्र के लिए की वह इस बेकार के संघर्ष में न कूदने की थी। अब्दुल कादिर के अनुसार इसके कारण उसे राष्ट्रीय विकास का अवसर मिला और वह "अपनी प्रजा को राजनीतिक उग्रता से बचाने में सफल ही नहीं हुआ बल्कि उन्हें साम्राज्यवादी जाति बनाने का गौरव प्रदान किया।"[3] दूसरी ओर, सिस-सतलज राज्य जो ब्रिटिश संरक्षण में चले गये, वे ब्रिटिश शासन के अंत तक अर्द्ध-स्वतंत्र बने रहे जब कि महाराजा रणजीत सिंह द्वारा शासित पंजाब उनकी मृत्यु के बाद ब्रिटिशों द्वारा सीधे ब्रिटिश अधिकार में कर लिया गया। यदि वे रणजीतसिंह के शासन क्षेत्र का भाग बन गये होते तो यह दुर्भाग्य सिस-सतलज क्षेत्र का भी हो सकता था।

जो भी हो, लार्ड मिण्टो द्वारा भारत के ब्रिटिश साम्राज्य के द्वारा इस ओर अत्यधिक लाभ प्राप्त किया गया। नैपोलियन की भारत पर आक्रमण करने की योजना ने उसे काफी सुफल दिया और उसने भारत में ब्रिटिश अधिकार सतलज तक प्राप्त कर लिया। और इसके लिए उसे बंदूक की एक गोली भी नहीं चलानी पड़ी।

---

1. कादिर, सईद अब्दुल : सेन्टीनरी वाल्यूम आफ रणजीतसिंह, खालसा कालेज, अमृतसर।
2. आसबर्न : कोर्ट एण्ड कैम्प आफ रणजीतसिंह, पृ० 16।
3. कादिर, सईद अब्दुल : अमृतसर सेन्टीनरी वाल्यूम, पूर्वोद्धृत।

अन्य परिवर्तन

पूर्व में अन्य ब्रिटिश हितों की रक्षा के लिए लार्ड मिण्टो ने जो कदम उठाये उनमें से एक आइल द बोनापार्ट पर उसका आक्रमण था जिस पर 8 जुलाई, 1810 मे उसका अधिकार हो गया। आइल द फ्रास पर 3 दिसंबर 1810 को अधिकार कर लिया गया और फर्कूहर इन दो फ्रांसीसी द्वीपों का गवर्नर बना दिया गया।

– "फ्रास ने युरोप महाद्वीप के बहुत से क्षेत्रो पर अधिकार कर रखा था। इससे निबटने के लिए आत्मरक्षा हेतु इगलैंड को सभी विदेशी उपनिवेशों पर नियंत्रण की आवश्यकता पड़ी।"[1]

चूकि हालैण्ड फ्रास के प्रभाव में आ गया था इसलिए यह आवश्यक समझा गया कि डच शक्ति को जावा से हटा दिया जाय। और अन्य स्थानों से भी इन्हे हटाने का प्रयास हुआ जहा से फ्रासीसी भारत के विरुद्ध कोई नीति अपना सकते थे। अम्बायना की डच बस्ती पर 1810 मे अधिकार कर लिया गया और मिण्टो स्वय व्यक्तिगत रूप से सितंबर 1811 मे जावा पर आक्रमण करने के लिए गया।

जैसे ही डेनमार्क ने इंगलैण्ड के विरुद्ध युद्ध घोषित किया भारत मे उसकी फैक्ट्रियों और बस्तियों पर अधिकार कर लिया गया। गोवा मे पुर्तगालियों के सहयोग से सुरक्षात्मक व्यवस्था की नीति अपनाई गई। और जब, इंगलैंड ने फ्रास के विरुद्ध आर्थिक नीति अपनाई जिससे समुद्र में तटस्थ जहाजों का चलना दूभर हो गया तो अमेरिका ने ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस पर मिण्टो ने अमेरिका के जहाजो को जहां भी पाया, रोक लिया।

-जी० एस० मिश्र ने लिखा है कि "इस तरह फ्रासीसी विरोध ने पूर्वी जगत में ब्रिटिश विजय नीति को आगे बढ़ाया···इस तरह भारत मे ब्रिटिश विस्तारवाद की प्रेरणा राजधानी से आयी जहा राष्ट्र-हित की शक्ति ने घटनाओ को यह स्वरूप प्रदान किया। लार्ड मिण्टो के प्रशासन का यह गौरव माना जा सकता है कि जब कि प्रारंभ मे भारत पर फ्रासीसी आक्रमण का भूत ब्रिटिश राजनयज्ञों पर सवार रहा, अंत मे शत्रु को केप के पूर्व सभी कुछ गंवा देना पडा।"[2] इस तरह से प्राप्त क्षेत्र ब्रिटिशों के हाथ मे 1814-15 तक बने रहे जब इनमें से अधिकाश स्थान एक समझौते के अंतर्गत पूर्ववत् एक-दूसरे को वापस कर दिया गया।

---

1. कादिर, सईद अब्दुल : अमृतसर सेन्टीनरी वल्युम, पूर्वोद्धृत, पृ० 90।
2. मिश्र : पूर्वोद्धृत, पृ० 94-95।

डिन्टो

(ब) भारतीय राज्यों के प्रति सामान्य नीति

लार्ड मिण्टो का शासन भारतीय इतिहास का वह काल है जिसके अंत में भारतीय राज्यों के प्रति प्रारंभ की गई लार्ड क्लाइव की 50 वर्ष पूर्व की ब्रिटिश नीति तथा वारेन हेस्टिंग्स द्वारा निर्णायक ढंग से प्रयोग में लायी गई इस नीति का अंत हो गया। उसके उत्तराधिकारी मोयरा के अर्ल के समय मे ब्रिटिशों ने एक नयी नीति का प्रारभ किया जिसने इन राज्यों को सार्वभौम शासक स्वीकार किया जिनको सीधे अपने क्षेत्र के लोगों के हित का ध्यान रखना था। साथ ही उन्हें राज्य की जनता का हित साधन भी करना था जिस पर भारतीय राजाओ का नियंत्रण था। पुरानी ब्रिटिश नीति का संक्षिप्त विवरण जो मिण्टो के काल मे पराकाष्ठा को पहुंच गया, आशा है मुख्य विषय वस्तु के बाहर नही होगा।

लेफ्टीनेण्ट जनरल सर जार्ज मैंकमुन ने 1936 में लिखा कि "भारत के शासक इस महाद्वीप के आश्चर्यजनक तत्त्व है। दो वर्ष पूर्व दिल्ली का जो तुर्की शासन हजारो टुकड़ों मे बंट गया था उसमे शान्ति व सपन्नता की स्थापना में इनकी एक अहम भूमिका थी।"[1] इनकी सख्या 500-600 के बीच थी और इनकी क्षेत्र सीमाए भिन्न-भिन्न थी।" एक ओर निजाम था जिसके पास फ्रास के एक तिहाई के बराबर का राज्य था और कुछ के पास वैट्टरस्का के पार्क के बराबर का।"[2] इन राज्यो के प्रति ब्रिटिश नीति (1757-1813) को ली वार्नर ने अपनी पुस्तक 'द नेटिव स्टेट्स आफ इंडिया' में 'अगूठी के घेरे की नीति' का नाम दिया है।

यह नीति 1757 से प्रारंभ होती है। इस वर्ष ब्रिटिशों ने प्लासी के युद्ध में विजय पायी और सिराजुद्दौला को हराया। ऐडमिरल वाट्सन ने इसके सबंध में लिखा कि "यह एक अत्यधिक महत्ता की घटना कंपनी के लिए ही नहीं बल्कि सामान्य रूप से ब्रिटिश राष्ट्र के लिए थी। प्लासी मे विजय के बाद ब्रिटिश निश्चित रूप से एक भारतीय शक्ति हो गए। पर अभी तक न उनमे महत्त्वाकाक्षा थी और न ही शक्ति कि वे अन्य राज्यो पर अपनी प्रमुखता स्थापित कर सकें। ली वार्नर के शब्दों में वे अपनी जीवन के लिए मात्र सघर्ष कर रहे थे और इस समय ईस्ट इडिया कंपनी व्यय व विस्तार के खतरे से डरती थी और अपने द्वारा अधिकारित क्षेत्र के बाहर आत्मरक्षा के अतिरिक्त नही जाना चाहती थी। अग्रेज भारतीय स्थिति और जीवन से भिन्न भी नही थे। वे एक व्यापारिक सस्था थे जिन्होंने राजनैतिक शक्ति का मजा चख लिया था। पर वे इसे बढाने को आतुर न थे।

1. द इंडियन स्टेट्स ऐण्ड प्रिंसेज, 1936, पृ० 15।
2. वही, पृ० 16।

इसलिए कंपनी की मुख्य समस्या आत्म-सुरक्षा थी जिसके लिए उन्होंने इन राज्यों में से कुछ के साथ मैत्री की। इन संधियों का आधार समानता का था जो कभी-कभी ब्रिटिश प्रमुखता की ओर झुका दिखाई पड़ता था। वेलजली के काल में यह प्रमुखता आरोपित भी की गई। पर सिद्धांत रूप में आधार को बनाये रखा गया। भारत के इन मित्र राज्यों के साथ ब्रिटिशों ने एक अंगूठी जैसा घेरा बना लिया। वार्नर लिखता है "कंपनी अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह करती थी कि अपनी सीमाएं शांत बनाए रखा जाय और भिन्न राज्यों की सीमा में भी ऐसा ही हो।"[1] यह नीति 1813 तक चलती रही। वैसे इसमें थोड़ा बहुत अदल-बदल भी होता रहा। ली वार्नर लिखता है कि इस काल में "जहां तक संभव हुआ ब्रिटिशों ने चेष्टा की कि वे अपने अंगूठी के घेरे में बने रहें और उसके बाहर राजाओं से संबंध स्थापित करना उन्होंने बचाया।" "सुरक्षा उनकी नीति का आधार था और उन्होंने यह बचाया कि विवादपूर्ण संबंध राजाओं से न स्थापित किये जाय। यदि ऐसा करने को बाध्य ही होना पड़े तो अपने क्षेत्र की रक्षा हेतु या अपने मित्रों की रक्षा के लिए ऐसा किया जाय जिनकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व संधि के माध्यम से अपने कंधों पर लिया गया है।"[2]

यदि क्लाइव से प्रारंभ करें तो बंगाल जब उसके नियंत्रण में आ गया तो उसने डाइरेक्टरों को अपने एक पत्र में लिखा, "नवाब के राज्य की सीमा हमारे उद्देश्य के उत्तर के लिए पर्याप्त है। हम सोचते हैं कि इसे आपके क्षेत्रीय अधिकार और प्रभाव की सीमा ही नहीं होना चाहिए बल्कि व्यापार की भी। क्योंकि अधिक प्राप्ति से राजस्व हानि भी होगी और स्वस्थ आधार पर इकी शक्ति जो आपके हाथों में है उससे पर्याप्त लाभ की आशा भी नहीं रहेगी।"[3]

इस तरह वैसे तो क्लाइव ने हैदराबाद के निजाम और अवध के नवाब से संधियां की, पर इनका उद्देश्य मूल रूप से आत्म-सुरक्षा थी। नवाब वजीर अवध शुजाउद्दौला से उनकी अगस्त 1765 में की गई इलाहाबाद की संधि विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण थी जिसके द्वारा अवध एक मध्यस्थ राज्य बना दिया गया। रैम्जे म्योर लिखता है : "यह एक निश्चित नीति थी कि अवध से संधि बनाये रखा जाय क्योंकि यह मराठों के खतरे के विरुद्ध उपयोगी था।"[4]

अंगूठी की तरह घेरे की नीति वारेन हेस्टिंग्स के काल में भी चलती रही और अवध से मैत्री को 1772 की बनारस की संधि के द्वारा और शक्तिशाली बना

---

1. सर विलियम वार्नर : द प्रिंसेज आफ इण्डिया, पृ० 248।
2. ली वार्नर : द नेटिव स्टेट्स आफ इण्डिया, भाग-1, पृ० 24।
3. क्लाइव का प्रस्ताव देखिए।
4. रैम्जे म्योर . पूर्वोद्धृत, पृ० 271।

दिया गया। इसके अंतर्गत कड़ा और इलाहाबाद को 50 लाख रुपये में नवाब के हाथों बेच दिया गया। युद्ध की स्थिति में नवाब की रक्षा करना तय हुआ, पर साथ ही उसके आतरिक मामले में हस्तक्षेप न करने की भी बात कही गई। प्रथम मराठा युद्ध (1778-82) और द्वितीय मैसूर युद्ध (1780-84) भी क्लाइव द्वारा प्रारभ नीति मे कोई परिवर्तन न ला सके। पर 1784 के पिट के इडिया ऐक्ट ने स्पष्ट शब्दों में नीति की घोषणा कर दी: "जहा भारत मे विजय और विस्तारवादी नीति इस देश की इच्छा, प्रतिष्ठा और नीति के विरुद्ध है, वहा गवर्नर जनरल और उसकी कौंसिल, कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स या सेलेक्ट कमिटी को यह अधिकार है कि वह भारत में युद्ध की घोषणा या सघर्ष का प्रारभ या युद्ध करने के लिए किसी से संधि देश के किसी राजा या राज्य से करे।"

धीरे-धीरे बगाल के बाहर शक्ति न स्थापित करने के क्लाइव के तर्क कमजोर पड़ते जा रहे थे। 1786 मे जब कार्नवालिस भारत मे आया तो उसे मैसूर के टीपू सुल्तान के विरुद्ध मराठों और निजाम से मैत्री करनी पड़ी। मैसूर का तीसरा युद्ध हुआ और कार्नवालिस ने स्वीकार किया कि "हमने अपने दबग शत्रु की शक्ति को अपने मित्रों को शक्तिशाली बनाये बिना कुचल दिया है।" यह युद्ध जो इसलिए प्रारभ हुआ कि ब्रिटिशों ने टीपू के विरुद्ध निजाम से सधि के अतर्गत उसके पास उसके क्षेत्र वापसी मे सहायता हेतु एक सेना भेजी क्योंकि ब्रिटिशों ने टीपू के विरुद्ध उनके क्षेत्र के स्वामित्व को स्वीकार कर लिया था। यह नवीन नीति पुरानी अनाक्रामक और निर्हस्तक्षेप की नीति से स्पष्ट रूप से हटकर थी। पर फिर भी इसे कुछ ब्रिटिश इतिहासकारों ने अनिवार्य स्वीकार किया है। वैसे इसे गृह विभाग ने नापसन्द किया और उसके विरोध के बावजूद इसे किया गया। सभवतः इसीलिए कार्नवालिस ने टीपू को बुरी तरह से दबाया ही, पद से नही हटाया। और न पूरे मैसूर पर अधिकार ही किया। जबकि वह सब कुछ करने की स्थिति में था।

कार्नवालिस के बाद सर जान शोर आया और उसके बाद 1798 मे बंगाल का गवर्नर जनरल होकर आया लार्ड वेलजली। उसने यहां पहुंचने पर स्थिति का आकलन कर यह अनुभव किया कि राज्यों से संबंध के क्षेत्र में एक निश्चित परिवर्तन की आवश्यकता है। मराठों द्वारा आक्रमण किये जाने पर सर जान शोर के काल मे निजाम की सहायता ब्रिटिशों ने नहीं की थी। इसलिए वह कपनी से असंतुष्ट था। मराठे निजाम से विजय प्राप्त कर अत्यधिक गौरव का अनुभव कर रहे थे और ब्रिटिशों के लिए भी खतरा बन रहे थे। टीपू सुल्तान भी अपनी वर्तमान स्थिति से असंतुष्ट था। कार्नवालिस के काल मे पराजय का अपमान उसे उनसे बदला लेने की प्रेरणा दे रहा था। और इस सबके अतिरिक्त भारत पर नैपोलियन के आक्रमण का भय अलग से सवार था। फ्रांसीसी अधिकारी पहले

से ही निजाम, मराठों और टीपू सुल्तान की सेना को प्रशिक्षण दे रहे थे और इनके माध्यम से भारत मे ब्रिटिशों के लिए खतरा पैदा किया जा सकता था। इन परिस्थितियों मे निर्हस्तक्षेप की नीति बेकार हो गई थी। वेलजली ने अनुभव किया कि ब्रिटिश मित्र भारतीय राज्यों को अनुगामी बना लेना चाहिए।

इसलिए वेलजली ने अपनी नीति के अतर्गत सहायक सधि की प्रथा का प्रारंभ किया। इसके अतर्गत आने वाले राज्य को ब्रिटिश सेना से सरक्षित किया जाता था जिसके व्यय के लिए संरक्षित राज्य को अपने क्षेत्र का कुछ भाग ब्रिटिशों को सौपना पड़ता था जिसके राजस्व से सेना का व्यय चलता था या उसे सीधे व्यय हेतु निश्चित धनराशि देनी पडती थी। उस राज्य की वैदेशिक नीशि ब्रिटिश हाथों मे आ जाती थी और झगडा होने पर राज्य को ब्रिटिश मध्यस्थता स्वीकार करनी पड़ती थी। और इस सबके बदले राज्य की वाह्य आक्रमण से रक्षा ही नही की जाती थी वल्कि आतरिक अशाति को दवाने का उत्तरदायित्व भी वे अपने ऊपर लेते थे। पणिक्कर ने अत्यधिक आकर्षक शब्दो मे इस प्रथा के विषय में कहा है "सहायक सधि सुरक्षात्मक प्रथा के रूप मे विकसित हुई जिसके द्वारा कंपनी ने व्यापार कार्य के लिए आतुरता की और रक्षा-व्यवस्था करने के प्रति दृढ़ता दिखाई। यह कार्य उन्होने अपनी सीमा के लिए ही नही किया और भौगोलिक दृष्टि से निकट अपने पड़ोसी राज्य के लिए भी किया। वाद में लार्ड मैलिनवरी ने इस नीति के विषय मे कहा कि यह नीति पृथ्वी को नक्षत्रों के आक्रमण से बचाने के लिए चद्रमा के लिए की गई सुरक्षा की भाति है।"[1]

इस नयी प्रथा के अतर्गत हैदरावाद के निजाम, अवध के नवाब, मैसूर के शासक व पेशवा से सधिया की गईं। इस पर विचार व्यक्त करते हुए वेलजली ने स्वय लिखा है : "ब्रिटिश सरकार और भारत के मुख्य राज्यों के बीच एक सामान्य मैत्री स्थापित हो गई है जो राज्यों के व ब्रिटिशों के आपसी हित का ध्यान रखती है। और इसने प्रत्येक राज्य के लिए अपने-अपने क्षेत्र में अलग अधिकार प्रदान किया है तथा ब्रिटिश शक्ति ने इन्हें सामान्य सुरक्षा के लिए आबद्ध किया है।"[2]

डॉ० एम० एस० मेहता ने लिखा है कि [illegible] 'कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स ने अवहेलना की और [illegible] के लिए [illegible] किए गए जिससे वह भारतीय राज्यों के [illegible] अपनाये।" उतराधिकारी ने [illegible] कि 'कुछ [illegible]

---

1. पणिक्कर, के० एम० : [illegible]
2. वेलजलीज डिस्पैचेज, [illegible]

जिससे कंपनी को राजनैतिक उत्तरदायित्व में वृद्धि हो।"[1]

कुछ लेखक यह तर्क देने का प्रयास करते है कि नवीन सधियो के गहन परीक्षण से पता चलता है कि उनकी शर्तो में आपसी लेन-देन का भाव स्पष्ट था और चूकि राज्यों में ही शासन शक्ति निहित थी इसलिए कम-से-कम सिद्धात रूप मे सधि पर हस्ताक्षर करने वालो मे समानता थी। इन तर्कों मे सार हो सकता है पर फिर भी इस बात से इकार नही किया जा सकता कि वेलजली पुरानी निर्हस्तक्षेप की नीति से पर्याप्त दूर हट गया। इसीलिए डाइरेक्टरो ने इस नीति को नापसंद किया, इसे उलट देने की इच्छा व्यक्त की और यह कोशिश की कि पुरानी नीति पर बना रहा जाए। यहा तक कि इसीलिए कार्नवालिस को पुनः भारत भेजा गया जिससे वेलजली द्वारा प्रयुक्त नीति के दुष्प्रभाव से मुक्त हुआ जा सके।

अगले आठ वर्षो मे (1805-1813) इसी कारण निर्हस्तक्षेप की नीति की पुर्नस्थापना की चेष्टा हुई। वैसे डाइरेक्टरो की इच्छानुसार कठोरता से इसका अनुपालन नही हो सका। पुन. गवर्नर जनरल का कार्यभार ग्रहण करते ही दुर्भाग्य से कार्नवालिस मर गया। उसके उत्तराधिकारी जार्ज बार्लो ने जिसने 1805 में उत्तराधिकार प्राप्त किया जहा तक सभव हुआ। निर्हस्तक्षेप की नीति पुनर्स्थापित करने की चेष्टा की। राजपूतों से ब्रिटिश रक्षा नीति वापस ले ली गई और होल्कर तथा सिंधिया को अत्यन्त लाभपूर्ण शर्तें पेश की गई। पर वह पूर्णरूप से पुरानी स्थिति को वापस नहीं हो सका। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि निजाम को सहायक सधि से मुक्त होने की अनुमति नही प्रदान की गई। इतना ही नही, डाइरेक्टरो के प्रयास के बावजूद पेशवा से की गई बेसीन की सधि को रद्द नही किया गया।

लार्ड मिण्टो के काल मे निर्हस्तक्षेप की नीति की ओर बढते कदम को गभीर धक्का लगा। जैसा कि लार्ड कर्जन ने लिखा : "शांतिपूर्ण अलगाव की नीति का पालन करते हुए, जिसे उसके पूर्वाधिकारियों ने असफलतापूर्वक प्रयुक्त किया था, वह ऐसी नीति अपनाने को बाध्य हो गया जिसको वेलजली भी स्वीकृति प्रदान कर सकता था।"[2] 1809 मे विद्रोही पठान नेता अमीर खान ने बरार पर आक्रमण कर अशाति पैदा कर दी थी इसीलिए बिना किसी सधि की बाध्यता के अव्यवस्था की समाप्ति के लिए मिण्टो ने इस अवसर पर हस्तक्षेप किया। 1809 की अमृतसर की सधि के अनुसार रणजीतसिंह की ट्रांस-सतलज क्षेत्र मे राजनैतिक कार्यवाहियो पर पाबंदी लगा दी गई तथा सिस-सतलज क्षेत्र पर ब्रिटिश संरक्षण स्थापित कर दिया गया। सिंध के अमीर और अफगानिस्तान के यहा दूत भेजे गए और इन शक्तियो से सधियां की गईं जिससे भारत पर होने वाले

1. मेहता, डा० एम० एम० : लार्ड हेस्टिग्स ऐण्ड द इंडियन स्टेट्स, 1920, पृ० 2।
2 कर्जन : ब्रिटिस गवर्नमेंट इन इंडिया, पृ० 184।

फ्रांसीसी आक्रमण से निबटा जा सके। फ्रांसीसी उपनिवेश मारीशस और बूर्बा पर अधिकार कर लिया गया।

सिखों, अफगानों और सिंध के अमीर से की गई संधियां आपसी समानता के सिद्धांत पर आधारित थीं। लार्ड कर्जन के उपरोक्त विचारों के बावजूद हम डॉ० एम० एस० मेहता के विचार से सहमत हो सकते हैं जिसमें उन्होंने लिखा है कि "जबकि यह सच है कि मिण्टो के काल में बुंदेलखंड के कुछ शासक और सतलज के पश्चिम के सिख राज्य ब्रिटिश संरक्षण में ले लिये गए थे। पर ब्रिटिशों ने उत्थानवत रणजीतसिंह की शक्ति पर अंकुश लगाने की चेष्टा की। पर मूलरूप से स्थिति 1805 और 1806 की संधि के अनुसार ही बनी रही।"[1] और इसके अतिरिक्त डाइरेक्टर लगातार यह कहते थे कि निर्हस्तक्षेप की नीति ही सबसे उत्तम है।

संक्षेप में इस तरह हम ली वार्नर को पुनः उद्धृत कर सकते हैं, "जब पिछले 56 वर्षों की घटनाओं की ओर मस्तिष्क जाता है, कंपनी की यह स्पृश्य आकुलता जिसमें उसने राज्य अपहरण और संधि दोनों को नकारा, हमें स्पष्ट सुख प्रदान करती है। 1764 का बक्सर का युद्ध हमारे समक्ष है जब अवध मेजर मुनरो के कदमों पर धराशायी हो गया, पर उसे जीता नहीं गया। रोहिल्ला युद्ध में विजय पाकर भी विजित क्षेत्र वारेन हेस्टिंग्स ने अवध के वजीर को सौंप दिया..."[2] और इसके अतिरिक्त उदाहरण भी यह सिद्ध करते हैं कि कंपनी दृढ़ निश्चय के साथ निर्हस्तक्षेप की नीति अपनाने पर तुली थी। इस काल की बहुत-सी संधियों में कम-से-कम सैद्धांतिक समानता तो दिखाई ही पड़ती है। यह लार्ड वेलजली द्वारा की गई संधियों में भी द्रष्टव्य है।

फिर भी, जैसाकि स्पष्ट है, समय बीतने के साथ निर्हस्तक्षेप की पुरानी नीति को बनाए रखना कठिन हो गया। क्लाइव की यह धारणा कि ब्रिटिश कार्यवाहियां बंगाल तक ही सीमित रखी जाए अपनी शक्ति गंवा रही थी। एक के बाद एक आने वाले गवर्नर जनरल इस नीति से बंधे रहने में कठिनाई का भी अनुभव कर रहे थे। कभी-कभी इस नीति से दूर चले जाने की भी चेष्टा होती थी जिसे डाइरेक्टरों के विरोध के बावजूद भी नहीं बदला जाता था। इस तरह तेजी से कालचक्र ऐसा आ रहा था जब इस नीति में निश्चित परिवर्तन किया जाए। ऐसा ही मिण्टो के उत्तराधिकारी लार्ड हेस्टिंग्स के काल में हुआ जब अगूठी के घेरे की नीति का निश्चित रूप से परित्याग कर दिया गया और 'सहायक अलगाव' की नीति का प्रारंभ किया गया। इस तरह मिण्टो के शासन की समाप्ति के साथ एक युग की समाप्ति हो गई।

---

1. मेहता : पूर्वोद्धृत, पृ० 3।
2. ली वार्नर : पूर्वोद्धृत, भाग 1, पृ० 52।

अन्य घटनाएं और सुधार

वेलोर का विद्रोह

जब मिण्टो भारत पहुंचा उस समय भी वेलोर के विद्रोह की प्रतिध्वनि सुनाई पड रही थी। वेलोर मद्रास से 90 मील दूर पश्चिमी घाट में एक किला था जहा 6 जुलाई 1806 को कपनी के भारतीय सिपाहियो ने विद्रोह कर दिया। इसमे लगभग 100 अंग्रेज अफसर और सैनिक मार डाले गए।[1] किले पर विद्रोहियों ने अधिकार कर लिया। वैसे शीघ्र ही ब्रिटिशो ने इस पर अधिकार कर लिया और वहां पूर्ण शाति स्थापित हो गई। यह विद्रोह अपनी तरह का प्रथम था जिससे ब्रिटिशो की आंखे खुल गई। उन्होने भारत मे इन्ही सैनिको के सहारे तमाम विजयें प्राप्त की थी। उन्हे यह भी पता था कि भारत के विस्तृत साम्राज्य पर अधिकार बनाए रखने के लिए पर्याप्त युरोपीय सैनिकों की व्यवस्था भी नही हो सकती। पर अब प्रश्न यह था कि क्या इन भारतीय सैनिको की स्वामिभक्ति पर विश्वास किया जाए। इस विद्रोह के कारण और प्रकृति पर बहुत विवाद हुआ है। यह विद्रोह 1857 से मिलता-जुलता था।

1857 के विद्रोह की ही भाति वेलोर विद्रोह का तात्कालिक कारण जातिगत भावना थी। कहा जाता है कि मद्रास के सेनापति सर जान क्रेडाक ने कानून के माध्यम से यह आदेश दिया कि सैनिक जब परेड पर आए तो वे अपने माथे पर किसी जाति का चिह्न लगाकर न आए। साथ ही वे अपने माथे के बाल घुटा कर आए जिससे वे एक तरह के दिखे। लार्ड विलियम वैंटिक को जो उस समय मद्रास का गवर्नर था, इसमें कुछ आपत्तिजनक नही लगा। पर सैनिको ने इसे अपने धर्म में हस्तक्षेप मानकर इस आज्ञा का पालन नही किया। उनका कोर्ट मार्शल किया गया और उनके साथ बर्बरता का व्यवहार किया गया जिसके फलस्वरूप उन्होने विद्रोह कर दिया। चतुराई की कमी ने इन अधिकारियो को यह न समझने दिया कि ये ऊची जाति के लोग घमडी हैं और उनके संबंध को आदर से देखा जाता है। वैंटिक और क्रेडाक को इसके लिए डाटा गया और उन्हे अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा।

विद्रोह का कारण सीधा-सादा था। ब्रिटिश यह जानते थे, पर तर्क-वितर्क अग्रसरित किए गए। किसी ने कहा कि इसे टीपू सुल्तान के लड़को ने कराया तो किसी ने बताया कि फ्रासीसी लोगो ने सिपाहियो को विद्रोह की तकनीक बताई है। यह भी कहा गया कि इसके और कारण ये है जैसे प्रशासकीय स्थानों से भारतीयों को पूर्ण रूप से हटाया जाना, ब्रिटिशो को हटाने के लिए मुसलमानो का

1. देखिये, यन्नी, ऐस्ली : पूर्वोद्धृत, पृ० 237।

षड्यंत्र, विस्तार मे भारतीय क्षेत्र पर ब्रिटिशों का अधिकार एवं सेरामपुर में ईसाई मिशनरियो द्वारा भारतीय धर्मों को अपमानित करने का प्रयास। जो गवर्नर और सेनापति के पक्षधर थे उनका कहना था कि सच में कानून के विरोध के नाम का पर्दा बनाकर अंग्रेजी शासन की समाप्ति के लिए यह एक संगठित षड्यन्त्र था।

जो भी हो, लार्ड मिण्टो ने इस तर्क-वितर्क से लाभ उठाया और ऐसी आवश्यक कार्यवाहिया की जिससे इस तरह की घटनाए पुनः न हो। उसने कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के चेयरमैन चार्ल्स ग्राण्ट की इच्छा के विपरीत सेरामपुर की मिशनरियो पर प्रतिबध लगाया। कंपनी द्वारा जगन्नाथ मदिर के पुजारी की नियुक्ति तथा तीर्थ-यात्रा कर वसूली पर भी विरोध व्यक्त किया गया। पर इस सबध में तत्काल कोई कदम नही उठाया जा सका।

गोरों का विद्रोह

वेलोर विद्रोह की घटना के प्रभाव की अनुभूति अब भी हो रही थी, जब 1808 मे मद्रास मे गोरो की सेना ने विद्रोह कर दिया। इसके अंतर्गत अंग्रेज अफसरों ने मद्रास सरकार की आज्ञा मानने से इंकार कर दिया। उन्होने इस बात पर विरोध व्यक्त किया था कि गृह अधिकारी उनके सेनापति को मद्रास कौंसिल का सदस्य बनाने को क्यों तैयार नही है तथा अधिकारियों द्वारा सैनिक साज-सामान के मूल्य पर कमीशन लेने पर प्रतिबंध क्यों लगा दिया गया है। उन्होंने इसके लिए बार्लो की नयी सरकार को उत्तरदायी माना और सरकार की आज्ञा मानने से इनकार कर दिया। बार्लो ने शीघ्र ही इस पर कार्यवाही करते हुए अधिकारियो से तुरत सरकार के प्रति भक्ति का घोषणा पत्र भरकर देने को कहा और ऐसा न करने पर उन्हे निलबित करने को कहा। बहुत से अधिकारियों ने उसके आदेशानुसार कार्य किया जब कि कुछ ने ऐसा न करके निलबन का दड भुगता। दो महीने में स्थिति सामान्य हो गई और ब्रिटिश एक गृह युद्ध और अशातता की स्थिति से बच गए। इसके बाद बार्लो ने उदारता दिखाई और अफसरों की जायज कठिनाइया दूर करने की चेष्टा की। मिण्टो ने भी उसी की नीति का अनुगमन किया।

राजस्व सुधार

मिण्टो ने कुछ राजस्व सुधार भी किए। लार्ड कार्नवालिस की स्थायी व्यवस्था में कई दोष थे जिसका परिचय हम पहले ही दे आए हैं। इंगलैण्ड के डाइरेक्टर इस बात के पक्ष मे नही थे कि इसे नव विजित दक्षिण और उत्तर के भारतीय क्षेत्रों पर लागू किया जाए। ऐसा बार्लो द्वारा नियुक्त एक भू कमीशन के इसके

विरुद्ध रिपोर्ट के कारण किया गया जिसने अपनी-अपनी रिपोर्ट 13 अप्रैल 1808 मे प्रस्तुत की। डाइरेक्टर चाहते थे कि उनकी आय बढ़े जो वर्तमान व्यवस्था में सभव नही है क्योकि जमीदार, किसान और बिचौलिए एजेण्ट के रूप में राजस्व का एक अश प्राप्त कर लेते है जो वैसे सरकार के खजाने मे जाना चाहिए। राजस्व अधिकारी मुनरो ने डाइरेक्टरों से कहा कि यदि खेती करने वाले से सीधे कर लिया जाए तो अधिक लाभ हो सकता है। इस कारण डाइरेक्टरों ने अपने 27 फरवरी 1811 और 27 नवम्बर 1811 के पत्र के माध्यम द्वारा स्थायी वदोवस्त को समाप्त कर दिया। इसके लिए उन्होंने एक निश्चित योजना जून 1813 में भेजी जो मिण्टो के शीघ्र सेवा निवृत होने के कारण उसके उत्तराधिकारी के काल में लागू हो सकी। पर उसके काल मे तमाम प्रयोग किए गए जैसे ग्राम पचायतों या सभापतियों से कर वसूली का अनुवंध जो 3, 5 या और अधिक काल तक के लिए किए गए।[1]

इस सवध में उसके काल के कुछ अन्य सुधार भी किए गए। 1811 के रेग्युलेशन 13 के द्वारा जिसने बोर्ड आफ रेवन्यु के व्यक्तिगत सदस्यों को अधिकार प्रदान किया कि वे बोर्ड से अधिकार प्राप्त करके विभिन्न जिलों मे जाकर राजस्व वदोवस्त तथा राजस्व अधिकारियो के कार्यवाहियों की देखभाल करें।

1812 के रेग्युलेशन 5 के अनुसार जमीदारो द्वारा किसानों को दिए जाने वाले पट्टा पद्धति की बुराइयों मे सुधार लाया गया। किसानों को कर बकाया होने की स्थिति में कुछ संरक्षण प्रदान किया गया। भूमि खरीदने वाले व्यक्ति द्वारा कर वृद्धि के सवध में भी कुछ सुरक्षा खेती करने वाले को प्रदान की गई।

आंतरिक कर और समुद्र तटीय कर पद्धति मे भी सुधार किया गया। वर्तमान व्यवस्था में कुछ गभीर दोप थे जिसके अंतर्गत थोड़ी-थोड़ी दूरी पर खोजघर और चुगीघर वनाए गए थे जहा व्यापारियों को परेशान किया जाता था और उन्हे चुगी कर्मचारियों को घूस देने के लिए बाध्य किया जाता था। इसके कारण वस्तुओं का मूल्य वढ जाता था जिससे स्वतत्र व्यापार मे बाधा पड़ती थी और उपभोक्ता पर भार बढ़ जाता था। मुनरो ने इसके लिए 1810 मे रेग्युलेशन 9 बनाया जिसके द्वारा आतरिक चुंगीघरो को पुनर्गठित किया गया और उन्हें बोर्ड आफ रेवन्यु की अध्यक्षता मे बगाल, बिहार और उड़ीसा मे स्थापित किया गया। नव प्राप्त क्षेत्रों को बोर्ड आफ कमिश्नर्स के अधीन कर दिया गया। चुगी वसूलने वाले और उनके सहायको को कंपनी के उस क्षेत्र से होकर जाने वाले माल पर एक बार चुगी दी जाती थी। ये व्यापारी को एक वर्ष के लिए रवन्ना लिखते थे

---

1. और विस्तार के लिए देखिये, बक्शी, एस० आर० : ब्रिटिश डिप्लोमैसी ऐण्ड ऐडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, पृ० 138-168; लार्ड हेस्टिंग्स के अतर्गत सुधार भी देखें।

जिसकी अवधि आगे बढ़ा दी जाती रहती थी। इसमें माल का विवरण दिया जाता था जो थोड़ी-थोड़ी दूर पर स्थापित चुंगी घरो द्वारा देखा जाता था। इससे अवैध व्यापार पर रोकथाम लगाने मे सहायता मिलती थी। बाहर से आने वाली वस्तुओ के लिए रवन्ना चुगी दे देने पर कलकत्ता, चटगांव और बालासोर से प्राप्त होता था। एक अधिकारिक दर की पुस्तिका तैयार की गई जिसकी प्रतियां सभी चुंगीघरों और चौकियो में रखवा दी गईं जहा से इसे देखकर चुगी की दर जानी जा सकती थी।

न्यायिक सुधार

1810 का रेग्युलेशन 14 न्याय सुधार से सबधित था। इसके अंतर्गत जिला और नगर माजिस्ट्रेटो को कैदियों को जमानत पर छोड़ने के विस्तृत अधिकार प्रदान किए गए। जमानत के बाद कार्नवालिस द्वारा स्थापित सरकिट-कोर्ट में मुकदमा चलता रहता था। इसके पूर्व निरपराधी लोगों को लंबी जेल भुगतनी पड़ती थी जिसका आधार केवल सदेह था। इनके जिला मुख्यालय पर सरकिट कोर्ट द्वारा मुकदमे के सुनवाई की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। 1810 के 16वें रेग्युलेशन के अंतर्गत असिस्टेंट और ज्वाइंट मजिस्ट्रेटो की नियुक्ति इसलिए की गई जिससे जनता के बढ़ते हुए मुकदमे की सुनवाई की जा सके।

पुलिस

1808 के रेग्युलेशन 9 ने पुलिस शक्ति को मजबूत बनाया। इसके अंतर्गत जमीदार और अन्य बडे लोगों को लापरवाही के सदेह मे या डाकुओं से मिले होने के आरोप मे बंदी बनाया जा सकता था। कुछ नए पुलिस सुपरिटेंडेंटों की नियुक्तियां भी की गई जिनकी शक्ति और बढ़ाई गई। पुलिस के वारन्ट का विरोध कानून मे दंडनीय अपराध बताया गया।

शिक्षा

मिण्टो का शिक्षा का दृष्टिकोण पूर्वीय व पुरातनवादी था। उसने फोर्ट विलियम कॉलेज के पुस्तकालय मे 5 हजार रुपये की अरबी और फारसी की पुस्तकें रखवाई। उसने मलय और बर्मी जैसी विदेशी भाषा को सरक्षण प्रदान किया। उसने 1813 के चार्टर ऐक्ट मे जनशिक्षा के लिए धन के प्रावधान की भूमिका तैयार की। उसने देश में कुछ पोस्टल सुधार भी किए।

प्रेस

पर मिण्टो प्रेस स्वतत्रता का पक्षधर नही था। केयी लिखता है कि उसके

अधीन "स्वतंत्र ज्ञान का यह स्रोत एक लाइलाज बीमारी हो गया'''उन दिनों भारतीयों के प्रति हमारी नीति यह थी कि उन्हें हर सभव तरीके से वर्बरता और अंधेरे की स्थिति मे रखा जाए।"[1] लार्ड मिण्टो की प्रेस के विरुद्ध कड़ाई का वर्णन एक घटना मे निहित है। कहा जाता है कि हैदराबाद के रेजीडेंट ने निजाम के लिए एक प्रेस की व्यवस्था खरीदकर कराई। जब इसकी जानकारी मिण्टो को हुई तो उसने इस बात के लिए उसे बुरी तरह डाटा कि उसने एक भारतीय राजा के हाथ मे इतनी विस्फोटक चीज सौंप दी है। टाम्सन लिखता है कि रेजीडेंट ने "यह कहते हुए आत्मरक्षा की कि निजाम ने इसमें कोई रुचि नही दिखाई है और यदि सरकार चाहे तो वह तोशाखाना में जाकर गुप्त रूप से सदा के लिए प्रेस को बेकार कर सकता है।"[2]

"एक कर्मठ और महत्त्वाकाक्षी व्यक्ति, जिसमें पर्याप्त विद्वता और साहित्यिक रुचि थी, ऐसा मिण्टो एक चतुर राजनीतिज्ञ व कूटनीतिज्ञ था और साथ ही एक उत्साही प्रशासक भी'''उसने भारत में इसकी आर्थिक स्थिति ठीक कर महत्वपूर्ण कार्य किया।" विस्काउन्ट मेरसे उसके विषय मे और आगे लिखता है, "ब्रिटिश प्रभाव को आक्रामक रुख के माध्यम से नही बल्कि शातिपूर्ण नीति से, बढ़ाकर उसने पूरा समय इसे ही बढ़ाने और शक्तिशाली बनाने मे लगाया।"

1813 के प्रारंभ मे उसे बुला लिया गया और उसके स्थान पर मार्क्विस हेस्टिंग्स को भेजा गया "60 से ऊपर, जावा आक्रमण का दुष्प्रभाव झेलते हुए, वह इगलैण्ड मई 1814 मे पहुंचा और एक महीने के बाद ही ठंडक से स्काटलैंड जाते समय रास्ते ही में मर गया। उसे वेस्टमिनिस्टर अबे मे दफनाया गया। उसके कई बच्चे थे, उसका पोता अर्ल चतुर्थ भारत में एक शताब्दी बाद भारत का वायसराय हुआ।"[3]

1. केयी : लाइफ आफ मेटकाफ, भाग-2, पृ० 245।
2. टाम्सन : लार्ड मेटकाफ, पृ० 317।
3. मेरसे, विसकाउन्ट : द वायसराय ऐण्ड गवर्नर जनरल्स आफ इंडिया (1757—1947) लदन, 1949, पृ० 39-40।

ग्रंथ-सूची

अहमद, सफी : *ब्रिटिश ऐग्रेसन इन अवध*, मेरठ, 1969।
अली, शाहमत : सिख ऐण्ड अफगान्स।
अमरनाथ, दीवान : जफर नामा-ए-रणजीतसिंह।
अमृतसर, खालसा : कालेज (प्रकाशक) सेन्टीनरी वाल्युम आफ रणजीत सिंह।
अस्पिनाल, ए० : कार्नवालिस इन बंगाल, 1931।
अजीज, के० के० : *ब्रिटेन ऐण्ड मुस्लिम इंडिया*, लदन, 1963।
आनंद, सी० एल० : हिस्ट्री आफ गवर्नमेण्ट आफ इंडिया।
आर्चर, डब्लू० जी० : पेण्टिंग्स आफ द सिक्स, लदन, 1966।
आसबर्न, हान० डब्लू० जी० : द कोर्ट ऐण्ड कैम्प आफ रणजीतसिंह, 1840।
इम्ब्री, ऐंसली : चार्ल्स ग्राण्ट ऐण्ड ब्रिटिश रूल इन इंडिया।
ईश्वरी प्रसाद ऐण्ड के० एस० सूबेदार : ए हिस्ट्री आफ माडर्न इंडिया।
उड्रफ, फिलिप्स : द मेन हू रूल्ड इंडिया, द गार्जियन्स, लदन, 1963।
: द मेन हू रूल्ड इंडिया, द फाउन्डर्स, लदन, 1963।
ऐडम्स, ऐन्ड्रिव : वान्डरिंग आफ ए नेचुरलिस्ट इन इंडिया, एडिनबर्ग, 1967।
ऐटचिसन सी० वी० : ट्रीटीज, इनगेजमेण्ट्स ऐण्ड सनद्स, रेलीवेन्ट वाल्युम्स, कलकत्ता, 1876।
औंग मौंग हाटिन : ए हिस्ट्री आफ बर्मा, यू० एस० ए० 1967।
कबीर हुमायू : द इंडियन हेरिटेज, बम्बई, 1964।
: मुस्लिम पॉलिटिक्स एण्ड अदर यसेज, कलकत्ता, 1969।
कन्हैयालाल : तारीखे पंजाब, ट्रान्सलेटेड इन टू पंजाबी वाई जे० ए०, पटियाला, 1968।
कंड्क्का, डी० एफ० : शिवाजी, बम्बई, 1969।
करमसिंह, हिस्टोरियन एडिसन : भुमुले इतहासक लेख, पंजाबी।
करुणाकरन, के० पी० : रिलीजन एण्ड पोलिटिकल अवेकनिंग इन इंडिया, कलकत्ता, 1965।
: माडर्न इण्डियन पॉलिटिकल ट्रेडीसन।
केमी, सरजान : द ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ द ईस्ट इंडिया कंपनी।
: क्रिश्चियनिटी इन इंडिया, 1869।
कीन, एच० जी० : माधवराव सिंधिया, देहली, 1968।

कीथ, ए० बी० : ए कान्स्टीच्युशनल हिस्ट्री आफ इंडिया, इलाहाबाद, 1961।
: स्पीचेज ऐण्ड डाकूमेण्ट्स आन इडियन पॉलिसी, भाग 1 व 2
केलक : महादेव गोविन्द रानाडे।
: कानपुर, पब्लिश्ड फ्राम, सेण्टीनरी वाल्युम आफ रणजीत सिंह।
काटन, सर हेनरी : इण्डिया ओल्ड एण्ड निव।
: इण्डियन ऐण्ड होम मेमायर्स।
: निव इण्डिया : इण्डिया इन ट्राजीसन।
कोर्ट, मेजर हेनरी : हिस्ट्री आफ द सिख्स, लाहौर, 1888।
कावेल, हरबर्ट : हिस्ट्री ऐण्ड कान्स्टीच्युशन आफ द कोर्ट्स ऐण्ड लेजिस्लेटिव अथारटीज इन इण्डिया, 1936।
कनिंघम, जे० डी० : हिस्ट्री आफ द सिख्स, दिल्ली, 1966।
कर्जन, जार्ज नथानियल : ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इन इडिया, भाग 1 व 2।
: रसा इन सेण्ट्रल एशिया।
: हिज स्पीचेज।
कस्ट, राबर्ट : लिंग्विस्टिक ऐण्ड ओरियण्टस यसेज।
ख्वादिर, ख्वाजा अब्दुल : वाकये मनाजिल रुम, डायरी आफ ए जर्नी टू कान्स्टेन्टीनोपुल, सस्करण, मोहीबुलहसन, दिल्ली, 1968।
किनकेड, सी० ए० : ए हिस्ट्री आफ द मराठा पीपुल, दिल्ली, 1968।
कोहली, सीताराम : रणजीतसिंह, पजाबी।
कुलकर्णी, वी० बी० : ब्रिटिश स्टेट्समैन इन इण्डिया, बम्बई, 1961।
खान, गुलाम हुसैन : सियारुल मुतखरीन, कानपुर, 1897।
खुशवन्त सिंह : ए हिस्ट्री आफ द सिख्स, दो भाग।
गायकवाड़, वी० आर० : द ऐंग्लो इण्डियन्स, लन्दन, 1967।
गैरेट, जो० टी० : लीगैसी आफ इण्डिया।
गिलियट, यडवर्ड : हीरोज आफ माडर्न इण्डिया।
गिब, एच० ए० आर० : *मोहम्मडनइज्म, ऐन हिस्टारिकल सर्वे, लंदन, 1949।*
ग्लेग, जी० आर० : मेमायर्स आफ वारेन होस्टिंग्स।
गार्डन जनरल, सरजान : द सिख्स (1904)।
गोफ, जनरल सरचार्ल्स ऐण्ड इनस, आर्थर डी : द सिख्स ऐण्ड सिख वार्स (1897)
ग्रे ऐण्ड गार्नेट : युरोपियन ऐडवेन्चररर्स आफ नार्दर्न इडिया।
ग्रिफिन, लेपल : रणजीत सिंह, इडियन रिप्रिंट, देहली, 1967।
गुप्ता, असीमदास : मालाबार इन एशियन ट्रेड (1740-1800), कैम्ब्रिज, 1967।
गुप्ता एच० आर० : हिस्ट्री आफ द सिख्स, 3 भाग।
गुप्ता, प्रतुल चन्द्र : बाजीराव II एण्ड द ईस्ट इडिया कपनी, बम्बई, 1964।

: शाह आलम ऐण्ड हिज कोर्ट।

घाप प्रेस ऐण्ड प्रेस लाज इन इंडिया।

चलपति राव : द प्रेस इन इंडिया, लंदन, 1968।

चट्टोपाध्याय, गौतम : अवेकनिंग इन बंगाल इन द अर्ली नाइनटीथ सेन्चुरी, कलकत्ता,1965।

चक्रवर्ती, अचलानंद : हिन्दूज ऐण्ड मुस्लिम्स आफ इंडिया।

चैलें, जे० : ऐडमिनिस्ट्रेटिव प्रावलम्स आफ ब्रिटिश इंडिया।

चावड़ा, वी० के० : गायकवाड़्स ऐण्ड द ब्रिटिश, दिल्ली, 1967।

चिरोल, वेलेन्टाइन : इंडिया ओल्ड एंड निव, लंदन, 1921।

चोपड़ा, गुलशन लाल : द पंजाब ऐज ए सावरेन स्टेट, होशियारपुर, 1960।

चौधरी, वी० एस० पी० : इम्पीरियल पालिसी आफ ब्रिटिश इन इंडिया, कलकत्ता, 1968।

चौधरी, राधाकृष्ण : हिस्ट्री आफ विहार, पटना, 1958।

छाबड़ा, जी०एस० : ऐडवान्स्ड हिस्ट्री आफ द पंजाव, 2 भाग, जालधर, 1968।

टेलर, एम० : कनफेशन्स आफ ए ठग।

टेम्पुल, सर आर० : मैन एंड इन्वेन्ट्स आफ माई टाइम इन इंडिया।

टाम्सन, एडवर्ड गैरेट, जी० टी० : राइज ऐण्ड फुलफिलमेन्ट आफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया, इलाहावाद, 1962।

टाम्सन, एडवर्ड : द मेकिंग आफ द इंडिया, प्रिसेज, 1943।

ट्राटर, एल० जे० : हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इम्पायर इन इंडिया।

: वारेन हेस्टिंग्स, देहली, 1961।

ठाकुर बी० के० : इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेशन टू द डान आफ रिस्पान्सिबल गवर्नमेंट।

डेविज : द प्राब्लम आफ नार्थ वेस्ट फ्रंटियर्स, 1932।

डाडवेल, एच० एच० (संस्करण) : द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 1, दिल्ली, 1964।

डफ, जेम्स ग्राण्ट : हिस्ट्री आफ द मराठाज, तीन भाग, 1912।

थार्नटन : हिस्ट्री आफ द ब्रिटिश इम्पायर इन इंडिया, 2 भाग।

देसाई, ए० आर० : सोशल वैकग्राउंड आफ इंडियन नेशनलिज्म, 1948।

दत्त, आर० सी० : कल्चरल हेरिटेज आफ वंगाल, कलकत्ता, 1962।

धर्म कुमार : लैण्ड ऐण्ड कास्ट इन साउथ इंडिया, लदन, 1966।

नादकर्णी, आर० वी० : राइज ऐण्ड फाल आफ द मराठा इम्पायर, वम्बई, 1966।

नारंग, गोकुलचंद : ट्रान्सफार्मेशन आफ सिखिज्म, नई दिल्ली, 1960।

नटराजन, एस० : ए सेंचुरी आफ सोशल रिफार्म्स इन इंडिया, 1959।
: ए हिस्ट्री आफ प्रेस इन इंडिया, लंदन, 1962।
निउटन, ए० पी० : ए हुन्ड्रेड इयर्स आफ द ब्रिटिश इम्पायर, लदन, 1967।
नार्मन, मोहम्मद : द मुस्लिम इंडिया।
पांडे, बी० एन० : द इन्ट्रोडक्सन आफ इंगलिश ला इन टू इंडिया, बम्बई, 1967।
: राइज आफ माडर्न इंडिया, 1967।
पाणिस्कर, के० एम० : फाउन्डेसन्स आफ इंडिया।
: द नेटिव स्टेट्स आफ निव इंडिया।
: रिलेशन्स आफ इंडियन स्टेट्स।
: स्ट्डीज इन इंडियन हिस्ट्री, 1963।
: इन्ट्रोडक्सन टु स्टडी आफ रिलेशन्स आफ इंडियन स्टेट टू गवर्नमेंट आफ इंडिया।
: इवोल्युशन आफ ब्रिटिश पालिसी टुवर्डस इंडियन स्टेट्स (1774-1858)।
पार्वते टी० बी० : मेकरस आफ माडर्न इंडिया, देहली, 1964।
पत्रा, अतुलचंद : द ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस अडर द ईस्ट इंडिया कंपनी इन बंगाल ऐण्ड विहार, 1962।
पेन, सी० एच० : ए शार्ट हिस्ट्री आफ द सिख्स।
पावेल प्राइस, जे० सी० : ए हिस्ट्री आफ इडिया।
प्रसाद, बेनी : हिन्दू मुस्लिम क्वेस्चन, इलाहाबाद, 1947।
प्रसाद, विश्वनाथ : द इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस, दिल्ली, 1968।
प्रसाद, आर० सी० : अर्ली इंगलिश ट्रेवलर्स इन इंडिया, दिल्ली, 1965।
प्रिन्सेप, एच० टी० : ओरीजिन आफ द सिख पावर इन पंजाब, 1834।
पुन्निया, के० बी० : द कान्स्टीच्युशनल हिस्ट्री आफ इंडिया, दिल्ली, 1964।
फ़िलिप एच० एल० : द ईस्ट इंडिया कंपनी, 1940।
फर्कूहर, जे० एन० : माडर्न रिलीजस मूवमेंट्स इन इंडिया, दिल्ली, 1967।
फोर्सटर, जार्ज : ए जर्नल फ्राम बंगाल टू इगलैण्ड, दो भाग, 1798।
फर्बर, होल्डेन : वाम्बे प्रेसीडेन्सी इन द मिड एटीन्थ सेन्चुरी, लदन, 1965।
फर्नीवाल, जे० एस० : नीदरलैन्ड्स इन इंडिया, कैम्ब्रिज, 1967।
बजवा, फौजा सिंह : मिलिट्री सिस्टम आफ द सिक्स ड्युरिंग द पीरियड (1799-1849)।
बख्शी, एस० आर० : ब्रिटिश डिप्लोमैसी ऐण्ड ऐडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया (1807-13), नई दिल्ली, 1970।
बैनर्जी, ए० सी० : ऐंग्लो सिख रिलेशन्स, कलकत्ता, 1949।

: पेशवा माधव राव, I, कलकत्ता, 1968।
बैनर्जी, एस० एन० : ए नेशन इन मेकिंग।
बारबर, नोयल : द ब्लेक होल आफ कलकत्ता, लंदन, 1965।
बार्टन, सर विलियम : द प्रिंसेज आफ इंडिया।
बसु, मेजर बी० डी० : राइज आफ क्रिश्चियन पावर इन इंडिया।
बत्रा, एच० सी० : द रिलेशन्स आफ जयपुर स्टेट विद द ईस्ट इंडिया कंपनी, दिल्ली, (1958)।
बेल, सर चार्ल्स : तिब्बत पास्ट ऐण्ड प्रजेन्ट, लंदन, 1968।
बोल्जर, डेमेट्रियस सी० : लार्ड विलियम बैंटिक।
बावरिंग, लेविन बी० : हैदरअली ऐण्ड टीपू सुल्तान, दिल्ली, 1969।
ब्रेल्सफोर्ड, एच० एन० : सबजेक्ट इंडिया।
बुचान : लार्ड मिण्टो।
बर्क : द वर्कस आफ, बहनस संस्करण, भाग 4।
भाटिया, बी० एम० : फेमीनस इन इंडिया, बम्बई, 1967।
भाटिया, ओ० पी० सिंह : हिस्ट्री आफ इंडिया, भाग 1, नई दिल्ली 1965।
मैकनिकल, एन० : द मेकिंग आफ माडर्न इंडिया।
मग्रीगर, डब्लू०एल० : हिस्ट्री आफ द सिखस, दो भाग, लंदन, 1846।
मैकमिलन, माइकेल : युरोपियन ट्रेवलर्स इन इंडिया, कलकत्ता, 1956।
महले, के० एल० : शिवाजी द प्रैगमैटिस्ट, नागपुर, 1969।
मजूमदार बी० बी० : इंडियन पॉलिटिकल एशोसियेसन्स ऐण्ड रिफार्म आफ लेजिस्लेचरर्स, कलकत्ता, 1965।
मजूमदार बी० सी० ऐण्ड अदर्स : ऐन एडवान्सड हृस्ट्री ऑफ इंडिया, 1963।
मैलकाम, जान : द पालिटिकल हिस्ट्री आफ इंडिया।
: सेण्ट्रल इंडिया।
मलगांवकर, मनोहर कान्होजी आंगरे : मराठा ऐडमिरल, बम्बई, 1959।
मैलीसन, जी० बी० : लार्ड क्लाइव, दिल्ली, 1662।
मैकमुन, लेफ्टी० जनरल सरजार्ज : द इंडियन स्टेट्स ऐण्ड प्रिंसेज, 1936।
मार्शमैन, जे० सी० : द हिस्ट्री आफ इंडिया, दो भाग।
मसानी, के० पी० : ब्रिटेन इन इंडिया।
मेसन, फिलिप : द मेन हू रूल्ड इंडिया।
मैसन, चार्ल्स : नैरेटिव आफ वैरियस जर्नीज इन बलूचिस्तान, अफगानिस्तान ऐण्ड द पंजाब, 3 भाग, 1842।
मेरसे विस्काउन्ट : द वायसरायज ऐण्ड गवर्नर जनरल्स आफ इंडिया, इलाहाबाद, 1949।

मेण्डागु, एफ० : ए स्टडी आफ इंडियन पालिसी इन बंगाल, दिल्ली, 1961।
मिल, जेम्स एण्ड विल्सन : हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इंडिया, 6 भाग।
मिश्रा, ए० एस० : नाना साहब पेशवा, 1961।
मिश्रा, बी० बी० : जुडीशियल ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ द ईस्ट इंडिया कंपनी इन बंगाल, दिल्ली, 1961।
मिश्रा जी० एस० : ब्रिटिश फारेन पालिसी ऐण्ड इंडियन अफेयर्स, बम्बई, 1963।
मांकटन, जोन्स : वारेन हेस्टिंग्स इन बंगाल।
मूरक्रोफ्ट डब्लू एण्ड ट्रेबेक जी० : ट्रेवेल्स इन हिमालयन प्राविन्स आफ हिन्दुस्तान ऐण्ड पंजाब, पटियाला, 1970।
मोरलैण्ड, डब्लू० एच० ऐण्ड चैटर्जी : ए हिस्ट्री आफ इंडिया।
म्योर रैमजे : मेकिंग आफ ब्रिटिश इंडिया।
मुखर्जी, नीलमणि : द रैय्यतवाड़ी सिस्टम इन मद्रास, कलकत्ता, 1962।
मुखर्जी, राधाकमल : लैण्ड प्राबलम्स इन इंडिया।
मुजीब, एम० : द इंडियन मुस्लिम्स, 1967।
मरे : रणजीतसिंह।
यडवर्डस, गिलियट : हीरोज आफ माडर्न इंडिया, दिल्ली, 1971।
यडवर्डस, माइकेल : द बैटिल आफ प्लासी, लंदन, 1963।
: ब्रिटिश इंडिया, लदन 1967।
: प्लासी-द फाउंडिंग आफ ऐन इम्पायर, लदन, 1969।
: द हिस्ट्री आफ इंडिया, बम्बई, 1961।
रामगोपाल : ब्रिटिश रूल इन इंडिया, दिल्ली, 1963।
: हाऊ द ब्रिटिश आकूपाइड बंगाल, बंबई, 1963।
: इण्डियन मुस्लिम्स, बम्बई, 1964।
रामप्रकाश : द फारेन पालिसी आफ वारेन हेस्टिंग्स, होशियारपुर, 1960।
रानाडे, एम० जी० : राइज आफ मराठा पावर, बंबई, 1961।
राव, आर० पी० : पोर्तगीज रूल इन गोवा, बम्बई, 1963।
राऊ, सर बेनेगल : इण्डियाज कान्स्टीच्युशन इन द मेकिंग, बम्बई, 1969।
रॉलिन्सन एच० जी० शिवाजी द मराठा।
: द ब्रिटिश अचीवमेण्ट इन इंडिया, 1948।
रे, बी० सी० : उड़ीसा अंडर मराठाज (1751-1818), बम्बई, 1960।
रेनोल्डस, रेजीनाल्ड : द ह्वाइट साहिब्स इन इंडिया।
रिजले, हर्बट एच० : द पीपुल ऑफ इंडिया, दिल्ली, 1959।
राबर्टस, पी० ई० : हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इंडिया, 1958।
: इंडिया अंडर वेलजली, गोरखपुर, 1961।

राबर्टस, रीड सर : इयर्स आफ चेन्ज इन बंगाल ऐण्ड आसाम, 1966।
रॉय, एम० पी० : ओरीजिन, ग्रोथ ऐण्ड सप्रेशन आफ द पिण्डारीज, नई दिल्ली, 1973।
रॉय, नरेशचन्द्र : द सिविल सर्विस इन इडिया, कलकत्ता, 1960।
रुद्र, ए० बी० . द वायस रायज ऐण्ड गवर्नर जनरल्स।
रत्नस्वामी . सम इन्फ्लूयन्सेज दैट मेड ब्रिटिश ऐडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम।
लतीफ, अब्दुल : द मुस्लिम प्राब्लम इन इडिया।
लतीफ, सैय्यद मुहम्मद : हिस्ट्री आफ द पजाब, नई दिल्ली, 1964।
ली वार्नर : द नेटिव स्टेट्स इन इडिया, भाग 1।
लुडलो · ब्रिटिश इडिया, दो भाग।
लायल, अल्फ्रेड : द ब्रिटिश डामीनियन इन इडिया।
वर्मा, शातिप्रसाद : ए स्टडी इन मराठा डिप्लोमैसी, आगरा 1956।
सैन्सबरी, एफ० बी० : द कोर्ट मिनिट्स आफ द ईस्ट इडिया कपनी, 5 भाग, लदन, 1935।
सनेवाल, बी० डी० : नेपाल ऐण्ड द ईस्ट इडिया कपनी, बवई, 1965।
सप्रे, बी०जी० : द ग्रोथ आफ द इडियन कान्स्टीच्युशन ऐण्ड ऐडमिनिस्ट्रेशन।
सरदेसाई, जी० एस० : निव हिस्ट्री आफ द मराठाज।
: द मेन करेन्टस आफ मराठा हिस्ट्री।
सरकार, सरजदुनाथ : शिवाजी, कलकत्ता, 1961।
सेन, सुरेन्द्रनाथ : स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री।
: द ऐडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम आफ द मराठाज, कलकत्ता, 1925।
सेठी, आर० आर० : द माइटी ऐण्ड द श्रीउड महाराजा, नई दिल्ली, 1960।
: लाहौर दरबार।
शर्मा, एस० आर० : द फाउन्डिग आफ मराठा फ्रीडम, बम्बई, *1914*।
: इवोल्युशन आफ पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन इन इडिया, इलाहाबाद, *1965*।
शेखानी, एच० के० : मुहम्मद कुली कुत्बशाह, कलकत्ता, 1966।
श्याम, राधे : द किंगडम आफ अहमदनगर, दिल्ली, 1966।
सिह, गुरुमुख एन० : *लैण्डमार्क्स इन इडियन कान्स्टीच्युशनल ऐण्ड नेशनल डेवलपमेंट* (1600-1919) बनारस, 1930।
: इडियन स्टेट्स ऐण्ड ब्रिटिश इडिया।
सिह, खुशवत : *राजा रणजीतसिह, लदन, 1962*।
सिन्हा, डी० पी० : द यजूकेशनल पालिसी आफ द ईस्ट इंडिया कंपनी इन बंगाल ट 1854, कलकत्ता, 1964।

सिन्हा, एन० के० ऐण्ड बैनर्जी, ए० सी० : हिस्ट्री आफ इंडिया, कलकत्ता, 1963।

सिन्हा, एन० के० : रणजीतसिंह, कलकत्ता, 1960।

: हैदरअली, कलकत्ता, 1959।

: राइज आफ सिख पावर।

स्मिथ, विन्सेन्ट ए० : द आक्सफर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया, लंदन, 1961।

स्मिथ, जी० कार्मिकेल : ए हिस्ट्री आफ द रैनिंग फैमिली आफ लाहौर, कलकत्ता, 1847।

स्पियर, पर्सीवल : इंडियाज माडर्न हिस्ट्री, 1961।

: द आक्सफर्ड हिस्ट्री आफ माडर्न इंडिया, लदन, 1965।

: द नवाब्स, 1963।

स्टेनवाच, लेफ्टी० कर्नल : द पंजाब, पटियाला, 1970।

स्ट्रेची : हेस्टिंग्स एण्ड द रोहिल्ला वार।

सूद, जे० पी० : इंडियन कान्स्टीच्युशनल डेवलपमेण्ट ऐण्ड नेशनल मूवमेण्ट।

सूरी, लाला सोहनलाल : उमदत-उल-तवारीख, ट्रासलेशन इन टू इगलिश बाई बी० एस० सूरी। दफ्तर 3, नई दिल्ली, 1961, दफ्तर 4, चण्डीगढ़ 1972।

श्रीनिवासन, सी० के० : बाजीराव द फ़स्ट, द ग्रेट पेशवा, बम्बई, 1961।

श्रीवास्तव, ए० एल० : द फर्स्ट टू नवाब्स आफ अवध, आगरा, 1954।

: शुजाउद्दौला, आगरा, 1961।

हसरत, विक्रमाजीत : ऐंग्लो सिख रिलेशन्स।

: द पंजाब पेपरस।

हसनैन, एस० ई० : इंडियन मुस्लिम : चैलेन्ज ऐण्ड अपारचुनिटी, बम्बई, 1968।

हिल, एस० सी० : बंगाल इन 1756-1757, तीन भाग।

हंटर, डब्लू० डब्लू० : द इंडियन मुसलमान्स।

हुसेन, युसुफ : द फस्ट निजाम, कलकत्ता, 1963।

□□